आधुनिक हिन्दी कविता में महात्मा बुद्ध और बौद्ध तत्व

(BUDDHA AND BUDDHIST THOUGHT IN MODERN HINDI POETRY)

THESIS SUBMITTED TO THE UNIVERSITY OF COCHIN FOR THE DEGREE OF DOCTOR OF PHILOSOPHY

Supervisor :

DR. N. RAMAN NAIR,
Reader,
Department of Hindi,
University of Cochin
Cochin-22

by

K. CHITRALEKHA
के. चित्रलेखा

1977

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by Kumari K. Chitralekha, under my supervision for Ph.D., and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi
University of Cochin
Cochin - 22.

Dr. N. Raman Nair,
Supervising Teacher

ACKNOWLEDGEMENT

The work for this thesis was carried out in the Department of Hindi, University of Cochin, Cochin - 22, during the tenure of scholarship awarded to me by the University of Cochin. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin for the valuable help and encouragement extended to me.

K. Chitralekha

प्राक्कथन

कहा जाता है कि अथाह समुद्र में गहराई से पैठने पर ही मोती हाथ लगता है। मैंने भी उस ओर अथक परिश्रम किया है। मुझे पूर्णतया सफलता प्राप्त नहीं हुई। बौद्धधर्म और दर्शन के विशाल-सागर में गोते लगाने पर मुझे जो थोड़े मोती हा लगे, उसके आधार पर बौद्धधर्म से प्रभावित आधुनिक हिन्दी-कविताओं को परखने और समझने की चेष्टा की है। बुद्धदेव ने अपने त्यागपूर्ण जीवन में साधनारूपी जो यज्ञ कि था, उसकी आलोचना करने की न तो मुझ में योग्यता है और न इच्छा। अत: अपने शोध-प्रबन्ध को मैंने अधिक आलोचनात्मक नहीं होने दिया, बदले में विवरणात्मक ही रखने का प्रयत्न किया है।

मेरा विनम्र निवेदन है कि अभी तक आधुनिक हिन्दी-काव्यों में बुद्धचरित य बौद्धतत्त्वों का ढूँढने का यह प्रथम प्रयास है। मेरे लिए मार्गप्रदर्शन के रूप में दो ग्रंथ र हैं -- डा० सरला त्रिगुणायत लिखित 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव' और डा० विद्यावति मालविका लिखित 'संत हिन्दी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव' हिन्दी साहित्य में आरंभिक तथा मध्ययुग तक का साहित्य बौद्धसिद्धान्तों के प्रभाव पुष्ट है, लेकिन उसके बाद तीन चार शताब्दी के बाद ही बुद्धदेव के विचारों का पु साहित्यिक क्षेत्र में आकलन हुआ है। इसलिए बीसवीं शताब्दी के अनेक काव्यों में बौद्धतत्व भरपूर प्राप्त हुए। तब उनको लेकर यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने का विचा आया है। आरंभ में विषय की सीमा और सामग्री की अप्राप्ति के संबंध में, संदेह तो था, लेकिन उसके कार्यनिरत होते हुए यही अनुभव हुआ कि सामग्री प्रचुर मात्रा है, इसलिए नये सिरे से उनका आकलन-विश्लेषण संभव है। प्रस्तुत प्रबन्ध में अन्ति तीन अध्याय इस ओर मेरे मौलिक प्रयास हैं, यद्यपि बौद्धतत्वों के दार्शनिक-विश्लेष कार्य की ओर ध्यान नहीं दिया गया है।

महात्मा बुद्ध से संबंधित एक विशाल साहित्य ही उपलब्ध है। मेरी इच्छ कि बौद्धसिद्धान्तों की जानकारी के लिए बौद्धसाहित्य के मूल ग्रंथों का ही अध्ययन

किन्तु पालि और संस्कृत के अपने अधूरे ज्ञान के कारण केवल हिन्दी और अंग्रेजी के ग्रंथों पर ही अधिकतर निर्भर रहना पड़ा ।

यहाँ अपनी लेखन-व्यवस्था के बारे में भी दो शब्द कहूँ । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को दो भागों में विभक्त किया गया है । इनमें प्रथम भाग सिद्धान्त पक्ष को लेकर चलत है और द्वितीय भाग प्रभाव-निर्देश को ।

प्रबन्ध का शीर्षक है -- 'आधुनिक हिन्दी कविता में महात्मा बुद्ध और बौद्ध-तत्त्व' । आधुनिक हिन्दी कविताओं में बौद्ध-तत्त्वों का प्रयोग करते समय, केवल उन्हीं तत्त्वों को लिया गया है, जिन्हें बुद्धदेव ने व्याकृत बताया है । इस श्रेणी में आने वाले मुख्यतत्त्व हैं अनित्यता, आर्यसत्यों की भावना आदि । प्रभाव निर्देश करने वाले इस द्वितीय भाग में प्रधानतया आधुनिक हिन्दी के प्रबन्धकाव्यों और कविताओं पर ही बल दिया है । तो भी एक अध्याय में इन सबकी पृष्ठभूमि के आधार पर भारतेन्दुकाल तक के हिन्दी साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डाली है । क्योंकि इनको छोड़ देने पर, युग युगान्तरों से निरन्तर बहती आने वाली बौद्धधर्म की पीयूष-धारा के जीवन्त, जीर्ण तथा रूपान्तरित स्वरूपों का हमारा ज्ञान अपूर्ण ही रहेगा । लेकिन इन स्थानों पर या तो मुख्य कवियों को चुना है, या उनका मात्र उल्लेख किया है । उदाहरण के लि भक्तियुग की चारों शाखाओं के प्रतिनिधि कवियों की रचनाओं का नाममात्र विश्लेष किया है । उन पर भी विशाल रूप से लिखने की आशा थी, लेकिन प्रस्तुत विषय तो आधुनिक हिन्दी-साहित्य की कविताओं पर ही ज्यादा आश्रित है । इसलिए पृष्ठभू को संक्षिप्त-रूप में ही प्रस्तुत किया गया है । संपूर्ण प्रबन्ध सात अध्यायों में विभा है --

प्रथम अध्याय में वैदिक कर्मकाण्ड और पौरोहित्य की प्रतिक्रिया में बौद्धधर्म उदय, उसके प्रमुख सिद्धान्त बौद्धधर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित, बौद्ध के आर्यसत्यों की भावना एवं आर्याष्टांगिक मार्ग आदि का विवरण दिया गया है तत्पश्चात् बौद्धधर्म और भारत के अन्य धर्मों का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत है । अपनी जन्मभूमि पर बौद्धधर्म ने जो स्वर्णिम-किरणों को बिखेर दिया, उसकी आभा से देश

विदेश भी बच न सके । इसलिए देश-विदेशों में बौद्धधर्म के प्रचार का वर्णन भी संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है । इनमें सिंहल, बर्मा, तिब्बत चीन जैसे विदेशों में बौद्धध के प्रचार का परिचय मुख्य है । अन्त में बौद्धधर्म के महान् व्याख्याता और उनके उपदेश के वर्णन के साथ इस अध्याय को समाप्त किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में, भारत में बौद्धधर्म के विकास की रोचक कहानी बतायी गयी है । बुद्धकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्थाओं का इसमें वर्णन मिलता है । इसके बाद मौर्यकाल, शुंगकाल एवं हर्षकालीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृ का वर्णन करके यह बताने का प्रयास किया गया है कि जिस प्रकार बुद्धदेव ने परिवर्तन के शंखनाद से भारतवर्ष में नवजागरण किया था । यहाँ केवल ऐतिहासिक परिचय देन ही मुख्य मंतव्य रहा है ।

इसी अध्याय में संस्कृत और पालि में विशाल रूप से प्राप्त बौद्धग्रंथों पर प्रका डाला है । इसके पश्चात् भारत के सांस्कृतिक बौद्ध-केन्द्रों और मन्दिरों का वर्णन प्रस्त किया है । क्योंकि युगों पूर्व पतित मानवों को नवजीवन प्रदान करने में जिस धर्म ने उन्नत आदर्श सामने रखे थे, उसके संदेश-वाहक के रूप में आज हमारे प्रेरणास्रोत बनकर ये बौद्धकेन्द्र और मन्दिर ही स्थित हैं । इसलिए इनकी भी अनिवार्यता प्रस्तुत प्रबन्ध में मानी गयी है ।

तृतीय अध्याय में निर्वाण-प्राप्ति के बाद भारत में बौद्धधर्म की स्थिति पर दृष्टिपात किया गया है । बुद्धदेवके महापरिनिर्वाण के बाद उनके उपदेशों का संग्रह करने के लिए बौद्ध-संगीतियों का आयोजन हुआ । उन संगीतियों का विस्तृत विवरण दिया गया है । विभिन्न समयों में कुल चार संगीतियों का आयोजन हुआ था । दूस संगीति के बाद भिक्षु-संघों का, महायान, हीनयान जैसे दो भागों में विभक्त होना दोनों शाखाओं की विशेषताएँ, समानताएँ आदि इस अध्याय का प्रतिपाद्य है । इसी समय बौद्धधर्म का शैवधर्म से मिश्रण एवं बौद्धधर्म में तांत्रिक साधना का विकास भी यह दिखाया गया है । इनमें से बौद्धधर्म की एक विकसित शाखा -- वज्रयान-से सिद्धों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने अपभ्रंश में साहित्य की रचना की । अपभ्रंश में दृष्टिगत बौद्ध

प्रभाव का भी यहाँ चित्रण किया गया है । इसके बाद बौद्धधर्म के नैतिक-पक्ष पर विचार प्रस्तुत किया गया है । मन की विशुद्धि लोककल्याणकामना, कर्मवाद जैसे सद् विचारों सहित चलने वाले बौद्धधर्म का नैतिक पक्ष लोगों का मार्गदर्शक बना तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, इसे दिखाने के लिए ही उसके नैतिकपक्ष पर विचार किया है । बौद्धधर्म के सैद्धान्तिक पक्ष पर प्रकाश डालते समय अन्त में मोक्ष, परमपद, निर्वा जैसे समानार्थी पदों पर भी विचार किया है ।

भक्तिकाल के बाद रीतिकाल का आविर्भाव हुआ । रीतिकाल के साहित्य पर बौद्धप्रभाव दर्शित नहीं होता है । कहा जाता है कि वेदों की निन्दा करने के कारण इस समय बुद्ध उपेक्षित हुए । उसके बाद बुद्ध और बौद्धधर्म में अभिरुचि जगाने का श्रेय उन्नीसवीं सदी की बहुमुखी योरोपीय जिज्ञासा को है । खड़ी-बोली में तो सर्वप्रथम श्री मैथिलीशरण गुप्त ने देश की गौरवगाथा का गान करते समय बुद्धदेव का स्मरण किया था ।

चतुर्थ अध्याय भारतेन्दुकाल तक के हिन्दी साहित्य पर दिखाई देने वाले बौद्ध प्रभाव की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है । बौद्धधर्म के लुप्त होने के बाद भी बौद्धधर्म की प्रतिष्ठा भारत में दसवीं शताब्दी तक रही । लेकिन इस समय उसमें अनेक परिवर्तन आ शैवधर्म के नाथों का भी बौद्धों से मिश्रण हुआ । उसके बाद सिद्धों और संतों का उदय हुआ । नाथ-सिद्धों से होकर परंपरा के रूप में संत लोग बौद्धसिद्धान्तों से प्रभावित हुए यहाँ संतों में प्रमुख कबीरदास की वाणियों में आये हुए बौद्धप्रभाव का अधिकांश रूप में विश्लेषण किया है । जयदेव, सन्त सधना, जैसे पूर्ववर्ती संतों पर भी प्रकाश डाला है लेकिन मुख्यतया कबीर की वाणियों में प्रचुरमात्रा में बौद्धतत्त्वों का समावेश देखने के कारण उन पर अधिकतया विचार किया गया है । उसके बाद मध्यकाल की चारों शा -ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, निर्गुणधारा, सगुणधारा -- के प्रमुख और प्रतिनिधि कवियों पर विचार प्रकट किया है । इसमें जायसी, तुलसीदास, और सूरदास की रचनाओं पर आंशिक दृष्टि ही डाली गयी है । इनके साहित्य में बौद्धतत्त्व अधिक तो नहीं आये । तो भी सूक्ष्म-रूप में आये हुए एक दो बौद्धतत्त्वों पर विचार किया है ।

पंचम अध्याय हिन्दी के प्रबन्धकाव्यों को आधार बनाकर तैयार हुआ है। हिन्दी के प्रबन्धकाव्यों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मिले हुए बौद्धतत्त्वों को प्रका में लाया गया है। इस अध्याय में यह क्रम रखा गया है कि पहले बुद्धदेव के जीवनचरित को प्रतिपादित करने वाले सात-आठ प्रबन्ध काव्यों से आरंभ किया है। उसके बाद अ काव्यों को लेकर विचार-विमर्श हुआ है।

षष्ठ अध्याय में छायावाद के चार आधार स्तंभ प्रसाद, महादेवी, पंत एवं निराला की कविताओं में आए हुए बौद्धतत्त्वों पर प्रकाश डाला है। इसका कारण य है कि इनकी रचनाओं में बौद्धतत्त्वों का सूक्ष्म आकलन एवं विश्लेषण हुआ है। यहाँ पर यह क्रम स्वीकार किया है कि प्रत्येक कवि की कविताओं में आने वाले बौद्धतत्त्व क्षणिकता, दुःख, करुणा जैसे विभागों में विभक्त हों।

प्रसाद, महादेवी, पंत एवं निराला की रचनाओं के अतिरिक्त आधुनिक हिन साहित्य की लघु कविताओं में आये हुए बौद्ध-तत्त्वों का वर्णन सप्तम अध्याय का विष है। यहाँ भी तात्त्विक विश्लेषण को ही प्रश्रय दिया है। इसमें ऐसी कविताएँ भी ली गयी हैं, जिसमें बुद्ध के नामस्मरण और सिद्धान्तोंके शब्दों का उल्लेख मात्र हुआ है

अष्टम अध्याय उपसंहारात्मक है। इसके अंतर्गत ऊपर के समस्त अध्यायों में अन्तर्लीन सार का उल्लेख किया है। बौद्धधर्म के सिद्धान्तों के अध्ययन के फलस्वरूप जो नया दृष्टिकोण संप्राप्त हुआ है उसके सहारे आधुनिक हिन्दी कविताओं का विश्लेष करके यह निष्कर्ष निकाला है कि आधुनिक हिन्दी काव्यों में बुद्धदेव तथा बौद्धतत्त्वों का सबसे अधिक समावेश हुआ है।

मेरे इस कार्य को संपन्न और साकार रूप में परिणत करने का श्रेय परम आद णीय डा० एन० रामन नायर, रीडर, हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय, को है जिनके बहुमूल्य मार्गनिर्देशन में यह कार्य सार्थक हुआ है। उनके अगाध ज्ञान प्रेरणा और कृपा के बिना मेरा यह कार्य अपूर्ण रहता। उनके प्रति मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

कोचिन विश्वविद्यालय के आचार्य और अध्यक्ष परम श्रद्धेय डा० एन० ई० विश्व नाथ अय्यर ने विषय-निर्देश के समय से लेकर उसकी समाप्ति तक आवश्यक सहायता प्र की है। उसी प्रकार दिल्ली के 'लक्ष्मीबाई कालेज' की विभाग अध्यक्षा डा० कौशल्य

वर्मा से भी मुझे अनुग्रह प्राप्त हुए हैं। उन गुरुजनों का मैं हार्दिक धन्यवाद करती हूँ

मेरे पिताजी भी हिन्दी के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं, उन्हीं की इच्छा का शु परिणाम है यह। सामग्री-संकलन का मेरा मुख्य केन्द्र कोचिन विश्वविद्यालय का ग्रंथा रहा है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के लिए कलकत्ता की 'सेन्ट्रल लाइब्रेरी' तथा कलकत्ता और दिल्ली विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों से भी सामग्री इकट्ठी की है। उनके प्रति मैं आ हूँ। इस शोध-कार्य में अनेक विद्वज्जन एवं मित्र जनों का आशीर्वाद मुझे मिला है, उन में कृतज्ञ रहूँगी।

पुनः उस महिमामय बुद्धदेव के प्रति अपनी समस्त श्रद्धा और भक्ति के फूलों के अर्पण करके यह प्रबन्ध विद्वानों के हाथों में समर्पित करती हूँ --

Yadekhar

मार्च, १९७७.

-- के० चित्रलेखा

विषय सूची

भाग - १

प्रथम अध्याय

१- भारत में वैदिक कर्मकाण्ड और पौरोहित्य की प्रतिक्रिया के रूप में बौद्धधर्म का उदय 1 - 7

(१) प्राचीन वैदिक धर्म.

(२) उत्तर वैदिक धर्म.

(३) पुराणेतिहासकाल

(४) बौद्धधर्म और जैनधर्म का उदय

२- महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व और उनके उपदेश 8 — 29

(१) जन्म

(२) विवाह

(३) ज़रा, व्याधि, और मृत्यु

(४) महाभिनिष्क्रमण

(५) साधना

(६) संबोधि-प्राप्ति

(७) बौद्धधर्म के मुख्यतीन आधार स्तंभ --

(क) अनित्यता, (ख) अनात्मवाद, (ग) दु:ख.

(८) चार आर्य सत्य --

(क) दु:ख, (ख) दु:ख समुदय, (ग) दु:ख निरोध, (घ) अष्टांगिकमार्ग.

(९) आर्याष्टांगिक मार्ग या मध्यम मार्ग --

सम्यक्दृष्टि, सम्यक्- संकल्प , सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्म,

सम्यक्-आजीवो, सम्यक्-व्यायाम, सम्यक - स्मृति, सम्यक् समाधि ।

(१०) निर्वाण.

३- महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त और भारत के अन्य धार्मिक सिद्धान्तों में समानताएँ तथा अन्तर 29 - 35

(१) हिन्दू धर्म तथा बौद्ध धर्म

(२) जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म.

४- बौद्धधर्म का देश-विदेशों में प्रचार 35 — 57

(१) भारत में बौद्ध धम का विकास एवं व्याप्ति --

अशोक के काल में, गुप्तकाल में, कुषाण काल में ।

(२) बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार --

श्रीलंका में, बर्मा में, सियाम में, कंबोदिया में, तिब्बत में, चीन में ।

५- बौद्ध धर्म के महान व्याख्याता और उनके उपदेश 57 — 69

मुख्य बौद्ध शासक

अशोक

धर्म प्रचार --

(१) बौद्ध धर्म को लोक धर्म बनाने का प्रयास.

(२) धर्म प्रचारकों को यथोचित प्रोत्साहन तथा सहायता देना.

(३) महात्मा बुद्ध के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन.

(४) अभिधर्म लेख.

(५) संगीति का आयोजन.

अशोक के धर्म की विशेषताएँ.

मेनेन्डर

कनिष्क

हर्षवर्द्धन

अन्य बौद्ध शासक.

द्वितीय अध्याय

१- ई० सदी के पूर्वार्द्ध में भारत में सभ्यता, संस्कृति तथा कलाओं का उत्थान तथा उसमें बौद्धभिक्षुओं का योगदान ५० – ७३

(१) बुद्धकालीन भारत

(२) मौर्यकालीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति --

सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था, भाषा और साहित्य, कला, अशोक-कालीन कलाकृतियाँ।

(३) शुंगकालीन सभ्यता एवं संस्कृति --

शासन व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, भाषा और साहित्य,

धार्मिक व्यवस्था --

(क) ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान.

(ख) भागवत धर्म, शैवमत और नागपूजा

(ग) बौद्धधर्म

(घ) हिन्दू धर्म की विशालमनस्कता

कला की उन्नति --

स्तूप, स्तंभ, विहार और चैत्यगृह, मूर्तियाँ।

(४) गुप्तकालीन सभ्यता एवं संस्कृति --

शासन व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था

धार्मिक व्यवस्था --

(क) वैदिक धर्म

(ख) वैष्णव धर्म

(ग) शैव धर्म

(घ) बौद्ध धर्म और जैन धर्म.

साहित्यिक उन्नति

कलाओं की उन्नति

(क) वास्तुकला

(ख) मूर्तिकला

(ग) चित्रकला ।

(५) हर्षकालीन संस्कृति एवं सभ्यता --

सामाजिक व्यवस्था

धार्मिक व्यवस्था

साहित्य एवं कला ।

२- महात्मा बुद्ध और उनके तत्वों से संबंधित पालि और संस्कृत ग्रंथ ५४ — १२०

पालि भाषा का उद्गम

पालि ग्रंथ

(१) पालि के सैद्धान्तिक ग्रन्थ --

(क) विनय पिटक -- सुत्तविभंग, खंधक, परिवार ।

(ख) सुत्तपिटक -- दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय, खुद्दकनिकाय ।

(ग) अभिधम्मपिटक -- पुग्गलपन्नति, विभंग, धम्मसंगणि, धातुकथा, यमक, पट्ठान, कथावत्थु

(२) अनुपिटक साहित्य -- मिलिन्दपन्ह, नेति प्रकरण, पेटकोपदेस ।

वंशग्रंथ

(क) दीपवंश, (ख) महावंश, (ग) बोधिवंश, (घ) दाठवंश, (ङ) थूपवंश,

(च) अत्तनगलुविहारवंश, (छ) कुलेसधानुवंश, (ज) गन्धवंश, (झ) सासनवंश

(ञ) बुद्धघोसुप्पत्ति, (ट) सद्धम्मसंगह ।

पालि के काव्य ग्रंथ

अनागतवंश, जिनचरित, नेलकटाह गाथा, पंनमधु, सद्धम्मोपायन, पंचयतिदीपन ।

संस्कृत में बौद्ध साहित्य

आगम पिटक, विनयपिटक, अभिधर्मपिटक ।

संस्कृत के बौद्धाचार्य

अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबन्धु, बुद्धपालित और भावविवेक, आर्य असंग, आचार्य दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, चन्द्रगोमिन् ।

३- भारत के सांस्कृतिक बौद्धकेन्द्र और गुहागृह 120 — 134

(क) मुख्य बौद्ध तीर्थ -- लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ, कुशीनारा, श्रावस्ती, संकास्या, राजगृह, वैशाली ।

(ख) मुख्य बौद्ध स्तूप -- सांची, अमरावती, अजन्ता और एलोरा, नलन्दा, भारहुत ।

तृतीय अध्याय

१- बौद्धसंगीतियाँ 135 — 144

(१) प्रथम संगीति

(२) द्वितीय संगीति

(३) तृतीय संगीति

(४) चतुर्थ संगीति ।

२- महायान 145 — 156

महायान की विशेषताएँ--

(१) बोधि सत्वों की भावना

(२) दशभूमि

(३) त्रिकाय की कल्पना

(४) निर्वाण की कल्पना

(५) भक्ति का समावेश

(६) मानवतावाद

महायान के निकाय :

(१) माध्यमिक मत या शून्यवाद

(२) योगाचार मत या विज्ञानवाद

३- हीनयान : 156 — 157

४- हीनयान तथा महायान का पारस्परिक एवं सैद्धान्तिक संबंध । 158 — 161

५- बौद्ध धर्म में तांत्रिक साधना का विकास -- 161 — 173

(१) मंत्रयान, (२) वज्रयान (३) कालचक्रयान (४) सहजयान ।

६- अपभ्रंश पर बौद्धधर्म का प्रभाव -- 173 — 178

(१) सहजानन्द, (२) गुरु (३) वेदशास्त्रादि की निन्दा (४) अन्य मतों खण्डन ।

७- बौद्धधर्म का नैतिक पक्ष -- 178 — 181

(१) प्रकाश वाद, (२) मन की विशुद्धि और बुद्धिवादिता(३) आध्यात्मि (४) लोककल्याणकामना (५) मध्यम प्रतिपदा (६) कर्मवाद ।

८- निर्वाण - मोक्ष - परमपद आदि । 181 — 187

भाग - २

चतुर्थ अध्याय

भारतेन्दु तक के हिन्दी साहित्य में बौद्धतत्व 188 — 189

बौद्धधर्म का ह्रास, वैष्णव धर्म में बौद्धधर्म का आत्मसात् होना, शैवधर्म के नाथ पंथ के सिद्धान्तों के साथ बौद्धतत्वों का मिश्रण, सिद्धों का प्रादुर्भाव, संतों उदय आदि ।

पूर्वकालीन संत 190 — 193

जयदेव, सन्त सधना, संत लालदेद, संतवेणी, संत नामदेव, संत त्रिलोचन ।

संतों में सर्वश्रेष्ठ कबीर तथा उन पर बौद्धधर्म का प्रभाव 193 218

कबीर के विचार तत्व

कबीर के समय भारत में बौद्धधर्म का रूप

कबीर की वाणियों में बौद्धतत्वों का समावेश--

सच्चानाम, परमतत्व, साधुसंग, जातिभेद, बाह्याडंबर, अनात्मवाद, क्षणिकता, आर्यसत्यों की भावना, हठयोग, निर्वाण ।

मध्यकालीन धार्मिक स्थिति और कबीर के समसामयिक संत ।

संतपरंपरा

मध्यकाल के अन्य तीनों शाखाओं के प्रतिनिधि कवि-- तुलसी, सूर और जायसी की रचनाओं में आये हुए बौद्धतत्व (प्रतीत्यसमुत्पादवाद, परमतत्व, निर्वाण आदि)

पंचम अध्याय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रबन्ध काव्यों में बौद्धतत्व 219 — 284

महात्माबुद्ध के जीवनचरित सम्बन्धी काव्य -- सिद्धार्थ, बुद्धचरित, निर्वाण, यशोधरा, कुणालगीत, कोशा, आम्रपाली, वासवदत्ता, मृगदाव ।

अन्य प्रबन्धकाव्य -- सिद्धराज, अंजलि और अर्घ्य, नोआखाली में, बापू (सि० गु), नक्ष आत्मोसर्ग, मिलन, कामायनी, त्रिपथगा, प्राणार्पण, कौन्तेयकथा, कुरुक्षेत्र, बापू (दिनकर), मुक्तियज्ञ, सत्यकाम, बंगाल का काल, नागरगीता, रक्तचन्दन, युगाधार, चेतना, गान्ध्यायन, जननायक, जवाहर ज्योति, विश्वज्योति बापू, तप्तगृह, आलोक

षष्ठ अध्याय

मुख्य छायावादी कवि -- प्रसाद, महादेवी, पंत और निराला की कविताओं में बौद्ध-तत्व 286 — 345

सप्तम अध्याय

आधुनिक हिन्दी-कविताओं में महात्मा बुद्ध के तत्व द्विवेदी-काल से प्रयोगवाद युग तक (प्रसाद,पंत,महादेवी एवं निराला की कविताओं को छोड़कर) 346 — 401

करुणा

दुःख

कारुणिकता

साठोत्तरी हिन्दी कविताओं में बौद्ध-तत्व 401 — 424

करुणा

दुःख

कारुणिकता

महात्मा बुद्ध और उनके तत्वों का नामस्मरण करने वाली कविताएँ। 424 — 462

अष्ठम अध्याय

उपसंहार 463 — 467

ग्रंथसूची 468 — 480

प्रथम अध्याय

१- भारत में वैदिक कर्मकाण्ड और पौरोहित्य की प्रतिक्रिया के रूप में बौद्धधर्म का उदय

मनुष्य सदा परिवर्तन चाहता है । यह परिवर्तन कभी-कभी उसके सामने कई समस्याएँ उत्पन्न कर देता है । ऐसा ही एक वातावरण ई० पू० छठी शताब्दी में भी दृष्टिगोचर होता है । धर्म और मोक्ष के प्रश्नों ने जनता में अशान्ति फैलादी थी । लोगों के इस मानसिक संघर्ष का मूल कारण था वैदिक कर्मकाण्ड तथा उससे संबंधित कुछ क्रियाएँ । भारतवर्ष का सबसे प्राचीन धर्म वैदिक धर्म था, जिसमें यज्ञ-यागादि का प्राधान्य था । वैदिक युगीन धार्मिक विकास के तीन स्पष्ट रूप प्रतीत होते हैं --

(१) प्राचीन वैदिक धर्म

यह तो उपासनाप्रधान एवं सरल धर्म था । वह अत्यन्त सुविकसित, परिष्कृत तथा प्रौढ़ धर्म भी था । वर्तमानकाल-सा जाति-भेद प्रचलित न था । प्राकृतिक शक्तियों की पूजा, बहुदेवतावाद आदि सब प्रचलित थे ।

(२) उत्तर वैदिक धर्म

यह तो ब्राह्मणग्रन्थों का समय था । इस समय वैदिक धर्म कर्मकाण्ड-प्रधान एवं जटिल बन गया था । इस युग की एक विशेषता यह थी कि ब्राह्मण लोग ही धर्म के ठेकेदार बन बैठे थे और उन्होंने `ब्राह्मण-धर्म` के नाम से एक नया धर्म चलाया ।

यज्ञों का आडम्बर इतना बढ़ चला था कि इसमें पशुबलि की प्रथा भी चलने लगी । इ युग में वर्णाश्रम व्यवस्था का विचार परिपक्व हुआ । वर्णाश्रम धर्म के अनुसार विभि वर्णों के ऊँचे-नीचे होने तथा शिल्पियों को शूद्रों के समकक्ष मानने की कुप्रथा का श्रीगणेश हुआ । ज्ञान, त्याग, और तपस्या का आचरण करने वाले ब्राह्मण लोगों ने अपने को उन्नत वर्ग का अधिकारी बतलाया । इसी समय से लेकर ऊँच-नीच तथा अस्पृश्यता का विकास होने लगा ।

(३) पुराणेतिहासकाल

यह काल वैदिकयुग से बिल्कुल भिन्न था । वैदिकयुग की प्राकृतिक शक्तियों पूजा इस काल में पूर्ण रूप से अप्रत्यक्ष हो गयी थी । `जिस तरह वैदिक युग में सब देवता एक भगवान् की विभिन्न शक्तियों के सूचक थे, उसी प्रकार वे अब भगवान की तीन मुख्य उत्पादक, धारक, और संहारक शक्तियों के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु, महेश विविध रूप बने ।`[१]

जहाँ वैदिक-युग ने याज्ञिक कर्मकाण्ड पर बल दिया, वहाँ उपनिषदों ने ज्ञा पर बल दिया । पशुबलि के स्थान पर यहाँ आत्मयज्ञ, आत्मसंयम, चरित्रशुद्धि आदि को मुख्य मानने लगे । विचारकों ने भी स्पष्ट रूप से उन पाशविक कर्मों पर कटु आल चना की । `उन क्रूरतापूर्ण यज्ञों को करने का क्या लाभ, जिनसे स्वर्ग आदि क्षणि फल प्राप्त होते हैं । सच्चा यज्ञ तो सत्य, अहिंसा, तृष्णा-क्रोध का परित्याग, व वैराग्य और त्याग है । इनकी साधना करने वाला वह फल प्राप्त करता है जो क्र यज्ञों से भी नहीं प्राप्त हो सकता ।`[२]

`भगवद्गीता` के उज्ज्वल आदर्श ने पाशविक यज्ञों से उत्तप्त मनों को शीतलत प्रदान करने की ओर बड़ा काम किया । इसके पूर्व कर्मकाण्डी यज्ञों पर पूर्ण बल देते

१- भारत का सांस्कृतिक इतिहास - हरिदत्त वेदालंकार, पृ० ५६.

२- वही - पृ० ५७.

तपस्वी तप को महत्वपूर्ण समझते थे । लेकिन गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मण्यता पर बल देकर लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित किया । मुक्ति और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उन्होंने यही एक मार्ग सफल बताया । महाभारत में वनपर्व का व्याध, शान्तिपर्व का बनिया जाजलि आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । जो फल की आशा को छोड़कर निष्काम बुद्धि से अपना कर्तव्यपालन करे, उसी की श्रेष्ठता गायी गयी है 'गीता' में । इसी श्रेष्ठता के कारण 'गीता' सार्वभौम धर्म बन गया । इस महत्वपूर्ण धर्म ने जो-जो मुख्य कार्य किये, उसका उल्लेख अवश्य प्रतीत होता है । उसने मोक्ष के किवाड़ खोल दिये । सर्वप्रथम स्त्रियों और नीच जातियों को भी उत्तम गति पाने का अधिकार 'गीता' में ही ध्वनित होता है । मोक्षप्राप्ति की दृष्टि से भगवान श्रीकृष्ण ने स्त्री-पुरुष, आर्य-अनार्य सबको अधिकारी सिद्ध किया । यह सार्वभौम धर्म सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त था । उदाहरण के लिए इसमें किसी प्रकार का देवता का या पूजा-विधि का नियम नहीं था तथा जाति, देश और संप्रदाय की सब सीमाओं से मुक्त था ।

इस समय वर्ण-व्यवस्था होने पर भी जाति-पाँति नहीं थी । गुण और कर्म के बलिष्ठ तत्व ही वर्ण के विभाग का निश्चय कर देते थे । वर्णभेद न होने के कारण लोग अपनी रुचि के अनुकूल काम करते थे । इसमें कोई आपत्ति नहीं थी । उदाहरण के लिए ब्राह्मण क्षत्रियों का काम कर सकता था वैसे ही क्षत्रिय भी ब्राह्मणों का काम । ब्राह्मण द्रोणाचार्य धनुर्वेद के सबसे बड़े आचार्य निकले वैसे ही भीष्म पितामह सबसे उन्नत क्षत्रिय होते हुए भी तत्वज्ञान के उपदेशक बने । महाभारत में ही कहा गया है कि वर्णों का कोई भेद है ही नहीं ।

यह आशावादी युग था । अपने कर्म के फलस्वरूप ही लोग महान बनते हैं । भाग्य पर विश्वास रखना भी व्यर्थ है । इस युग के जनों की जीवन के प्रति ये सब धारणाएँ प्रचलित थीं ।

पुराणों और इतिहासों के इस रचना-काल में भारतीयों ने चरित्र और आचार को महत्ता दी थी । इस प्रसंग में महाभारत की उक्ति ध्यान देने योग्य है --'लक्ष्मी

वहीं रहती है, जहाँ शील, धर्म और सत्य रहते हैं।' राम का वचनपालन तथा युधिष्ठिर का सत्यप्रेम भारतीय धर्म के आदर्शों का मूलभूत सार हैं। एक उज्ज्वल जीवन बिताने के लिए अनिवार्य धार्मिक, दार्शनिक और नैतिक आदर्शों को हमारे सम्मुख उपस्थित करने वाला यह युग वास्तव में भारतीय इतिहास का 'स्वर्णयुग' माना जाता है।

इस प्रकार वर्षों से चली आने वाली धार्मिक अशान्ति और लोगों के मानसिक संघर्ष ने छठी शताब्दी ई० पू० में एक 'धार्मिक-आन्दोलन' को ही पैदा किया। इस मूलभूत कारण ऊपर लिखे जा चुके हैं। लोग याज्ञिक कर्मकाण्ड की निरर्थकता को समझने लगे, उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता पर संशयपूर्ण दृष्टि डाली, एवं ब्राह्मणों की प्रभुता की ओर उनको पूर्ण रूप से घृणा पैदा हुई। इन सबसे बढ़कर उनको नैतिक और तपस्या का महत्व खटका। वेद, आत्मा और ईश्वर पर विश्वास न रखने वाला यह आन्दोलन 'नास्तिक आन्दोलन' के नाम से अभिहित किया जाने लगा। 'जनता कोई ऐसा धर्म चाह रही थी जो सुगम हो और सुबोध हो, जिसमें पशुबलि की क्रूरता भी नहीं हो, और व्यर्थ का आडंबर भी नहीं रहे। जो मनुष्य को अतिभोग से भी दूर रखे और तपस्या तथा यतीवृत्ति की कठोरता से भी, जो मनुष्य के ध्यान को कर्म की ओर तो अवश्य ले जाय, किन्तु बीसों प्रकार के ऊहापोह में उसे उलझा नहीं डाले। असल में जनता कोई व्यावहारिक धर्म चाह रही थी।'[१]

केवल भारत में ही नहीं, सारी दुनियाँ में ऐसा धर्मान्दोलन दृष्टिगोचर होता था। 'यवन-द्वीपों के अयोनिया में हेराक्लिटस ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। ईरान में सोरास्टर ने उस समय स्थित धार्मिक ढकोसलों के विरुद्ध आवाज़ उठायी और चीन में लोगों ने कनफ्यूशियस के दार्शनिक उपदेशों का स्वागत किया, जिन्होंने उनको

१- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १४७.

अपने जीवन के कर्तव्यों की ओर उन्मुख भी किया था ।[१]

ऐसी ही एक नयी विचारधारा भारत में भी प्रचलित हुई । इस नव्य विचार धारा ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक यज्ञ-यागादि, पुरोहितों का आडंबर पूर्ण जीवन इन सबके विरुद्ध आवाज़ उठायी । इस नयी विचारधारा के उन्नायक थे महावीर और गौतम बुद्ध ।

(४) बौद्धधर्म और जैनधर्म का उदय

यह तो कई शताब्दियों पूर्व आरंभ हुई प्रवृत्तियों के मूर्तरूप थे । छठी शताब्दी ई० पू० में भारत में स्वतंत्र धार्मिक और दार्शनिक विचारकाफी विकसित हो चुके थे, इसका प्रमाण बौद्धग्रंथों में मिलता है । उपनिषदों में भी इसकी जड़ जम चुकी थी । यज्ञों के विरुद्ध उपनिषदों ने स्वर मिलाकर कहा था कि संसार-सागर को पार करन आसान नहीं है । यज्ञरूपी फटी हुई नाव उसके लिए योग्य नहीं है । उपनिषदों ने ज्ञान और ब्रह्मज्ञान पर बल दिया, लेकिन यह केवल बुद्धिजीवी वर्ग को ही प्रभावित कर सकता था । जन-साधारण तक उसकी पहुँच कठिन थी । वह तो एक सरल आचार तथा धर्म के लिए ही तड़पती थी । महात्मा बुद्ध इस धार्मिक क्रान्ति के प्रधान प्रवर्तक तथा संचालक थे । इस कारण इस युग को `बौद्ध-काल` कहा गया है । महावीर ने जनसेवा संबंधित जो-जो कार्य किये वे भी बुद्ध के कार्यों से बिलकुल पिछड़े नहीं थे । दो समकालीन थे । धार्मिक क्षेत्र में अहिंसा-सिद्धान्त की महत्तम देन को पुरस्कृत करके दोन ने लोगों के दिल में अपनी स्पष्ट छाप डाली । इसलिए इस युग का `बौद्ध-जैन युग` न ही ज्यादा समीचीन लगता है । इस युग को `लोकतंत्र` या `बुद्धिवाद` का भी युग

१- "In the Greek islands of IONIA, HERACLITUS preached his new doctrines; in IRAN, ZOROASTER launched his protest against th prevailing religions Superstitions, and in china people welc the philosophic teachings of CONFUSCIUS who gave them a highe conception of the duties of life"

- 'EVOLUTION OF INDIAN CULTURE' - B.N. LUNIYA, P.No.

कहने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि महात्मा बुद्ध ने धार्मिक क्रान्ति से एक नये युग का ही निर्माण किया । 'धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में उन्होंने लोकतंत्र के ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया और परंपराओं तथा अंधविश्वासों के स्थान पर 'बुद्धिवाद' का सहारा लिया ।'[१] महात्मा बुद्ध ने सदा सामान्य जीवन पर बल देकर जन-जीवन के निकटतम एक सरल तथा सुबोध धर्म का चयन किया । जिसके आचार-विचार तथा कर्म स्वच्छ हों, उसी को उन्होंने श्रेष्ठ व्यक्ति का नाम दिया ।

बौद्धधर्म के पवित्र आदर्शों ने उसे संसार का सबसे पहला विश्वधर्म बना दिया । तत्कालीन विद्या और धर्म की अपनी तरह जानकारी पाने के कारण बुद्ध मनुष्यों के बीच का अधार्मिक भेद-भाव मिटाने में बड़े सफल निकले । दयायुक्त जीवन और पवित्र आचारों से ही जीवन सुन्दर बन सकता है, यही उनका दृष्टिकोण था । बुद्धि-विवेक, दया, प्रेम, पवित्र जीवन आदि मुख्य तत्वों की मजबूत नींव पर ही बौद्धधर्म का सुन्दर महल खड़ा किया गया है ।

वास्तव में बौद्ध और जैन धर्मों ने भारतीयता को नोचे जाने से कुछ रोका । जैसे प्राचीनकाल में स्त्रीत्व, सत्य, व्यवहार-शुद्धि आदि नैतिक तत्व जो कायम थे, उनकी पुन: स्थापना की गयी ।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में बौद्धधर्म को 'कोई नया धर्म नहीं, बल्कि हिन्दुत्व का ही संशोधित रूप'[२] माना है । वस्तुत:[३] संकटकाल में कुरीतियों से लड़ने के लिए हिन्दुत्व ने ही बौद्धधर्म का रूप लिया था । इसी प्रकार गीतगोविन्द के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'जिन आचार्यों ने बुद्धदेव की गिनती हिन्दु धर्म के दशावतार में की, उनका भी यही भाव रहा होगा कि बुद्ध पराये

१- भारतवर्ष का संपूर्ण इतिहास - श्री नेत्र पाण्डेय, पृ० ११६

२-३. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १४७.

नहीं, अपने हैं और 'धर्म-संस्थापनार्थं' विष्णु जैसे राम और कृष्ण बनकर आये थे, वैसे ही पशु-हिंसा को रोकने के लिए, इस बार वे बुद्ध बनकर आये हैं।'[१] अर्थात् तथागत 'स्वयं बौद्ध नहीं, हिन्दु जनमे थे।'[२]

बौद्धधर्म पर लिखते हुए पूसिन ने भी कहा है 'भारत के लिए बौद्धमत कोई नवीन धर्म नहीं, प्रत्युत हिन्दुत्व का ही बौद्धीकरण मात्र था।. अतएव वे हिन्दुत्व की परंपरा के शोषक थे, उसके संहारक नहीं।'[३]

उपर्युक्त तत्व को पोषक बनानेवाली बात ही बी० एन० लुनिया ने भी बतायी है, 'यूरोप के लूथर एवं कालविन के ही समान महावीर एवं बुद्ध ने हिन्दू धर्म के सारे भ्रष्टाचारों के विरुद्ध आवाज़ उठायी। जैसे यूरोप में 'प्रोटेस्टन्ट' ईसाई-धर्म के रूप में लूथर एवं कालविन के धार्मिक विचार थे वैसे ही महावीर और बुद्ध के आन्दोलनों को -- जैनधर्म एवं बौद्धधर्म को हम 'प्रोटेस्टन्ट हिन्दू-धर्म' कह सकते हैं।'[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्धकारमय युग में महात्मा बुद्ध ने ज्ञानरूपी दीप-शिखा से जन-जीवन को आलोकित किया। करीब पन्द्रह सौ वर्ष से भी ज्यादा अपनी जन्म भूमि में काफी सफलता तथा लोकप्रियता प्राप्त करके आज भी बौद्धधर्म दुनियाँ की सभी आध्यात्मिक शक्तियों में श्रेष्ठता के उन्नत शिखर पर विराजमान है।

१- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १४६.

२- वही - पृ० १४८.

३- वही - पृ० १५८.

४- "Like LUTHER and CALVIN OF EUROPE, Mahavir and Gautama Buddha protested against the corruption that had crept into Hinduism. Their movements - JAINISM and BUDDHISM - are the protestant Hinduisms as LUTHERANISM and CALVINISM are protestant christianity"

- 'Evolution of Indian Culture" - P.105.- B.N. Luniy

२- महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व और उनके उपदेश

सदा महात्माओं का जीवन और उनके आदर्श शिक्षाप्रद और अनुकरणीय बने रहते हैं। लेकिन ऐसे महात्मा विरले ही होंगे, जो अपनी प्रखर तेज और श्रेष्ठ व्यक्तित्व की छाप से दूसरों को प्रभावित कर सके। ऐसे ही एक महात्मा ने वर्षों पहले अपने पवित्र पदछापों से हमारी मातृभूमि को भी एक तीर्थ बना दिया था। व्यक्तित्व और उनके उपदेश ने तृषित जनमानस के लिए सुधारस का काम ही किया उनके आदर्शपूर्ण जीवन ने लोगों की नस-नस में प्रेरणा का संचार किया है।

(१) जन्म

ई० पू० सातवीं शताब्दी में भारत छोटे-छोटे कई गणराज्यों में विभक्त थ ऐसा ही एक गणराज्य था शाक्य गणराज्य। सातवीं शताब्दी के मध्य में कपिलव को अपनी राजधानी बनाकर शुद्धोधन शाक्यों का शासक बना। शुद्धोधन राजा थे य नहीं, यह बात बहुचर्चित है। महात्मा बुद्ध पर लिखे हुए पुराने ग्रंथों ने शुद्धोधन क जागीरदार ठहराया है। इन्हीं के पुत्र के रूप में गौतम बुद्ध का जन्म हुआ था। उ जन्मतिथि के बारे में भी कई मतान्तर हैं। डा० राधाकृष्णन ने उनका जन्म ई० प ६२३ को माना है।[१] महावंश और दीपवंश की गणना के अनुसार यह जन्मतिथि है।[२] मगर श्री क्षितिश्वरप्रसाद सिंह ने बुद्ध की जन्मतिथि ई० पू० ५६६ को माना आर० सी० मजुमदार ने भी यही जन्मतिथि स्वीकार की है।[३] बी० एन० लुनिया ई० पू० ५६६ को ही बुद्ध की जन्मतिथि मान ली है। गौतम बुद्ध के जीवन के निक संबंध रखने वाले दो स्थान हैं लुम्बिनी और कपिलवस्तु। लुम्बिनी हीगौतम का ज था। इसका प्रमाण प्रस्तुत करता है वहाँ का अशोक का शिलास्तंभ। गौतम के ज

१- २५०० ईयर्स आफ बुद्धिज्म - पृ० १८.

२- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावति मालविका, पृ० ६.

३- २५०० ईयर्स आफ बुद्धिज्म - पृ० १८.

को स्मरण दिलाने वाला यह स्तंभ अशोक ने ई० पू० तीसरी शताब्दी में वहाँ बनवाय था । वहीगौतम की माता मायादेवी का मन्दिर भी है ।[१] इन सभी आधारों पर ह गौतम का जन्म-स्थान और जन्मतिथि निर्धारित कर सकते हैं ।

बौद्ध मान्यता के अनुसार जो व्यक्ति दान, शील नैष्क्रम्य, प्रज्ञा, वीर्य, क्षा सत्य, अधिष्ठान, मैत्री, उपेक्षा जैसी दस पारमिताओं को पार करे, वही बुद्धत्व के लिए योग्य है। इन दस पारमिताओं को पार करने वाला व्यक्ति `बोधिसत्व` कहला है ।[२]

गौतम बुद्ध के जन्म से संबंधित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं । बोधिसत्व ने जम्बुदीप के मध्यदेश में कपिलवस्तु की रानी महामाया की कुक्षि में जन्म लेने को स्वीकार किय एक बार रानी महामाया ने स्वप्न में एक उज्ज्वल वर्ण हाथी को देखा । स्वप्न का रहस्य जानने के लिए ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया । ब्राह्मणों ने राजा शुद्धोध को बताया कि उनका एक बेटा होने वाला है । ब्राह्मणों ने परस्पर विचार करके राजा से कहा --`राजन् । यदि पुत्र गृहस्थ-धर्म में रहेगा तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा. यदि परिव्राजक हुआ तो बुद्ध होगा ।`[३] राजा गंभीर हुए ।

वैशाख पूर्णिमा के दिन रानी ने देवदाह के अपने मायके जाने की इच्छा प्रक की । रास्ते में लुम्बिनी वन की सुन्दरता पर मुग्ध होकर रानी ने वहां विश्राम कर का निश्चय किया । वहीं गौतम का जन्म हुआ । उनका नाम `सिद्धार्थ` रखा गया जो अपनी सिद्धि या उद्देश्य में विजय पा लें, यही सिद्धार्थ का अर्थ है ।[४] शिशु के लक्ष को देखते हुए कौंडिन्य नामक एक ब्राह्मण ने राजा से शिशु सिद्धार्थ के भविष्य के बा में कहा ।

१- भगवान बुद्ध - आर० आर० दिवाकर, पृ० २५.

२- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावति मालविका, पृ० ६.

३- बुद्धकथा - रघुनाथ सिंह, पृ० ७.

४- द रिलीजन्स आफ इंडिया - ई० डब्ल्यू० होपकिंस, पृ० ३०१.

कथा के अनुसार बोधिसत्व जिस कुक्षि में वास करते हैं, वहाँ फिर दूसरा प्राणी नहीं रह सकता । यही सत्य सिद्ध हुआ । सिद्धार्थ के जन्म होते हुए एक सप्ताह बीत जाने के पश्चात् शिशु को अपनी बहन महाप्रजापति के संरक्षण में छोड़कर बुद्धमाता महामाया ने देहत्याग किया ।

बचपन से सिद्धार्थ ध्यानमग्न थे । यही नहीं, छोटे से उनके हृदय में करुणा, दया आदि के बीज देखने को मिले । एक बार देवदत्त से मारकर गिराये हुए हंस को बचाकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि मारने वाले से बचाने वाला श्रेष्ठ है । इसी प्रकार दूसरी बार कपिलवस्तु के हलकर्षणोत्सव में भाग लेते समय सिद्धार्थ ध्यानमुद्रा में लगे थे । ये सभी बातें शुद्धोधन को महर्षियों की भविष्यवाणी स्मरण दिलाती रहीं ।

(२) विवाह

दण्डपाणि की कन्या यशोधरा से सिद्धार्थ का विवाह हो गया । विविध प्रतियोगिताओं में विजयी होकर सिद्धार्थ यशोधरा को पा सके । अपने पुत्र को दुनियाँ से ही अलग रखने के लिए शुद्धोधन ने अनेक कठोर परिश्रम किये । उन्होंने राजकुमार के रहने योग्य विविध मकान बनवाये तथा उनके मन बहलाने के अनेक उपाय किये ।

(३) जरा, व्याधि और मृत्यु

एक दिन सिद्धार्थ अपने राजकीय उद्यान से उकताकर अपने रथ में बाहर निकले । बुढ़ापे के मारे क्षीणकाय एक अस्थिपंजर को देखकर कुमार स्तब्ध रह गया । फिर वेदना से कराहने वाले एक पीड़ित व्यक्ति पर उनकी दृष्टि पड़ी । इस घटना से भी उनका हृदय पिघल गया । आगे उन्होंने एक मृतक को भी देखा । तभी उन्होंने मनुष्य के जीवन में आने वाले परिवर्तनों को आँखों से देखा । उनका कोमल हृदय प्रभावित हुआ । तुरन्त रथ को लौटाकर वे राजमहल पहुँचे । उनका मन अशान्त बन गया । वे अब परम-शान्ति की खोज में थे ।

(४) महाभिनिष्क्रमण

आजतक सिद्धार्थ ने वेदना, दु:ख आदि का अनुभव नहीं किया था । इसलिए उनका मन ऐसे रूपों से विकल हुआ । उनको अपने जीवन और समाज से अतृप्ति हुई । इसी बीच ज्ञानमुद्रा में स्थित एक संन्यासी को उन्होंने देखा, जो उनके भविष्य के सुनहरे स्वप्न का प्रेरणास्रोत रहा । अपने नवजात पुत्र के शीतल समाचार से उनको सुख के बदले दु:ख ही हुआ । अपने संन्यासजीवन में विघ्न उत्पन्न करने वाले उस बेटे का नाम उन्होंने राहुल (अर्थात् विघ्न उत्पन्न करने वाला) रखा । लौकिक बंधन में ज्यादा गहरा होने के पहले उन्होंने प्रव्रज्या स्वीकार करने का विचार किया ।

वास्तव में अतृप्त मन उदास रहता है, मगर जब उसे सुख और शान्ति दिखाई पड़ती है, वह उसको पाने के लिए बहुत आतुर रहता है । उस शान्ति के लिए वह अपना सर्वस्व लुटा देता है । यही बुभुक्षा हम कथोपनिषद् के बालदार्शनिक नचिकेता में देख सकते हैं ।[१] यहाँ भी हमें लौकिक जीवन से अशान्त मन शान्ति और सुख की खोज करते हुए दिखायी पड़ता है । इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी, मैत्रेयी ने लौकिक जीवन और संपत्ति से कहीं शान्ति और सुख को प्रधानता दी ।[२] ऐसा ही एक संघर्ष सिद्धार्थ के मन में पैदा हुआ । उनके मन में सत्य की खोज करने की अदम्य भावना जाग उठी । इसी विचार से उन्होंने अपना घर-बार छोड़ना चाहा । गहरी नींद में डूबी हुई अपनी पत्नी और पुत्र को छोड़कर वे राजदरबार से बाहर निकले । यही महाभि-निष्क्रमण है ।

---

1. 'It was this deeper hunger that prompted NACHIKETA, the child philosopher of KATHOPANISHAD, to reject the offer of heavenly pleasures in preference to what is called immorality or abiding happiness"

'Bhagavan Buddha' - R.R. Diwakar (P.No.38).

2. 'Bhagavan Buddha' - R.R. Diwakar - P.No.38.

एक साधारण आदमी का गृहत्याग अक्सर लोगों के लिए एक मामूली बात है परन्तु एक राजकुमार का उस पर भी सभी सुखसुविधाओं से युक्त जीवन बिताने वाले का इस तरह जीवन से अतृप्त होकर वैराग्य स्वीकार करना वस्तुत: असाधारण कार्य था । अब जीवन में आने वाली समस्याओं को सुलझाने का मार्ग सिद्धार्थ खोज रहा था, लोग की दृष्टि उन पर पड़ी ।

सिद्धार्थ का गृहत्याग उनके जीवन का एक दूसरा पहलू था । आखिर उत्तराषा की पूर्णिमा के दिन अर्द्धरात्रि को वे घर से निकले । मुक्ति की खोज में वे कैसे कंथक ना घोड़े पर सवार होकर राजदरबार से निकले, इस सम्बन्ध में एक रोचक कथा बौद्धग्रंथों में दी गयी है । जब इच्छा, घृणा, पाप तथा दु:ख की आग सुलझायी जाती है, तभी शान्ति मिलती है ।[1] यही उनका विचार था । उन्होंने श्रमणों का वेष अपनाया, मुक्ति ही उनका अन्तिम लक्ष्य था । इसके लिए मार्ग ढूंढते हुए वे घने जंगल की ओर चल पड़े

(५) साधना

अब सिद्धार्थ की आयु २९ वर्ष की थी । सिद्धार्थ वैशाली की ओर निकले, जो श्रमणों और ब्राह्मणों से भरा हुआ था । कहते हैं कि उस समय वैशाली में करीब ६२ सैद्धान्तिक संस्थाएँ थीं । उनमें निर्ग्रंथ से वे बहुत प्रभावित हुए । जातकों में एक निग्गनाथपुत्र का सुझाव आया है । वे ही महावीर थे ।[2] महावीर भी सिद्धार्थ के समय में जीवित थे । सिद्धार्थ की मृत्यु के पहले ही उनकी मृत्यु हुई ।

मुक्ति की खोज में निकले हुए सिद्धार्थ ने कई मार्ग अपनाये । पहले उन्होंने निग से प्रभावित होकर आत्मसंयम और तपस्या पर ज़ोर दिया । आलार कालाम और उद्द

---

1. "Whence comes peace? when the fire of desire is extinguished when the fire of hate is extinguished, when the fire of illusion is extinguished, when all sins and all sorrows are extinguished, then comes peace"
   - 'The Religions of India' - E.W.Hopkins,- P.302

2. 'Bhagavan Buddha'- R.R. Diwakar, P. 51.

रामपुत्र के शिष्यत्व में ही उन्होंने तपस्या शुरू की थी । इस प्रकार करीब छ: वर्ष कई स्थानों में जाकर धार्मिक आचार्यों का दर्शन किया । मगर तब भी सत्य के लिए उनकी प्यास अधूरी ही रह गयी । अतृप्ति से उन्होंने शरीर को कठिन तपों का शिकार बना दिया । कुछ भी खाये बिना उन्होंने तपस्या करने का निश्चय किया । ऐसा मुक्ति मार्ग हम आज भी `निर्ग्रन्थ` तत्वों का पालन करने वाले जैन लोगों के बीच देख सकते हैं[१]। आखिर शरीर को कष्ट पहुँचाकर असफल होकर उन्होंने भोजन आरंभ किया । उन्हें अपना यह मार्ग सफल नहीं मालूम हुआ । अपने उद्देश्य की पूर्ति में शरीर को कष्ट देना उन्होंने उचित नहीं समझा । गौतम को पुन: भोजन करते हुए देखकर उनके पाँच शिष्यों ने उनका साथ छोड़ दिया ।

(६) संबोधि-प्राप्ति

ऐसी कष्टदायक तपस्याओं को छोड़कर वे नैरंजना नदी के पास आये, उसमें गोत लगाया । फिर उरू वेला के पास आये, एक पीपल-वृक्ष के नीचे ध्यान लगाये बैठे । इसी वृक्ष के नीचे बैठकर उनमें ज्ञान का उदय हुआ, वे `बुद्ध` कहलाये और उनमें ज्ञान की ज्योति बिखर पड़ी तथा यह ज्ञान चारों ओर प्रकाशमान हुआ । उनको यह बोध हो गया कि सत्य अपने ही हृदय में है, उसे ढूँढना चाहिए । तब से वे तथागत बने । `तथागत` का अर्थ है `सत्य को प्राप्त करने वाला` ।

बाद के बौद्ध ग्रन्थों से प्रमाण मिलता है कि बुद्ध ने कैसे मार के आक्रमण से अपने को बचा लिया । मार का आक्रमण वास्तव में बुद्ध के शरीर के अंशों में व्याप्त तृष्णाओं और इच्छाओं पर किया हुआ आक्रमण है। क्योंकि मार तृष्णाओं का मानवीकरण है । उसी प्रकार दैवकथाओं में बुद्ध के मुक्तिमार्ग में आये हुए विघ्नों में तूफानों का भी उद्धरण मिलता है । इस समय वे नागराजा मुकलिन्द से बचाये गये, ऐसी कथाएँ भी प्रचलित हैं ।

१- भगवान बुद्ध - आर० आर० दिवाकर, पृ० ५२.

संबोधि-प्राप्ति के बाद वे शान्त हुए । उनको एक अलौकिक सन्तोष मिला । उनको इतनी मन:शान्ति मिल गयी कि अब उनको ज्यादा खोज करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी । उनकी इस मानसिक स्थिति ने उनको संसार के सुख और दु:ख, वेदना आदि पर विचार करने का अवसर दिया । अन्त में उन्होंने सभी दु:खों और इच्छाओं से रहित मार्ग को खोज निकाला जिसका अन्तिम लक्ष्य था निर्वाण ।

बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद उनका चित्त स्थिर हो गया । उनको दिव्य चक्षु का ज्ञान मिल गया । सभी चिन्तमल नष्ट हो गये । वे काम, भव तथा अविधा से विमुक्त हुए । उन्होंने जान लिया कि समस्त प्रपंच दु:खमय है । उन्होंने देख लिया कि 'अविधा के प्रत्यय से संस्कार होते हैं । संस्कार के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नाम और रूप, नाम और रूप के प्रत्यय से छ: आयतन, छ: आयतन के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म), जाति के प्रत्यय से बूढ़ा होना, मरना, शोक करना, रोना-पीटना, दु:ख उठाना, बेचैनी और परेशानी होती है ।'[१]

(७) बौद्धधर्म के मुख्य तीन आधार स्तंभ

महात्मा बुद्ध ने जिस स्वधर्म का प्रचार किया, वह स्वानुभूति के आधार पर था । इस धर्म के तीन आधारस्तंभ थे अनित्यता, अनात्मावाद तथा दु:ख ।

(क) क्षणिकवाद -- इहलोक के सारे सुख, संपत्ति तथा ऐश्वर्य का निरादर करके महाभिनिष्क्रमण के लिए निकले हुए बुद्धदेव को प्रेरणा देने वाला पहला अंग था जगत की क्षणभंगुरता । वैराग्य से अपने पुत्र को वापस लाने के लिए उद्यत शुद्धोधन से बुद्ध के वचन चिरस्मरणीय हैं, जो विश्व की क्षणभंगुरता पर प्रकाश डालते हैं । उनका कहना था -- 'युवावस्था अगर जरामरणादि में परिवर्तित नहीं होगी तो मैं श्रमण नहीं बनूंगा ।'[२]

१- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावति मालविका, पृ० २५.

२- बुद्धमतं - ए० जी० कृष्णावारियर, पृ० ४६.

प्रकृति के कर्कश नियम परिवर्तित होते रहते हैं और उससे छुटकारा पाना किसी भी मनु के वश की बात नहीं। इन विश्व के चंचल वस्तुओं के साथ मनुष्य का शरीर तथा मन भी बदलता है और वह चंचल रहता है। प्रतिक्षण वस्तुओं का नाश होता रहता है यह नाश बौद्धदर्शन में निरन्वयनाश कहा जाता है। इतना होने पर भी बुद्ध ने ऐसे तर्कपूर्ण उत्तर नहीं दिये कि हर क्षण वस्तुएँ नष्ट होती रहती हैं और ऐसी क्षणिक वस्तुओं का समूह ही प्रपंच है। बाद में जो बौद्ध और योगाचारी आये उन्हीं हाथों क्षणिकवाद को पूर्ण रूप मिला।

(ख) अनात्मवाद -- क्षणिकवाद के बाद बुद्ध ने अनात्मवाद पर बड़ा बल दिया। अनात्मवाद का शाब्दिक अर्थ है वह वाद जिसमें आत्मा का निषेध हो।[१] मगर अना वाद में आत्मा का बिलकुल निषेध नहीं किया गया है। यह तो दूषित विचार है बौद्धदर्शन में तो अनात्मवाद को एक दूसरे ही अर्थ में लिया गया है। बुद्ध ने आत्मगृह या सत्काय दृष्टि के निवर्तन का उपदेश दिया। शरीर, इन्द्रियों, धर्मों, स्कन्ध, धा आयतन आदि में आत्मभाव का ग्रहण ही सत्काय दृष्टि या बन्धा है।[२] यही दुःख है उनके अनात्मवाद को ही बाद में नैरात्म्यवाद कहा गया। बौद्धों का अनात्मवाद तथ ब्राह्मण दर्शनों का आत्मसिद्धान्त वास्तव में विरोधी नहीं, एक ही तत्व की प्रकारा से व्याख्याएँ मात्र हैं। बुद्ध ने शाश्वतवाद और उच्छेदवाद के दो ध्रुवों को छोड़कर बीच का मध्यमा प्रतिपद् या बीच का रास्ता ही लिया है। बुद्ध ने निषेधात्मक ढंग से आ का वर्णन यों किया है --'रूप आत्मा नहीं है, वेदना आत्मा नहीं है, संज्ञा आत्मा नहीं है, संस्कार आत्मा नहीं है, विज्ञान आत्मा नहीं है। पंचस्कन्ध आत्मा नहीं है आत्मा पंचस्कन्ध से भिन्न है, तो भी ये ही स्कन्ध उसके अंग समझे जाते हैं।'

आत्मा और अनात्मा के प्रश्न पर बुद्ध ने मौन ही धारण किया है। मगर बुद्ध के अव्याकृतों का सूक्ष्म अध्ययन यह बताता है कि उनका मौन धारण अज्ञता या

१- हिन्दी साहित्य कोश (भाग-१), पृ० २६.

२- वही - पृ० २८.

आत्मा के निषेध को घोतित ही नहीं करता, अपितु इससे आत्मा के अनिर्वचनीय स्वरूप की भी निष्पत्ति होती है । उन्होंने आत्मा को भिन्न भी नहीं कहा अभिन्न भी नहीं कहा ।

आत्मा के बारे में ऐसी एक भावना बुद्ध के मन में कैसी और क्यों आयी ? उनको इन विचारों की ओर ले जाने वाली परिस्थितियाँ क्या थीं ? इन सबके बारे में संक्षेप विवरण नीचे दिया जा रहा है ।

एक संप्रदाय के अनुसार आत्मा हृदय के अन्तर्गत बसने वाली एक चेतनापूर्ण वस्तु है, जो नश्वर शरीर के साथ नष्ट नहीं होती । दूसरा संप्रदाय यही मत प्रस्तुत करता है कि आत्मा तो बहुत सूक्ष्म एक वस्तु है, जो नश्वर शरीर के नष्ट होते समय दूसरे श में प्रवेश करती है । इस तरह विविध संप्रदायों ने आत्मा संबंधी भिन्न भिन्न कई विच लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किये । विशिष्टाद्वैत, अद्वैत आदि विचार धाराओं ने आत्मा वाली बात को पुष्ट किया । उपनिषदों में भी आत्मा की कई व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं । `तत्त्वमसि` `सोऽहं` `अयं आत्मा ब्रह्म` सर्वम् खलिवदं ब्रह्म` इन सभी महा-वाक्यों में भी आत्मतत्त्व की गुंजाइश ही ध्वनित होती है । कहने का तात्पर्य है कि `मनुष्य में जो सारभूत, नित्य, शुद्ध तथा मुक्त वस्तु है, वह आत्मा है ।`[१] `ब्रह्मसत्यं, जगन्मिथ्या, `जीवो ब्रह्मैव नापरः` आदि उपनिषद् वाक्य भी आत्मतत्त्व की पुष्टि ही करते हैं । इसके अलावा दीर्घनिकाय के ब्रह्मजालसुत्त में आत्मविषयक ६२ वाद प्रचलित हैं । इनमें शाश्वतवाद, उच्छेदवाद आदि आते हैं । बौद्धधर्म के पहले जैन धर्म में भी बहुआत्मवाद की प्रथा थी । इसका तात्पर्य यही हुआ कि बौद्धधर्म के उदय के पहले उत्तर भारत आत्मविषयक अनेकानेक सिद्धान्तों में उलझा हुआ था ।

स्वानुभूति के आधार पर बुद्ध ने एक नवीन धर्म की स्थापना की, उसमें उन्हों आत्मतत्त्व की भर्त्सना भी की । अपने चारों ओर के विभिन्न आत्मविषयक प्रश्नों के

१- बुद्धमत - ए० जी० कृष्णवारियर, पृ० ५४-५५.

उत्तर के रूप में बुद्ध ने अपने पंचस्कन्धवाद को जनसम्मुख रखा । बुद्ध के ऐसे ही विचारों के समान कुछ विचार प्रसिद्ध दार्शनिक ह्यूम ने भी प्रकट किए हैं --'बड़ी शीघ्रता से एक के बाद एक होकर जाने वाली बोधधाराओं का एक समूह है मनुष्य ।'[१] इसके बीच कहीं भी आत्मतत्व नहीं है ।

एक बार कूटदन्त नामक जिज्ञासु ब्राह्मण ने कर्मवाद से प्रभावित होकर बुद्ध से आत्मा विषयक चर्चा छेड़ी थी । अपने-अपने कर्मानुकूल फल को भोगने वाला तथा पुनर्जन्म लेने वाला आत्म-तत्व नहीं तो और क्या है ? यही उस ब्राह्मण का शक था। बुद्धदेव ने ब्राह्मण को यही उत्तर दिया कि केवल अज्ञान तथा पारलौकिक सुख के चिन्तन से लोगों की गलत धारणा होती है कि आत्मा है । उसी प्रकार केवल अन्धविश्वासों एवं व्यर्थ के आचार-विचारों से ही लोग काल्पनिक आत्मतत्व पर विश्वास रखते हैं । श्रमणवृत्ति के आरंभ करते ही या बुद्धत्व की प्राप्ति के पहले स्वयं गौतम बुद्ध भी ऐसे ही आचार-विचारों के पंजे में जकड़ गये थे । लेकिन उनको अपनी गलती का अनुभव हुआ और वे अपने को उससे मुक्त कर सके । निष्कर्ष के रूप में बुद्ध ने कहा कि ऐसे काल्पनिक आत्मतत्व पर विश्वास रखना तथा उसके आधार पर पारलौकिक सुख के लिए प्रयत्न करना -- सब दु:ख के ही कारण बनते हैं । इन्हीं बातों के आधार पर वे दु:ख नाम के तीसरे तत्व पर पहुँच जाते हैं ।

आधुनिक आलोचकों ने तो उपनिषदों तथा बौद्धदर्शन की आत्मविषयक बातों में समानता स्थापित करने की कई चेष्टाएँ की हैं । श्रीमान रेयस डेविड्स ने भी बुद्ध के आत्मविषयक विचारों को लेकर उपनिषदों के आत्मविषयक तत्वों के साथ मिलाने का प्रयत्न किया है । निर्वाण के कुछ क्षण पहले बुद्ध ने अपने शिष्यों को ऐसा उपदेश दिया है --'अत्तदीपो भव, अत्तशरणो भव, अनन्यशरणो भव,' अर्थात् 'आत्मा ही तुम्हारा प्रकाश और रक्षा है, दूसरे की शरण में मत जाना ।'[२] यह तो बौद्धसाहित्य

१- बुद्धमत - ए० जी० कृष्णावारियर, पृ० ६१.

२- वही - पृ० ७०

की एक ख्यातिप्राप्त उक्ति है । आत्मा पर कोई विश्वास न रखने वाले बुद्ध ने अंतिम समय आत्मा के उद्धरण से क्या अर्थ निकाला है ? इस विषय पर अनेकों मत प्रकट हो चुके हैं । उपरोक्त प्रश्न का यही उत्तर हो सकता है कि बुद्ध ने 'आत्म' शब्द से किसी शाश्वत तत्व को ही माना है जिस पर हम विश्वास रख सकें ।

(ग) दु:ख -- जगत् की अनित्यता और अनात्मवाद दु:ख की ओर हमें ले जाते हैं । क्योंकि 'मानव के साथ-साथ विश्व की सारी वस्तुएँ अनित्य और अनात्म होने के कारण सारा प्रपंच 'अशाश्वत दु:खालय है'।'[१] तब इस दु:खमय प्रपंच से मुक्ति पाना हर मनुष्य का कर्त्तव्य है ।

ज्ञात इतिहास के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम गौतमबुद्ध ने इस सिद्धान्त की घोषणा की कि सब कुछ दु:ख है, (सव्वं दुक्खं -- सर्व दु:खम्)[२] । मनुष्य मृत्यु को सबसे बड़ा दु:ख मानता है और बुद्ध ने इस लोक को 'मृत्युलोक' की संज्ञा दी है । बौद्धधर्म और दर्शन में जरा-मरण को दु:खसामान्य का पर्याय माना गया है । संक्षेप में सारा भौतिक तथा मानसिक जगत दु:ख का कारण है ।

बौद्धदर्शन के दु:खवाद ने सारे दर्शनों को प्रभावित किया । क्योंकि सांख्य-दर्शन भी प्रकृति की सारी वस्तुओं को सत्व-रज-तम से युक्त त्रिगुणमयी बतलाते हैं । यहाँ भी शुद्ध सुख दृष्टिगोचर नहीं होता, दु:खमिश्रित सुख ही दीखता है ।

महात्मा बुद्ध का दु:खवाद नित्य नहीं है, वह अनित्य दु:खवाद है । क्योंकि नित्य दु:खवाद में दु:ख का शमन कभी नहीं होता । मगर अनित्य दु:खवाद में दु:ख की शान्ति या शमन निर्वाण से हो जाता है । 'बुद्ध निर्वाण में, शापनहार विचार में, हार्टमन मुक्ति में, आस्वाल्ड स्पेंगलर संस्कृति के पुनर्जन्म में तथा हिन्दू दार्शनिक भक्त मुक्ति में, सभी दु:खों का (शमन) अभाव मानते हैं ।'[३]

१- बुद्धमत - एच जी० कृष्णवारियर, पृ० ७३.

२- साहित्यकोश - पृ० ३६६

३- वही - पृ० ३७०.

बौद्धदर्शन में वर्णित यह अनित्य दु:खवाद एक दार्शनिक सत्य है । यही वास्तविक दु:खवाद है । सब धर्म यही मानते हैं कि लौकिक जीवन सुखमय नहीं है, मगर दु:ख पूर्ण है । इसीलिए मनुष्य धर्मों की शरण में जाते हैं । इसी लौकिक जीवन में सारे सुख की उपलब्धि का साक्षात्कार होगा, तो कोई भी धर्मों में बनाये हुए क्लेश-पूर्ण मार्ग से होकर सुख की खोज में नहीं जायेगा ।

(८) चार आर्य सत्य

बुद्ध ने भी लौकिक जीवन में दु:ख ही दु:ख का अन्धकार देखा है । वास्तव में श्रमणावृत्ति की प्रेरणा देने वाली मुख्य घटना भी दु:ख से संबंधित थी जो उनके हृदय में सहानुभूति तथा करुणा की लहरें पैदा कर सकीं । इस दु:ख से विमुक्त होने के मार्ग की खोज में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया । अन्त में उन्होंने दु:ख के स्वभाव, उसके कारण, उसको दूर करने का मार्ग आदि खोज निकाला और उनको 'चार-आर्यसत्' कहा । वे हैं -- दु:ख, दु:ख समुदय, दु:खनिरोध और अष्टांगिक मार्ग ।

सारे संसार में व्याप्त दु:ख ही पहला आर्यसत्य है । 'दु:ख' शब्द की व्याख्या बुद्ध ने इस प्रकार की है -- 'जातिरपिदु:खं, जरापि दु:खं, व्याधिरपि मरणमपि दु:खं अप्पियेही संयोगो दु:खो प्रियेही विप्पयोगो दु:खो, यंपि इच्छं तम् न लभति तमपि दु:खं संखित्तेन पंचोपादानक्खधापि दु:खं ।'[१] अर्थात् 'जन्म भी दु:ख है, बुढ़ापा भी दु:ख है, मरण-शोक-रुदन-- मन की खिन्नता -- हैरानगी दु:ख है । अप्रिय से संयोग, प्रिय से वियोग भी दु:ख है, इच्छा करके जिसे नहीं पाता वह भी दु:ख है । संक्षेप में पाँचों उपादान-स्कन्ध दु:ख है।'[२]

मनुष्य के इतिहास के पन्नों को पलटने पर मालूम होगा कि युगों से मनुष्य ने दु:ख के कारण कितने आँसू बहाये हैं ? वास्तव में आज चारों ओर क्या हो रहा है

१- बुद्धमत - ए० जी० कृष्णवारियर, पृ० ७७.

२- बौद्धदर्शन - राहुल सांकृत्यायन, पृ० २३.

मनुष्य दु:ख की आग में तप रहा है । क्योंकि सारा जग हिंसा के अंधकार में डूबा हुआ है । आधुनिक शास्त्रज्ञों का भी मत है कि स्थावरों के भी दु:खपूर्ण अनुभव दृष्टिगोचर है । फिर मनुष्य का क्या कहना ? एक ओर दु:ख, दारिद्र्य, दीनता आदि से आज करोड़ों लोग तड़पते हैं, दूसरी ओर युद्ध तथा महारोगों से पीड़ित जनसङ्घ -- ये सब दु:ख नामक आर्यसत्य की पुष्टि कर देते हैं ।

बुद्ध का दूसरा आर्यसत्य है दु:खसमुदय । दु:ख के स्वभाव को जानकर उसकी उत्पत्ति के बारे में विचार करना ही दु:खसमुदय है ।

अनुभव की दशा में दु:ख मन की प्रवृत्ति है । मन में आग्रहों का एक के बाद ए होकर उदय होता रहता है । उन आग्रहों के पीछे पड़कर उसके लाभालाभ से मन प्रभावि होता है । इसमें असफल मन दु:खी होता है । इस दु:ख की उत्पत्ति में तृष्णा रूपी जड़ है ।

दु:ख की उत्पत्ति को दु:ख-समुदय कहते हैं । इसका हेतु तृष्णा है, मन में जो इच्छा और चाह, कामना पैदा होती है, उसी के कारण तृष्णा का जन्म भी ह है । तृष्णा-जनित जीव लौकिक सुख में मग्न हो, मरना नहीं चाहते । तृष्णा के का जीव इहलोक में फंस जाते हैं । तृष्णा को तीन भागों में विभक्त किया गया है -- कामतृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा । इन तीनों प्रकार की तृष्णाओं से मन को मुक्त करने से दु:ख में रुकावट आती है । विशुद्धिमार्ग में कहा गया है --`परमार्थ से दु:ख-निरोध आर्यसत्य निर्वाण कहा जाता है । चूंकि उसे पाकर तृष्णा अलग होती और निरुद्ध हो जाती है, इसलिए विराग और निरोध कहा जाता है ।`[१]

सांसारिक दु:ख जितना दु:सह या कष्टपूर्ण हो उसका हम तरण कर सकते हैं इसी को पुष्ट करने वाली बात ही बुद्ध ने तीसरे आर्यसत्य `दु:खनिरोध` में बतायी है

१- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावति मालविका , पृ० ३६.

दु:ख के निरोध के लिए आवश्यक है तृष्णा को मूल से उखाड़ना । इच्छाओं या आग्र का फल ही तृष्णा है । इसलिए इच्छाओं को एक-एक करके मन से दूर करें तो सारी तृष्णा नष्ट हो जायेगी । मन से दूर हटाई हुई इच्छाओं को फिर से मन में स्थान नहीं देना चाहिए । इस प्रकार तृष्णा का पूर्ण परित्याग ही दु:खनिरोध है । यह तृष्णा ही प्राणी को सांसारिक विषयों में फंसाये रहती है । इस प्रकार दु:ख की शान्ति अर्थात् निर्वाण प्राप्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग ही दु:खनिरोधगामिनी `प्रतिपदा` या `मध्यममार्ग` है । यही है बुद्ध का चौथा आर्य सत्य । इसे ही `आर्याष्टांगिक मार्ग भी कहते हैं । `संयुत्तनिकाय में ब्रह्मयान, धर्मयान जैसे नामों से इसे अभिहित किया गया है । मध्यम मार्ग से सभी प्राणी, पवित्रता के शिखर पर पहुंच जाते हैं । दु:खानुभवों को पार करना, ज्ञानोपलब्धि, तथा निर्वाणप्राप्ति के लिए एकमात्र उपा है । यह बुद्ध का मध्यममार्ग ।`[१]

(६) आर्याष्टांगिक मार्ग

इस मध्यममार्ग के आठ अंग हैं । इन आठों में सभी मानसिक, वाचिक तथा कायिक वृत्तियां मिली हुई हैं । हर अंग के साथ `सम्यक्` शब्द जुड़ा हुआ है जो `समीचं अर्थ से समानता रखता है । ये आठ अंग नीचे दिये गये हैं --

(१) सम्यक् दृष्टि -- जो दु:खनिरोध के लिए प्रयत्न करता है उसकी सभी प्रवृत्तियां सम्यक् होनी चाहिए । बौद्धधर्म में सम्यक् दृष्टि को ही मुख्यता प्रदान की गयी है । यह हमें सारे अन्धविश्वासों, रूढ़ियों हिंसात्मक कर्मों तथा यज्ञों से दूर रहने का उप देता है । सबको आत्मनिर्भर हो जाने का पवित्र सन्देश ही सम्यक् दृष्टि में अन्तर्ली हुआ है ।

(२) सम्यक् संकल्प -- यह सम्यक् संकल्प, सम्यक् दृष्टि के आधार पर ही स्थित है दु:ख को पार करने के लिए सम्यक् संकल्पों का होना बहुत आवश्यक है । उच्चविच

१- बुद्धमत - ए० जी० कृष्णवारियर, पृ० १५१.

सदा उच्च जीवन को प्रदान करता है । इसका कारण है संकल्प । क्योंकि मनुष्य अप विचारों के अनुरूप संकल्प तथा कर्म करता है । जो सम्यक् दृष्टि रखता है, उसके संकर भी सम्यक् होते हैं । ज्ञान और कर्म के बीच की कड़ी है यह संकल्प । ज्ञान के अनुरूप संकल्प न रहा तो कर्म असफल रहेगा ।

(३) सम्यक् वाचा -- सम्यक् संकल्प और कर्म सत्यवचन के द्वार खोल देता है । भगव गीतामें भी सत्यवचन की महिमा गायी गयी है । भगवद्गीता के ऐसे उत्कृष्ट तत्वों ही बुद्धदेव ने भी सम्यक् वाचा के अंतर्गत माना है । दूसरों को अहित लगने वाली बा को भी उन्होंने तिरस्कृत करने को कहा ।

(४) सम्यक् कर्म -- सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्म तक पहुंचाता है । बुद्ध का परम लक्ष्य द दुःखविनाश । इसलिए उसके अनुरूप कायिक वृत्तियों पर भी उन्होंने बल दिया । हिंस कर्म या वचन सम्यक् कर्म के अंतर्गत नहीं आता । कर्म में ही नहीं अपने वचनों में भी अ का पालन करने का पुण्य उपदेश उन्होंने दिया । छोटे प्राणियों तक की हिंसा, का सक्ति मादक वस्तुओं का उपयोग – सबको बुद्ध ने उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा । स्थान पर त्याग, दान, सच्चाई, सेवा तथा सहानुभूति दिखाने का उन्होंने उपदेश

(५) सम्यक् आजीवो -- दूसरे मनुष्यों को कष्ट दिये बिना जीना ही सम्यक् आ होता है । कर्म हिंसारहित होना चाहिए । तभी वह कर्म आर्यमार्गीय बनेगा । स्व सो कष्ट सहकर भी दूसरों को कष्ट न पहुँचाना आर्य मार्ग का उत्तम लक्षण है । विचार में ही नहीं आचरण में भी अहिंसा का पालन करना है । मादक वस्तुओं उपयोग सैनिक जीवन तथा शस्त्रों का निर्माण सब तो हिंसा के अन्तर्गत आते हैं । प्रकार सम्यक् आजीव में समाजसेवा भी स्थान पाती है ।

उस समय समाज में प्रचलित जो कर्मकाण्डी पक्ष थे, उन अत्याचारों तथ दुर्व्यवहारों के नाश करने के लिए उन्होंने अहिंसा का पालन ही सबसे योग्य उपा

(६) सम्यक् व्यायाम -- मन, जीभ, शरीर तीनों ही करणत्रय है । ये तीनों सदा सम्यक् रूप से काम नहीं करते । इन तीनों का एक जैसा काम में लीन होना ही सम्यक् व्यायाम होता है । अपने प्रतिकूल विचारों का कर्कश रूप से निर्मंत्रण करना तथा उसे दूर फेंक देना ही सम्यक् व्यायाम है ।

(७) सम्यक् स्मृति -- अपने मन और शरीर की प्रवृत्तियों और कमज़ोरियों पर ध्यान रखना ही सम्यक् स्मृति है । की हुई प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करना स्मृति है । लेकिन बौद्धदर्शन की सम्यक्स्मृति का यही अर्थ नहीं लगाना है । उन अनुभवों के साथ-साथ उनसे संबंधित प्रवृत्तियों पर मन लगाना ही बौद्ध-दर्शन की `सम्यक्-स्मृति` है ।

(८) सम्यक् समाधि -- जो काम चित्त की एकाग्रता से किया जाता है वही सफलता की कुंजी है । आर्यमार्ग को मानने वाले के लिए एक ही कर्त्तव्य है -- दु:खनिरोध । मनुष्य जीवन के बारे में गहराई से चिन्तन और मनन करने से ही नया उत्साह तथा शान्ति के द्वार खुल जायेंगे । एकाग्रचिन्तन से ही समाधि की सिद्धि होगी । यही मध्यमार्ग की अन्तिम सीढ़ी है । यहाँ पहुँच कर साधक अपनी सभी मानसिक वृत्तियाँ एक ही वस्तु पर केन्द्रित करता है ।

इन आठों अंगों के मिलाने से ही आर्याष्टांगिक मार्ग बनता है । इस मार्ग पर चलने से तथा आठों अंगों को अपने जीवन में उपयुक्त करने से ही सारे दु:खों का अन्त होगा । सारे दु:खों का अन्त होने से निर्वाण के उच्च पद पर हम प्रतिष्ठित होंगे । यह मध्यममार्ग हमें यह उच्च शिक्षा प्रदान करता है कि कैसे आदर्श पूर्ण और धार्मिक जीवन को बिताना चाहिए । धम्मपद में इस मार्ग को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है ।

बुद्धदेव ने आर्यमार्ग के द्वार खोल दिये । मानसिक शान्ति का मार्ग दिखा दिया । लेकिन इस मार्ग पर अग्रसर होने वाले विरले ही दिखायी देने लगे । तो भी बुद्धदेव ने असंख्य व्यक्तियों को दीक्षा दी थी । परन्तु आर्यमार्गों का नियम से पालन करना सब के बस की बात नहीं थी । फिर भी बुद्धदेव ने लोगों की आध्यात्मिक शक्तियों को बढ़ाने योग्य उचित उपदेश ही दिये ।

सामान्यतया बुद्ध के अनुयायियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- उपासक तथा परिव्राजक । उपासकों से बढ़कर परिव्राजकों को संन्यास जीवन स्वीकार करके लौकिक जीवन से दूर रहना पड़ता था । बौद्धधर्म के त्रिरत्न हैं -- बुद्ध शरणं, धर्म शरणं और संघं शरणं ।

जो इन रत्नत्रयों की शरण लेता है वह बुद्धानुयायी बन जाता है । उपासकों तथा भिक्षुओं की दिनचर्या में बहुत अन्तर था । तो भी सामान्यतया सब बौद्धानुयायि को `पंचशीलों` का अनुकरण करना पड़ता है --`हिंसा न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, चोरी न करना, असत्यवचन का त्याग तथा मादक वस्तुओं का परित्याग । वैज्ञानिक रूप से देखें तो आर्यमार्ग में वर्णित आदर्श ही पंचशीलों का भी सार है । आत्यंतिक रूप में बौद्ध धर्म यही बताता है कि दुष्कर्मों से दूर रहने पर ही दु:ख से छुटकारा मिलेगा यही बौद्धदर्शन का सार भी है ।

अहिंसा -- बौद्ध दर्शन में अहिंसा को पहला स्थान दिया गया है । अहिंसा से संबंधित करुणा, दया आदि सहज गुणों का भी इसके साथ सूचित करना उचित होगा । क्योंकि आज के युग में अपने प्राणों की रक्षा के लिए मनुष्य निष्करुण अन्य जीवियों पर आपत्ति पहुँचाते हैं । यह बौद्धों के लिए दु:सह है । वैदिक यज्ञ में बलि होने वाले उन प्राणियों के प्रति बुद्धदेव अत्यन्त दयार्द्र हो गये थे, इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं । अहिंसा व्रत का भिक्षुगण बड़ी निष्ठा से पालन करते हैं । इसका यही प्रमाण है कि `वर्षा` के दिनों भिक्षुओं का श्रमण करना मना है, क्योंकि उस समय उगने वाले छोटे-छोटे घासों का नष्ट हो जाने का भय उनके मन में रहता है । यही आदर्श हम जैनधर्म में भी देख सकते हैं।[१] ऐसा आदर्श अहिंसा व्रत का प्रमाण ही है ।

१-बुद्धमत.ए.जी.कृष्णावारियर, पृ० १६७.

चोरी न करना -- यही बुद्ध के अनुयायियों से पालित दूसरा आदर्श है । दूसरे के मार्ग में रुकावटें पैदा करना, दूसरे के नाश का कारण बन जाना, कर्तव्यों से च्युत होना, सार्वजनिक संपत्ति पर हाथ लगाना, ये सब दुर्वृत्तियाँ उसी आदर्श के अन्तर्गत आती हैं ।

ब्रह्मचर्यपालन -- भिक्षुओं के लिए बुद्धदेव ने ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक रखा । उनका कहना था कि ब्रह्मचर्य उन्हें लौकिक जीवन से बहुत दूर ले जाने में सहायक सिद्ध होगा । सब स्त्रियों को माता, पुत्री या बहन की दृष्टि से देखना चाहिए, यही उनके कहने का सार था ।

असत्य वचन का त्याग -- जो जानबूझकर असत्य बोलता है, वह कोई भी पाप कर सकता है । असत्यवचन अपने आप को नाश के गर्त में धकेल देता है ।

मादक वस्तुओं का परित्याग -- आर्यमार्ग के सम्यक् संकल्प, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, मादक वस्तुओं के उपयोग करने वालों के लिए उपयुक्त नहीं है । जो मादक वस्तु का पूर्णरूपेण त्याग कर देता है, वही आर्यमार्ग का अटल पुजारी है । इसलिए ऐसी वस्तुओं का त्याग पंचशीलों में मुख्य रहा । इसी कारण पंचशीलों में वर्णित इन शील को उन्होंने शीलधन नाम दिया । जो शीलसंपन्न हैं उन्हें पूर्ण रूप से मनशान्ति तथा स्वर्ग की प्राप्ति भी होती है । ये शिक्षाएँ जन मानस को अत्यन्त प्रभावित करती रहीं ।

कर्मवाद -- महात्मा बुद्ध ने एक और सिद्धान्त पर बड़ा बल दिया । वह था कर्मवाद मनुष्य के कर्म, कर्मानुकूल फल आदि पर महात्मा बुद्ध ने बड़ा जोर दिया था । अपने किये हुए पापों का फल किसी भी कारणवश नष्ट नहीं किया जाता । उसका फल हमें ही भोगना पड़ता है । हर व्यक्ति अपनी नियति को बनाता है तथा बिगाड़ता उसे कोई भी अमानविक शक्ति नहीं परिवर्तित कर सकती । हमारे कर्मफलों को भोगने के हेतु जन्म के चक्र में फंसना पड़ता है । कार्य-कारण-नियम ने ही बुद्ध को कर्मवाद की ओर अग्रसर किया ।

हमारे जीवन में आने वाले सभी सुख और दु:ख हमारे किए हुए कर्मों का हैं। परन्तु जो जन्म से ही अन्ध या बधिर होते हैं, उनके दु:ख हेतुकेपीछे पूर्वजन्मद बहुजन्मवाद आदि का बलिष्ठ सहयोग है। बौद्धदर्शन में बहुजन्मवाद को, भिन्न रूप वर्णित किया गया है। अन्य सभी भारतीय दर्शनों को छोड़कर बौद्धदर्शन में ईश्वर आत्मा के लिए कोई आस्था नहीं, परन्तु जन्मान्तर कर्मफल आदि का अस्तित्व कार किया गया है।

बुद्ध ने आत्मा की सत्ता को स्वीकार किये बिना व्यक्ति को पंचस्कन्धों समूह माना है, इसके बारे में पहले ही सूचित किया गया है। इन पंचस्कन्धों से 1 होना ही मृत्यु है। तब जन्मान्तर का अनुभव करने वाला क्या है ? इसके उत्तरस्व बुद्ध ने कहा है -- 'बुद्धधर्म के अनुसार कर्म और उसका विपाक (फल) ये दो ही 1 हैं। कर्म से विपाक होता है और विपाक से कर्म और फिर कर्म से पुनर्जन्म, इस यह संसार चल रहा है --

कम्मा विपाका वत्तन्ति, विपाको कम्मसंभवो।
कम्मा पुनब्भवो होति एवं लोको पवत्तति ।।

अर्थात् जब कर्म रुक जाता है, तब विपाक रुक जाता है और फिर पुनर्जन्म न होता। कर्म के ही कारण प्राणियों में विभिन्न प्रकार के भेद दिखाई देते हैं

कर्म और पुनर्जन्म को मानते हुए बौद्ध-धर्म कहता है कि 'कर्म का कर्त्ता नहीं और न विपाक को भोगने वाला। शुद्ध धर्म(संस्कार) मात्र प्रवर्तित होते हैं -- प्रकार जानना सम्यक् दर्शन हैं। मृत्यु के उपरान्त पंचस्कन्ध यहीं रहते हैं तथा दूसरी प्रतिसन्धि हो जाती है।

पंचस्कन्धों का उदय ही पुनर्जन्म है। मनुष्य-जीवन को प्रतिपादित लिए बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद का उल्लेख किया है।

प्रतीत्य समुत्पाद ही बुद्ध-दर्शन का आधार है। इसे कार्यकारण-शृं भी दी गयी है। बौद्ध दर्शन के आधार स्तंभ की श्रेष्ठता भगवान् के स्वयं व में देखी जा सकती है -- जो प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है, वह धर्म को

धर्म को देखता है, वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है ।

अविद्या के प्रत्यय से संस्कार, संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान, विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप, नामरूप के प्रत्यय से छ: आयतन, छ: आयतनों के प्रत्यय से स्पर्श, स्पर्श के प्रत्यय से वेदना, वेदना के प्रत्यय से तृष्णा, तृष्णा के प्रत्यय से उपादान, उपादान के प्रत्यय से भव, भव के प्रत्यय से जाति (जन्म), जाति के प्रत्यय से जरा, मरण, शो परिदेव, दु:ख दौर्मनस्य, उपायास उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार इस सारे दु:ख-समूह का समुदय होता है । यही प्रतीत्य समुत्पाद है । एक का नाश, दूसरे की उत्पत्ति, यह क्रम हमेशा बनता ही रहता है । जब तक हेतु का समूल नाश नहीं होता तब तक यह क्रम ज़ारी रहेगा ।

तथागत ने अविद्या को आदि कारण बताया है । और सारे भवचक्र को समा करने के लिए अविद्या का नाश आवश्यक माना है । इस अविद्या को नष्ट करने के लि राग, द्वेष और मोह का क्षय होना चाहिए । इन के क्षय होने से नष्ट अविद्या पि पल्लवित नहीं होती और भवचक्र सदा के लिए रुक जाता है । अविद्या के कारण व्यक्ति कर्म में निरत है, उन कर्मों से संस्कार और संस्कार से संपूर्ण भवचक्र ज़ारी रह है । अविद्या के नाश से, विद्या प्राप्त होती है, कर्म का नाश, संस्कारों का न होना और पुनर्जन्म भी नहीं होता । जब कर्म और पुनर्जन्म रुक जाते हैं, निर्वाण का सा त्कार होता है ।

(१०) निर्वाण

बौद्धदर्शन में साधक के प्राप्य परमपद को `निर्वाण` नाम से अभिहित किया गया है । हम देख चुके हैं कि आर्यमार्गों में पहले तीन जीवन की वास्तविकता और अनुभवों से समझने वाले तत्व हैं और केवल चौथा ही प्रायोगिक तत्व है । यही सच्ची साधना का मार्ग है । यही मार्ग `निर्वाण` को प्रत्यक्ष करने या निर्वाण-प्राप्ति स साधक को ले जाता है । मज्झिम निकाय के रत्तविनीत सूत्र में निर्वाण के आकांक्षी मानसिक उतार-चढ़ाव का निराले ढंग से चित्रित किया गया है । यही निर्वाण को

का अन्तिम लक्ष्य है । जब साधक का मन सुख-दु:ख, रोग-शोक आदि द्वन्द्वों से मुक्त हो जाता है, वह अपने को उस परमपद पर पाता है ।

इस जन्म में ही कभी-कभी निर्वाण का साक्षात्कार हो जाता है । गौतम बुद्ध ने यह शान्त और उत्तम पद का अनुभव बोधिवृक्ष के नीचे ही किया था । परम-शान्ति को प्रदान करने वाला यह पद 'शान्तपद' के नाम से भी संपन्न है । काम, क्रोध मोह रूपी दुर्भावनाओं से रहित इस पद का ज्ञान ही बुद्धधर्म का सार है । निर्वाण प्राप्त कर लेने से आवागमन रुक जाता है और जन्म-मृत्यु नहीं होते । तब यह लोक और परलोक भी नहीं होता है । यही दु:खों का अन्त है । निर्वाण के बारे में भगवान बुद्ध ने कहा है --'यह शरीर जात, भूत, उत्पन्न, कृत, संस्कृत अध्रुव, बुढ़ापा और मृत्यु से पीड़ित, रोगों का घर, क्षणभंगुर तथा आहार और तृष्णा से होने वाला है, उससे प्रेम करना ठीक नहीं, उसका निस्तार (निर्वाण) शान्त है । वह तर्क से नहीं जाना जा सकता, वह ध्रुव, अजात, न उत्पन्न होने वाला तथा शोक और राग रहित है । सभी दु:खों का वहाँ निरोध हो जाता है । वह संस्कारों की शान्ति एवं परम सुख है[१]

साधक स्रोतापत्ति, सकृदागमि, अनागामी समापत्ति आदि फल-प्राप्ति के बा 'अर्हत्व' बन जाता है । अर्हत्व को ही निर्वाण रूपी उस अमृतपद का पूर्ण रूप से सुख प्राप्त होता है । अमृत समान एक यही वस्तु ऐसी है, जो नित्य है, परम योगक्षेम है ऐसे अचल सुख की प्राप्ति के बाद साधक की गति हमारी भावना के परे होती है । इस सुख की प्राप्ति के साथ साथ आर्य-मार्ग से अग्रसर होने वाले साधक की यात्रा भी पूर्ण हो जाती है ।

निर्वाण दो प्रकार का होता है -- सोपादिशेष और अनुपादिशेष । का क्रोध, लोभ, मोह आदि के क्षय होने से जिस निर्वाण-सुख की अनुभूति होती है, व

१- भगवान गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ४७.

सोपादिशेष निर्वाण है । बोधिवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध ने सोपादिशेष निर्वाण क प्राप्त किया था । दूसरा, अनुपादिशेष निर्वाण सुख की प्राप्ति पंचस्कन्ध के न रहने पर होती है । इस सुख का अनुभव महात्मा बुद्ध को महापरिनिर्वाण के समय हुआ था

यही रहे महात्मा बुद्ध के उपदेश । उनके उपदेशों की निम्नलिखित विशेषताएं हैं --

महात्मा बुद्ध ने अपनी स्वानुभूतियों के आधार पर ही अपने विचार प्रस्तुत किये थे । इसके लिए उन्होंने और किसी भी प्रमाण की शरण नहीं ली थी । अपने शिष्यों से भी उन्होंने यही कहा था कि स्वयं उनके उपदेशों का अनभिज्ञ अनुकरण न क महापरिनिब्बानसुत्र में शरीर त्याग के कुछ क्षण पहले बुद्ध ने शिष्यों को यही उपदेश दिया था कि मनुष्य को स्वाश्रयी बनना चाहिए । उसे अपनी अनुभूतियों पर चलना चाहिए । स्वाश्रम, नैतिकता तथा मनोवैज्ञानिकता से ही मनुष्य अपने को मनुष्य बना सकता है ।

फिर उन्होंने व्यर्थ की धार्मिक क्रियाविधि, यज्ञ आदि से भी मानसिक औ चरित्र संबंधी तत्वों पर अधिक बल दिया । अपने समसामयिक धार्मिक क्रियाओं की निन्दा, उन्होंने नहीं की, परन्तु अपने स्वमार्ग पर अटल रहे । नीतिशास्त्र और स्व ही मानसिक शान्ति को प्रदान कर सकते हैं, यही उनके उपदेशों का सुझाव रहा ।

अनेक प्रमाणों के सहित बुद्ध ने साबित किया कि अध्यात्म-विज्ञान सम्बन्धी सारी चर्चा में और विचार अर्थहीन हैं । इस प्रकार प्रत्यक्ष दु:ख के निरोध करने व वे यथार्थवादी रहे ।

इन सबके अलावा जो स्तुत्य कार्य बुद्ध ने किया, वह यह था कि जाति-प में पाये जाने वाली उच्चता और नीचता को उन्होंने समूल नष्ट करने का बड़ा यत्न किया । जब धार्मिक कार्यों में उच्चनीच के भावभेद कायम थे और लोग धार्मिक स्व से वंचित थे, तब बुद्ध ही ऐसे एक उदारमूर्ति बन खड़े थे, जिन्होंने अपने धर्म में सभी को मिटा कर सबका स्वागत किया । लोग उनकी इस नव्य विचारधारा की ओ र्षित हुए, यह स्वाभाविक ही था । क्योंकि दु:खातप से जल-मरने वाले जनों क

शीतल छाया की आवश्यकता थी ।

सत्यमार्ग पर अग्रसर होने वाले बुद्ध वस्तुत: व्यक्तिवादी नहीं थे । मानसिक संतुलन से अपने को दु:खमुक्त करके उन्होंने समस्त लोककल्याण के लिए भी यही मार्ग दिख दिया । इसी उद्देश्य से उन्होंने बड़े बड़े मठ, विहार तथा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की ।

इस प्रकार अपने उत्तम और प्रभावपूर्ण उपदेश और व्यक्तित्व से महात्मा बुद्ध ने समस्त जगतकल्याण और मनुष्यराशि की उन्नति के लिए प्रेरणा प्रदान की ।

३- महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त और भारत के अन्य धार्मिक सिद्धान्तों में समानताएँ तथा अन्तर

भारत की प्रमाणित सभ्यता का इतिहास बहुत लंबा है । उसका पुराणशास्त्र भी उतना ही पुराना है । भारतीय पुराण का इतिहास तो अन्य देशों के पुराण के इतिहास से भिन्न है । हम देखते हैं कि भारतीय युग-युग में अपने पुराने विश्वासों, आच विचारों एवं प्रथाओं को नहीं भूलते, बल्कि उन्हें नये सामाजिक या दार्शनिक ढंगों से सजाने के यत्न में निरत रहते हैं । इसी प्रकार वर्षों से चले आने वाले धार्मिक विचारों का, क्रमरूप से वे अनुष्ठान करते भी आ रहे हैं । उन धार्मिकतत्वों और विचारों को, वैदिक-काल से आज तक हम एक जैसे पालन करते आये हैं । उनमें कहीं कहीं कुछ भिन्नता तो रहेगी, तो भी समानताएँ ही अधिक हैं ।

(१) हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म

यह सदा एक चर्चा का विषय हो गया है कि बौद्धधर्म नया धर्म है या नहीं । लेकिन यह एक मानी हुई बात भी है कि बौद्धधर्म हिन्दूधर्म का ही एक सुधरा हुआ रूप है । इसलिए दोनों में तात्त्विक विवेचन में कुछ अन्तर आ गए हैं ।

हिन्दू धर्म वेदों को प्रमाण ग्रंथ तथा दिव्य प्रकाशन मानता है । हिन्दू धर्म वाले वेदों को अपौरुषेय और ईश्वरकृत मानते हैं । परन्तु बुद्ध ने वेदों को प्रमाण

१- संक्षिप्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक - गंगाराम गर्ग, पृ० २७४.

ग्रन्थ नहीं माना । क्योंकि उन्होंने किसी ग्रंथ को ही नहीं, किसी व्यक्ति या वस्तु का अस्तित्व ही नहीं माना था । तब ऐसे विचारवाले बुद्ध ने अगर ईश्वर कृत ग्रंथ पर आस्था नहीं रखी तो इसमें चकित होने की कोई बात नहीं है । वेदों के समान पालि के ग्रंथ त्रिपिटक को बौद्ध धर्मावलंबी प्रमाण ग्रंथ के रूप में सम्मानित करते हैं । क्योंकि त्रिपिटक में भगवान बुद्ध के मुंह से उद्धृत उनसे अभ्यस्त उपदेश ही भरे पड़े हैं ।

बौद्धधर्म निरीश्वरवाद पर विश्वास रखता है । मनुष्य केवल पंचस्कंध मात्र है । आत्मतत्व को भी न मानने वाले बुद्ध ने ईश्वर जैसे एक सृष्टिकर्ता का अस्तित्व नहीं स्वीकार किया । उलटे, हिन्दुधर्म ईश्वर पर विश्वास रखता है । उनके ईश्वर स्वर्ग में हैं। यह उनका विश्वास है कि संसार के हर परमाणु में ईश्वर रहता है । बहुत से हिन्दू बहुदेवतावाद पर विश्वास रखते हैं और कुछ निर्गुण ईश्वर पर । राम, विष्णु, शिव जैसे निर्गुण देवताओं पर श्रद्धा रखने वाले हिन्दू धर्मवाले बौद्धधर्म के निरीश्वरवाद से कोसों दूर पर थे । ईश्वर के बारे में विभिन्न धारणाएँ बौद्धों के लिए मान्य नहीं थीं बुद्ध ने सृष्टिकर्ता या स्वर्गवासी एक ईश्वर पर विश्वास नहीं रखा । मगर उन्होंने कई ऐसे ईश्वरों को माना, जो अपने गुणों से ईश्वर बनते हैं ।'[१] जिन्होंने भगवान बुद्ध से उपदिष्ट मार्गों से होकर ज्ञान प्राप्त किया है, वह अध्यात्मिक दृष्टि से हिन्दू-धर्म में वर्णित देवताओं और देवों से भी श्रेष्ठ है, यही बुद्ध का मत है । धर्म को मनुष्यों और देवों के बीच एक जैसे प्रचार करने का उपदेश ही महात्मा बुद्ध ने दिया है । हिन्दू धर्म जिसे देव की उपाधि प्रदान करता है वे अलौकिक होते हैं और बुद्ध जिन्हें देव की उपा देते हैं वे इसी लोक में जन्म लेते हैं, जीवन बिताते हैं और निर्वाण प्राप्त करते हैं ।

१- "In Buddhism, there is no god but gods. They are only celestial beings living on different subtle planes of existence where they are born, live and die at the end of their span of life"

- 'Bhagavan Buddha', P. 148.- R.R. Diwakar.

हिन्दू धर्म में कई अन्धविश्वास, धार्मिक कुरीतियाँ, यज्ञकाण्ड आदि की प्रथा प्रचलित थी, इसके बारे में पहले ही प्रकाश डाला गया है । धर्मान्धता में फँसकर हिन्दू लोग गंगा में डूबकर अपने पापों से विमुक्त होते हैं छुआछूत के जाल में फँस जाते हैं, उपवास आदि अनुष्ठानों से अपने शरीर को पवित्र करते हैं । परन्तु बौद्धों की दृष्टि में ये सब केवल दिखावा है । उनको ये बातें असह्य प्रतीत होती हैं । इसलिए बौद्ध धर्म में शरीर को पवित्र और शुद्ध करने का मार्ग है -- इच्छाराहित्य, आत्मनियंत्रण, आत्मानुशासन आदि । आन्तरिक क्रियाविधियों से ही अन्तर्मन शुद्ध हो जाता है ।

पहले ही हिन्दूधर्म में छुआछूत जातिपाँति आदि दुर्व्यवहारों का बोलबाला था । सामाजिक आचार-विचार पर इन्हीं हिन्दुओं का बलिष्ठ हाथ था । लेकिन भगवान बुद्ध ने उनके विरुद्ध आवाज़ उठायी कि अपने जन्म से कोई भी बड़ा या अछूत नहीं होता, बल्कि अपने कर्म के अनुरूप ही एक ब्राह्मण या अछूत बन जाता है । स्वयं बुद्ध के इन वचनों से यह अच्छी तरह समझ जाता है कि बुद्ध ने जातिभेद पर कितना ज़ोर दिया था ?

हिन्दूधर्म तपस्या पर बल देता है । क्लेशपूर्ण और कठिन से कठिन नियमों का पालन करना, शरीर को कष्ट पहुँचना ही उत्तम तपस्या के लक्षण थे । उस समय की प्रथा का आज भी हिन्दू लोग और जैन धर्म वाले पालन करते हैं । यह भी पहले कहा जा चुका है कि बुद्ध ने भी ऐसी ही कष्टपूर्ण तपस्या को शुरू में किया था । मगर उन्होंने बाद में यह सिद्ध भी किया है कि सत्यान्वेषण का मार्ग यह नहीं है । यह मार्ग सच्चा नहीं है, वह मनुष्य को और अधिक कष्ट और थकान ही दे पाता है । हिन्दू धर्म के विरुद्ध बुद्ध ने यह बात कही कि अपने शरीर को तपाने के बदले अपने मन के दुर्विचारों को तपाना और जलाना चाहिए ।

बौद्धधर्म के मूल आधारों में एक है अनात्मवाद । अनात्मवादी बुद्ध ने वेदों के आत्मवाद और ब्रह्म के अस्तित्व और उसकी कल्पना पर विरोध प्रकट किया । हम प्रत्यक्ष रूप से इसे नहीं देख सकते । इसलिए इसका होना असंभव है । इस प्रकार हिन्दू धर्म के आत्मवाद के बुद्ध कट्टर विरोधी रहे ।

इतना होते हुए भी बुद्ध ने वेदों की कभी निन्दा नहीं की । अपनी चर्चासभा में उन्होंने कई बार वेदों तथा ब्राह्मणों का उद्धरण लिया है । उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा था कि उन दिनों के वैदिक क्रियाकलाप उतने अच्छे नहीं थे । योग विधा पर दोनों जोर देते थे ।

वेदों के समान महात्मा बुद्ध ने भी कर्म और पुनर्जन्म पर बातें की हैं । कर्मानुकूल फल का दोनों धर्मों ने एक समान वर्णन किया है । गौतम बुद्ध के उपदेशों से अधिक हिन्दू धर्म के पुनर्जन्म, कर्म और मोक्ष पर आधारित थे ।[१] अपने समय में बुद्ध ने अनेक ब्राह्मण विद्वानों को शिष्य बनाया था । हिन्दू धर्म ने विष्णु के आठवाँ अवतार के रूप में बुद्ध को प्रतिष्ठित किया ।[२]

हिन्दू धर्म के सिद्धान्त जनसाधारण की बुद्धि से परे थे लेकिन बौद्ध धर्म के सि जनसाधारण के लिए आसान थे । अर्थात् हिन्दू धर्म के सिद्धान्त काल्पनिक और दार्शनि ज्यादा थे, जबकि बौद्ध धर्म के तत्व अभ्यास करने के लिए सरल थे ।

बौद्धग्रंथों के नीतिशास्त्रों में अहिंसा के लिए एक मुख्य स्थान मिल गया था । लेकिन हिन्दू धर्म के हर धार्मिक कार्य के साथ हिंसा थी । क्योंकि याज्ञिक कर्मकाण्ड हिंसाप्रधान और सर्वत्र प्रचलित था ।

हिन्दूधर्म ने अपने धार्मिक उपदेश देववाणी संस्कृत के माध्यम से किया । यह तो आमजनता के लिए बहुत ही कठिन थी । लेकिन बौद्धधर्म ने धार्मिक प्रचार के लिए सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा को स्वीकृत किया ।

हिन्दू धर्म में सामाजिक समानता नहीं थी । वैदिक कालीन और ब्राह्मणव समाज में जातिव्यवस्था कायम थी और पुरोहित ही धर्म के उच्च पद पर स्थित थे,

---

१- "Gautama Buddha's teachings, in fact were largely based on the Brahman ideas of PUNARJANMA KARMA and MOKSHA."

- 'Bhagavan Buddha' - R.R. Diwakar, P. 125.

२- वही - पृ० १५२.

पहले ही बताया जा चुका है लेकिन बुद्ध की सामाजिक व्यवस्था प्रजातंत्रीय थी सबको ए जैसी समानता प्राप्त थी ।

ऐसी समानताएँ और अन्तर दोनों धर्मों को एक दूसरे से प्रभावित कर सकें । दोनों धर्मों में लेन-देन की कई सुविधाएँ हुई । दोनों धर्मों ने एक दूसरे से अपने को सा न्वित किया, फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्र और विचार जगत को सफलता प्राप्त हुई ।

(२) जैन धर्म और बौद्ध धर्म

कई बातों में जैन धर्म और बौद्धधर्म समानता रखते हैं । हिंसायुक्त कर्मकाण्ड के मरुस्थल से निकालकर लोगों को धर्म के सन्मार्ग पर ला खड़ा करने में ई० पूर्व छठी शत बुदी में महावीर और गौतम बुद्ध ने प्रशंसनीय कार्य किया, जिसका उल्लेख पहले हो गय है । दोनों धर्म ऐसे हैं, जैसे एक दूसरे का आँचल पकड़कर चलते हों ।

वैदिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध ई० पूर्व छठी शताब्दी में भारत में जो धार्मिक आ लन हुआ था, उसके फलस्वरूप दो नये धर्मों का उत्थान हुआ, तो दोनों में समानताओ का होना बहुत ही सहज है ।

अपने सत्य की खोज में दोनों धर्मों ने नव्य मार्ग नहीं बतलाया, किन्तु पुराने हिन्दू धर्म के मार्ग से ही अग्रसर होते गये । दोनों धर्मों ने यही बताया कि जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाना ही मनुष्य का आत्यंतिक लक्ष्य है । इस मुक्ति के हेतु दोनों धर्मों ने कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया । जिस कर्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धान्तों पर जैन-बौद्धों ने जोर दिया, वे हिन्दू धर्म के कर्मवादी तथा पुन र्जन्मवादी सिद्धान्तों से बहुत ही दूर हैं । हिन्दू धर्म का कर्मवाद नैसर्गिकता तथा दैवि को मानता है । लेकिन जैन-बौद्धों का कर्मवाद भाग्य या नियति को माने बिना उसके फल को भोगने की अनिवार्यता पर ही अधिक ध्यान देता है ।

हिन्दू धर्म मोक्षप्राप्ति के लिए देव-देवताओं की शरण तथा उनको संतुष्ट करना आवश्यक मानता है । मगर ईश्वर पर आस्था न रखने वाले दोनों जैनों और बौद्धों ने हिन्दू धर्म में वर्णित आचार-विचार वेदों की प्रामाणिकता, संसार के सृष्टि कर्ता के रूप में ईश्वर का अस्तित्व हिंसायुक्त यज्ञ आदि को अपने धर्मों में स्थान न दि

अहिंसा को दोनों में समान रूप से प्रोत्साहन मिला । दोनों धर्म अच्छे कर्म और पवित्र जीवन पर बल देते थे । पापकर्म से विरत रहने का पाठ, अपने कर्म द्वा से दूसरों की हानि करना जैन-बौद्ध धर्म में अन्तर्लीन तत्व थे । अहिंसा तत्व के पाल में, जैन बौद्धों से एक कदम आगे थे ।[१]

दोनों धर्मों ने सर्वसाधारण जनभाषा में ही अपने उपदेश दिये थे । जाति को मूल से उखाड़ने के प्रयत्न में दोनों ने स्त्री-पुरुष की स्वतंत्रता और समानता प ही अधिक ज़ोर दिया । बौद्धों ने सदा संघ की शरण में जाने का उपदेश दिया । धर्म भी संघ की शरण पर ही विश्वास रखता था ।

दोनों धर्मों का उदय क्षत्रिय राजकुमारों के हाथों से ही हुआ, दोनों के प्रोत रहे उपनिषद् और दोनों को अनेक क्षत्रियों और राजाओं से बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ ।

मगर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों धर्मों में कुछ मूल रूप में अन्तर भी दिख देता है । यह अन्तर सबसे पहले मुक्ति के विषय में ही आता है । बौद्धधर्म का अं लक्ष्य निर्वाण ही जैनधर्म का अन्तिम लक्ष्य भी है । लेकिन बौद्धधर्म का `निर्वाण` दुर्विचारों से मुक्ति है और जैन धर्म का `निर्वाण मृत्यु का स्मरण दिलाता है ।

तपश्चर्या के विषय में तो दोनों धर्मों में स्वर्ग-पाताल का अन्तर है । जै योग शरीर को कष्ट पहुँचाने वाले तप आदि का अनुष्ठान ठीक मानता है जबकि ऐसे अनुष्ठानों से पूर्णरूप से विरत है ।

अहिंसा-सिद्धान्त के पालन में एक छोटा-सा अन्तर जो बौद्धों और जैनों देखने को मिलता है, वह भी विचारणीय है । जैन वृक्षलतादि को जीवयुक्त स उसमें आत्मा का आरोप करते हैं, जहाँ बौद्ध आत्मतत्व पर आँखें मूँद डालते हैं

बुद्ध ने जिन आचार-विचारों जाति-पाँति आदि के विषय में अपने विचार प्रकट किये थे, उनको आज भी कुछ जैन लोग स्वीकार करते हैं । अपने

---

२. Evolution of Indian Culture - B.N Luniya

की सरलता और सुगमता के कारण बौद्धधर्म जल्दी ही विदेशों में फैला, उसको लोकप्रियता प्राप्त हुई और प्रोत्साहन भी मिला । जैन धर्म को इतनी लोकप्रियता मिलना बड़ी मुश्किल हो गया । वह अपने जन्मस्थान भारत की सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सका ।

इसप्रकार एक ही समय में उदय होकर एक जैसे उपदेशों का प्रचार करते हुए दोः धर्म बड़ी सफलता केसाथ काम करते आए ।

४- बौद्धधर्म का देश-विदेशों में प्रचार

संसार की दिव्य-विभूति भगवान बुद्ध ने लोगों की विचारधारा एवं परिस्थितियों के अनुकूल बौद्धधर्म का संस्थापन किया । अपने धर्म का चक्रप्रवर्तन उन्होंने इतने सजीव, व्यावहारिक तथा मंगलमय रूप से किया कि उसकी शीतल छाया में करोड़ों प्राणी आज भी भवसंताप से मुक्ति पाते हैं, अपने जीवन को कल्याणमय बनाते हैं तथा मानव जीवन की कृतकृत्यता प्राप्त करते हैं ।[१] प्रगति-पथ पर आरूढ़ बौद्धधर्म ने कम समय में ही लोकप्रियता प्राप्त की । उसके प्रभावपूर्ण विचार, उच्च आदर्श तथा श्रेष्ठ साहित्य ने बौद्धधर्म को शीघ्र ही देश-विदेशों में विकासशील बनाया । यह ध्यान देने की बात है कि बौद्धधर्म का इतिहास केवल उसी विपुल बौद्धसंस्कृति की कहानी या विवरण नहीं अपितु उसके साथ-साथ देशीय तथा विदेशीय पारस्परिक सांस्कृतिक गठबन्धनों का चित्र है । इसलिए संसार भर की सांस्कृतिक-झलक बौद्ध इतिहास का वर्ण्यविषय है । इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों के बीच मैत्री, एकता तथा हावभावों का आदान-प्रदान आदि में बौद्धधर्म कितना सफल हुआ, इसकी भी झांकी हमें मिलती है । प्रथमतः हम बौद्धधर्म के जन्मस्थान, भारतभूमि में उसके विकास का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करेंगे ।

(१) भारत में बौद्धधर्म का विकास एवं व्याप्ति

महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद कई वर्षों तक बौद्ध धर्म अनेकानेक स

१- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पूर्वपीठिका - राजबली पाण्डेय, पृ० ४४६.

दायों में छिन्न-भिन्न होकर रह गया । अन्त में मौर्यकाल में आकर ही बौद्धधर्म का स्वरूप स्थिर हो गया । धीरे-धीरे उसने प्रगतिशील पथ पर कदम बढ़ाया । मथुरा, उज्जैयिनी आदि स्थानों में भी बौद्धधर्म व्याप्त हुआ । मौर्यकाल के आरंभ में मथुरा ही मुख्य बौद्धकेन्द्र था ।[१]

अशोक की शासनव्यवस्था में तो बौद्धधर्म ने अपूर्व प्रगति की । देश-विदेशों में बौद्धधर्म की व्याप्ति इसी काल में हुई । अशोक ने बौद्धधर्म के पुनरुत्थान के लिए अपने समय में जिस संगीति का आयोजन किया, उसके फलस्वरूप अनेक धर्मप्रचारक मैसूर, कर्नाटक अपरान्त, काश्मीर, गांधार, हिमवन्त, ब्रह्मा तथा लंका को भेजे गये ।[२]

अशोक सबसे बड़े और प्रबल प्रोत्साहक थे । उनके काल में बौद्धधर्म की सबसे अधिक व्याप्ति हो गयी । लेकिन उनके सब उत्तराधिकारी निर्बल ही रहे । दुर्भाग्यवश ऐसा भी हुआ कि विदेशियों के आक्रमण ने भी बौद्धधर्म की लोकप्रियता को घटाने का सह-योग दिया । कई वर्षों तक भारत विदेशियों के अधीन रहने वाले भारत ने सुख की सांस नहीं ली । इसी समय भारत के उत्तर और दक्षिण भागों में शुंगवंश, काण्ववंश, सातवाहन-वंश, चेदिवंश आदि छोटे-छोटे राज्य कायम हुए ।

मौर्यवंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ का सेनापति पुण्यमित्र शुंगवंश की नींव डालने में सफल हुए । बौद्ध लेखकों ने पुण्यमित्र को बौद्धधर्म का कट्टर विरोधी ठहराया है । उनके अनुसार बौद्धधर्म के विरुद्ध ब्राह्मण-धर्म की जो प्रतिक्रिया हुई, उसका आरंभ इसी काल से है । लेकिन यह बौद्धग्रंथकारों की गलती है किन्तु यह हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि धर्मसहिष्णु पुण्यमित्र शुंगतो सनातन धर्म के समर्थक होने पर भी उन्होंने बौद्धधर्म के साथ कुछ अन्याय नहीं किया । इसके प्रमाणस्वरूप खड़े हैं भारहुत स्तूप, कार्ले गुफ

१- २५०० ईयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० ५३.

२- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास - दिनेशचन्द्र भारद्वाज, पृ० २००.

तथा सांची का स्तूप ।[१]

इसके बाद जो सातवाहनयुग आरंभ हुआ, इस काल में भी हम बौद्धधर्म तथा ब्राह्मणधर्म दोनों को एक साथ देश में प्रचार प्राप्त करते हुए देखते हैं । यवन, शक प यन आदि विदेशियों को भी भारत में आकर्षित करने वाला बौद्धधर्म सातवाहनयुग में आकर शुंगयुग की अपेक्षा ज्यादा लोकप्रिय बन चुका था । जनता भी इतनी उदार ब चुकी थी कि उनका दान बौद्धमन्दिरों और बौद्धविहारों के निर्माण में बहुत सहायक हुआ । राजकुमार, सरदार, व्यापारी लोग, महाजन सब बड़े दानी हो चुके थे । बौ भिक्षुओं को सारे देश में भ्रमण करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी । बौद्ध की दोनों नयी शाखाएँ महायान और हीनयान का उदय भी इसी समय हुआ । महा तथा तथागत ऐतिहासिक पुरुष की संज्ञा से अलंकृत थे । गांधार कला के आधार पर बुद्ध भगवान की अनेक मूर्तियों का भी निर्माण शुरू हुआ था ।

इस समय भारत आने वाले विदेशियों में यवनों ने दक्षिण में अपना राज स्थापित किया । कुछ ही समय बाद मेनेंडर ने उत्तरी-पश्चिमी भारत पर भी आक्रम किया । मेनेंडर ही यवनों के सबसे बलिष्ठ राजा थे । प्रसिद्ध बौद्ध ग्रंथ में मेनेंडर की धानी 'साकल' लिखा हुआ है । मेनेंडर ने कई अच्छे कार्य किये । मेनेंडर के शासन के ही भारत के यवनों ने बौद्धधर्म को अपनाया और उसके लिए बहुत धन दान दिया । बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिए भारत से अन्य देशों में भेजे हुए यवनों में आचार्य धर्म अद्वितीय हैं ।

इसप्रकार अशोक के समय से बौद्धधर्म को जो आश्रय और प्रोत्साहन प्राप्त हु उसके फलस्वरूप बौद्धधर्म करीब अठारह संप्रदायों में विभक्त हुआ । सैद्धान्तिक विभि तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ भी इनके उदय का कारण बन गयीं ।

१- A number of famons Buddhist establishments like the BHARHU STUPA, the KARLE Caves, and the SANCHI STUPA belong to the SUNGA - KANVA period and testify to the great prosperity which Buddhism enjoyed then"

- '2500 years of Buddhism'- P. 54.

अन्य विदेशियों में कुषाण वंश भी बौद्धधर्म प्रचार में कम महत्वपूर्ण नहीं था कुषाण वंश के महान् सम्राट कनिष्क का शासनकाल बौद्ध धर्म के इतिहास में विशेष महत्व का है। कुछ ग्रंथों में कनिष्क को शैव बताया है। लेकिन अनेक शिलालेख कनिष्क को बौद्ध सिद्ध करते हैं। अशोक के पश्चात् कनिष्क ने ही बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रयत्न किया था। काश्मीर अथवा जालंधर में बौद्ध संगीतियों का आयोजन कनिष्क की महत्ता को बढ़ा देता है। धर्मसहिष्णु कनिष्क हिन्दू, यूनानी, फारसी, इलामाइट आ धर्मों का भी सम्मान करता था। कुषाण साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ बौद्धधर्म ने भी अपनी विजयध्वजा फहरायी। महायान बौद्धधर्म का उदय उन्हीं के काल में देखने को मिलता है। कनिष्क के राज्य का विस्तार भारत के बाहर भी था इसलिए भारत से परे देशों में बौद्धधर्म का विकास और प्रचार करना कनिष्क के लिए बड़ी आसान बात थी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अशोक ने जो स्वप्न देखा था, उसे पूरा करने का श्रेय कनिष्क को है। कनिष्क ने तक्षशिला में महाविश्वविद्यालय की स्थापना की, जो बौद्ध भिक्षुओं का शिक्षा केन्द्र था। गांधार भी बौद्धधर्म का केन्द्र बना था। चीन के साथ कनिष्क का जो संबंध था, इसके कारण चीन के लोगों का भारत में आगमन हुआ बौद्ध-शिक्षा की व्याप्ति चीन में भी हुई। कनिष्क के उत्तराधिकारियों में हुविष्क ने भी बौद्धधर्म के प्रचार को दृष्टि में रखकर मथुरा में एक मठ की स्थापना की थी। 'कनि ने बौद्धधर्म के प्रचार के लिए जो प्रोत्साहन दिया, उसी पर उनका यश निर्भर है।'[१] दिनेशचन्द्र भारद्वाज का अनुमान ठीक ही है कि 'उनके शासनकाल का महत्व राजनैतिक क्षेत्र में न होकर धार्मिक क्षेत्र में विशेष रूप से हुआ है'।[२]

अन्य भारतीय सम्राटों के अनुरूप गुप्त कालीन सम्राटों ने भी उसी मार्ग को प्रशस्त किया। बौद्धधर्म को ब्राह्मणधर्म तथा भागवत धर्म की तरह सम्मान प्राप्त था।

१- "His chief title to the fame rests upon his movements and on the patronage he extended to the religion of Sakyamuni"

-- भारत का इतिहास - क्षितिश्वरप्रसाद सिंह, पृ० १३८

२- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास - दिनेशचन्द्र भारद्वाज, पृ० २२६.

गुप्तकालीन बौद्ध इतिहास के लिए चीनी यात्रियों के विवरण बहुत लाभकारी हैं। चीनी यात्री फाह्यान चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय भारत आये और लगभग पन्द्रह वर्ष तक भारत में भ्रमण किया। प्रामाणिक बौद्धग्रन्थों को एकत्र करने के उद्देश्य से फाह्यान ने जो तल्लीनता दिखायी, उससे उनका प्रधान क्षेत्र धार्मिक रहा। सिन्धु नदी के किनोर से लेकर मथुरा तक असंख्य बौद्ध मन्दिर तथा मठ बनवाये गये थे। मथुरा बौद्धधर्म का केन्द्र बन गया था। बौद्धधर्म के प्रमुख दो विभाग देश में प्रचलित होने पर भी दोनों में कोई विरोध देखने को नहीं मिलता था। प्रत्युत देश भर में शान्ति और प्रेम की लहर लहराती थी। फाह्यान के लेखों से यह भी प्रमाणित होता है कि हिंसारहित और अत्याचाररहित शासन प्रथा देश की शोभा को बढ़ाने में सहायक हुई। इतना ही नहीं बौद्धधर्म और बौद्धशिक्षाओं का समाज पर अधिक प्रभाव पड़ा था।[१] नालन्दा का विश्व केन्द्र भी गुप्तसम्राटों के प्रभावों का फल था।[२]

गुप्तवंश को श्री लुनिया ने भी तो बौद्धकाल का स्वर्णयुग माना है। इसका प्रधान कारण बौद्धकला की उन्नति तथा विकास था। 'भगवान बुद्ध की मिली मूर्तियां इस काल में हुई उतनी संभवत: किसी काल में भी निर्मित नहीं हुई होंगी।'[३]

गुप्तकाल के पतन के बाद जो शासन आये, उनमें वल्लभी का प्रतिभाशाली शासक था शिलादित्य। अत्यधिक दयालुता और प्रशंसनीय योग्यता के कारण चीनी यात्री ह्वेनसांग ने उनकी बड़ी प्रशंसा अपने लेखों में की है। शिलादित्य बौद्ध था। उसने भी बौद्ध विहार की रचना की थी। इतिहास यह प्रमाण देता है कि हर साल वह एक धार्मिक महासभा का आयोजन करता था और उसमें अनेकों बौद्ध भिक्षु सम्मिलित होते थे। ऐसे धार्मिक कार्यों में संलग्न होने के कारण वह धर्मादित्य भी कहलाने लगा।

१- भारतका इतिहास - क्षिति श्वरप्रसाद सिंह, पृ० १५१-५२.

२- "The foundation of the institution at Nalanda was also due to the patronage of the Gupta rulers"

- '2500 years of Buddhism'- P. 56.

३- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास - दिनेशचन्द्र भारतद्वाज, पृ० २६६.

गुप्तवंश के पतन के बाद भारत का अन्तिम हिन्दूवंश था पुष्यभूतिवंश, जो थ्वर में स्थापित किया गया था । इस वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा था हर्षवर्द्धन ।

शिलालेखों से प्रमाणित होता है कि लगभग पच्चीस वर्षों तक हिन्दू धर्म उपासक रहने के बाद ही हर्ष ने बौद्धधर्म को स्वीकार किया था ।[१] बौद्ध आदर्शों पालन में उन्होंने महान् अशोक का अनुकरण किया । बौद्धसिद्धान्तों के विवादास्पद विषयों पर चर्चा करने के लिए उन्होंने कन्नौज में बौद्धों की सभा बुलवायी थी । पर दया, सहानुभूति, अहिंसा आदि बौद्धसिद्धान्तों को जीवन के विविध क्षेत्रों में लागू बना दिया । 'काश्मीर से उसने महात्मा बुद्ध के दांत मंगवाये थे, जिससे उसकी भगवान बुद्ध के प्रति श्रद्धा का पता चलता है ।'[२]

हर्ष के बाद कुछ सदियों तक बौद्धधर्म न फला, न फूला । शासकों की अ तथा प्रोत्साहनरहित शासन व्यवस्था से बौद्धधर्म भी निर्जीव सा बन गया । लेकिन की बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में पाल सेन युग ने बौद्धधर्म का पुनरुत्थान किय

भारतीय इतिहास का एक गौरवपूर्ण युग होने के साथ-साथ इस युग ने बंग के इतिहास में अपनी स्वर्णिम छाप भी अंकित की । बौद्धकला के द्वारा पाल वंशीय ओं ने धार्मिक उदारता प्रकट की । पाल वंश के प्रथम राजा गोपाल तथा उनके पुत्र ने अनेक बौद्धविहारों का निर्माण करवाया । इनमें विक्रमशिला, सोमपुरी तथा उद के विहार बौद्धधर्म के प्रति उनकी श्रद्धा की निशानें हैं । बौद्धग्रंथों से यह स्वयंसिद्ध कि बौद्ध लेखक हरिभद्र का धर्मपाल विशेष सम्मान करता था ।[४] इस युग के साथ बौद्धाचार्यों का नाम भी सम्मिलित है जिनमें अतिश-दीपंकर का नाम सर्वप्रथम है ।

१- भारतका इतिहास - दिनेशचन्द्र भारद्वाज, पृ० ३१३.

२- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास - दिनेशचन्द्र भारद्वाज, पृ० ३१३.

३- "In the 12th and 13th centuries A.D. it still continued the patronage of the Pala Kings of Bengal and Bihar"
- 'Evolution of Indian Culture'-B.N.Luniya, P.130.

४- भारतका इतिहास - दिनेशचन्द्रप्रसाद सिंह, पृ० २४४.

बौद्धधर्म के दिव्य संदेशों के साथ तिब्बत गये थे । जब भारत के अधिकांश लोगों की आ बौद्धधर्म से उड़ गयी थी तब पालवंशीय राजाओं के प्रश्रय में बौद्धधर्म पुनर्जीवित हुआ था

इन सबके अलावा अशोक, कनिष्क तथा हर्ष युगीन भारतीय सैनिक शक्ति पर भी अहिंसात्मक सिद्धान्तों का असर पड़ गया था । इस प्रकार कई सदियों तक बौद्धधर्म भारत में विकास प्राप्त करता रहा ।

(२) बौद्धधर्म का विदेशों में प्रचार

बौद्धधर्म का इतिहास भारतभूमि में ही सीमित नहीं रहा, बल्कि विदेशों में रहने वाले विभिन्न लोगों के बीच उस पवित्र धर्म ने जो सांस्कृतिक संबंध स्थापित किये उसकी भी कहानी है । उससे भारतवासियों के विचार, आदर्श तथा साहित्य का ढाल का सफल कार्य हुआ, साथ ही साथ चारों ओर स्थित देशों में भारतीय धर्म का प्रसा हुआ । श्रीलंका, वर्मा, सियाम (थाईलैण्ड), कंबोडिया, मध्यएशिया, तिब्बत, चीन, कोरिया, मंगोलिया, जापान आदि सुदूर देशों में भी बौद्धधर्म ने अपनी स्वर्णिम किर बिखेर दीं, जिसके फलस्वरूप विश्वमैत्री, एकता, आपसी प्रेम आदि सद्भावों ने भी लोगों के बीच बहुत लोकप्रियता पायी ।

(१) श्रीलंका में बौद्धधर्म -- सिंहल साहित्य यह प्रमाण प्रस्तुत करता है कि महान् अशोक ने बौद्धधर्म के प्रसार के लिए विदेशों में धर्मप्रचारकों को भेज दिया था । उन्होंने अर्हत्महेन्द्र को, कुछ अन्य भिक्षुओं के साथ लंका भेज दिया । वे एक पूर्णिमा के दिन लंका के अनुराधपुर के निकट पहुँचे । सिंहल के राजा 'देवानांपियतिस्स' और वहाँ की प्रजा महेन्द्र के नये संदेश के अधीन हुए । उनके सिद्धान्तों ने उन सबको बहुत आकर्षित किया । राजा ने उनका खूब आदर सत्कार किया ।[१] वहाँ महेन्द्र ने एक महाविहार

१- "The King took with him the honoured Saint with great honour and pomp and offered the royal Maha-megha park to him"

- 'Bhagavan Buddha' - R.R. Diwakar, P. 162.

का निर्माण किया । इसके पश्चात् वहाँ बौद्धधर्म का विकास असाधारण था ।

उसके बाद अनुराधपुर के दरबार में उनका खूब आदर-सत्कार हुआ । फिर महेन्द्र ने दरबार की स्त्रियों तथा साधारण लोगों को धर्म के सन्देश सुनाये । जीवन में कर्म की प्रधानता को दिखाने के लिए उन्होंने अनेक उपदेश दिये । उन्होंने यह भी कहा कि सबको कर्म की शरण लेनी चाहिए, क्योंकि वही हमारा रक्षक है ।[1] उन्होंने अपरिमित उत्साह से बौद्धधर्म की मुख्यता को सर्वसाधारण तक पहुँचाया । विश्व का अनस्तित्व, उसकी भयानकता आदि विषयों पर महेन्द्र ने प्रभावशाली भाषण दिये । बड़ी तादाद में लोगों ने धर्म की शरण ली और भिक्षुत्व ग्रहण किया ।

वहाँ की राजकुमारी `अनुला` भी धम्म की ओर झुक गयी । उसने प्रव्रज्या लेने का नियम किया । तब महेन्द्र के उपदेशानुसार अशोक ने संघमित्रा और कुछ भिक्षुणियों को लंका भेज दिया । तब से लेकर लंका में भिक्षुणियों को भी धर्म की दीक्षा दी जाने लगी । कहा जाता है कि संघमित्रा अपने साथ बोधि वृक्ष की एक शाखा को अपने साथ लायी थी, जिसे अनुराधपुर में लगाया था । आज भी वह लंका में स्थित है[2] । थोड़े ही समय में उच्च कुल की अनेक स्त्रियों ने भी भिक्षुणी का पद स्वीकृत किया ।

सिंहलवासियों का बौद्धधर्म के प्रति श्रद्धा और आदर इतना था कि भारत से उन्होंने महात्मा बुद्ध के कई भग्नावशेष मंगाये ।[3] राजा तिस्स ने एक बड़े स्तूप का निर्माण करवाया, जो आज `तूपारामा दगोबा` के नाम से विख्यात है । और यह सिंहल का प्रथम चैत्यगृह है । इस प्रकार बौद्धधर्म ने लंका में दृढ़ नींव डाली ।

---

1. 'Buddhism in India and abroad' - A.C. Banerjee, P.184.

2. "This tree, known as Jayashri Maha-bodhi, is still to be seen at Anuradhapura and today it is one of the holiest objects of Buddhist worship"-
   - 'Bhagavan Buddha' - R.R. Diwakar, P.162.

3. ".....the bringing of the Buddha's tooth from India more than 500 years later"
   - '2500 years of Buddhism' - P.75.

राजा तिस्स का भाई और अनुगामी राजा उत्तीय के शासनकाल में ही संघमित्र और महेन्द्र का देहान्त हुआ था । राजा ने बड़ी धूमधाम से दोनों का दाहसंस्कार कि उनके भग्नावशेषों के ऊपर स्तूपों का भी निर्माण करवाया । राजा उत्तीय के मरणो परान्त सिंहल-द्वीप तमिल-शासकों के अधीन हुआ । इन तमिल शासकों को युद्ध में हराव राजा दुत्तगामिनी ने सिंहल में अपना पूर्ण अधिकार जमाया ।

लंका में बौद्धधर्म के विकास में महान् दुत्तगामिनी ने भी अपना पूर्ण सहयोग दि है । उन्होंने वहाँ स्तूपों और विहारों का निर्माण करवाया । उनके बनाये हुए स्तूपों में `सुवन्नमाली` स्तूप बहुत महत्वपूर्ण है । कहा जाता है कि इसकी नींव डालने की प्रक्रिया अनेकानेक विदेशी भिक्षुओं के सम्मुख ही की गयी थी । इतना ही नहीं, राजा दुत्तगामिनी की सहायता में अनेक विद्वान् भिक्षुओं का जीवन-यापन होता था ।

दुत्तगामिनी का अनुगामी उनका छोटा भाई सद्धनिस्स भी बौद्ध था । बौद्धधर्म के विकास में सद्धनिस्स ने भी यथेष्ट योगदान दिया । उनका बनवाया हुआ अनुराधपुर का `दक्खिन गिरिविहार` उनका कीर्तिस्तंभ है ।

बौद्धधर्म के इतिहास में वातगामिनी का नाम भी चिरस्मरणीय है । सर्वप्रथम पालि में साहित्य रचना इसी समय हुई ।[1] उनके समय तक महेन्द्र से उपदिष्ट बौद्धतत्व मौखिक रूप में ही सुरक्षित थे । निपुण भिक्षुओं द्वारा ये उपदेश दूसरों तक पहुँचाना ही उस समय तक मुख्य कार्य रहा । क्रमशः ऐसे निपुण भिक्षुओं की संख्या कम होती गयी और इन उपदेशों को ग्रंथबद्ध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई । राजा वातगामिनी की प्रेरणा से, वहाँ जो चौथी बौद्धसंगीति का आयोजन किया गया था, उसमें इसी

---

1. During his reign the Buddhist Scriptures, the pali canon, called Tripitakon - the Vinaya Pitaka, rules and regulations the guidence of the monks the Suttapitaka, religious discour of Buddha and his prominent disciples and the Abhidhar - mapitaka, exposition of philosophical principles underlying religions discourses were first put into writing"

- 'Buddhism in India and abroad" - A.C. Banerjee, P.18

बात को लक्ष्य में रखा गया था कि इन बौद्ध-विचारों को ग्रंथों का रूप दें। मलाला के गुहागृहों में अर्हत् रक्खिता की अध्यक्षता में इस संगीति का आयोजन हुआ जिसमें करीब पाँच सौ से अधिक भिक्षुओं ने भाग लिया था। उस समय पालि त्रिपिटकों को ताडपत्रों पर पंक्तिबद्ध किया गया। इस प्रकार उनका शासनकाल महत्वपूर्ण रहा।

इसके बाद ई० सन् पाँचवीं शताब्दी तक बौद्धधर्म के इतिहास में उल्लेखनीय कोई घटना नहीं हुई। संघ के अंतर्गत कुछ संघर्ष आ जाने के कारण बौद्धावलंबियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा।

पाँचवीं शताब्दी में बुद्धघोष ने लंका का दर्शन किया। एक ब्राह्मण होने पर भी महाथेर रेवत से उन्होंने बौद्धधर्म की दीक्षा ली थी। अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार ही बुद्धघोष अनुराधपुर में पधारे थे। सिंहली से पालि में उन्होंने त्रिपिटकों पर आधारित अट्ठकथाओं का अनुवाद किया। उनकी प्रतिभा का स्वयं प्रमाण उनका ग्रंथ विशुद्धि मार्ग है, जो लंका में उन्होंने लिखा था।

उसके बाद करीब पाँच सौ वर्ष अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दी तक लंका आंतरिक संघर्षों का शिकार बन कर रह गया। इसी समय बौद्धधर्म बहुत पतनोन्मुख हुआ। बौद्ध-संघ के उद्धार के हेतु राजा विजयबाहु प्रथम ने तो बर्मा के राजा की सहायता से अनेक बौद्धविहार और मठों की स्थापना की। उन्हीं की प्रेरणा से पालि और संस्कृत के अनेक धार्मिक ग्रंथों की भी संरचना इसी समय की गयी।

राजा विजयबाहु की मृत्यु से बौद्धसंघ की अवस्था फिर भी शोचनीय रही। परक्कमबाहु के राजा होते ही बौद्धधर्म की पुनः स्थापना आरंभ हुई। संघ की एकता और पुनरुद्धार के विचार ने स्वयं राजा परक्कमबाहु को भी लोकप्रिय एवं महान बना दिया। उन्होंने भी नई मठ और विहारों की स्थापना की। इसके बाद विजयबाहु द्वितीय, परक्कमबाहु द्वितीय और षष्ठ जैसे बौद्धानुरागी राजाओं ने ही बौद्धधर्म के विकास के लिए पूर्ण सहयोग दिया था। लेकिन पाश्चात्यों के आक्रमण के परिणामस्वरूप बौद्ध-धर्म ने पूर्ण रूप से अवनति की।

अब भी लंका के सत्तर फीसदी लोग बौद्धमतानुयायी हैं । आज भी वहाँ अनेकों बौद्ध मठ देखने को मिलते हैं, जिसमें असंख्य बौद्धानुयायी अपने आराध्य देवता की चरण सेवा में लगे रहते हैं ।

(२) बर्मा में बौद्धधर्म -- पाँचवीं शताब्दी के पूर्व बर्मा में बौद्धधर्म के अस्तित्व के ठोस प्रमाण नहीं है, इसलिए बर्मा में बौद्धधर्म का इतिहास यहीं से शुरू होता है । इन प्रमाण के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि `प्रोम` के निकट थेरवादी बौद्धधर्म प्रचलित था ।

`प्रोम` के निकट जो खुदाई की गयी थी, उसके आधार पर ही बर्मा में पाँचवी शताब्दी में विद्यमान बौद्धधर्म का प्रमाण हमें मिलता है, इस पर कुछ चीनी यात्रियों के लेख भी प्रस्तुत हैं । यह भी सिद्ध हो चुका है कि भारत के बौद्ध-प्रचारकों ने ही वहाँ बौद्धधर्म का प्रचार किया था ।[१]

थेरवादी बौद्धधर्म `पेगु`, `तेटन` जैसे स्थानों में पूर्णरूप से व्याप्त हुआ । ग्यारहवीं शती के आसपास `तेटन` इस पवित्र धर्म का एक मुख्य केन्द्र हुआ । इसी समय `पेगन` को अपनी राजधानी बनाकर `म्रम` नामक एक असंस्कृत जाति ने अधिकार जमाया क्रूर और असंस्कृत होने के नाते धीरे-धीरे इनके बीच तांत्रिक बौद्धधर्म की जैसी एक प्रवृत्ति प्रस्फुटित हुई । लेकिन दसवीं शती `पेगन` के सिंहासन पर राजा अनिरुद्ध आरूढ हुए नये राजा कुछ अन्य भिक्षुओं की सहायता से उस निराधार तांत्रिक बौद्धधर्म को बहिष्कार करके, सच्चे और शुद्ध थेरवादी बौद्धधर्म की स्थापना कर सके ।

इसके बाद बौद्धधर्म के प्रचार के लिए राजा अनिरुद्ध ने `तेटन` के राजा मनु से त्रिपिटकों की माँग की । जब इस प्रार्थना का तिरस्कार किया गया तो अनिरुद्ध

---

1. ".....by the Indian missionaries who came from the eastern coast of the Deccan and South India. But side by side we also find traces of Mula-sarvastivada and Mahayanism which probably came from eastern India"

-'2500 years of Buddhism' - P.77.

ने `तेटन` पर चढ़ाई की और उसे अपने अधीन किया । कहा जाता है कि अनिरुद्ध ने वहाँ जो विजययात्रा की, वह बहुत ही असाधारण थी ।[1]

पेगनवासियों ने अपने राजा का खूब स्वागत किया, साथ-साथ बौद्धधर्म का भी । इस प्रकार अनिरुद्ध और उनके उत्तराधिकारी थेरवाद बौद्धधर्म के मुख्य प्रचारक और प्रोत्साहक रहे और उन्हीं के हाथों समस्त बर्मा ने बौद्धधर्म स्वीकार किया । उस समय बर्मा में विद्यमान ब्राह्मण धर्म पर भी इसी धर्म ने अधिकार जमाया ।

बौद्धधर्म के प्रति अपने आदर प्रकट करने के लिए अनिरुद्ध ने बर्मा में कई बौद्ध मठ, बौद्धविहार एवं बौद्ध प्रतिमाओं का निर्माण करवाया । उनके उत्तराधिकारी भी अपने पूर्वज के ही पदचिह्नों का अनुकरण करते गये । बर्मा का `पेगन` में स्थित `आनन्द मन्दिर` बहुत ही विख्यात है, जिसे अनिरुद्ध के पुत्र ने ही बनवाया था ।

बर्मा में बौद्धधर्म के इतिहास में बारहवीं शताब्दी में एक मुख्य घटना हुई । बर्मा का कपाता नामक एक शिष्य अपने गुरु उत्तरजीव के साथ सिंहल गये । कुछ ही दिनों में उत्तरजीव बर्मा लौटे । किन्तु शिष्य कपाता सिंहल के बौद्ध संघ के धार्मिक अनुष्ठान करने लगा । करीब दस वर्ष के पश्चात् चार भिक्षुओं सहित जब कपाता बर्मा लौटे तो उनके गुरु का देहान्त हो चुका था । सिंहल के महाविहार में रहने के कारण बर्मा के `पेगन-संघ` में उनको कोई भी स्थान नहीं था । इसको लेकर सिंहल संघ और पेगन-संघ में बड़ा संघर्ष हुआ । लेकिन इसमें सिंहल संघ की विजय ही हुई ।

बर्मा में बौद्ध धर्म के इतिहास में सातवीं शताब्दी बहुत महत्वपूर्ण है । बर्मा के `परम्पन्ना` और `एक्कासिका` नाम के दो भिक्षुसंघों के आपसी संघर्ष से अस्तव्यस्त यह शताब्दी बहुत ही विचारणीय है । `मुसानवंश` नामक ग्रंथ ही इसके लिए प्रमाण प्रस्तुत करता है । एक ही भुजा को अपने वस्त्रों से ढंक कर चलने वाले `एक्कासिका संघ`

---

1. He returned in triumph and brought back with him not only king Manuha (MANUHA) captive, but all the monks, and the Buddhist scriptures and relies which were carried by thirty two elephants

   - 2500 years of Buddhism - P.77

के श्रमण थे और परम्परा संघ के श्रमण दोनों भुजाओं को वस्त्रों से ढंक कर भ्रमण करते थे । दोनों अपने-अपने विचारों की पुष्टि करते थे । यह संघर्ष बहुत समय तक चलता रहा ।

अठारहवीं शताब्दी में मण्डाले में पाँचवीं बौद्ध संगीति राजा `मिनदान मिन` के द्वारा आयोजित की गयी । करीब ढाई सौ बौद्ध लोग इसमें शामिल हुए थे । बौद्धाचार्यों द्वारा उद्धृत त्रिपिटकों के विषयों को शिलाओं पर खुदवाया गया । इसके अतिरिक्त रंगून में ई० सन् १९५४ को छठी बौद्ध संगीती भी आयोजित की गयी । बर्मा में आज भी बौद्धधर्म सजीव रूप में विद्यमान है ।

(३) सियाम में बौद्धधर्म -- `सियाम` या वर्तमान `थाईलैण्ड` में ई० सन् की प्रथम शताब्दी से ही बौद्ध धर्म का प्रचार था, जिसका प्रमाण हम वहाँ के `बेंमकोक` के निकट की गई खुदाई से प्राप्त कर सकते हैं ।[१]

प्राचीन काल से ही इस देश में हीनयान का प्रचार था ।[२] बहुत समय तक सियाम कंबोदिया-शासकों के अधीन था । फलत: दोनों देशों के धर्म मिल गये । आज भी देखा जाता है कि थाईलैण्ड की संस्कृति में कंबोदिया की संस्कृति के कुछ अंश विद्यमान हैं । लेकिन तेरहवीं शताब्दी में थाईलैण्ड के लोगों ने बहुत कठिन संघर्ष के उपरान्त वहाँ अपन राज्य स्थापित किया । उनकी राजधानी `सुखोथई` में स्थापित की गयी । यह घटना वहाँ के बौद्धधर्म के इतिहास में भी एक परिवर्तन और विकास ला सकी ।

यहाँ के सब शासक थेरवादी बौद्धधर्म के अनुयायी रहे । इनमें सूर्यवंश राम महाधम्मराजाधिराजा बौद्धधर्म के विकास के लिए सदा सचेत ही रहे । सारे देश में बौद्ध-

---

1. 'Remains of religious structure, the images of the Buddha, inscribed terracottas and definite symbols of Buddhism like the dharmacakra, belonging probably to the first or second century A.D, have been found in these places'

   - '2500 years of Buddhism' - P.79

2. "Buddhism once flourished in Siam and Hinayanism was prevalent there"

   -Buddhism in India and Abroad'-A.C. Banerjee, P.202.

विहार, मठ एवं बौद्ध प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करना उनका लक्ष्य था । सियाम के एक शिलालेख के अनुसार यह बताया जा सकता है कि उनके शासनकाल में सिंहल से बुद्धदेव का एक पवित्र भग्नावशेष और बोधिवृक्ष की एक शाखा सियाम में लायी गयी थी । वहाँ के प्रचलित धर्म में सुधार लाने के हेतु उन्होंने सिंहल में संघ के मुखिया को भी सियाम में बुलवाया था । उनके सियाम पहुँचते ही, राजा ने स्वर्ण की एक बुद्धप्रतिमा को संघाचार्य को प्रदान की और बौद्धभिक्षु बन गये । प्रवृज्या लेना, बौद्धतत्त्वों एवं बुद्धवचनों का प्रचार करना, पालि भाषा को प्रोत्साहन देना जैसी उनकी उत्कृष्ट प्रवृत्तियों के बारे में पालि के अनेकानेक शिलालेख प्रकाश डालते हैं । इतना ही नहीं, वहाँ के सिंहल संघ के भिक्षुओं के प्रति भी वे उदार थे । इस प्रकार उनके शासन काल में `सुखोथाई` बौद्धधर्म का केन्द्र रहा ।

चौदहवीं शताब्दी में दक्षिण सियाम की `अयुनिया` ही उसकी राजधानी बन गयी । सुखोथई के समस्त अधिकार `अयुनिया` में प्रतिफलित होने लगे । बौद्धधर्म ने भी वहाँ से अयुनिया में महाप्रयाण किया । अयुनिया के शासक भी `सुखोथई` के शासक की भाँति बौद्धधर्म के प्रोत्साहक, प्रचारक एवं सजीव प्रवर्तक ही रहे ।

सत्रहवीं शताब्दी तक `अयुनिया` सियाम की राजधानी रही । लेकिन बर्मा-सियाम के विनाशकारी संघर्ष के दुरन्त में समस्त बौद्ध-मंदिर, बौद्धविहार एवं बौद्ध-प्रतिमाओं का नाश ही हुआ । लेकिन यह विनाश केवल क्षणमात्र का था । कुछ ही समय में बेंगकोक में एक नयी राजधानी का उदय हुआ । उसके बाद त्रिपिटकों को दुहराने के उद्देश्य से, चउ-फय-चाक्री के द्वारा एक बौद्धसंगीति आयोजित की गयी । फिर एक बार बौद्धधर्म ने वहाँ नवजीवन पाया । पालि का विकास होने लगा । ये चाक्री वंशज बौद्धधर्म को बहुत विकासशील बनाना चाहते थे ।[1]

---

1. "The Chakkri Kings were actively interested in making Siam a full fledged 'Buddhist stah', guided by Buddhist principles
   - 'Buddhism in India and Abroad'-A.C. Banerjee, P.205.

आज तो थाईलैण्ड का राज्यधर्म बौद्धधर्म ही है और जहाँ के नवीं फीसदी लोग भी बौद्धावलंबी हैं ।

(४) कम्बोदिया में बौद्धधर्म -- ऐतिहासिक प्रमाणों में कम्बोदिया की प्राचीन राजधानी फनन है और कौंडिन्य नामक एक ब्राह्मण ने उसकी स्थापना की थी ।

ई० सन् पाँचवीं और छठी शताब्दी में 'फनन' में बौद्धधर्म राजकीय प्रोत्साहन पाकर विकास के पथ पर प्रतिष्ठित था । धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में फनन वंश के राजा जयवर्मन और रुद्रवर्मन सर्वश्रेष्ठ हैं । चौथी और पाँचवीं शताब्दी में शासन करने वाले राजा जयवर्मन ने बौद्धधर्म के प्रचारार्थ चीन में भिक्षुसंघ को भेजा था । छठी शताब्दी में भी उन्होंने बौद्धग्रन्थों के अनुवाद कार्य के लिए भिक्षुओं को चीन में भेजा था ।[1] पाँचवीं शताब्दी में राजा बने हुए फनन-वंशज रुद्रसेन भी चीन के बौद्ध शासकों से मित्रता का व्यवहार ही करते थे । धर्म के प्रचार के लिए चीन के राजा के निकट उन्होंने बुद्ध की चन्दन की बनाई हुई मूर्ति, बुद्धदेव के पवित्र भग्नावशेष आदि भेजा था । कंबोदिया के कुछ स्थानों में खुदाई की गयी थी, जिसके फलस्वरूप पालिके कुछ शिलालेख प्राप्त हुए और इसी आधार पर फनन में हीनयान के अस्तित्व के बारे में हम बता सकते हैं ।

चीनी यात्री ईत्सिंग कंबोदिया में प्रचलित बौद्धधर्म का एक सुन्दर विवरण ही प्रस्तुत करते हैं । उन्होंने फनन में बौद्धधर्म के शक्तिशाली स्वरूप एवं सातवीं शताब्दी के उसके दुरन्त का भी जिक्र किया है ।[2]

---

1. "During his reign two monks of Funan, Sanghapala and Mandrasena came to the chinese court in the early years of the Sixth century A.D. to translate the Buddhist texts"

   - Buddhism in India & Abroad-A.C. Banerjee, P.206.

2. Buddhism flourished at PO-NAN (FUNAN) in early times..... the people of FUNAN, 'were mostly worshipers of devas and later on Buddhism flourished there; but a wicked king has now expelled and exterminated them all, and these are no members of Buddhist Brotherhood at all"

'Buddhism in India and abroad' - A.C. Banerjee, P.208.

इसके बाद नवीं शताब्दी में यशोवर्मन के सिंहासन पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् ही बौद्धधर्म सजीव हुआ । बौद्ध-भिक्षुओं के निवासार्थ एक 'सुगताश्रम' का निर्माण कर के उन्होंने बौद्धधर्म को पुनरुज्जीवित किया । इसके बाद तेरहवीं शताब्दी तक जयवर्मन पंचम, सूर्यवर्मन प्रथम, जयवर्मन सप्तम, आदि महान् शासकों ने कंबोदिया में बौद्धधर्म के प्रचार और प्रसार के लिए बड़ी मात्रा में कोशिश की । धर्मसहिष्णु इन शासकों ने अनेक धार्मिक संस्थाएँ स्थापित कीं एवं उनके लिए बड़े तौर पर दान दिये । शैवधर्म ही राज्य-धर्म था, तो भी बौद्धधर्म के प्रचार में कोई भी विघ्न नहीं उपस्थित हुआ था ।

दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के इन स्थानों के अतिरिक्त बौद्धधर्म ने वियतनाम, इन्दोनेशिया, जावा, सुमात्रा, बालि जैसे द्वीपों में भी कदम रखा था । भारत और वियतनाम के निकट संपर्क के फलस्वरूप ही ई० सन् की प्रारंभिक शताब्दियों से ही वहाँ बौद्धधर्म प्रचार में रहा । वहाँ के शासक भी बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अनेक बौद्धविहार, मंदिर एवं मठों के निर्माण में लगे थे । इसी प्रकार इंडोनेशिया के द्वीप भी बौद्धधर्म के पदछापों से विहीन नहीं रहे ।

(५) तिब्बत में बौद्धधर्म -- कहा जाता है कि छठी शताब्दी में राजा नरदेव के शासन-काल में ही तिब्बत ने बौद्ध धर्म का स्वागत किया था । अपनी उत्कृष्ट कार्य-निपुणता एवं साहसी और वीर कृत्यों के फलस्वरूप राजा नरदेव तिब्बत में 'स्रोण-बट्सन-स्गाम-प' के नाम से लोकप्रिय हुए । साहस के फलस्वरूप उनको नेपाल और चीन की दो राज-कुमारियाँ पत्नियों के रूपों में उपलब्ध हुईं । दोनों बौद्ध उपासिकाएँ थीं । अपने पतिगृह आते समय राजकुमारियों ने अपने साथ बुद्ध की प्रतिमाएँ तथा कुछ बौद्ध ग्रंथों को भी लिया । राजा ने तो इनको 'लासा' में प्रतिष्ठित किया, जो आज भी वहाँ का एक मुख्य मन्दिर है ।

राजा भी बहुत संस्कृत और बड़े विद्वान थे । सांस्कृतिक विकास, सामाजिक सुधार आदि कार्यों में रुचि लेने वाले राजा ने अपनी दोनों पत्नियों के अनुरोध पर बौद्धधर्म को स्वीकार किया । तबसे तिब्बत में भी बौद्धधर्म के भाग्य का उदय हुआ ।

जनजीवन की सफलता, केवल सद्वृत्तियों और बुद्धि पर ही आश्रित है, मातृभूमि के प्रति भक्ति एवं आपसी प्रेम की अनिवार्यता पर राजा ने बल दिया । भिक्षुओं एवं साधारण जन के जीवन को सुखदायक बनाने के हेतु उन्होंने कई शिक्षाप्रद उपदेश और नैतिक अनुष्ठान के नियम बनवाये ।

बौद्धधर्म के बारे में गहराई से जानकारी प्राप्त करने के आग्रह से राजा ने कुछ चतुर व्यक्तियों को भारत, नेपाल, चीन आदि देशों में भेजा । वे भारत आये और आचार्य देवविनसिंह (सिंहघोष) पंडित लिपिकर (लिपिदत्त) आदि के शिष्यत्व को स्वीकार करके बौद्ध दर्शन एवं ब्राह्मण-धर्म-दर्शन में पारंगत हुए । किन्तु कुछ वर्षों में ही कड़ी धूप के कारण, एक थोन-मी-संबोधा नामक भिक्षु को छोड़कर तिब्बत से आये हुए अन्य सभी भिक्षु मर गये । उस समय तिब्बत में लिपि प्रचलित न थी । इसलिए थोन-मीसंबोधा ने छठी-सातवीं शताब्दी में मध्यभारत में प्रचलित भारतीय लिपियों से तिब्बत की भाषा के लिए एक वर्णमाला को रूप दे दिया । तब से लेकर सभी बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मों के साहित्य का तिब्बती-भाषा में अनुवाद शुरू हुआ । इस प्रकार तिब्बती भाषा की वर्णमाला एवं व्याकरण के उदय का श्रेय बौद्ध थोन-मी-संबोधा को है ।[1] संतुष्ट होकर तिब्बत के राजा ने उनको अपना गुरू एवं प्रधानमंत्री मान लिया ।

राजा स्रोन-बटसन-सगम पो के प्रोत्साहन में तिब्बत में अन्य भाषाओं का जो तिब्बती अनुवाद-कार्य शुरू हुआ वह सत्रहवीं शताब्दी तक कायम रहा, परिणामत: तिब्बती साहित्य ने बड़ी उन्नति प्राप्त की । अनेक बौद्ध संस्थाओं ने उस समय तिब्बत में स्थान पा लिया । वहाँ के दलाई-लामाओं के लिए विश्वविख्यात आश्रम की नींव डालने में भी राजा ने बड़ा सहयोग दिया । इस प्रकार उनके शासनकाल में बौद्धधर्म केवल राज्यधर्म ही नहीं रहा वरन् वह उन्नति के उच्च शिखर पर भी पहुँचा । आज भी तिब्बत के लोग उनको अविलोकितेश्वर का अवतार ही मानते हैं ।[2]

---

1. He is thus regarded as the father or creator of TIBETAN literature' -'Buddhism in India & Abroad-A.C. Banerjee, P.224.
2. He is, indeed, revered as an incarnation of SPYAN-RAS-GZIGS (AVALOKITE SVARA, Lord of Mercy), the patron deity of TIBET
   - 'Buddhism in India & Abroad-A.C. Banerjee, P.225.

तिब्बत में जब एक ओर बौद्धधर्म पल्लवित और पुष्पित होता था, तब दूसरी ओर `बोन-धर्म` भी वहाँ विद्यमान था जो जादू-मंत्र, पैशाचिकता, जैसे क्रूर कर्मों पर विश्वास रखते थे । चीन में प्रचलित ऐसे ही एक धर्म के बारे में यहाँ स्मरण आता है जो `तेवोइसम` नाम से जाना जाता था । केवल पशुओं की ही नहीं, बल्कि मनुष्यों तक की बलि इनका मुख्य धार्मिक कर्म रहा । लेकिन बौद्धधर्म और भारतीय संस्कृति के प्रभाव में आकर तिब्बत के इन बोन-धर्मवालों में कुछ लोगों ने ऐसे अनावश्यक आचारों को त्याग दिया ।[1] तो भी बौद्धधर्म का विरोध करने वाले कम न थे । उनके शक्तिसपूर्ण विरोध के आगे बौद्धधर्म को बहुत कष्ट सहना पड़ा और अपनी पतितावस्था में वह कई शताब्दियों तक रहा । लेकिन जब तक बौद्ध-शासक स्रोन-बटसन-स्गाम-पो जीवित रहे, तब तक उन्होंने बौद्धधर्म पर थोड़ी भी आँच आने नहीं दी ।

परन्तु, उनकी मृत्यु से बौद्धधर्म की उन्नति का पथ भी जैसा रुक गया । उसके बाद ई० सन् ६४० में उनके अनुगामी थोन-मी-सम्बोथा ने जब तिब्बत के शासन की बाग डोर अपने हाथों में ले ली तभी बौद्धधर्म का पुनरुत्थान भी हुआ । तिब्बत में फिर एक बार नये बौद्धमठ, विहार तथा मन्दिरों ने स्थान पाया । बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाओं ने इन धार्मिक संस्थाओं को अलंकृत किया । बौद्धधार्मिक ग्रंथों का चयन भी इसी समय हुआ और बौद्धधर्म ने पहले की जैसी प्रतिष्ठा भी पायी ।

ई० सन् ७८३ के लासा के एक शिलालेख से साबित होता है कि तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए राजा ख्री-ऐडिल-जट्सग-बरथान ने भी बड़ा योगदान दिया था । अपने पूर्वजों के समान बौद्ध धार्मिक संस्थाओं का निर्माण, संस्कृत से तिब्बती में बौद्धग्रंथों का अनुवाद जैसे महत्वपूर्ण कार्य उनकी रुचि की सीमा में आये थे । विदेशों से अनेक बौद्धभिक्षुओं को तिब्बत में आने का निमंत्रण भी उन्होंने दिया था ।

---

1. But with the light of Indian Civilization introduced by Buddhism, the followers of Bon were obliged to give up their human and animal sacrifices and instead use little statues made of dough containing barley-flour, butter and water

   - 'Buddhism in India & Abroad-A.C. Banerjee, P.225.

उसके बाद तिब्बत के इतिहास में ऐसे एक महान् शासक का प्रमाण मिलता है, जिन्होंने बुद्धदेव के इस पवित्र धर्म के प्रचार को आगे बढ़ाया था । वे राजा थे, स्त्री-स्रोः ऐडिल-वट्सन। बौद्धधर्म में उनकी इतनी आस्था थी[1] कि उनको आज भी बोधिसत्व का अवतार मानते हैं । इसी समय वे भारत के नालन्दा विश्वविद्यालय से विख्यात बौद्धाचार्य शान्तरक्षित को तिब्बत ले गये । इसी प्रकार तिब्बत से उन्होंने अनेकों भिक्षुओं को पड़ोसी-देशों में भी भेजा जहाँ बौद्धधर्म प्रचलित था । लेकिन उनको वहाँ कई कष्टों का सामना करना पड़ा तो भी उन्होंने वहाँ बौद्धधर्म जीवित रखा ।

आचार्य शान्तिरक्षित के कहे अनुसार राजा स्त्री-स्रोंग-ऐडिबृहसन ने नालन्दा विश्वविद्यालय के तंत्राचार्य आचार्य पद्मसंभव को तिब्बत आने का निमंत्रण दिया । अपनी तंत्र-विद्या के कारण उनको थोड़े ही समय में तिब्बत में अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई । साथ-ही-साथ बौद्धधर्म का प्रचार भी होता रहा । एक दृढ़ बौद्धसंघ की स्थापना करके उसमें तांत्रिकता का भी आरोप किया । यहीं से एक नये संप्रदाय का उदय होता है, जो नैर्यिंग-मा-पा के नाम से विख्यात हुआ । क्रमशः इस संप्रदाय के अनेक विभाग भी हो गये ।

पद्मसंभव के उपदेश से राजा ने कुछ भिक्षुओं को बौद्धग्रंथों का अध्ययन करने के लिए तिब्बत भेजा । `लासा` के समीप एक बौद्धविहार का निर्माण भी किया गया `साम-ये` नाम से विख्यात यह विहार तिब्बत का सर्वश्रेष्ठ बौद्धविहार है, जिसके मुख्याः शांतरक्षित थे । कुछ दिनों के बाद आचार्य शांतरक्षित के सिद्धान्तों में और चीन के बौद्ध होंग-बांग के सिद्धान्तों में जो विवादास्पद मत प्रकट हुए, उसके फलस्वरूप इस बौद्धविहार के विकास में भी विघ्न आ गये ।

---

1. He was the Sun of the chinese princess who was a devout Buddhist and from her he received a strong religious impulse for Buddhism

- 'Buddhism in India and Abroad'-A.C. Banerjee,P.226.

आठवीं शताब्दी में तो तिब्बत में बौद्ध साहित्य ने सबसे उन्नति पायी । आचार्य शान्तरक्षित और पद्मसांभव के प्रयत्न से तिब्बत का साहित्य धन्य हुआ ।

राजा ख्री-सोन-ऐडल-बटसन-पोना ख्ल-पा-कन ही दूसरा समर्थ बौद्ध-शासक था । तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रसार करने के उनके कार्य प्रशंसनीय हैं । उनके शासन-काल में भी एक बौद्धसंगीति का आयोजन किया गया था । इसमें जिनमित्र, शैलेन्द्रबोधि, धनशिला तथा बोधिमित्र जैसे बौद्धाचार्यों ने भाग लिया था । इन बौद्धाचार्यों ने नागार्जुन, वसुबन्धु जैसे महात्माओं की रचनाओं का अनुवाद-कार्य किया ।

दसवीं शताब्दी में तो विक्रमशिला के बौद्ध-मठाधीश आचार्य अतिसा ने तिब्बत में पदार्पण किया । तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए उन्होंने भी बहुत यत्न किये । एक संस्कृत बौद्धग्रंथ का संपादन करके, उसे तिब्बती भाषा में उन्होंने अनुवाद भी किया । उस ग्रंथ ने खूब लोकप्रियता पायी । तिब्बत में संस्कृत को बड़ी मात्रा में प्रचार करके बौद्धधर्म का प्रचार करने का श्रेय आचार्य अतिसा को है । तिब्बत के बौद्धसंघ में नवोत्थान लाने वाला उनका युग वास्तव में तिब्बत के इतिहास में 'स्वर्णयुग' माना जाता है । इस नवोत्थान से अनेक बौद्ध-संप्रदायों का भी उदय हुआ । तिब्बत के जनजीवन एवं संस्कृति पर आचार्य अतिसा के विचारों का जो प्रभाव पड़ा वह सीमातीत है । वहीं तिब्बत की अवस्था में उनका देहान्त हुआ ।

कई बौद्धभिक्षु नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों में बौद्धग्रंथों के अध्ययन के लिए तिब्बत से आये थे । इसके कारण संस्कृत की मूल बौद्धकृतियाँ आज भी तिब्बत में सुरक्षित हैं । इससे विदित होता है कि भिक्षुओं के रहने योग्य, नगर से दूर बौद्धविहारों का उदय हुआ, जो भिक्षुओं को लौकिक जीवन से बहुत दूर रख सके । तिब्बती भाषा में मठ का मतलब ही 'एकान्त स्थान' या 'आश्रम' है । ऐसे करीब तीन हज़ार मठ तिब्बत में उदित हुए ।

(६) चीन में बौद्धधर्म -- कहा जाता है कि प्रथम शताब्दी में चीन में हान वंशज मिंग टई के समय ही बौद्धधर्म ने कदम रखा था । चीन के बौद्धग्रंथों के आधार पर कहा जाता है कि राजा मिंग-टई के एक स्वप्न के फलस्वरूप कश्यपमतंग और धर्मरक्ष नाम के दो

बौद्धाचार्यों को चीन लाया गया था । उनके लिए चीन में मठों का भी निर्माण किया गया । वहां बौद्धधर्म का प्रचार करने के हेतु इन दोनों बौद्धाचार्यों ने अनेक कार्य किये । यहीं से बौद्धधर्म ने चीन में लोकप्रियता पायी ।

तीसरी शताब्दी में चीन में अन्य कई विदेशी बौद्धों का आगमन हुआ तो बौद्ध-धर्म का विकास-क्रम फिर भी आगे बढ़ा । सम्राट `ह्यू` के प्रोत्साहन के फलस्वरूप यह चीन काराज्यधर्म बन गया । इसके बाद `ह्यूवाई` शासकों के समय में भी बौद्धधर्म की उन्नति में बड़ी रुचि के साथ भाग लेने वाले असंख्य महात्मा हुए । इनकी व्यक्तिगत रुचि के कारण ही बौद्धधर्म उन्नति की सबसे ऊँची श्रेणी में पहुँच गया । इसी समय `लो-यांग्` और चांग् बौद्धधर्म के मुख्य केन्द्र बन गये । इसी समय कुमारजीव, बुद्धयश, पुण्यत्रमा जैसे बौद्धाचार्य भी चीन पहुँचे और बौद्धधर्म के प्रचार कार्य में संलग्न रहे । उनकी अनेकानेक कृतियों से चीन का साहित्यभण्डार भर गया । इन बौद्धाचार्यों में आचार्य कुमारजीव ने चीन की जनता के बीच बौद्धधर्म के महायानी-आदर्शों का प्रचार किया ।

महायान के आदर्शों का बड़ी संख्या में लोगों ने स्वीकार किया एवं उसका अनुकरण भी किया । नीति एवं आदर्श को श्रेष्ठता प्रदान करने वाले लोगों के बीच इन महायानी-आदर्शों ने एक श्रेष्ठ स्थान पाया । इसके बाद अनेक विभिन्न धार्मिक शाखाओं एवं उपशाखाओं ने रूप ले लिया । ये ही मुख्य वहाँ के धार्मिक संप्रदाय थे--

चान-ट्सुंग संप्रदाय -- पाँचवी शताब्दी में बोधिधर्म द्वारा इस संप्रदाय की नींव डाली गयी । एक भारतीय क्षत्रिय कुमार होने पर भी वे चीन के सर्वश्रेष्ठ एवं अद्वितीय धर्म-प्रचारक रहे । आचार्य प्रज्ञतारा की दीक्षा में बौद्धधर्म के ध्यानी (लोग) संप्रदाय में गहराई से मग्न हुए । अपने गुरु की मृत्यु के पश्चात् बोधिधर्म ने ही इस संप्रदाय के सिद्धान्तों का प्रचार शुरू किया । इसी के आधार पर उन्होंने चीन में चान-ट्सुंग की भी स्थापना की थी । चीन में उन्होंने नौ वर्ष तक एक ही चिन्तनशील मुद्रा में बैठना, बिना किसी सहारे के नदी पार करना जैसे अद्भुत चमत्कार दिखाये ।

बौद्धधर्म में योगाचार का भी बड़ा स्थान है । क्योंकि इस संप्रदाय वाले मानते हैं कि योगाचार ही संबोधि प्राप्त करने का ठीक तरीका है । इस प्रकार मन या चित्त

को योग द्वारा अपने नियंत्रण में लाने की प्रथा चीन में प्रारंभिक समय से ही शुरू हुई। योगाचार से संबंधित अनेकों ग्रंथों का चीनी में अनुवाद भी हुआ। इस संप्रदाय के लंकावतारसूत्र, वज्रसमाधि, वज्रछेदिका, प्रज्ञपारमितसूत्र जैसे ग्रंथ बहुत विशिष्ट हैं।

टयान-टाई-त्सुंग संप्रदाय -- छठी शताब्दी के अन्तिम दिनों में आचार्य चियाह-चि-येह ने इस संप्रदाय का शिलान्यास किया। चीन में ही जन्म लेकर बहुत छोटी अवस्था में ही उन्होंने बौद्धसंघ में शरण ली थी।

चियाह-चि-येह के आदर्श बौद्धाचार्य नागार्जुन के आदर्शों के समान ही थे। महायान के सिद्धान्तों के आधार पर ही उनके सिद्धान्त भी स्थित थे। जापान में भी अपने आदर्शों का प्रचार उन्होंने किया था।

त्वोह-त्सुंग -- छठी शताब्दी में त्वो-स्यूवन नाम के एक बौद्धभिक्षु ने ही इस संप्रदाय का प्रारंभ किया था। वे श्रेष्ठ ह्युवन-त्सांग के शिष्य भी थे। इस संप्रदाय के भी अनेक मठ हैं। नैतिक आचार-विचार पर बल देने वाला इस संप्रदाय की आत्मा है, विनय। भिक्षुओं के जीवन-क्रम को बनाये रखने में इस विनय के नियमों का सबसे बड़ा हाथ है। भिक्षुत्व प्राप्ति के बाद सभी भिक्षुओं को विनय के इन सारे पाठों का व्यवहार करना पड़ता था। ऐसे करीब ढाईसौ नियमों का उल्लेख हमें मिलता है। एक ग्रंथकर्ता के रूप में भी टवो-स्यूवन बड़े विख्यात है। उनके अनेक अनुयायी भी हुए। धार्मिक जीवन के लिए अनिवार्य अनुशासन-संबंधी कार्यों पर ये संप्रदाय वाले बहुत ध्यान देते थे। ऐसे सद् विचारों को प्रस्तुत करने के कारण इस संप्रदाय ने दूसरे संप्रदाय की अपेक्षा अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा पायी।

ट्सिन-थू-त्सुंग संप्रदाय -- यह भी चीन का एक मुख्य संप्रदाय है। यह `अमिडस्ट सं' नाम से भी विख्यात है। `अमिडस्ट` जापानी शब्द `अमिदा` से उद्भूत है,. जिसका रूप है `अमिताभ`। इस संप्रदाय के संस्थापक हैं `ह्यू-युवान`। वे चौथी शताब्दी के थे। बौद्धतत्वों के प्रचारार्थ उन्होंने एक बौद्धशिक्षणालय की स्थापना की जिसने अने चीनी तथा भारतीय विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया। भारतीय बौद्ध-वि में बुद्धभद्र, जिनगुप्त, बुद्धयश जैसे आचार्य मुख्य हैं। अपनी बुद्धि के बल पर उन्होंने अ चीनी-अनुवाद भी प्रस्तुत किये। अमिताभ पर विश्वास रखकर मुक्ति पाना ही इस

दाय की मुख्य शिक्षा है ।

यह संप्रदाय उन्नति प्राप्त करके जापान में भी व्याप्त हुआ । युवान और मिंग् वंशों के शासन-काल में ही बौद्धधर्म पूर्ण रूप से गतिशील रहा । पूर्व-बौद्धों के लिए एक नयी बात इस संप्रदाय ने सिखायी जिसने अमिताभ की उपासनापद्धति पर विश्वास किया । अमिताभ पर पूर्ण-विश्वास तथा उस पवित्र नाम की पुनरावृत्ति ही मोक्ष के किवाड़ खोल सकेंगे । यही उस संप्रदायवालों का विचार था । इस प्रकार इस संप्रदाय ने बुद्ध के नाम-स्मरण पर अधिक ध्यान दिया ।

ह्यू-येन-ट्सुंग संप्रदाय -- चीन में छठी और सातवीं शताब्दी में उदय होने वाला एक दूसरा संप्रदाय है ह्यू-येन-ट्सुंग संप्रदाय । बौद्धाचार्य अश्वघोष और माध्यमिक बौद्धाचार्य नागार्जुन इस संप्रदाय के उदय के मुख्य कारण हैं । वास्तव में इस का संस्थापक है `नू-थू-फा-सू` । इस संप्रदाय के तत्व और सिद्धान्त, सभी योगाचार संप्रदाय के आदर्शों के ही समान है । ज्यादा लोकप्रियता से वंचित रहने पर भी इस संप्रदाय ने चीन के जन-जीवन पर बहुत प्रभाव डाला ।

फा-क्षा-ट्सुंग संप्रदाय -- प्रसिद्ध चीनीयात्री ह्यूवन-ट्सुंग जब भारत से लौट कर आये तो उन्होंने छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस संप्रदाय की स्थापना की । जापान में भी इस संप्रदाय का खूब प्रचार रहा । यह संप्रदाय अधिक दार्शनिक है । आदर्शमय विचारों को ही यह संप्रदाय मान्यता देता है ।

`सान-लन-ट्सांग` संप्रदाय -- पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही इस संप्रदाय ने चीन में आकार लिया । चीन में इस संप्रदाय को लाने का श्रेय आचार्य कुमारजीव को है । इस संप्रदाय में हम महायान को अपनी चरमसीमा में ही देख सकते हैं । शून्यता-सिद्धान्त को प्रतिपादित करने वाला यह सिद्धान्त वास्तव में भारतीय माध्यमिक संप्रदाय का ही अनुकरण करता है । लेकिन अधिक समय तक यह जीवित न रह सका ।

चेयंग्-सिद्धा-ट्सांग संप्रदाय -- पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चीन में उद्भूत एक अन्य संप्रदाय है यह । इस संप्रदाय को भी चीन में प्रचलित करने का श्रेय कुमारजीव को ही है । आचार्य हरिवर्मन का ग्रंथ `सत्यसिद्धिशास्त्र` का चीनी में आचार्य कुमारजीव ने

जो अनुवाद किया, उसी के आधार पर इस संप्रदाय का नामकरण हुआ । यह दार्शनिक संप्रदाय भी शून्यवाद पर विश्वास करता था । जापान में कदम बढ़ाने पर भी यह संप्रदा अधिक समय जीवित नहीं रहा ।

चू-चे-ट्सांग संप्रदाय -- चीन में छठी शताब्दी में ह्यूवन-ट्सांग के साथ इस संप्रदाय का आविर्भाव हुआ । आचार्य वसुबन्धु के 'अभिधर्मकोश-शास्त्र' का अनुवाद चीनी में ह्यूवन-ट्सांग ने किया, और उसी के आधार पर इसे कोश-संप्रदाय भी कहा जाता है । यह हीनयानी बौद्धधर्म पर आधारित एक दार्शनिक संप्रदाय रहा । आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना पंचस्कंधों को ही यह संप्रदाय मानता है ।

मी-ट्सांग-संप्रदाय -- आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में वज्रबोधि नामक एक भारतीय भिक्षु के कारण ही चीन में इस संप्रदाय का उदय हुआ था । भारत के तंत्रयान व मंत्रयान बौद्धधर्म के सिद्धान्त ही इस चीनी-संप्रदाय के भी सिद्धान्त रहे ।

इस संप्रदाय वालों का मुख्य आराध्य देवता थे-- वैरोचन, जो वास्तव में महाबुद्ध ही थे । लेकिन इस संप्रदाय ने चीनियों के बीच अन्धविश्वास, यागयज्ञादि का प्रारंभ कर दिया ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि चीन में बौद्धधर्म के जो विभिन्न संप्रदाय हुए, इनमें प्रारंभिक दार्शनिक थे और बाद के धार्मिक थे । इतना होने पर भी इनके कारण चीन में बौद्धधर्म ने दृढ़रूप से नींव डाली ।

कोरिया और जापान में भी बौद्धधर्म का विकास हम देख सकते हैं । कोरिया में चौथी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हम बौद्धधर्म को प्रवेश पाते हुए देख सकते हैं, वहीं से छठी शताब्दी में यह पवित्र धर्म जापान में पहुँचा । कोरिया में भी बौद्धधर्म पराजित न हुआ वहाँ भी करीब ग्यारहवीं शताब्दी में अनेक बौद्धविहारों का उदय हुआ था । कोरिया के बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के कठिन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही बौद्धधर्म जापान पहुँच चुका था । जापानियों के सम्मुख बौद्धसिद्धान्तों को प्रस्तुत करके इन कोरिया के बौद्धानुयायियों ने बौद्धधर्म को लोकप्रिय बना दिया । पाँचवीं-छठी शताब्दी के राज

मोटोकु-थेषी ने बौद्धधर्म को अपना राज्यधर्म बनाकर उस पवित्र धर्म के प्रति अपना सम्मान
कट किया । उन्होंने जापान में बौद्धविहारों का निर्माण करके तथा अनेक बौद्धों को
ीन एवं कोरिया भेजकर बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को गहराई से समझने का प्रयत्न किया ।
ापान में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ उन्होंने चीन एवं कोरिया से विशिष्ट बौद्धाचार्यों को
ी जापान आने का न्योता दिया । जापान के लोगों का अपना कोई साहित्य नहीं
ा, इसलिए वे चीनी साहित्य पर ही आश्रित थे ।

इसके अलावा बौद्धधर्म ने मध्य एशिया, काशगर, कच्छ, तरफान, खोटान जैसे
थानों में भी अधिकार जमाया था । यहाँ भी बौद्धधर्म पूर्ण रूप से सफल ही हुआ ।
हाँ भी बौद्धधर्म के प्रचारार्थ अनेकों स्तूप, बौद्धविहार, मन्दिर एवं मठों को स्थापित
किया गया । ये सभी स्थान बौद्ध संस्कृति के मुख्य केन्द्र बन गये ।

।- बौद्धधर्म के महान् व्याख्याता और उनके उपदेश

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण ने सारे जगत् को शोकसागर में डुबो दिया ।
इसका मुख्य कारण यह था कि बौद्धधर्म केवल वैदिक धर्म के विरुद्ध उठायी गयी आवाज
ही नहीं थी, लेकिन वह मानव धर्म के उच्च आसन पर भी लोकव्यापी प्रतिष्ठा पा चुका
ा । 'बहुजन हिताय' पर आधारित उनके उच्चादर्श लोकहितकारी सिद्ध हुए । अब
नके लोककल्याणकारी संदेश को सारी धरती पर फैलाना था । जन-जन के कानों में
नके शुभ्र-संवाद पहुँचाने थे । इन महान् कार्यों में संलग्न जो-जो महापुरुष हुए, उन्होंने
पना सारा जीवन और शक्ति बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार में लगा दिया । अपने
न्मस्थान में ही नहीं विदेशों में भी बौद्धधर्म का प्रचार-कार्य करने वाले अनेक व्याख्याता
एवं प्रचारकों ने भगवान बुद्ध के उन दिव्य-आदर्शों को चमकाने का भरसक यत्न किया ।

ुख्य बौद्ध-शासक

ाशोक

महात्मा बुद्ध के निर्वाणप्राप्ति के बाद बौद्धधर्म का दीपस्तंभ निरन्तर जलायमान
खने का श्रेय सम्राट अशोक को ही दिया जाता है । अशोक के हाथों से ही बौद्धधर्म को

सर्वप्रथम राजकीय प्रोत्साहन मिला । उसी प्रकार बौद्धधर्म को लोकधर्म बनाने के पीछे भी अशोक का ही योगदान रहा ।

डा० स्मिथ, डा० भण्डारकर तथा सिंहली जन-श्रुतियों के अनुसार, अशोक को एक संघर्ष के बाद ही सिंहासन प्राप्त हुआ ।[१] उनका तेरहवाँ शिलालेख यह प्रमाणित भी करता है कि अपने शासनकाल के आठवें वर्ष में अशोक के जीवन ने एक नयी दिशा ली । इसका मुख्य कारण था कलिंग युद्ध । दानवी रक्तपात, असंख्य नरसंहार, रक्त रंजित विजय आदि ने अशोक के हृदय पर गहराई से आघात पहुँचाया । रणविजय से भी `धम्मविजय` करने के लिए उनका हृदय मचल उठा । महात्मा बुद्ध के धर्म तथा संघ की छत्रछाया में उनको कुछ शीतलता प्राप्त हुई । अपने अनुभव से उन्होंने घोषणा की कि महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त सारे लोगों को -- स्त्री हो या पुरुष, सबको एक सन्मार्ग का दिग्दर्शन करायेंगे ।

धर्म-प्रचार

लोक-कल्याण की भावना से ओतप्रोत अशोक ने धर्म प्रचारार्थ आगे कदम बढ़ाये । अपने धर्म के प्रचार में उन्होंने बुद्ध के तत्वों पर अधिक बल दिया । उन्होंने बौद्ध तीर्थ-स्थानों की यात्रा की । बोधगया, सारनाथ जैसे तीर्थस्थानों में जाकर उन्होंने महात्मा बुद्ध के प्रति अपना आदर भी सूचित किया था । अपने शासनकाल के बीसवें वर्ष में अशोक ने बुद्धदेव के जन्मस्थान लुम्बिनी-वन की यात्रा की, वहाँ उन्होंने एक स्तूप बनवाया, जो आज भी उनकी यादगार बना रहता है ।[२] बौद्धधर्म की उन्नति और व्याप्ति में अशोक ने जितना भी हो सके, सहयोग दिया । धर्मप्रचार में उन्होंने जो-जो कार्य किये, उनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं --

(१) बौद्धधर्म को लोकधर्म बनाने का प्रयास -- लोगों के बीच एकता और शान्ति लाकर उनको एक सुखमय जीवन प्रदान करने के लिए अशोक ने बुद्ध के सिद्धान्तों को उपयुक्त समझा इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है । धार्मिक सहिष्णुता से प्रेरित होकर भी अशोक

१- भारतीय इतिहास की रूपरेखा - रतिभानुसिंह `नाहर`, पृ० ११४.
२- २५०० ईयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० ५१.

ने बौद्धधर्म को अपना राजधर्म बना दिया । अब अपने राजा को बौद्ध होते देखकर जनता का उस ओर झुकना स्वाभाविक था । उनके उत्तराधिकारियों ने भी बौद्धधर्म के प्रचार में बहुत सहायता दी । अपने शासन प्रबन्ध में भी उन्होंने बौद्धधर्म को ऊँचा स्थान प्रदान किया । इसके लिए एक अलग विभाग ही उन्होंने खोला ।[१]

(२) धर्मप्रचारकों को यथोचित प्रोत्साहन तथा सहायता देना -- बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अशोक ने धार्मिक कार्यकर्ताओं को नियुक्त किया । इन्होंने जनता के धार्मिक जीवन पर एक पैनी दृष्टि रखी । इसके अलावा भिक्षु-भिक्षुणियों को भी धर्म के प्रचार के लिए विभिन्न स्थानों में भेजा । काश्मीर, महाराष्ट्र, हिमालय प्रदेश, बर्मा, लंका आदि विदूर स्थानों में भी उन्होंने भिक्षुओं को भेजा । इनमें स्थविर महाधर्मरक्षित, स्थविर महारक्षित, महेन्द्र, स्थविर महादेव आदि भिक्षुओं का नाम विशेष उल्लेखनीय है ।[२] धर्मोपदेश में निरन्तर संलग्न भिक्षुओं के रहने के लिए उन्होंने मठ और बिहार का भी निर्माण किया । ऐसे मठों की स्थापना में उन्होंने बड़ी रकम लगा दी ।[३] इसके लिए स्वयं अशोक ने भी धर्मयात्राएँ की । कुशीनगर, कपिलवस्तु जैसे स्थानों में जाकर उन्होंने बुद्ध का पवित्र संदेश सुनाया ।

(३) महात्मा बुद्ध के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन -- महात्मा बुद्ध के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले अनेक कार्य अशोक ने कर डाले । अहिंसा व्रत का पालन ही उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य रखा । इस लक्ष्यसिद्धि के लिए उनके कार्य प्रसंशनीय हैं । पशुओं का वध, मासाहारी भोजन, हिंसक शिकार आदि को बन्द किया । हिंसक यज्ञों को भी राज्य में कहीं भी स्थान नहीं रहा । अपनी प्रजा के लिए वे एक आदर्श बने रहे

१- भारतीय इतिहास की रूपरेखा - रतिभानु सिंह 'नाहर', पृ० ११६.

२- संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - वाचस्पति गैरोला, पृ० २८८.

३- 'As a staunch follower of Buddhism, he conferred large gifts upon the monastic establishments of the Buddhists'

- '2500 years of Buddhism - P.52.

सत्य, दया, करुणा, उदारता, आत्मसंयम आदि अलौकिक गुणों को अपने जीवन में लाने का उपदेश उन्होंने दिया । मन को अपवित्र बनाने वाले झूठ, क्रोध, शत्रुता आदि दुर्विचारों को दूर हटाकर एक अच्छे मार्ग का उन्होंने दर्शन कराया । दीन-दु:खी ही क्यों, अपितु जानवरों तथा पशुओं के लिए भी उन्होंने धर्मशालाएँ और अस्पताल खोल दिये । उन्हें पूर्ण रूपेण बौद्ध बनाये हुए उनके उपर्युक्त विचारों का उल्लेख हमें उनके शासनकालके अन्तिम दिनों में लिखित अभिलेखों से प्राप्त होता है ।[१]

(४) धर्म अभिलेख -- धर्मप्रचार के कार्य में अशोक ने जो सतत् प्रयत्न किये, उनका प्रमाण अभिलेखों से व्यक्त हो जाता है । अपने धर्मोपदेशों को अभिलेखों द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा उन्हें अमरता प्रदान करना उनका उद्देश्य रहा । इन अभिलेखों के लिए उन्होंने बड़े-बड़े चट्टान, स्तूप, तथा बड़े-बड़े पत्थरों का उपयोग किया । गुफाओं पर भी इन उपदेशों को खुदवाया । ऐसे अभिलेखों को साम्राज्य के चारों ओर स्थापित किया । इन पर अंकित आदेशों का जनता के बीच फैलाने तथा उनका निरीक्षण करने का भी अशोक ने अच्छा प्रबन्ध किया ।

(५) संगीत का आयोजन-- बौद्ध धर्म के प्रचार में मग्न अशोक ने बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के रहने के लिए बड़ी रकम लगाकर मठ और विहारों का निर्माण किया परन्तु धीरे धीरे बौद्धधर्म का संगठन और प्रचार शिथिल पड़ गया । क्योंकि उसमें अबौद्ध भी आकर रहने लगे । संघ का विघटन होने के भय से अशोक ने एक संगीति का आयोजन किया । यही तृतीय संगीति थी । धर्म के सच्चे अर्थ को पुनर्जीवित करने के हेतु पाटलि में इस संगीति का आयोजन किया । इसके बाद ही उन्होंने धर्मदूतों को देश-विदेशों में भेजा ।

१- २५०० ईयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० ५१.

अपने धर्म-प्रचार में अशोक पूर्णरूप से सफल हुए, उनकी यह सफलता तथा धर्म-विजय विश्व इतिहास में अनुपम है और अपने धर्म-प्रचार से जनता को एकसूत्र में बाँधने के उनके प्रयास वास्तव में भारत के सांस्कृतिक इतिहास को गौरवपूर्ण बना देते हैं।

अशोक के धर्म की विशेषताएँ

यद्यपि अशोक बौद्धमतावलम्बी थे, तो भी उनके प्रचलित धर्म को 'मानव धर्म' या 'अशोक का धर्म' कह सकते हैं।[१] उनका धर्म नैतिक आचरणों के तत्वों पर प्रकाश डालता है। अपने सभी पापकर्मों से छूटकर सद्व्यवहार की शिक्षा देना ही उनके धर्म का मुख्य कार्य है। अपने धर्म को एक सार्वजनिक रूप देकर उसमें सभी को प्रश्रय देना ही अशोक का ध्येय था। इसलिए जाति-पाँति के सभी बंधनों से उनका धर्म मुक्त रहा। इस दृष्टि से देखें तो उनका धर्म ठीक मानव धर्म ही था। अपने धर्म में आडंबर के लिए कोई स्थान उन्होंने नहीं दिया। राजकीय स्तर से बौद्धभिक्षु बनने का उनका इतिहास उनके आडंबरहीन जीवन का स्मरण दिलाता है। उसी प्रकार नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण उनके उपदेश सर्वसाधारण के लिए कठोर नहीं हुए। उनके उपदेश प्रायोगिक थे।[२] उनके धर्म में उदारता का भी बड़ा हाथ रहा। उदारमना अशोक के धर्म के द्वार सबके लिए खुल पड़े थे। संक्षेप में, उनके धर्म की विशेषताएँ थीं -- 'पाप कम न करना, बहुत कल्याण करना, दया, दान, सत्य, पवित्रता प्राणियों को न मारना, जन्तुओं की अविहिंसा, ज्ञातियों ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति आदरपूर्ण व्यवहार, माता-पिता की सुश्रूषा आदि।[३]

मेनेन्डर

एक यूनानी शासक होते हुए भी भारतीय इतिहास में मेनेन्डर की छाप स्पष्ट देखने को मिलती है। धर्म और दर्शन की उनकी तीव्र जिज्ञासा ने ही मेनेन्डर को भारत

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रतिभानुसिंह 'नाहर', पृ० ११५
२- वही - पृ० ११६.
३- भगवान गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ७८.

की साहित्यिक अनुश्रुति में यश प्रदान किया था । वे एक सच्चे बौद्ध थे और बौद्धग्रंथों में उनको `मिलिन्द` नाम से अभिहित किया गया है ।[१] `मिलिन्द प्रश्न` में मिलिन्द को धर्म संरक्षक के रूप में चित्रित किया गया है । इस ग्रंथ में मेनेन्डर के लिए कहा गया है कि उसने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर संसार से संन्यास ले लिया और न केवल एक बौद्धभिक्षु बने बल्कि अर्हत भी हो गया ।[२] यवन शासनकाल में करीब तीस यवन-राजाओं का उल्लेख मिलता है । संभवत: उन यवन राजाओं में मेनेन्डर का नाम इतना उज्ज्वल होने का कारण शायद यह होगा कि एक बौद्ध बनकर उन्होंने `धम्म` का पथ स्वीकार किया था । `कहा जाता है कि मेनेन्डर के बहुत पहले से ही महात्मा बुद्ध के उपदेशों ने यवनों का मन अपनी ओर आकर्षित किया था । और पहले मेनेन्डर के मन में बुद्ध के सिद्धान्तों के प्रति जो शंकाएँ थीं उसे आदरणीय नागसेन ने दूर भी किया था[३] ।

मेनेन्डर भिक्षु के रूप में -- मेनेन्डर एक बड़े विद्वान थे । बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों को अपनाने में मेनेन्डर को कुछ कष्ट अनुभव करने पड़े । उन सिद्धान्तों में कुछ ऐसे प्रश्न उनके सम्मुख आये, जिन्होंने उनके मन में कई तरह की शंकाएँ उत्पन्न कीं । भारत में रहते समय मेनेन्डर ऐसे प्रश्नों को लेकर कई बौद्धाचार्यों के पास गये । लेकिन किसी से भी उनको एक संतुष्ट उत्तर नहीं मिला । इस बात का उल्लेख हमें `मिलिन्द-प्रश्न` में मिलता है[४] । अन्त में भाग्यवश ऐसा हुआ कि मेनेन्डर का हाथ में भिक्षापात्र के साथ जाते हुए एक

१- "He was a pious Buddhist and is known as Milinda in the Buddhist tradition"
- Evolution of Indian culture'-B.N. Luniya, P.164.

२- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रतिभानुसिंह `नाहर`, पृ० १५१.

3. 'It is thus clear that the blessed teachings of the Budha had begun to appeal to the Greek mind even before the time of Menander whom we first see as obsessed with doubts and dilemma about the teachings of the Buddha & then as a devout Buddhist ruler propagating the teachings of the Buddhist religion when his doubts & misgivings had been removed by the venerable Nagasena'
- '2500 years of Buddhism' - P.173.

4. 2500 years of Buddhism' - P.174.

बौद्धभिक्षु से साक्षात्कार हुआ । पालिग्रंथों से यह भी विदित होता है कि अपने मन में उदित प्रश्नों का उस बौद्ध भिक्षु नागसेन द्वारा दिये हुए उत्तरों का संग्रह ही `मिलिन्द प्रश्न` का सार है ।

अनात्मवाद पुनर्जन्म आदि को लेकर मेनेन्डर के मन में शंका पैदा हुई थी । उन प्रश्नों को विद्वत्ता से नागसेन ने सुलझाया । फलस्वरूप मेनेन्डर एक बौद्ध बन गये ।

धर्मप्रचार -- विदेशी मेनेन्डर का बौद्ध के रूप में जो परिवर्तन हुआ, बहुत ही प्रशंसनीय है । इसके उपलक्ष्य में मेनेन्डर ने `मिलिन्द-विहार` का निर्माण किया । भिक्षुसंघों के लिए बड़े पैमाने में उन्होंने भेंट दिये । थेरवादियों के अनुसार मेनेन्डर एक बौद्धभिक्षु होकर ही स्वर्ग सिधारे । बौद्धधर्म के उपासक मेनेन्डर ने यह भी एक स्तुत्य कार्य किया कि उनके शासन-काल की मुद्राओं ( ) पर भी धर्मचक्र का ही चिह्न लगाया था । इस प्रकार यवन-शासक होते हुए भी मेनेन्डर एक बौद्ध के रूप में युग युग तक भारतीयों के मन में अमर रहेगा ।

कनिष्क

बौद्धग्रन्थों में तथा भारतीय शासकों में समान रूप से जाज्वल्यमान कनिष्क ने सारे एशिया में बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार करने के अशोक के अधूरे काम को पूर्ण किया । कुषाण राज्य के संस्थापक कनिष्क के पूर्वजों को भी बौद्धधर्म से प्रभावित ठहराया गया है । कनिष्क का बौद्ध बनना भी अशोक की तरह ही था । क्योंकि `काशघर, यारकाण्ड और खोतान के रक्तपात ने कनिष्क को एक बौद्ध बना दिया ।

धर्म प्रचार -- अशोक के बाद कनिष्क के शासन काल में ही बौद्धधर्म को राजाश्रय मिला । कल्हण का ग्रंथ `राजतरंगिणी` से विदित होता है कि कनिष्क ने कई बौद्ध मठों का

---

1. '2500 years of Buddhism' - P.176.

2. 'It was in his remorse at the bloodshed during his conquests of Kashgar, Yarkand, and Khotan that drew him to the quietist teachings of Buddhism which he propagated later with Such Zeal'

   - 2500 years of Buddhism - P. 176.

निर्माण किया था । कनिष्कपुर, कनिष्क-महाविहार आदि आज भी उनकी यादगार बनके पुरुषपुर में खड़े हैं । अन्य जो-जो बौद्ध-शासक हुए, वैसे ही कनिष्क भी धर्म-सहिष्णु थे ।

बौद्धसंगीति -- कनिष्क के समय में आते-आते बौद्धधर्म कुछ विकटावस्था की ओर झुकने लगा था । उसका असली रंग कुछ फीका हुआ-सा लगता था । बौद्ध धर्म के मूल-तत्वों पर तर्कसंगत चर्चाएँ उठ खड़ी हुई थीं । बौद्धधर्म की सरलता और ज्ञानगर्भित शिक्षाएँ अप्रत्यक्ष होने लगी थीं । इसीलिए आवश्यक रूप से एक चौथी संगीति का आयोजन करना पड़ा । नवीन युग या महायान का उदय सूचित करने वाली यह चतुर्थ संगीति का बौद्ध धर्म के इतिहास में एक ऊँचा स्थान है ।[१] ह्वेन-त्सांग के अनुसार यह संगीति काश्मीर में ही आयोजित की गयी थी । कहा जाता है कि इस संगीति के बाद कनिष्क ने काश्मीर की राजधानी बौद्ध संघ के लिए दान कर दिया ।

कनिष्क का राज्य भारत की सीमा तक नहीं था, अपितु वह भारत के बाहर भी व्याप्त था । अत: विदेशों में बौद्धधर्म का प्रसार सुगमता से ही हुआ । कनिष्क की महानता पर प्रकाश डालते हुए डा० देवचन्द्र राय चौधरी ने कहा है कि बौद्धधर्म के कारण ही कनिष्क का इतना यश फैला ।

संक्षेप में कहा जाय तो बौद्धधर्म के प्रचार और प्रसार में कनिष्क ने जो यत्न किये, उसका परिणाम यही हुआ कि बौद्ध-धर्म की एक अटूट परंपरा वर्षों बाद भी भारत में चलती रही ।

हर्षवर्द्धन

जीवन में हमेशा सुख और दु:ख आता ही रहता है । सुख में मनुष्य अपने को भाग्यवान समझता है, और दु:ख में वह निराश बन जाता है । उसे अपना जीवन ही

१- भारतीय इतिहास की रूपरेखा - रतिभानुसिंह नाहर, पृ० १६१.

बोझ-सा मालूम होता है । सब कुछ त्यागकर इस संसार से कहीं दूर जंगलों में जाकर तपस्या करने के लिए उसका मन व्याकुल रहता है । करीब ऐसी ही एक दु:खपूर्ण परिस्थिति का ही हर्षवर्द्धन सामना करते थे । तो भी समय और परिस्थितियों की पुकार से वे थानेश्वर के सिंहासन पर बैठे । इसी निराशपूर्ण हाल से प्रभावित उन्होंने 'महाराज' के नाम के बिना ही उस पद को अलंकृत किया । वे केवल 'राजपुत्र' कहलाये । अपनी बहन राज्यश्री और चीनी यात्री ह्वेनसांग के प्रभाव में आकर हर्ष ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया ।[१]

धर्म प्रचार -- धर्म प्रचार के कार्य में हर्ष पर भी अशोक की स्पष्ट छाप लक्षित होती है । पशुओं का वध भी उन्होंने रोका, दीन दुखियों के लिए धर्मशालाएँ आदि खोली गयी । हर्ष के समय में चीनी यात्री ह्वेन-त्सांग भारत आये । उसको सम्मानित करने में हर्ष ने कन्नौज में एक सभा बुलायी । इसमें सौ गज ऊँची बुद्ध की सोने की एक प्रतिमा रखी गयी थी । उन्होंने गंगा नदी के तट पर अनेक स्तूपों का निर्माण किया । उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप कन्नौज शीघ्र ही बौद्धधर्म का एक महान् केन्द्र बन गया ।

उनके शासन-काल में प्रयाग में एक सभा बुलायी गयी थी । बुद्ध, शिव, सूर्य की पूजा के साथ साथ अनेक भिक्षु-ब्राह्मण तथा कंगालों का आदर किया गया और बहुत दान दिया गया । पांच वर्षों में यह सभा बुलायी गयी थी । इस सभा के उपरान्त हर्ष स्वयं एक कंगाल और दरिद्र बन गए । क्योंकि इस सभा का मुख्य उद्देश्य था सर्वस्व दान ।

इस प्रकार अपने व्यक्तित्व, दानशीलता तथा धार्मिक सहिष्णुता ने हर्ष को महान् बना दिया।

अन्य बौद्ध शासक

अशोक, कनिष्क और हर्ष के अलावा भारतीय इतिहास में बौद्ध धर्म के मानने वाले बौद्ध-शासकों में शुंगवंश का संस्थापक पुष्यमित्र स्मरणीय है । कुछ बौद्ध-लेखकों के

१- भारत का इतिहास - त्रिपाठी ईश्वरप्रसाद सिंह, पृ० १७२.

अनुसार पुष्यमित्र बौद्धधर्म का बड़ा विरोधी था । तो भी शुंगवंश के शासन काल के भारहुत में स्थापित बौद्ध-स्मारक से प्रमाणित होता है कि शुंगवंश के शासकों ने बौद्धधर्म का कोई विरोध नहीं किया । इस विषय में अंग्रेज विद्वान श्री ई० बी० हेवेल की उक्ति सही लगती है । उनके अनुसार 'पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों का दमन इसलिए किया कि उनके संघ राजनीतिक शक्ति के केन्द्र बन गये थे इसलिए नहीं कि वे एक ऐसे धर्म को मानते थे जिसमें वह विश्वास नहीं करता था ।

कनिष्क का उत्तराधिकारी हुविष्क भी बौद्ध धर्म को मानने वाला था । हुविष्क के बारे में बहुत कम ही ज्ञान मिलता है । तो भी बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार हुविष्क भी कनिष्क की तरह बौद्धधर्म का पालक था ।

वल्लभी का संस्थापक भटर्कि के उत्तराधिकारियों में प्रतिभाशाली शासक था शिलादित्य । ह्वेनसांग ने अपने ग्रंथों में शिलादित्य को अत्यन्त दयालु सिद्ध किया है । एक अतिसुन्दर बौद्धविहार की रचना करके शिलादित्य ने अपने को एक बौद्ध साबित किया । उसने प्रत्येक वर्ष एक धार्मिक महासभा का आयोजन किया, जिसमें बड़ी तादाद में बौद्ध भिक्षु शामिल होते थे । बौद्धधर्म के प्रति उनकी ऐसी श्रद्धा के कारण ही वे 'धर्मादित्य' कहलाये ।

आठवीं शताब्दी में आकर बंगाल में पाल वंश कायम हुआ तो फिर एक बार बंगाल में बौद्धधर्म का उत्थान हुआ । पालवंश के शासक गोपाल और धर्मपाल सही बौद्ध थे । सोमपुरी महाविहार[१] उदन्तपुरी बौद्धविहार और विक्रमशिला का बौद्धविहार आदि धर्मपाल ने ही बनवाये थे । इसके अलावा राज्य में अनेक मन्दिरों का भी निर्माण कराया था । गोपाल भी बौद्धधर्म का उपासक था । उनसे बनवायी हुआ एक विहार हम नालन्दा में देख सकते हैं ।[२] बौद्धलेखक हरिभद्र का धर्मपाल के दरबार में बड़ा आदर था. । 'उसके द्वारा निर्मित बौद्धविहार उसकी उस श्रद्धा और आस्था के द्योतक हैं जो एक महान् सम्राट उस युग में बौद्ध धर्म के प्रति प्रदर्शित कर सकता था ।[३]

१- भारत का इतिहास - कीर्तिश्वरप्रसाद सिंह, पृ० १७५.
२- वही - पृ० २४२.
३- वही - पृ० २२८.

पालवंश का तृतीय राजा देवपाल भी बौद्धधर्म का समर्थक था । बोधिगया अथवा महाबोधि के मन्दिर के निर्माण में देवपाल का बड़ा हाथ था । उनकी राजसभा में बौ विद्वानों को बड़ा आदर और प्रश्रय मिला । 'लोकेश्वर शतक' का ग्रंथकर्ता बौद्धकवि वज्र पात उनके दरबार को अलंकृत करता था ।

देवपाल के उत्तराधिकारियों में महीपाल प्रथम, स्थित्पाल और वसन्तपाल का विशेष उल्लेख मिलता है । नालन्दा के विशाल बुद्धमन्दिर, बनारस के बौद्ध मन्दिरों की मरम्मत आदि में उनका सहयोग था ।

पालवंश के बौद्धशासकों के बाद जो सनवंशीय तथा विदेशियों के शासन का आर हुआ, इनमें किसी भी शासक ने बौद्धधर्म को प्रश्रय नहीं दिया । इस प्रकार पालवंशीय शासकों के साथ ही साथ बौद्धधर्म की भी अवनति हुई । इसकी अवनति के बीज हर्ष के शासन के साथ अंकुरित हुए थे । मगर पालवंशीय शासन-काल में उसे पुनर्जीवन मिला था मगर उनके शासनकाल के अन्त होते ही बौद्धधर्म का भी अध:पतन हुआ ।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत का यह महान धर्म सार्वभौमिक धरातल पर अप जड़ें जमा लेता है और अपने सिद्धान्तों से समस्त जगत में जन-जन को बुद्ध के तत्वों की ओर आकृष्ट करता है । बुद्ध ने कोई नयी चीज़ खोज नहीं निकाली थी, समय की सूझ एवं जनकल्याण की दृष्टि ने उनको स्वानुभूति से प्राप्त एक महान् धर्म-संहिता के सृजन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया था । कलुषित वैदिक धर्म की सीमा से बहुत दूर जनता को ले जाकर समता के आदर्श से सर्वजनकल्याण करने के लिए उन्होंने धर्म-दी दी थी । राजा से लेकर साधारण मनुष्य तक बोध-प्राप्त सिद्धार्थ के वचनों को स्वी करने के लिए तत्परता दिखाने लगे । अहिंसातत्व जन-मन में स्थिर हो गया । बौद्ध अपने दर्शन और धार्मिक सिद्धान्तों के कारण पुरातन श्रेष्ठ धर्मों में स्थान पाने योग्य साथ ही उस पुनीत धर्म ने सामाजिक उन्नयन के लिए जो महत्वपूर्ण योगदान दिया, वह सब के लिए चिरकाल तक प्रेरणा देता रहेगा ।

द्वितीय अध्याय

:- ई० सदी के पूर्वार्द्ध में भारत में सभ्यता, संस्कृति, विज्ञान और कलाओं का उत्थान तथा उसमें बौद्ध भिक्षुओं का योगदान

मनुष्य राशि का इतिहास उसके विकास की हृदय-स्पर्शी और आकर्षक कहानी है। विवेकी मनुष्य ने ज्यों-ज्यों नयी-नयी वस्तुओं को खोज निकाला, उसकी संस्कृति बढ़ती गयी। अपने नये-नये आविष्कार और कठिन अभ्यास से उसने अपने जीवन को सौन्दर्यपूर्ण और सम्पन्न बनाया। उसके साथ-साथ नये-नये धर्मों का स्थापन हुआ। इन धर्मों ने भी मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति को रंगीन बना दिया।

ई० पूर्व छठी शताब्दी में धर्मसंस्थापक महात्मा-बुद्ध ने जिस बौद्ध धर्म की नींव डाली, उसने भी भारतीयजन-जीवन पर अत्यन्त प्रभाव डाला, उसकी सभ्यता और संस्कृति में परिवर्तन लाया। यही रोचक कहानी हमें भारतीय इतिहास के पन्नों में देखने को मिलती है।

(१) बुद्धकालीन भारत

तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में बुद्ध महत्तम परिवर्तन ला सके। राजनैतिक अवस्था का अवलोकन करने पर मालूम होता है कि सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे गण-राज्यों में विभक्त था और उनमें आधुनिक प्रजातंत्र-शासन की प्रणाली कायम

थी । इस समय मगध-राज्य उत्थान के प्रथम सोपान में कदम बढ़ाते हुए शक्तिशाली बनता जा रहा था । सामाजिक दृष्टि से भी भारत बहुत अधम था । जाति-भेद, वर्ग-भेद आदि के लपेटों में छटपटाते हुए समाज को महात्मा-बुद्ध ने अपने अमर उपदेशों से अनुप्राणित किया । ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान अब नहीं रहा था । उन्होंने उनके प्रभुत्व के विरुद्ध आवाज़ उठायी । तत्कालीन भाषा और साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने पर मालूम होता है कि संस्कृत जन भाषा नहीं थी । प्राकृत ही जन-साधारण की भाषा थी ।

(२) मौर्यकालीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति

भारत के इतिहास में मौर्य-काल का अपना एक अद्वितीय स्थान है । एक युग का अन्त तथा दूसरे युग का आरम्भ इसी मौर्यकाल में हमें दृष्टिगोचर होता है । इतिहास कारों ने तो इस युग को नये युग की संज्ञा दी है । क्योंकि इसी काल ने भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में नवीन चेतना का संचार किया । भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को पाश्चात्य देशों तक पहुँचाने का कार्य इसी मौर्य-शासकों के अधीन रहा । दूसरे शब्दों में कहें, तो इसी समय भारत ने सारे संसार का राजदूत बनकर भारतीय संस्कृति एवं धर्मों के प्रचार और प्रसार के लिए बड़ा उद्यम किया था । इस प्रकार मौर्ययुग ने शान्ति, सांस्कृतिक-एकता आदि पर आधारित एक नये लोक का निर्माण किया । भारत भर में व्यापार-सम्बन्धी उन्नति, साहित्य कला आदि का विकास इसी मौर्यकाल की देन है ।

सामाजिक व्यवस्था

मेगस्थनीज़ के विवरणों के द्वारा हमें मौर्यकालीन भारत का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है । स्वाश्रय, सुख तथा संतोष के कारण उस समय जन-जीवन समृद्ध बन गया था ।

इस समय लोगों के बीच सदाचार, उच्च नैतिक-आदर्श आदि को विशिष्ट आदर प्राप्त था । सद्व्यवहार, सत्यभाषण, वीरता आदि लोगों में विद्यमान थी ।

लोग सुरक्षा की भावना से बहुत दूर थे । क्योंकि चोरी, असत्य तथा डकैती का कहींभी नामोनिशान तक नहीं था । मादक-द्रव्यों का उपयोग भी इस समय बहुत कम था । विशेषकर अशोक के धार्मिक उपदेशों का लोगों पर बलपूर्ण प्रभाव पड़ा था । तत्कालीन साहित्य और अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि पाप, पुण्य, परलोक, स्वर्ग आदि की भावनाएँ लोगों में प्रचलित थीं । इन विचारों के कारण सर्वसाधारण जन का मार्ग भी सम्यक् रहा था । गुलामी की प्रथा समाज में प्रचलित तो थी, तो भी इन गुलामों को दयापूर्ण दृष्टि से ही देखा जाता था ।

पूर्व-काल की अपेक्षा वर्णाश्रम-व्यवस्था प्रबल बन गयी थी । विजाति से वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ना, एक जाति को अविदित काम में लग जाना आदि घोर पाप थे उदाहरण के लिए, सैनिक को सैनिकवृत्ति छोड़कर खेती-बारी करना, कलाकार बनना या दार्शनिक बनना मना था । कौटिल्य का ग्रन्थ `अर्थशास्त्र` भी इन चार-आश्रमों एवं उनसे सम्बन्धित कर्तव्यों का परिचय प्रस्तुत करता है । संक्षेप में, वर्णाश्रमों की व्यवस्था ने पूर्ण विकास पाया था ।

लेकिन अशोक के समय में आकर यह वर्णाश्रम व्यवस्था धीमी पड़ गयी । क्योंकि बौद्धधर्म राज्य धर्म बन गया था । अन्धविश्वास, रूढ़िगत विचार, असमता आदि को कहीं भी स्थान न मिला था । कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ में विभिन्न वर्णों में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने का प्रमाण प्रस्तुत किया है । इतना होने पर भी पारिवारिक जीवन में स्त्रियों का स्थान क्लेशमय था, क्योंकि उनको अपेक्षाकृत निम्नतर समझा जाता था । पति का दुर्व्यवहार `सती-प्रथा` आदि से नारियों का जीवन बड़ा क्लेशमय बन गया था । लेकिन बौद्ध एवं जैन भिक्षुणियाँ सारे राज्य में स्वतंत्रतापूर्वक विहार करती थीं । इसलिए मालूम होता है कि बौद्ध धर्म स्त्रियों के प्रति उदार था तथा उनको आवश्यक मान्यता देता था ।

मौर्यकालीन शिक्षा का क्षेत्र विशाल रूप से व्याप्त था । जातक ग्रन्थों से ही प्राचीन शिक्षा-प्रणाली पर अधिक प्रकाश पड़ता है । राज्य की ओर से ही समस्त शिक्षा-संस्थाएँ चलायी जाती थीं । अध्यापन विशिष्टतया ब्राह्मणों का कर्तव्य था । लेकिन कुछ समय के बाद बौद्ध-भिक्षुओं ने यह कार्य अपने ऊपर ले लिया । धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में तक्षशिला, उज्जैनी, बनारस जैसे विश्वविद्यालयों ने जो सहयोग दिया, उसके कारण भारत ने बड़ी प्रतिष्ठा ही पायी । संसार भर में तक्षशिला कीर्ति पा चुका था । ख्याति-प्राप्त संसार भर के प्रसिद्ध आचार्यों का, यह आवास-केन्द्र था । समता के आदर्श का अनुकरण करने वाले इस विश्वविद्यालय में देशी-विदेशी तथा उच्च-नीच सभी को अध्ययन करने की पूरी स्वतंत्रता थी । शस्त्र-शास्त्र, शिल्प, चिकित्सा-शास्त्र जैसे विभिन्न विषयों की यहाँ शिक्षा दी जाती थी । विशेष नियंत्रण और अनुशासन पर आधारित शिक्षा प्रणाली इस विद्यापीठ की विशेषता थी । राजा प्रसेनजित, आचार्य चाणक्य जैसे विद्वान इसी तक्षशिला विश्वविद्यालय की शिक्षा में पले थे । व्याकरण, छन्दशास्त्र आदि की भी विशेष उन्नति हुई थी ।

आर्थिक व्यवस्था

मौर्यकालीन भारत की आर्थिक व्यवस्था काफी विकसित एवं सुव्यवस्थित थी । व्यापार का क्षेत्र उन्नत अवस्था में था । पड़ोसी विदेशों से व्यापार चलता था । कपड़ा, हीरा, कंबल, मलमल आदि का खूब व्यापार इस समय चलता था । सोना, चाँदी ताँबे के सिक्के भी कायम थे । खेती-बारी पर विशेष ध्यान देने के कारण लोगों को अकाल एवं दुर्भिक्ष का शिकार नहीं बनना पड़ता था । बौद्धग्रन्थों में मौर्यकाल की आर्थिक दशा की इस अभूतपूर्व उन्नति का अच्छा वर्णन किया गया है ।

धार्मिक व्यवस्था

बौद्ध ग्रन्थ, अशोक के अभिलेख, यूनानी लेखकों के विवरण आदि से मौर्य युग की धार्मिक व्यवस्था का विवरण मिल जाता है । ब्राह्मण, संन्यास-आन्दोलन, बौद्धधर्म,

आजीविक और आस्तिक आन्दोलन, जैन धर्म आदि धर्मसम्प्रदाय उस समय प्रचलित थे।[१] वैदिक देवताओं की पूजा, बहुदेवतावाद, मूर्तिपूजा, यज्ञ-बलि, आदि प्रथाएँ समाज में प्रचलित थीं। लेकिन अशोक ने बौद्ध धर्म के तत्वों से प्रभावित होकर अहिंसावाद को प्रचलित किया।

चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से मौर्य साम्राज्य ने बौद्ध धर्म के प्रति उदार दृष्टि रखी थी। अशोक ने बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाया, इसका विवरण पहले दिया जा चुका है। वैष्णव और शैवमत का भी इसी समय समाज में अस्तित्व था।

भाषा और साहित्य

सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ इस युग में साहित्य-सृजन भी काफी मात्रा में हुआ। मौर्यकाल के तीन साहित्य-ग्रन्थों का उल्लेख हमें मिलता है --कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र', भद्रबाहु का 'कल्पसूत्र' और बौद्धग्रन्थ 'कथावत्थु'।

कला

भारतीय-कला के इतिहास में मौर्यों की देन स्मरणीय है। मौर्ययुग के पहले भारतीय कला का क्षेत्र उतना सजीव नहीं था। अशोक ही पहले शासक थे, जिन्होंने कला की उन्नति के लिए सजीव प्रयत्न किया था। वास्तव में, मौर्यों के शासन काल से ही भारतीय कला का भी श्रीगणेश हुआ था।[२] प्राचीन कला के नमूने पर निर्मित ये मौर्य-कलाकृतियाँ आज भी उनके साक्षी के तौर पर खड़ी हैं। मौर्य साम्राटों में चन्द्रगुप्त

१-'भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा', रतिभानुसिंह 'नाहर', पृ० १३२.

२- In fact, the history of the Indian art begins with the advent of the Mauryas
-'Evolution of Indian Culture'-B.N. Luniya, P.185.

मौर्य और अशोक ने कलाकृतियों के निर्माण में विशेष ध्यान दिया था । इनमें चन्द्रगुप्त मौर्य के समय के कला-शिल्प लकड़ी के थे, जो अधिक दिन टिक न सके । अशोक के शिला लेख तथा अन्य शिल्प कला के प्रति उनकी अभिरुचि के प्रतीक हैं ।

अशोक कालीन कलाकृतियाँ

'मौर्यकला का प्रारम्भ अशोक के राजत्व काल से होता है ।[१] अनुश्रुति के अनुसार उन्होंने ८४००० स्तूपों का निर्माण किया था ।[२] सांची का विशाल स्तूप, सारनाथ का धर्म-राजिका स्तूप, आदि उनमें प्रसिद्ध हैं । इन स्तूपों के निर्माण का आधार और उद्देश्य था बौद्धधर्म का प्रचार और प्रसार । इसका प्रमाण यह है कि इन स्तूपों में बहुत-ज्यादा बुद्ध या अन्य बौद्ध-भिक्षुओं से सम्बन्धित थे या कुछ स्तूप ऐसे भी थे जो किसी पवित्र स्था पर रखे गये हों ।

अशोक की कलाकृतियों में स्तंभों का भी कम महत्व नहीं है । मौर्ययुग की अनुपम कलाकृतियों में अशोक से निर्मित स्तम्भ मुख्य स्थान के अधिकारी हैं । ये स्तम्भ चुनार के बलुवा पत्थर से ही बनाये गये हैं ।[३] वी० ए० स्मिथ के मतानुसार, इन स्तंभों का निर्माण[४] ही उस युग के शिल्पियों की चतुरता और निपुणता के साक्षी हैं । इन स्तंभों के ऊपर विविध पशुओं के रूप रखे जाते थे, जो कलात्मक सुन्दरता में अद्वितीय हैं । उन स्तंभों में सारनाथ का स्तंभ निर्माण कुशलता में कला-समालोचकों की प्रशंसा प्राप्त कर चुका है । इस स्तंभ की निर्माण-कुशलता वास्तव में कलात्मक उन्नति का दिग्दर्शन कराती है ।

इसके अलावा महात्मा अशोक ने अनेक महलों, गुफाओं और विहारों का भी निर्माण किया । यहाँ भी उनका उद्देश्य बौद्धधर्म का प्रचार था । बौद्धभिक्षुओं के

१- 'भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा -- रतिभानु सिंह 'नाहर', पृ० १३५.

२- वही.

३- वही.

४- 'Evolution of Indian Culture' P.N. Luniya, p.187

निवासार्थ उन्होंने विहारों का निर्माण कराया था । इसी प्रकार भिक्षुओं के लिए ही उन्होंने गुफागृहों का निर्माण किया । चट्टानों को काटकर बनवाये गये इन गुफाओं की दीवालें इतनी चमकीली हैं कि वे दर्पण के सदृश्य जान पड़ती हैं और निर्माणकर्ताओं के असीम अध्यवसाय एवं महती निपुणता का निदर्शन कराती हैं ।[१] ऐसी अ गुफाएँ बोधगया के नागार्जुन-पर्वत और बारबरा पहाड़ियों में अवस्थित है । अशोक द्वा निर्मित महलों की छटा वर्णनातीत है । इसकी शानन और सुन्दरता को यवन लेखकों ने चित्रित किया है । पाटलीपुत्र के इन भवनों को उन विदेशी ग्रंथकारों ने भी सराहा । करीब सात सौ वर्ष बाद भारत में आये हुए चीन-यात्री फाह्यान के दिल में भी इन भवनों की निर्माण-कुशलता ने अमिट छाप डाली थी । मनुष्य के हाथों से निर्मित इन भवनों को देखकर उनको अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ । उन्होंने इन भवनों को देवताओं द्वारा बनाया हुआ ही कहा ।[२]

इस प्रकार सभी क्षेत्रों में मौर्ययुग उन्नति के शिखर पर पहुँचा हुआ था । उसकी शान और शौकत में मौर्यकाल स्वर्णयुग के समान था । सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था शान्ति, विदेशी लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित करने योग्य अपनी गरिमा, वर्तमा संयुक्त-राष्ट्र-संघ को याद दिलाने वाली अशोक की राजसत्ता तथा उनका आदर्शपूर्ण शास सब मौर्यकाल को उन्नत श्रेणी के लिए योग्य बना देते हैं । सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से मौर्ययुगीन-कला ने काफी सहयोग दिया है । मौर्यसम्राटों ने कला, धर्म तथा शिल्प-विधियों को जो प्रोत्साहन दिया, उसके फलस्वरूप भारत संसार भर के श्रेष्ठ राज्यों में स्थान पा सका ।

(३) शुंगकालीन सभ्यता और संस्कृति

मौर्य सम्राटों की राजसत्ता में भारत मध्याह्न सूर्य की भाँति प्रकाशमान था, लेकिन शुंग और कण्व वंशों के आक्रमण से उसका प्रकाश धुंधला होते-होते, पूर्ण रूपेण

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रतिभानुसिंह नाहर, पृ० १३५.

२- 'Evolution of Indian Culture' - B.N. Luniya, P.188.

अस्ताचल के पीछे मग्न हुआ । पुष्यमित्र शुंग के नेतृत्व में नया वंश कायम हुआ । इसी प्रकार भारत के विभिन्न भागों में कण्व, सातवाहन, शक, कुषाण जैसे छोटे-छोटे वंशों ने शासन शुरू किया । भारत के लिए अब कोई व्यवस्थित शासन व्यवस्था नहीं थी । यह शासन-व्यवस्था मौर्यों के पतन से आरम्भ होकर गुप्तवंश के उदय तक कायम रही । इस प्रकार शुंग-सातवाहन शक-युग ई० पूर्व दूसरी शताब्दी से ई० चौथी शताब्दी तक कायम रहा । इस युग में भारतीय सांस्कृतिक-जीवन का उदय दृष्टिगोचर होता है । कला का प्रोत्साहन तथा पूर्ण रूप से उसका विकास इस युग में भी विद्यमान रहा । बौद्धधर्म को लोक धर्म बनाने का श्रेय इसी युग का सबसे श्रेष्ठ और सफल कार्य रहा ।[1] अब इस युग की सभ्यता और संस्कृति पर हम विचार करेंगे ।

शासन-व्यवस्था

मौर्यों ने भारत में एक केन्द्र शासन-प्रणाली की नींव डाली थी । उसी शासन व्यवस्था को इस युग में भी छोटे-से परिवर्तन के साथ अपनाया गया ।

सामाजिक व्यवस्था

शुंग-सातवाहन शकों के युग के सामाजिक जीवन पर दृष्टि डालने पर कतिपय विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं ।

तत्कालीन सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी जातिव्यवस्था तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था । इस वर्णाश्रम का उल्लेख हमें सातवाहन-राजाओं के अभिलेखों से प्राप्त होता है । इस युग में शक, यवन, पल्लव जैसे अनेक विदेशियों का भारत में आगमन हुआ । सब वर्णाश्रम की ओर आकर्षित हुए । वर्ण-विभाग में वे भी घुल-मिल गये, उनका अस्तित्व ही नहीं रहा । इस प्रकार विदेशी लोग भी अपना अस्तित्व भूलकर भारतीय संस्कृति के अंग बन गये ।

---

1. 'Gautama Buddha's religion was raised from the status of a local sect to that of a world religion"

'Evolution of Indian culture'-P.N. Junjwa P.209

समाज की दूसरी विशेषता थी वर्णसंकर प्रथा । जाति या वर्ण की परवाह किये बिना शादी-संबंध बढ़ाया जाता था । सातवाहनों और शकों में विवाह होते थे । आर्य-अनार्यों से विवाह-संबंध स्थापित करते थे ।[१]

रुचि और आवश्यकताओं के आधार पर लोग काम करते थे । वर्णाश्रम की सीमाओं में बन्द रहकर अरुचिपूर्ण काम में लगे रहने का दुर्भाग्य इस युग में कहीं भी नज़र नहीं आता था । उदाहरण के लिए ब्राह्मण शासक बन सकते थे या सैनिक ।[२]

स्त्री का समाज में आदरपूर्ण स्थान था । आवश्यकता पड़ने पर शासन की बागडोर अपने हाथों में लेना भी वे जानती थी । इसी प्रसंग में सातवाहन-रानी का उदाहरण हम ले सकते हैं । डा० अलतेकर का कहना है कि सातवाहन रानी नयानिका ने अपने पुत्र के अल्पवयस्क होने पर स्वयं राज्य संचालन किया था ।[३]

भाषा और साहित्य

इस युग की मुख्य भाषा थी संस्कृत । इस युग के ज्यादातर शासक संस्कृत को प्रोत्साहन देने में दत्तचित्त थे । सातवाहनों ने दरबारी भाषा के रूप में प्राकृत को लिया शिलालेखों और शिल्पों में खुदवाने की भाषा थी संस्कृत । प्राकृत-भाषा के ग्रंथकारों और कवियों में सातवाहन राजा `हाला` का नाम प्रसिद्ध है । उनका प्रसिद्ध काव्य `गाथा सप्तशती`, सुविख्यात गुणाढ्य से लिखित `वृहत्कथा`, सर्ववर्मन से रचित `कातन्त्र` आदि प्राकृत के मुख्य ग्रंथ हैं । पालि-भाषा का भी महत्व था । बौद्ध कलाकृतियों को, पहली शताब्दी ई० में पालि साहित्य ने ही अलंकृत किया ।

---

1. 'Evolution of Indian Culture' - B.N. Luniya, P.193.
2. 'Brahamans figure in this age as generals, officials, and rulers -'Evolution of Indian Culture'-B.N. Luniya, P.193.
3. 'As Dr: ALTEKAR reveals the satavahana queen Nayanika acted as regent during the miniority of her son'
   - 'Evolution of Indian culture'-B.N.Luniya, P.193.

शुंग और कण्व शासक ब्राह्मण होने के नाते संस्कृत को प्रोत्साहन मिला । शुंग वंश के प्रसिद्ध राजा थे पुष्यमित्र शुंग । इनके समकालीन पतंजलि ने अपना महान् महाभाष्य लिखा । यह पाणिनी के `अष्टाध्यायी` पर आधारित था । डा० बु जैसे विद्वान् `मनुस्मृति` को भी इसी युग की रचना मानते हैं ।[१] महाकवि भास्त के में कई तर्क पूर्ण विवाद हैं । कुछ विद्वान् उन्हें पाँचवीं और चौथी ईस्वी में जीवित मानते हैं, कुछ अन्य उन्हें कौटिल्य के समय के मानते हैं । संस्कृत के नाटककार के रूप भी ख्याति प्राप्त भास भी अपनी अमर रचनाओं से भारती को धन्य कर रहे थे । की महान् विभूति अश्वघोष ने `बुद्धचरित`, `सौंदरानन्द` जैसी साहित्यिक कृतियों इस युग को संपन्न बनाया । इसी युग का दूसरा उज्ज्वल रत्न था नागार्जुन । बौद्ध निक नागार्जुन ने इस युग को अपनी दो अमूल्य रचनाएँ भेंट की । `मध्यमक-कारिका और सुहल्लेखा` उन्हीं की लेखनी से प्रसूत सुमन हैं । `नाट्य-शास्त्र` के रचयिता भर और आर्यदेव ने इसी युग में एक साथ अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया ।

साहित्य के क्षेत्र में जो उन्नति इस युग में हुई, वैसी उन्नति इसके पहले व नहीं हुई । जैनाचार्यों में वज्रस्वामी और आर्यरक्षित, चिकित्साशास्त्र के विशेषज्ञ प्रसिद्ध दार्शनिक वसुमित्र भी चिरस्मरणीय हैं ।

धार्मिक-व्यवस्था

इस युग की धार्मिक स्थिति विशेष विचारणीय है । अनेक धर्म एवं संप्रदा एक साथ उन्नति के शिखर में पहुँच चुके थे । वे कभी-कभी एक दूसरे से झगड़ते और एकता स्थापित करते हुए जनजीवन में व्याप्त थे । उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दि जा रहा है ।

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रतिभानुसिंह `नाहर`, पृ० १४०.

(क) ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान

शुंग-सातवाहन - शक युग ने फिर एक बार ब्राह्मण धर्म का उत्थान दे बौद्ध-जैन धर्मों के प्रभाव ने ब्राह्मण धर्म को बिलकुल प्रकाश-हीन कर डाला था । शुंग वंशीय और कण्व-वंशीय राजाओं ने ब्राह्मण-धर्म को बल और प्रोत्साहन प्रदा किया । इनके उदार आश्रय में ब्राह्मण-धर्म को पुनर्जन्म मिला, वह अनुकूल परिस्थि पाकर फूला-फला ।

शुंगों के शासन-काल में ही ब्राह्मण धर्म की सबसे बड़ी उन्नति हुई । पुष्य[1] शुंग ने दो बार यज्ञ करके सनातन-धर्म की मर्यादा को पुन: प्रतिष्ठापित किया । कार ने समाज में प्रचलित ब्राह्मण आदर्शों को स्पष्ट करने का सफल यत्न किया वाहन युग में भी ब्राह्मण-धर्म का बड़ी प्रचुर-मात्रा में प्रचार था । ऐसे उदार प्रो की शीतल छाया में ब्राह्मण धर्म विकसित हुआ । इस युग के राजा अश्वमेध, राज वैदिक यज्ञ आदि करते नज़र आते हैं । लेकिन ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के समय का विकास कुछ धुंधला-सा दिखायी पड़ा । यहाँ एक बात स्मरणीय है कि इस जिस ब्राह्मणधर्म का पुनरुत्थान हुआ वह वैदिक ब्राह्मण धर्म से परे, एक नया जिसे 'कातोलिक हिन्दू धर्म' की संज्ञा दी जा सकती है ।[2] इसी को 'पौराणि धर्म' भी कहा जा सकता है ।

(ख) भागवत धर्म, शैवमत और नागपूजा

इस नये उदित ब्राह्मण-धर्म के साथ-साथ इस युग में भागवत धर्म या[3] धर्म, शैवधर्म आदि का भी विकास हुआ । मेगस्थनीज़ और भण्डारकर[4] के शब्द । हरण हैं । नागपूजा भी शैवमत का ही एक हिस्सा था ।

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रामशंकर त्रिपाठी, पृ० १३६.

२- 'Evolution of Indian Culture'-B.N. Luniya, P.196.

३- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रामशंकर त्रिपाठी, पृ० १४७.

४- 'Evolution of Indian Culture'-B.N. Luniya, P.197.

(ग) बौद्ध धर्म

इस युग की अन्य विशेषता थी धर्मसहिष्णुता । ब्राह्मण धर्मानुयायी पर भी सभी शासक, विशेषकर सातवाहनवंशीय शासक उदार-धर्मसहिष्णु थे । धर्मावलंबी इन शासकों ने बौद्ध तथा जैन, धर्मों को कभी नष्ट होने नहीं दिया भी देश में फलने-फूलने का अवसर प्रदान किया । बौद्ध भिक्षुओं के लिए चैत्यगृ निर्माण, उनके लिए मठ और विहारों का निर्माण आदि इन शासकों की धर्म- को प्रमाणित करते हैं ।

मौर्यों के काल तक विकास के उन्नत शिखर पर पहुँचा हुआ बौद्धधर्म इस आकर पिछड़ी हुई हाल में ही रह गया । लेकिन कुशानों के समय में आकर बौद्धध कदम आगे बढ़कर महायान बौद्ध धर्म के रूप में प्रचलित होने लगा ।

(घ) हिन्दू धर्म की विशालमनस्कता

धीरे-धीरे ब्राह्मण धर्म, हिन्दू धर्म के नाम से परिवर्तित हुआ । उसने उदार छत्रछाया में सबको समेट लिया । कई विदेशियों का हिन्दू धर्म का अनुकरण भी इतिहास से प्रमाणित होता है । उन्होंने हिन्दू धर्म को अपनाया ही नहीं उ अनुरूप हिन्दू नामों को भी अपनाया । बेसनगर के स्तम्भ लेख से प्रमाणित होता तब का हिन्दूधर्म आज की भाँति संकुचित न था और इसकी छाया में विदेशीय भी ले सकते थे ।[1] शक-शासक रुद्रदमन, ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे ।

कला की उन्नति

शुंग-सातवाहन शकों का युग करीब पाँच सौ वर्षों तक कायम रहा । म कला के इतिहास में इस युग की देन अमूल्य है । भारतीय कला का जो महत्तम विक

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रतिभानुसिंह नाहर, पृ० १४०

इस युग में दृष्टिगोचर होता है, उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं --

निरन्तर भारत में प्रवाहमान विदेशी आदर्शों का भारत की संस्कृति असर पड़ा । साथ-साथ उसने भारतीय कला पर भी अधिकार जमाया । फलत शैली को अपना कर कलाकृतियाँ संपन्न हुई । कलाकारों की रुचि अनुकूल परि प्रोत्साहन पाकर दुगुनी हो गयी । इस युग की कला ज्यादातर बौद्ध धर्म से स मौर्य-युगीन कला से नितान्त भिन्न एक कलाशैली इस युग की दूसरी विशेषता जनजीवन का यथार्थ चित्र अंकित करना इस युग की कला का उद्देश्य था, जो म कला से उसे भिन्न कर देता है । बड़ी निपुणता के साथ बनायी गयी ये कला उस युग की धार्मिक भावनाओं, धार्मिक विश्वास, शिष्टाचार संबंधी और नैति को स्पष्ट करने में सफल हुई है । इस युग के स्थापत्य चित्रों को देखने मात्र से यथार्थता का बोध हो जाता है । प्रो० कुमार स्वामी ने ठीक ही कहा है कि का प्रधान केन्द्र बिन्दु न तो आध्यात्मिक है और न आचारवादी, बल्कि सम्प मानव-जीवन से सम्बन्धित है ।[१] इस युग में अनेकानेक स्मारकों का निर्माण भी रहा । वे इस प्रकार हैं --

स्तूप

शुंग काल में कला की बड़ी उन्नति हुई । उन शासकों ने भारहुत में स स्तूप का निर्माण करवाया । उस पर अंकित चित्र बुद्ध के जीवन से संबंधित है, कथाओं से संबंधित भी है । जीवन की वास्तविकता को अंकित करने के साथ-सा लोगों में आशा, विश्वास और आदर्शों का संचार करते हैं । भारहुत के स्तूप से स्तूप सांची में निर्मित है । इसका श्रेय महान् अशोक को है । बोधगया का स्तूप

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - नाहर, पृ० १४१.

स्मरणीय है । स्वात की तराइयों और पंजाब में की हुई खुदाइयों से अनेक स्तूप खंडहर देखने को मिले । दक्षिण भारत में स्तूपों का निर्माण सातवाहनों का क रहा । अमरावति, गंटशाला, नागार्जुनकोंडा आदि स्थानों पर स्तूपों का निर्माण सातवाहनों ने अपनी कलात्मक कुशलता का परिचय दिया ।

स्तंभ

इस युग में कई स्तंभों का निर्माण भी हुआ, लेकिन काल के भयंकर करों नामोनिशान तक नहीं रहा । आज केवल एक ही रह गया है, जो बिलसा में स्थ इस युग में खुदवाये गये स्तंभों में कनिष्क से निर्मित पुरुषपुर का स्तंभ उनको यशर बनाता है । उसकी अनुपम छटा, भीमाकार आदि प्राचीन एशिया के गौरव को प्र करते हैं । इसके अलावा विदिशा में हेलियोडोरस से निर्मित एक स्तंभ है, जो उनक भागवत धर्म स्वीकार करने की यादगार बना रहता है ।

विहार और चैत्यगृह

भारत में विहारों का मुख्य स्थान है । निवासार्थ बनवाये गये ऐसे विह में धर्मोपदेशक भिक्षु ही निवास करते आते थे । उसी प्रकार गुफाओं को भी भिक्षु के लिए चैत्यगृहों के रूप में निवासयोग्य बनाये गये थे । सातवाहनों का इतिहास य विदित करता है कि गुफागृहों और विहारों का निर्माण मुख्य रूप से उनसे ही [1] गया है । पहाड़ियों में निर्मित ये गुफागृह नासिक, अंजता, जूनार आदि स्थानों पवित्रता और महत्व को बढ़ाते हैं । चैत्यगृहों में महत्वपूर्ण कारले का है, जो दूसर सदी ई० के पूर्वार्द्ध में बनवाया गया था । इसके अतिरिक्त उड़ीसा की जैन गुफाएँ प्रसिद्ध हैं । इन गुफाओं का भीतरी-भाग सुन्दर शिल्पों से अलंकृत किया गया है । निर्माणकुशलता सराहनीय है ।

१- 'Evolution of Indian Culture'-B.N. Luniya, P.201.

मूर्तियाँ

अपने मन के विचारों को, विशेषकर धार्मिक विचारों को लोग कई तरह प्र करते हैं, उनमें एक ढंग है मूर्तिपूजा । ब्राह्मणधर्म, वैष्णवधर्म, बौद्धधर्म, जैन धर्म--सभी धर्मों में मूर्तिपूजा की प्रथा चली आयी है । गांधार और मथुरा में ही मूर्तियों के निम का श्रीगणेश हुआ । बौद्ध-मूर्तियाँ, बोधिसत्वों की मूर्तियाँ आदि का निर्माण हुआ

इस प्रकार ई० की तीसरी शताब्दी में कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला में जितना विकास इस समय हुआ उतना और कभी नहीं हुआ । विशालकाय बुद्ध-मूर्तियाँ तथा अनेक तल्ले के बौद्ध-विहार तथा गुफा-मन्दिर इस प्रमाण हैं । भारतीय कला को अपना प्रभुत्व तथा शैली इसी समय प्राप्त हुई है ।

(४) गुप्तकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

भारत के इतिहास में गुप्तयुग को `स्वर्णयुग` माना जाता है । गुप्तयुग का उदय ई० की चौथी शताब्दी में हुआ । मौर्यसाम्राज्य के दुरन्त और पतन के पश्चात् दे भर में व्याप्त अन्धकार और अनैक्यता के कारण मंडराने वाले काले मेघों को दाण में दूर करने के लिए अपनी प्रखर और उज्ज्वल प्रतिभा को लिए गुप्तसम्राटों का भारती इतिहास के रंगमंच पर आगमन हुआ । वस्तुत: इस युग के सर्वतोमुखी सांस्कृतिक विक और सांस्कृतिक विशेषता ने भारतीय जन-जीवन पर जितना प्रभाव और छाप डाली इसका अनुमान करना असंभव है । गुप्त-सम्राटों को अपनी सांस्कृतिक प्रगति में अनेकानेक कार्यों ने योगदान दिया था, उसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है --

शासन प्रबन्ध

अपनी राजतंत्रात्मक शासन-प्रणाली में गुप्तसम्राटों के हाथों में असीमित श

१- 'Evolution of Indian Culture'-B.N. Luniya, P.202.

संचित हुई थी । ऐसी एक शासन व्यवस्था में भी प्रजा अपने व्यक्तिगत अधिकारों नहीं थी । उसे संपूर्ण अधिकार प्राप्त थे । अपने शासकों पर पूर्ण रूपेण आस्था वाली प्रजा अत्यन्त सुखी और संतुष्ट थी ।

सामाजिक व्यवस्था

चीन-यात्री फाह्यान और तत्कालीन लेखों से हमें गुप्त-युग की सामाजि वस्था की झलक मिलती है ।

महाज्योतिषी वराहमिहिर के 'बृहत्संहिता', कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' व ग्रन्थों से यह अनुमान निकाल सकते हैं कि पूर्व कालों की भाँति ही गुप्तकाल के समा भी वर्णव्यवस्था थी । सामाजिक नियम उतने कठोर न थे । फिर भी वर्ण-व्यवस अस्तित्व था । लेकिन यह वर्णव्यवस्था लोगों के जीवनोपार्जन में कोई बाधा उपस्थि करती थी । अपनी रुचि के अनुसार व्यवसाय ग्रहण करने का प्रजा को पूर्ण अधिका था । शूद्रों के प्रति उदारता इस युग की और एक विशेषता थी । दासप्रथा प्रचलित पर भी यूनान तथा रोम की तरह कठोर नहीं बन पायी थी । सम्मिलित परिवार प्रथा हिन्दू-समाज की आधारशिला थी । तो भी नारियों की स्थिति पूर्ववत् कुछ प हुई थी ।

धार्मिक व्यवस्था

धार्मिक विकास गुप्तकाल में परिपूर्ण होकर फूला और फला । अपनी ध उदारता में गुप्त सम्राट सबसे अधिक प्रसिद्ध थे ।

(क) वैदिक-धर्म

समाज में एक प्रबल शक्ति के रूप में वैदिक-धर्म प्रचलित था । समुद्रगुप्त, चन्द्र द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम स्कन्दगुप्त जैसे महान् गुप्तसम्राटों के परिपोषण में वैदिक

ने पूर्ण आकार को प्राप्त किया । गुप्तकालीन अभिलेखों और मुद्राओं से उस समय वैदिक आचार-विचारों का प्रचुर मात्रा में हमें विवरण मिलता है । वैदिक परम्परा शिव, विष्णु, सूर्य जैसे देवताओं की पूजा, मन्दिरों का निर्माण आदि गुप्त-काल विद्यमान था[1] । वैदिक यज्ञों की ओर जनता आकर्षित हुई थी । अश्वमेघ यज्ञ, अग्नि जैसे विशिष्ट यज्ञों के बारे में भी उस समय की मुद्राएँ प्रमाण प्रस्तुत करती हैं ।

(ख) वैष्णव धर्म

वैदिक-धर्म का अनुष्ठान लोगों के बीच प्रचुर-मात्रा में था तो भी पाँचवीं शताब्दी में उसका ह्रास देखने को मिलता है । वैष्णवधर्म का इस युग में प्रचार बढ़ता लोगों के मन में भक्ति का बीज अंकुरित होने लगा । अवतारवाद के आधार पर भगव विष्णु के दस अवतारों की कल्पना की गयी थी । कृष्ण की लोकप्रियता के कारण पवित्र `भगवद्गीता` ने जनमानस को अत्यन्त मुग्ध किया । दक्षिण भारत में तो आ के सफल कार्यों से वैष्णव धर्म लोकप्रिय बन सका ।

(ग) शैव धर्म

शैवधर्म भी वैष्णव धर्म से कुछ कम नहीं था । `अपने पूर्वजों की या अपनी स्म को चिरस्थायी रखने के लिए किसी शिव-मन्दिर का निर्माण करना, गुप्त युग की एक सामान्यतया प्रचलित प्रथा थी ।`[2] जगत्पालक शिव के विविध आकारों की पूजा भी गु काल में प्रचलित थी । स्वयंभू, भूतपति, शूलपाणि, महादेव, पिनाकिन, हर आदि विशिष्ट नामों से शिव को पुकारे जाते थे ।[3]

१- One of the features of the religion of the Gupta Age is the f emergence of the doctrine of Avataras or Incarnations'
-'Evolution of Indian Culture- B.N. Luniya, P.234.

२- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रविमानुमित्र, पृ० १८६.

३-Evolution of Indian Culture- B.N. Luniya, P.235.

इन विष्णु शिव आदि देवताओं के साथ-साथ गुप्तयुग में अन्य कई देवी-देवताओं की पूजा भी होती थी । ब्रह्मा, सूर्य आदि की पूजा भी लोग करते थे । शक्ति-माता की पूजा गुप्तकाल की एक और विशेषता थी । शक्ति के दोनों -- करुणामय और भयंकर रूप में उपासना प्रचलित थी । इस प्रकार पार्वती, भवानी, गौरी, दुर्गा, चामुंडा आदि शक्ति के विभिन्न रूपों ने लोगों के दिल में स्थान पा लिया । शिव और काली या शक्ति की पूजा से तांत्रिक साधना का श्रीगणेश हुआ ।

(घ) बौद्ध धर्म और जैन धर्म

इस युग में अधिकांश लोग भक्तिरस में डूब रहे थे । भक्ति-प्रवाह में उन्होंने भक्ति-प्रधान धर्मों का अधिक प्रचार किया, इसलिए बौद्ध-जैन धर्मों में उनकी रुचि ज्यादा टिक न पायी, तो भी इन धर्मों का पतन या दुरवस्था का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । जब युग में महायान का जो विकास और प्रचार हुआ था, उसका प्रभाव इस युग में भी दृष्टिगोचर होता है । महायान तथा हीनयान दोनों एक साथ समाज में प्रचलित थे । पाँचवीं शताब्दी में भारत में आये हुए चीन-यात्री फाह्यान ने भारत में उस समय प्रचलित बौद्धधर्म के विषय में बहुत लिखा है । उनके अनुसार, गुप्तयुग के नृपतिगण अधिक बौद्ध धर्म की ओर उदार दृष्टिकोण रखने वाले थे । बौद्ध-विहारों के लिए गुप्त सम्राटों ने बहुत दान दिये थे । इसका उल्लेख भी मिलता है । नालन्दा, विक्रमशिला और पाटलीपुत्र के शिक्षा-केन्द्रों में महायान और हीनयान मतों के मानने वाले मिलजुल कर रहते थे ।[१] इन दोनों संप्रदायों का इस प्रकार गुप्तयुग में जो महत्व था, देखने को मिलता है ।

जैन धर्म का महत्व गुप्त युग में बहुत बढ़ गया था । वल्लभी की प्रसिद्ध जैन-संगीति इसी गुप्त युग में कायम कर दी गयी थी । भद्रबाहु द्वितीय, दापणक, सिद्ध दिवाकर जैसे महान् जैनियों ने जैनग्रंथों पर भाष्य और टीकाएँ लिखने का महत्वपूर्ण कार्य किया ।

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - नाहर, पृ० १८८

साहित्यिक उन्नति

गुप्त युग में साहित्यिक उन्नति अपनी पराकाष्ठा में पहुँच चुकी थी । इस युग की साहित्यिक समृद्धि को देखकर इतिहासकारों ने इसकी तुलना ऐथन्स के इतिहास के `पेरीक्लीयन युग`, अंग्रेजी साहित्य के इतिहास के `एलीज़बथीन युग`, लैटिन साहित्य के `आगस्टन युग` से की है ।[१]

सम्राट अशोक के शासन के पश्चात् संस्कृत ह्रासोन्मुख हो गया था । उसके ग्रन्थ नगण्य हुए थे । परन्तु गुप्तकाल में आकर संस्कृत को फिर से पुनः प्रतिष्ठा मिल गयी वह विकास के उन्नत शृंग पर विराजमान हुई । नव्य साहित्यिक कृतियों से संस्कृत साहित्य ने विकास की नयी दिशा की ओर प्रयाण किया । इसी कारण से यह युग को `संस्कृत साहित्य का `स्वर्णिम युग` भी कहलाता है । कविकुलगुरु कालिदास, सुविख्यात नाटककार शूद्रक तथा विशाखदत्त, यशस्वी गद्यकार सुबन्धु, संस्कृत व्याकरण-ज्ञाता भट्टि, कवि-श्रेष्ठ कल्हण जैसे सभी श्रेष्ठ व्यक्तियों ने एक ही युग में जीवित रहकर अपने महत्तम कार्यों से उस युग को अमर बनाया है । इसी तरह पुराणों की रचना ने इस युग के धार्मिक साहित्य को क्रियाशील बना दिया ।

गुप्त युग में धार्मिक साहित्य के समान दार्शनिक साहित्य भी रचे गये । हिन्दू बौद्ध-जैन धर्मवालों ने अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन तथा अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन करने के हेतु नयी रचनाएं प्रस्तुत कीं । प्रस्तुत युग में सांख्य-दर्शन पर भी टीका लिखी गयी थी

बौद्धाचार्य असंग गुप्तकाल में ही जीवित थे । `महायान-संपरिग्रह`, `प्रकरण आर्यवाचा`, `महायानाभिधर्म संगीतिशास्त्र`, `वज्र छेदिका टीका`, `योगाचार भूमिशास्त्र` आदि प्रसिद्ध रचनाओं से असंग लोकप्रिय बने । इसी प्रकार उनके भाई आचार्य वसुबन्धु ने

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - `नाहर`, पृ० १८८.

भी महायान और हीनयान दर्शनों पर ग्रंथ लिखे । उनकी प्रसिद्ध रचना `अभिधर्मकोष` का प्रणयन इसी युग में हुआ था । अन्य बौद्ध-साहित्य के दार्शनिक आचार्यों में दिङ् ने `प्रमाण समुच्चय`, `न्यायप्रवेश` आदि ग्रंथ लिखे । बौद्ध-दार्शनिकों में सबसे बड़ी भूति बुद्धघोष के `विशुद्धिमग्ग`, `समस्तपासादिका`, `सुमंगलविलासिनी`, `विनयपीटक समस्त टीकाएँ आदि ने युग प्रशस्ति बढ़ायी ।

जैन साहित्य में भी अनेक ग्रंथ लिखे गये । जैनग्रंथों को लिपिबद्ध करके सारे निक-साहित्य का प्रकाशन करना इसी गुप्त काल का श्रेष्ठ कार्य रहा । `न्यायावेता के ग्रंथकर्ता आचार्य सिद्धसेन भी इसी काल में जीवित थे । इनके अतिरिक्त `अमरकोष` `मेघदूत` की टीका, `काशिका` की टीका, शैव नायनमारों और वैष्णव-आलवारों तमिल की भक्तिरस प्रधान रचनाएँ आदि गुप्तकाल में ही हुई हैं ।

गुप्तकालीन शिक्षा का क्षेत्र भी प्रचुर मात्रा में उन्नतिशील था । लेकिन व्यवस्थित विद्यासंस्थायें उस समय नहीं थीं । शिक्षा प्रणाली के समस्त अधिकार गु अधीन थे । शिक्षा प्रदान करना उनका ही कर्तव्य था । यह शिक्षा प्रणाली हमें का स्मरण दिलाती है । ये आचार्य बड़े आदरणीय थे । वेदों के साथ पुराण, स दर्शन, व्याकरण, नियमशास्त्र विज्ञान आदि भी विकसित हुए । गुप्त-शासकों के स नलन्दा विश्वविद्यालय ने विकास पाया । नलन्दा का बौद्ध-मठ क्रमशः एक विशाल विद्यालय में परिणत हो गया । असंख्य बौद्ध-मठों का भी यहां उदय हुआ । नलन्द केन्द्र के अलावा पाटलीपुत्र, वल्लभी, उज्जैनी, मथुरा, अयोध्या, बनारस आदि भी मुख्य थे ।

कलाओं की उन्नति

भारतीय कला के विस्तृत क्षेत्र में और उसके लम्बे इतिहास में गुप्तयुग की नहीं है । सिंधु-सभ्यता के पश्चात् वैदिक उदासीनता ने कलात्मक क्षेत्र में कुछ अवश

की, परन्तु मौर्य-गुप्त-युग ने जिस कलासाधना का श्रीगणेश किया, उसकी परम्परा आज भी निरन्तर चलती है। कलात्मक प्रगति में तो गुप्तकाल ने सर्वोन्नत स्थान प्राप्त किया कला के क्षेत्र में जो सृजनात्मक कार्य इस युग में हुए, उसके परिणामत: गुप्तयुग की स्थापि स्थायी बन गयी। इस युग की कलात्मक प्रगति का अध्ययन करने के लिए निम्नलिखित शीर्षक समीचीन मालूम पड़ते हैं --

(क) वास्तुकला

सौन्दर्यशास्त्र और धार्मिकबोध से पूर्ण जो क्रियात्मक उत्साह का गुप्तकाल में उदय हुआ, उसके फलस्वरूप सुन्दर मन्दिरों का निर्माण सम्पन्न हुआ। लेकिन दुर्भाग्य-वश विदेशी आक्रमणकारियों की क्रूरता ने इन सबको मिट्टी में मिला दिया। तो भी आज जो मन्दिर बचे हुए हैं, वे उस समय की कलात्मक विशिष्टता का प्रमाण स्वरूप हैं। जबलपुर का विष्णुमन्दिर, नागोद का शिव-मन्दिर, आजमगढ़ का पार्वती-मन्दिर, बोधगया के बौद्धमन्दिर, देवगढ़ का दशावतार-मन्दिर आदि इनमें मुख्य हैं।

इसके अलावा पूर्ववत्, इस काल में भी बौद्ध-मठों, विहारों चैत्यों तथा स्तूपों का निर्माण हुआ। इनके निर्माणकार्य का चरमोत्कर्ष इस काल की अन्य विशेषता है। बौद्ध-जैन साधुओं की भाँति ब्राह्मणों के द्वारा भी पर्वतों में दरीगृहों का निर्माण हुआ था। पुष्कलावती नामक जगह से गुप्तकालीन कई बौद्धगृहों को खोज निकाला है।

अजन्ता और आंध्र की गुफाओं में मनोहर चित्रकारी को सजीवता से आंकने में इस युग ने जो प्रतिभा दिखायी, वह आने वाले युगों को प्रेरणात्मक सिद्ध हुई। उदय-गिरि की हिन्दू-गुफाएँ भी इसी युग का निर्माण-कार्य हैं। गुप्त-वास्तुकला के नमूने अमरावति, नागार्जुनकोंडा आदि स्थलों में भी सुरक्षित रखे हैं।

(ख) मूर्तिकला

गुप्तकालीन मूर्तिकला भी सौन्दर्य और कलात्मक ढंग से परिपूर्ण है। गुप्तकालीन कला की सबसे मुख्य भेंट है बौद्ध तथा हिन्दू-देवताओं के साकार-स्वरूपों का निर्माण।

बुद्ध की प्रतिमाओं को नये कलात्मक ढंग से अलंकृत करना गुप्तकालीन कर्मकुशलता का ज्वल उदाहरण है । बुद्ध और बोधिसत्वों के विभिन्न प्रकार की मूर्तियों का इस युग में निम किया गया । इसी प्रकार तथागत की विभिन्न मुद्राओं को प्रदर्शित करके भारतीय मूर्ति का नमूना प्रस्तुत करने में गुप्तकाल ने विशेष रुचि दिखायी । बौद्ध-प्रतिमाओं के साथ साथ हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी बनायी गयीं । शंकर की अर्द्ध-नारीश्वर की प्रतिमा की गंभीरता तथा उसका अलौकिक सौन्दर्य गुप्तकालीन कलाकारों की कुशलता व प्रदर्शित करती हैं ।

संक्षेप में, गुप्तकाल की मूर्तिकला सर्वगुणों से सम्पन्न थी । आर०सी० मजूं ने अपने ग्रंथ में गुप्तकाल की मूर्तिकला को प्रशंसापूर्ण शब्दों में उद्धृत किया है ।[1]

(ग) चित्रकला

गुप्तकाल की चित्रकारी अजन्ता जैसे श्रेष्ठ गुफागृहों में सुरक्षित हैं । आंध्रप्र की अजन्ता गुफाएँ, मध्यप्रदेश की बाघ-कंदराएँ, मद्रास का सीत्तनवसल मन्दिर, लंका के सिगिरिया के वरीगृह के भित्तिचित्र आदि आज भी गुप्तकाल के अतीत गौरव को गु मान करते रहते हैं । ये चित्र इतने सजीव ढंग से चित्रित किये हैं कि वर्षों के बाद भी ज्यों के त्यों खड़े हैं । तत्कालीन जीवन के सजीव चित्रों को इतनी तन्मयता के साथ उ गया है कि उनमें एक सहज आकर्षण हमेशा रहा करता है ।

---

1. 'The images of the Gupta period "present a beautiful figure, full of charm and dignity, a graceful pose and a radiant Spir expression. In general, a sublime idealism, combined with a highly developed sense of rhythm and beauty, characterises th Gupta Sculpturas, and these are vigour and refinement in thei design and execution"

-'An advanced History of India'-R.C. Majumdar, P.140.

संगीत कला भी इस युग में उन्नत हुई थी । दरबार में तो संगीत-शिक्षकों के अस्तित्व का प्रमाण साहित्य के ग्रंथों से प्राप्त होता है । ललित-कलाओं में निपु गणिकाएँ भी इस काल में विद्यमान थीं ।

इसके अतिरिक्त मुद्रा-निर्माण कला में गुप्तकालीन जनता निपुण थी । यू नियों से भारतवासियों को यह कला प्राप्त हुई थी । वही गुप्तकाल में आकर व्यवह में लायी गयी । गुप्तकालीन स्वर्णमुद्राएँ उस काल की श्रेयता का ज्वलन्त उदाहरण

उपरोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि गुप्तयुग अन्य युगों से बढ़कर भारतीय इतिहास का सुनहला काल है । यह युग अपने में पूर्ण था । इस युग की स्व गीण समृद्धि से विदेशी भारत पर आकर्षित हो गये ।

संस्कृति-, धर्म, कला, विज्ञान आदि का इस युग में यथार्थत: चरमोत्कर्ष हुआ था । ऐसा समृद्ध एवं स्वयंपूर्ण सुवर्णयुग भारत के इतिहास में बार-बार नहीं ।

(५) हर्षकालीन संस्कृति एवं सभ्यता

ह्वेनसांग तथा समसामयिक संस्कृत ग्रंथ हर्षकालीन परिस्थितियों पर प्रक हैं । हर्षकाल की समृद्धि का चिरस्थायी स्तंभ हर्षवर्धन थे जिन्होंने वैराग्यपूर्ण जी बिताकर जगन्नेय के लिए सर्वस्व अर्पण किया था ।

सामाजिक व्यवस्था

ह्वेनसांग ने हर्ष के समय की वर्णव्यवस्था का उल्लेख किया है । उस ब्राह्मण समाज के उच्च पद के अधिकारी थे । हर्ष ने अपने दरबार के मंत्री-पद ब्राह्मणों को नियुक्त किया था । और ब्राह्मणों को भी राजकाज में अधिका किया था । इतना होने पर भी वैदिक ब्राह्मणों से दूर हटकर कहीं सरल तथा थे, ये हर्षकालीन ब्राह्मण । उस युग में सतीप्रथा कायम नहीं थी तो भी बहु बहुत प्रचार था ।

धार्मिक व्यवस्था

हर्षकाल में महायान ने पूर्ण विकास को प्राप्त किया था । हीनयान के प्रति लोग कम आकर्षित थे । हर्ष भी महायान की ओर झुके हुए थे ।

धर्मसहिष्णु प्रजाओं ने ब्राह्मणधर्म में भी विशेष रुचि प्रदर्शित की थी । दे देवताओं की पूजा, मन्दिरों का निर्माण आदि हर्षकाल में भी प्रचलित थे । जैनधर्म व प्रभाव देश भर में उतना नहीं था, जितना अन्य धर्मों का है । एक प्रकार से सर्वधर्मों का उत्थान इस युग में हम देख सकते हैं ।

साहित्य एवं कला

ह्वेनसांग ने अपने यात्राविवरणों में वल्ल भी का हीनयान विश्वविद्यालय तथ नलन्दा के महायान विश्वविद्यालय का उल्लेख किया है । दानशील हर्ष ने साहित्य की प्रगति को दृष्टि में रखकर बहुत धन का व्यय किया था । कला के क्षेत्र में भी हर्षकाल विकासोन्मुख है । नलन्दा के मठ और विहार अनुपम सौन्दर्य से पूर्ण है । बुद्ध की प्रति भी इस समय विद्यमान हैं ।

इस प्रकार विज्ञान, कला, साहित्य, चिकित्साशास्त्र आदि मानव-कल्याण लिए आवश्यक साधनों की प्रगति के लिए बुद्धदेव के अनुयायियों ने जो कठिन प्रयत्न वि वह सराहनीय है । वस्तुत: बौद्धधर्म सर्वांगीण जनकल्याण का उपादेय ही बन गया । उल्लेखनीय कार्य यह है कि बुद्धदेव ने जनता की भाषा पालि की उन्नति चाही थी, में उपदेश दिये थे और उनकी रचनाएँ पालि में ही प्रकाशित हुई थी, जिस कारण स जनपथ की बोली एक साहित्यिक भाषा के रूप में परिवर्तित हुई । पालि, संस्कृत, आदि भाषाओं का साहित्य बौद्धधर्म के प्रभाव से धन्य हुआ । संक्षेप में, महात्मा का मार्ग अहिंसा का था, करुणा का था, परम सत्य का था, मानवीय गुणों का इसलिए प्रथम मानवतावादी दार्शनिक के रूप में बुद्धदेव की प्रतिष्ठा हुई । यह परिवर्त शंखनाद था, उससे जो नवजागरण भारतवर्ष में हुआ वह बाद में समस्त भारत में मुख

२- महात्मा बुद्ध और उनके तत्वों से सम्बन्धित पालि और संस्कृत ग्रंथ

संबोधि से महापरिनिर्वाण तक दया के अपार सागर भगवान बुद्ध ने लोक-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर ज्ञानरूपी अमृत से सारे संसार को अनुप्राणित किय इन उपदेशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए एक दृढ़ भिक्षु-संघ की स्थापना करके वे ज्ञान-ज्योति को निरन्तर प्रकाशमान करते रहे । ये उपदेश उन्होंने मौखिक रूप में ही दिये थे । किन्तु उनके परिनिर्वाण के पश्चात् उनके उपदेशों को संगृहीत करने की आवश्य हुई । उनके उपदेशों का संग्रह हमें पालि-साहित्य के त्रिपिटकों में ही प्राप्त होता है । इन त्रिपिटकों के प्रतिपादन करने के पहले तत्कालीन भाषा पर भी प्रकाश डालना उचित है ।

पालि भाषा का उद्गम

वैदिक-कालीन आर्यों की भाषा दो रूपों से होकर विकसित हुई । साहित्यि भाषा थी संस्कृत । दूसरा रूप जन-बोलियों के रूप में हुआ । ब्राह्मण समाज ने संस्कृत को अपनाया तथा महावीर और गौतम ने जन-भाषा को अपनाया । बुद्ध-कालीन भारत की मुख्य लोक भाषा थी पालि । इसी भाषा से तथागत ने भी उपदेश दिये थे । कहा जाता है कि मगध की मूल-भाषा पालि का निर्माण, मध्यदेश, मथुरा और उज्जैन की बोलियों के सम्मिश्रण से बनाया गया है ।[१] इस प्रकार 'पालि' शब्द का प्रयोग बौद्ध-धार्मिक ग्रंथों की प्राकृत के लिए किया जाता है, किन्तु मूलत: इस शब्द का प्रयोग किसी भाषा-विशेष के लिए नहीं पाया जाता था ।[२] भारत की अति प्राचीन और प्रभावशाली भाषा होने के कारण पालि-भाषा भारत के अतीत के ज्ञान-गौरव को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है, इसके साथ ही वह बौद्ध-साहित्य के क्षेत्र में भी अपना अनुपम स्थान रख है ।

१-'संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' - वाचस्पति गैरोला, पृ० ३४.

२-'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (वाल्यु १), पृ० २७६.

पालिग्रंथ

अपनी निर्माण-भूमि में पालिसाहित्य बुद्ध से लेकर आज तक निरन्तर चलता रहता है। इसमें हमें अनेकानेक बौद्धग्रन्थ देखने को मिलते हैं। इन ग्रन्थों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं -- सैद्धान्तिक ग्रंथ और साहित्यिक ग्रंथ।

(१) सैद्धान्तिक ग्रंथ

त्रिपिटक बुद्धवचन-रूपी रत्नों की मंजूषा है।[१] प्रथम संगीति में संगृहीत बुद्धवचन ही `त्रिपिटकों` में रखा गया है। `त्रिपिटक` का शाब्दिक अर्थ है `तीन पिटारी` या `तीन मंजूषा`। इस त्रिपिटक को नवांग बुद्धवचन भी कहते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक सुत्त, गेय्य, वेय्याकरण, गाथा, उदान, इतिवुत्तक, जातक, अब्भुतधम्म, वेदल्ल इन नौ अंगों से सुशोभित है।[२]

त्रिपिटक इन तीनों पिटकों का समाहार है -- विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक। कभी-कभी इसके क्रम में परिवर्तन भी देखने को मिलता है। कुछ ग्रंथों में विनयपिटक का स्थान सुत्तपिटक ने ले लिया है। स्वर्गीय महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपना ग्रंथ `पालि साहित्य का इतिहास` में पहले पिटक के रूप में सुत्तपिटक को ही परिगणना दी है। किन्तु एक बात निश्चित है कि स्वयं बौद्धों ने विनयपिटक को ही शीर्ष-स्थान दिया है।[३]

महात्मा बुद्ध के निर्वाण के बाद उनका धर्म कई संप्रदायों में विभक्त हो गया ऐसे करीब अठारह संप्रदायों का उल्लेख हमें मिलता है।[४] इन संप्रदायों में थेरवादी संप्रदाय में भी त्रिपिटकों का समाहार है। थेरवादियों ने ही पालि में त्रिपिटकों को सुरक्षित रखा है। इसी समय - - - - - .- -

---

१-भगवान गौतम बुद्ध, डा० विद्यावति मालविका, पृ० ४२.

३- Buddhism in India and abroad – A C Banerjee P 1

४- वही, पृ० ७५.

सर्वास्तिवादियों ने संस्कृत, सम्मितियवादियों ने अपभ्रंश महासांघिकवादियों ने प्राकृत जैसी भाषाओं का आश्रय लिया । बौद्धधर्म के इन विभिन्न संप्रदायों ने बुद्धवचनों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया है, इसका पूरा विवरण अब भी अप्राप्य है । इसलिए यह एक तर्कसंगत विषय भी बन गया है । पालि के मूल बौद्धग्रंथ त्रिपिटकों का विवरण नीचे दिया गया है --

(क) विनयपिटक

भिक्षु-संघ के आचार और दिनचर्या से संबंधित तथा अनुशासन-विषयक नियमों से विनय की यह पिटारी भरी पड़ी है । भिक्षु-भिक्षुणियों के आचारशास्त्र के नाम से यह विख्यात है ।[१] अपने जीवन-काल में बुद्ध ने अपने शिष्यों से इन नियमों का पालन करवाया था । इनमें नैतिक सिद्धान्त ही मुख्य हैं । सदाचार-संबंधी सभी आचरण इनमें आते हैं । बौद्ध-परम्परा के अनुसार विनय ही बुद्ध के उपदेशों का मूलमंत्र है । निर्वाण तक उपासक को पहुँचाने वाला एक ही द्वार है `विनय` । इसमें तीन प्रकार के ग्रन्थ समाहित हैं ।[२]

सुत्तविभंग

इसके और भी दो विभाग हैं -- महाविभंग और भिक्षुणिविभंग । इसमें बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियों के आठ प्रकार के उल्लंघनों का वर्णन किया गया है ।[३] विनयपिटक में इस विभाग का बहुत महत्त्व है । यही विनयपिटक का केन्द्रबिन्दु है । सुत्तविभंग मुख्यत: `प्रातिमोक्षसूत्र` पर आधारित है । अपने किये हुए पापों को स्वयं स्वीकार करना ही `प्रातिमोक्षसूत्र` का सार है । इसके अनुसार भिक्षुउपोसथ के दिन एकत्रित होकर प्राति-

---

१- `पालि साहित्य का इतिहास`, राहुल सांकृत्यायन, पृ० १४८.

२- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (वाल्यूं १), पृ० २८०.

३- वही.

मोक्षासूत्र का पारायण करते थे । वास्तव में, भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए विनय का पालन करने के नियम ही इस विभाग में वर्णित है ।

संघक

नित्यनैमित्तिक नियमों के पालन का निर्देश ही यहाँ मिलता है । यह विभाग संघ के जीवन का स्पष्ट चित्र अंकित करता है । उपदेशात्मक इस विभाग के दो उपभाग हैं --

महावग्ग

इसके एक-एक अध्याय को खन्धक (स्कन्धक) कहा गया है । इस विभाग के दस खन्धक ये हैं --

१- महास्कन्धक	२- उपोसथस्कन्धक
३- वर्षोपनायिकास्कन्धक	४- प्रवारणास्कन्धक
५- चर्मस्कन्धक	६- भैषजस्कन्धक
७- कठिनस्कन्धक	८- चीवरस्कन्धक
९- चम्पेयस्कन्धक	१०- कौशम्बक स्कन्धक

बोधि-प्राप्ति के बाद के बुद्धदेव की प्रथम यात्रा का वर्णन, धर्मचक्रप्रवर्तन, सारिपुत्र और मोग्गल्लान का प्रव्रजित होना, प्रातिमोक्षासूत्र का पारायण करना, भिक्षु द्वारा प्रवारणा कर्म[१] का करना, चर्म की वस्तुओं का उपयोग करने और न करने का वर्ण-

---

१-वर्षावास खतम होने के अश्विन-पूर्णिमा को प्रवारणा कहते हैं । इस दिन गृहस्थ लोग चौमासा काटकर अपने यहां से जाने वाले भिक्षुओं को जो नाना-वस्तुएँ भेंट करते थे -- इसी को प्रवारणा कहते थे । संघ भी उस दिन प्रवारणा कर्म करता ।
--'पालि साहित्य का इतिहास'- राहुल सांकृत्यायन, पृ० १५६.

बुद्ध को भैषज्य गुरु मानकर चिकित्सा-विधान का वर्णन, प्रवारणा दिन भिक्षु को भेंट करने-वाले चीवर से संबंधित नियम, ये सब महावग्ग के विषय हैं । संबोधि के पूर्व के बुद्ध-जीवन पर महावग्ग प्रकाश ही नहीं डालता । धर्मचक्रप्रवर्तन से लेकर संघप्रतिष्ठा तक ही महावग्ग के विषय रहे । संघ का उदय और विकास भी इसी वर्ग में दृष्टिगोचर होता है । यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि महावग्ग से तत्कालीन भारतीय जन-जीवन का समग्र चित्रण प्राप्त होता है । इस प्रकार देखें, तो महावग्ग प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी का अक्षय भंडार है ।

चुल्लवग्ग

यह वर्ग बारह स्कन्धों या अध्यायों में विभाजित है --

१- कर्मस्कन्धक	२- पारिवासिकस्कन्धक
३- समुच्चयस्कन्धक	४- शमथस्कन्धक
५- क्षुद्रकवस्तुस्कन्धक	६- शयनासनस्कन्धक
७- संघभेदकस्कन्धक	८- व्रतस्कन्धक
९- प्रातिमोक्षस्थापनस्कन्धक	१०- भिक्षुणीस्कन्धक
११- पंचशातिकास्कन्धक	१२- सप्तशतिकास्कन्धक

संक्षेप में, तर्जनीय, प्रव्राजनीय आदि कर्म, परिवास, आह्वान आदि दंडों की बातें, विनय-वस्तु की सार्थकता, अनुरुद्ध, देवदत्त जैसे महात्माओं की प्रव्रज्या स्वीकार करने की कथाएँ, भिक्षाव्रत, भिक्षाचारी व्रत, प्रातिमोक्ष का स्थगन, महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना से भिक्षुणियों की उपसंपदा का उदय, प्रथम संगीति का चित्रण तथा कौशाम्बी के राजा उदयन द्वारा वस्त्रदान, जैसी विनय की सारी बातें इस वर्ग में आती हैं । इस वर्ग के स्कन्धक महावग्ग के स्कन्धकों की अपेक्षा आकार में छोटे होने के कारण इसे चुल्लवग्ग की संज्ञा दी गयी है ।

इस प्रकार भिक्षुसंघ के साथ-साथ, महात्मा-बुद्ध के जीवन पर भी उपर्युक्त दोनों वर्ग काफी प्रकाश डालते हैं । धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से दोनों वर्गों की अपनी-अपनी विशिष्टता है ।

परिवार

यह विनयपिटक का अन्तिम विभाग है । दीप नामक श्रुतधर ने ही इसे सिंहल में लिखाया था ।[१] इसके इक्कीस परिच्छेद हैं । इसमें तो प्रश्नोत्तर की शैली अपनायी गयी है ।

(ख) सुत्तपिटक

पं० राहुल सांकृत्यायन सुत्तपिटक को प्रथम पिटक मानते हैं । इसे ही उन्होंने मुख्य माना है । बुद्धदेव के द्वारा दिये गये सब छोटे और बड़े उपदेशों के व्याख्यान का संग्रह सुत्तपिटक में अन्तर्लीन है । बुद्ध के प्रारंभिक जीवन का विवरण इसमें प्राप्त होता है जिस तरह विनयपिटक बौद्ध-संघ के नैतिक नियमों पर प्रकाश डालता है, उसी तरह सुत्तपि बुद्ध के `धम्म` पर ज्यादा बल देता है । सुत्तपिटक को `निकायों में विभक्त किया गया है --

दीघनिकाय

पालि साहित्य के सर्वश्रेष्ठ टीकाकार अश्वघोष `निकायों` का अर्थ ऐसे लगाते हैं --`संग्रह` या `घर` । दीघनिकाय के सभी सूत्र लम्बे हैं । इसके अन्तर्गत ३४ सूत्र समाते हैं । इन सूत्रों को तीन विभागों में रखा गया है --

सीलक्खन्धवग्ग, महावग्ग और पाथिकवग्ग ।

१-`पालि साहित्य का इतिहास` - राहुल सांकृत्यायन, पृ० १६४.

सीलक्खन्धकवग्ग

इसमें ये सूत्र आते हैं --

१- ब्रह्मजालसुत्र	२- सामञ्ञफलसुत्र
३- अम्बट्ठसुत्र	४- सोणदण्डसुत्र
५- कटवन्तसुत्र	६- महालिसुत्र
७- जालियसुत्र	८- महासीहनादसुत्र
९- पोट्ठपादसुत्र	१०- सुभसुत्र
११- केवट्ठसुत्र	१२- लोहिच्चसुत्र
१३- तेविज्जसुत्र	

इन सभी सूत्रों में शील या सदाचार की महिमा गायी गयी है । शील-संबंधी नियमों के अलावा कुछ प्रारंभिक सूत्रों में तत्कालीन जनजीवन के आचार-विचारों का परिचय मिलता है । व्यभिचार, कठोर-शब्द, हिंसा, लौकिक भोग्यवस्तुएँ, भूत-प्रेत-देवता आदि पर विश्वास जैसे व्यर्थ कर्मों को त्याग देने के उपदेश ही इन सूत्रों में दिखायी देता है । इतना ही नहीं, उस समय प्रचलित बासठ दार्शनिक-मतों की व्यर्थता के सम्बन्ध में बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश दिया । इस वर्ग को बुद्धदेव ने स्वयं अर्थजाल, धर्मजाल, ब्रह्मजाल, दृष्टिजाल, अलौकिक-संग्राम विजय जैसी संज्ञाएँ भी दी है ।[१] जातिगोत्र के अभिमान को छोड़कर विद्या और आचरण पर बल देना, हिंसा-रहित यज्ञ, निर्वाण के साक्षात्कार के उपाय, तपस्याओं में व्यर्थ शारीरिक कष्ट सहना, इन सबके प्रति बुद्धदेव ने भिक्षुओं को धर्मोपदेश सुनाये । वे भी इसी सूत्र में आते हैं ।

१- 'पालि साहित्य का इतिहास' - राहुल सांकृत्यायन, पृ० १८.

महावग्ग

इसके अन्तर्गत दस सूत्र आते हैं --

१- महापदानसुत्त	२- महानिदानसुत्त
३- महापरिनिब्बानसुत्त	४- महासुदस्सनसुत्त
५- जनवसभसुत्त	६- महागोविन्दसुत्त
७- महासमय सुत्त	८- सक्कपन्हसुत्त
९- सतिपट्ठानसुत्त	१०- पायासिराजञ्ञसुत्त

महापदानसुत्त में बुद्ध का चरित वर्णित है । महानिदान-सुत्त में तो भगवान ने अनात्मवाद, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि का उल्लेख किया है । महापरिनिब्बानसुत्त तो बुद्ध-देव के अन्तिम जीवन का लेखा-जोखा है । वैशाख-पूर्णिमा के दिन कुशीनारा में बुद्धदेव ने इसी वचन के साथ निर्वाण को प्राप्त किया था --`भिक्षुओं, सारे संस्कार क्षणिक है, आलस न कर, जीवन-लक्ष्य की ओर बढ़ो ।` वास्तव ऐसे ही उनके अन्तिम प्रभावशाली उपदेश बहुत हमें महापरिनिब्बानसुत्त में देखने को मिलता है । पालि में बुद्धदेव के जीवन पर प्रारम्भ से अन्त तक प्रकाश डालने वाला एक पूरा ग्रन्थ केवल `महापरि-निब्बानसुत्त` ही है ।

पाथिकवग्ग

दीघनिकाय का अन्तिम वर्ग है पाथिकवग्ग । इसमें ग्यारह सूत्र सम्मिलित हैं

१- पाथिकसुत्त	२- उदुम्बरिकसीहनादसुत्त
३- चक्कवत्तिसीहनादसुत्त	४- अग्गञ्ञसुत्त
५- सम्पादनीयसुत्त	६- पासादिकसुत्त
७- लक्खणासुत्त	८- सिगालोवादसुत्त
९- आटानाटियसुत्त	१०- संगीतिपरियाय सुत्त
१०- दसुत्तरसुत्त ।	

वास्तविक तपस्याओं का वर्णन, भिक्षुओं के कर्तव्यों का पालन, श्रमणों की उत्पत्ति, बुद्ध के उपदेशों की विशेषता, महापुरुषों के बत्तीस लक्षण, गृहस्थों का कर्तव्य आदि को पाथिकवग्ग के विभिन्न सूत्रों में स्थान प्राप्त हुआ है। कुछ विद्वानों ने इन सूत्रों में `सिगालोवादसुत्त` को बताया है और अशोक के `धम्म` का आधार भी इसी सूत्र को माना है।[१] कुछ अन्य विद्वानों का कहना है कि `आटानाटियसुत्त` का पारायण तो लंका में बीमारों पर सवार होने वाले भूतप्रेतादि को भगाने के लिए किया जाता था।

मज्झिमनिकाय

इस निकाय के १५२ सूत्रों को पन्द्रह वर्गों में विभक्त किया गया है --

१- मूलपरियायवग्ग	२- सीहनादवग्ग
३- ओपम्मवग्ग	४- महायमकवग्ग
५- चूलयमकवग्ग	६- गहपतिवग्ग
७- भिक्खुवग्ग	८- परिब्बाज्जकवग्ग
९- राजवग्ग	१०- ब्राह्मणवग्ग
११- देवदहवग्ग	१२- अनुपदवग्ग
१३- सुञ्ञतावग्ग	१४- विभंगवग्ग
१५- सलायतनवग्ग।	

ज्ञानियों के लक्षण, यथार्थ तपश्चर्या, बोधिप्राप्ति के साधन, आर्यसत्यों की भावना, भोगयुक्त जीवन के दुष्परिणाम, चित्तमलों का निराकरण, ब्रह्मचर्यपालन का उद्देश्य, भिक्षुजीवन का उद्देश्य, मुमुक्षुओं की विभिन्न श्रेणियाँ, तृष्णानाश के उपाय, इन्द्रियों का दमन, व्यर्थ व्रतपालन, लौकिक-बन्धनों से मुक्ति, निर्वाण-पथ का उदेश्य,

---

१- 'Buddhism in India and Abroad'-A.C. Banerjee, P.128.

जाति तथा वर्ण-व्यवस्था का खंडन, कर्मफल, आत्मवाद का खंडन, एकाग्रचित्तता, आदि विषयों से `मज्झिमनिकाय` के विशाल-काय की सृष्टि हुई है । वस्तुत: बुद्धदेव के मूल उपदेशों का प्रतिपादन ही इन सबका लक्ष्य है । इस वर्ग के चूळयमकवग्ग, देवदहवग्ग जैसे सूत्रों से यह बात भी ज्ञात होती है कि बुद्ध और जैनाचार्यों ने साथ मिलकर धार्मिक चर्चाओं में भाग लिया था । इसी प्रकार राजवग्ग से तत्कालीन भारत की वर्णव्यवस्था का वर्णन मिलता है । इस वर्ग को `मज्झिमसंगीति` की संज्ञा भी दी गयी है । इस वर्ग के सूत्रों में थेरवाद के कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का भी समावेश हुआ है, इसलिए इसे `बुद्धवचनामृत` की विशेष संज्ञा भी दी गयी है ।

इस निकाय में केवल बुद्धदेव के वचन ही नहीं, किन्तु सारिपुत्र, महाकच्चायन जैसे उनके शिष्यों के उपदेश भी संग्रहीत हैं । कुछ सूत्र ऐसे भी हैं, जो उनकी निर्वाण-प्राप्ति के पश्चात् जोड़े गये हैं ।

संयुत्तनिकाय

छप्पन संयुत्तों से पूर्ण यह निकाय पाँच वर्गों में विभक्त है --

१- सगाथवग्ग

२- निदानवग्ग

३- खन्धवग्ग

४- सळायतनवग्ग

५- महावग्ग ।

सगाथवग्ग में गेयपदों से युक्त सूत्र सम्मिलित हैं । अविद्या से लेकर पुनर्जन्म तक का भवचक्र ही निदानवग्ग का वर्ण्यविषय है । बुद्ध के तीनों मूल तत्व -- अनित्यता, अनात्मवाद और दु:ख की व्याख्या करके पंचस्कन्धों का विवेचन प्रस्तुत करता है तीसरा खन्धवग्ग । इसी विषय का गहराई से विवेचन ही सळायतनवग्ग में किया गया है ।

महावग्ग में तो बौद्धधर्म के दर्शन और सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है । इसके अतिरि उक्त निकाय से हमें पता चलता है कि बुद्ध अपने समय के सभी तीर्थंकरों से आयु में छोटे थे ।[१] संक्षेप में कहा जाय तो, इस निकाय में नैतिक तथा चरित्र सम्बन्धी विषयों के साथ दार्शनिक विषयों का भी समावेश हुआ है ।

अंगुत्तरनिकाय

तत्कालीन सोलह महाजनपदों का उल्लेख इसमें मिलता है । इसके अतिरिक्त इस निकाय में भारत की भौगोलिक स्थिति का भी परिचय मिलता है । यह निकाय ग्यारह `निपातों' में विभक्त है । एक-एक निपात अनेक वर्गों में और हरेक वर्ग अनेक सुत्तों में विभक्त है । वे ग्यारह निपात हैं --

१- एककनिपात
२- दुकनिपात
३- तिकनिपात
४- चतुक्कनिपात
५- पंचकनिपात
६- छक्कनिपात
७- सत्तकनिपात
८- अट्ठकनिपात
९- नवकनिपात
१०- दसकनिपात
११- एकादसकनिपात ।

इन ग्यारह निपातों में कुल-मिलाकर २३०८ सुत्त हैं । इन सुत्तों के द्वारा यह बताया गया है कि भिक्षु निर्वाण को कैसे प्राप्त करता है । उसके लिए ग्यारह द्वार खोल दिये गये हैं, इससे संबंधित विषय की चर्चा ही उक्त निकाय में की गयी है । वस्तुत: यह वर्ग भी सैद्धान्तिक पक्ष पर ही बल देता है ।

खुद्दक निकाय

कहा जाता है कि अन्य चारों निकायों के बहुत समय, बाद ही खुद्दक निकाय

१-`पालि साहित्य का इतिहास',- राहुल सांकृत्यायन, पृ० १०३.

का प्रकाशन हुआ । अन्य चारों निकायों की अपेक्षा यह निकाय विस्तृत है । इनमें जो पन्द्रह ग्रंथ सम्मिलित हैं, सब विभिन्न विषयों से संबंधित हैं । ये पन्द्रह ग्रंथ हैं--

१- खुद्दकपाठ	२- धम्मपद
३- उदान	४- इतिवुत्तक
५- सुत्तनिपात	६- विमानवत्थु
७- पेतवत्थु	८- थेरगाथा
९- थेरीगाथा	१०- जातक
११- निद्देस	१२- पटिसम्भिदामग्ग
१३- अपादान	१४- बुद्धवंस
१५- चरियापिटक ।	

खुद्दकपाठ

भिक्षुओं के लिए यह एक प्रारंभिक पुस्तक है । जब भिक्षु का संघ में प्रथम प्र होता है, तब इस में वर्णित पाठों का कंठस्थ करना उसके लिए आवश्यक बन जाता है संक्षेप में, खुद्दकपाठ बौद्धों के जीवन की नियमावली को प्रस्तुत करता है ।

धम्मपद

सारा धम्मपद बुद्ध का सुभाषित रत्न है । इसमें करीब ४२३ गाथाओं का समाहार देखने को मिलता है । इन गाथाओं को २६ वर्गों में विभाजित किया गया इस वर्ग की गाथाएँ महाभारत, भगवद्गीता आदि महान् ग्रन्थों की गाथाओं के स हैं । सारे त्रिपिटकों में धम्मपद का अपना एक विशिष्ट स्थान है । इस ग्रन्थ की ल का एक कारण यह भी है कि लोककल्याण को सम्मुख रखकर ही इसकी रचना हुई

उदान

यह तो एक लघुग्रंथ है । तो भी ज्ञानगंभीर और सारगर्भित है । इसमें ८ सम्मिलित हैं । ये आठ वर्गों में विभक्त हैं । निर्वाण रूपी उस परमपद से संबंधित गाथायें इसमें प्राप्त हैं ।

इतिवुत्तक

भगवान् बुद्ध के वचनों को सही रूप में `इतिवुत्तक` प्रस्तुत करता है । इस ग्रंथ के हरेक सुत्त के आरम्भ में `इतिवुत्तं भगवता` (ऐसा भगवान ने कहा), पाठ बार-बार आता है । इसके ११२ सुत्तों को चार निपातों में विभक्त किया गया है ।

सुत्तनिपात

इस ग्रंथ के सुत्त तो गेय हैं । इसके ७० सुत्त पाँच वर्गों में विभक्त है । इस प्राचीन ग्रंथ की भाषा पर वैदिकी भाषा का थोड़ा प्रभाव पड़ा है ।

विमानवत्थु

इस ग्रंथ में ८५ कथाएँ, गाथाओं के रूप में दी गयी है । इन्हें सात वर्गों में रखा गया है । कहा जाता है कि यह तो बुद्धवचनों का संग्रह नहीं, क्योंकि यह अशोक के समय लिखा हुआ है । इन गाथाओं में देवताओं के वैभवपूर्ण जीवन की झाँकी मिलती है ।

पेतवत्थु

विमानवत्थु के समान पेतवत्थु भी एक लघुग्रन्थ है । इसकी ५१ कथाएँ चार वर्गों में वर्णित हैं । अपने पापकर्मों के कारण नरक में पड़े हुए लोगों की कथा इस ग्रन्थ में बतायी गयी है । नरक के घोर और असह्य कष्टों की ओर संकेत करके लोगों को पाप से विमुख करा देना ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है । इस प्रकार इस ग्रन्थ का आधार है कर्मवाद ।

थेरगाथा

बुद्धकालीन स्थविरों की गाथाओं को ही इस ग्रन्थ में संगृहीत किया है भिक्षु धर्मपथ से अग्रसर होता है, वह `थेर` या `स्थविर` कहलाता जाता है । स

जीवन और आध्यात्मिक गुणों के कारण ऐसे थेरों का सम्मान किया जाता था ।

इस ग्रन्थ में करीब डेढ़ सौ गाथायें सुरक्षित हैं । लौकिक जीवन से विरक्त होकर धार्मिक जीवन बिताकर परमपद पर पहुँचने के बारे में, इसमें बताया गया है । तत्कालीन सामाजिक जीवन में स्त्रियों का स्थान कैसा है, इस पर `थेरगाथा` प्रकाश डालता है ।

`थेरीगाथा`

जो भिक्षुणी धर्मपथ में आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करती है, वह `थेरी` से जानी जाती है । इस ग्रन्थ में ५२२ गाथाएँ हैं । वास्तविक जीवन को चित्रित करने थेरीगाथा, थेरगाथा से एक कदम आगे है ।

जातक

इसमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ वर्णित हैं । इसमें ५४७ बुद्धकालीन लोकथाओं का उल्लेख मिलता है । विश्वसाहित्य में जातकों का अपूर्व स्थान है, उसे `अद्दायनिधि` की संज्ञा से भी पुकारा जा सकता है । गद्य और पद्य, दोनों तरह के जातक होते हैं । जनमानस को प्रभावित करके बौद्धधर्म की लोकप्रियता को बढ़ाना ही जातकों का मुख्य उद्देश्य था । वस्तुत: ये जातक-कथाएँ तत्कालीन आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा लोग के आचार-विचारों पर भी प्रकाश डालती हैं । इन कथाओं द्वारा करुणा, दया, सहानुभूति, आत्मत्याग जैसे सद्भावों के महत्व को दर्शित करने का प्रयास भी किया गय है ।

निदेस

बुद्धदेव के शिष्य सारिपुत्त से संबंधित एक ग्रंथ है `निदेस` । इसके दो विभाग है -- महानिदेस और चूलनिदेस । इसमें कई देश और बन्दरगाहों का चित्रण मिलता है जिनके साथ भारत का वाणिज्य संबंध था ।

पटिसम्भिदामग्ग

यह तो प्रश्नोत्तर शैली को अपनाकर लिखा हुआ ग्रन्थ है । इसके तीन वर्ग है महावग्ग, युगनद्धवग्ग और प्रज्ञावग्ग । ज्ञान, स्मृति, कर्म, आर्यमार्ग, चर्या जैसी वृत्तिय का वर्णन इसमें मिलता है ।

अपादान

इस ग्रंथ को हम थेरगाथा और थेरीगाथा का पूरक ग्रन्थ भी मान सकते हैं । क्योंकि इसमें बौद्धभिक्षु-भिक्षुणियों के उदार-कार्यों का गेय-रूप में वर्णन है ।

बुद्धवंस

गौतम बुद्ध के पूर्व के चौबीस बुद्धों का वर्णन इस ग्रन्थ में मिलता है ।

चरियापिटक

दस पारमिताओं को पार करने पर ही बोधिसत्व `बुद्ध` बन जाता है । लोगों को एक आदर्शमय जीवन प्रदान करना ही इस ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है । दस पारमिताओं को पार करने वाले बुद्धों की बात ही उक्त ग्रन्थ का विषय है ।

(ग) अभिधम्मपिटक

`अभिधम्म` का अर्थ है `उच्च धर्म` । इसका एक दूसरा भी अर्थ है `दर्शन` ।[१] इस पिटक में सात ग्रन्थों को रखा गया है --

१- पुग्गलपञ्ञति
२- विभंग
३- धम्मसंगणि
४- धातुकथा
५- यमक
६- पट्ठान
७- कथावत्थु ।

१- `हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (खण्ड १), पृ० २८५

अभिधम्मपिटक के सभी ग्रन्थों से विभिन्नता रखने वाला ग्रन्थ `पुग्गलपञ्ञत्ति` प्रश्नोत्तर शैली को लेकर चलता है । `विभंग` में तो पाँचों स्कन्धों का विवरण दिया गया है ।`धम्मसंगणि` तो बौद्ध-नीतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करता है । इसमें तो मानसिक वृत्तियों के कुशल और अकुशल रूपों का विश्लेषण किया गया है । स्कन्ध आयतन और धातु को `धातुकथा` नामक ग्रन्थ ने विषय बनाया है । `यमक` में तो प्रश्न जोड़े के रूप में रखे गये हैं । `पट्ठान` तो आकार में विशाल ग्रन्थ है । `कथावत्थु` के रचयिता है मोग्गलिपुत्त तिस्स ।उन्हीं को अशोक के गुरु भी माने जाते हैं । इस ग्रन्थ में २३ अध्याय हैं । विभिन्न मतान्तरों का खण्डन करके वास्तविक मन्तव्य को प्रस्तुत करने के हेतु इस ग्रन्थ की रचना की गयी थी ।

(२) अनुपिटक साहित्य

`त्रिपिटक` के अतिरिक्त पालि में और भी कई ग्रन्थ प्राप्त है, जो बौद्ध धर्म से संबंधित है । इनको`अनुपालि` या`अनुपिटक` की संज्ञा दे सकते हैं । इन अनुपिटक साहित्य ग्रन्थों में अनेक सिंहली भिक्षुओं की ही देन है । `नेतिप्रकरण`,`पेटकोपदेस`, `सुत्तसंगह`, `मिलिन्दपन्ह`, `दीपवंश`, अश्वघोष का`विशुद्धिमग्ग`, `अपरअर्थकथाएँ`, धम्मपाल की `अर्थकथाएँ`, लंका में रचित `महावंश`, अनिरुद्ध का अभिधम्मत्थसंगह, धर्मानन्दकोशाम्बी के`विशुद्धिमग्गदीपिका` और `अभिधम्मत्थ संगह की टीका` अनुपिटक साहित्य के अन्तर्गत आते हैं ।

मिलिन्दपन्ह

यह अनुपालि साहित्य का एक मुख्य बौद्धग्रन्थ है । यवन राजा मिलिन्द और बौद्ध-भिक्षु नागसेन के संवाद को इसमें उद्धृत किया गया है । विंटरनित्स ने इसकी तुलना `डयलाग्स आफ प्लाटो` से की है ।[१] इसका संकलनकर्ता स्वयं नागसेन ही है । इस ग्रन्थ में

१-`हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास`,(खण्ड १), पृ० २८५.

सात अध्याय है । आज भी यह एक तर्कसंगत विषय है कि इसके अन्त के दो-तीन अध्या जुड़े हुए हैं कि नहीं ?

नेति प्रकरण

नेति, `मार्गदर्शक` का समानार्थक है । बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का पथप्रदर्शन कर ही उक्त ग्रन्थ का उद्देश्य है । कहा जाता है कि यह कृति बुद्धदेव के एक मुख्य शिष्य महा कात्यायन से संबंधित है । इन्हीं को `नेतिप्रकरण` का रचयिता भी माना जाता है । `नेतिप्रकरण` बुद्ध की शिक्षाओं का पूर्ण विवरण देता है ।

पेटकोपदेस

`नेतिप्रकरण` की तरह इसके ग्रंथकर्ता के रूप में महाकात्यायन को स्वीकार किया गया है । इस ग्रन्थ को नेतिप्रकरण का शेष भाग माना जाता है । बुद्धदेव के चार आर्य-सत्यों का व्याख्यान इस ग्रन्थ का विषय है ।

कालक्रम के अनुसार `मिलिन्दपन्ह` के बाद टीकाकारों का एक बड़ा तान्ता ही लगा रहा । इनमें बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल सर्वश्रेष्ठ हैं ।

बुद्धदत्त, बुद्धघोष के समकालीन थे । `विनय` और `अभिधम्म` पर उन्होंने अनेक टीकाएँ लिखीं । उनमें `विनयविनिच्चय`, `उत्तरविनिच्चय`, `अभिधम्मवतार` और `रूपारूपविभंग` मुख्य हैं । इनमें प्रथम दोनों विनयपिटक पर लिखी हुई हैं । इनमें संघ के भिक्षु-भिक्षुणियों के लिए लिखे हुए विनय के नियम हैं । अभिधम्मवतार` तो `अभिधम्म-पिटक` पर लिखी हुई है । बुद्धदत्त की लिखी हुई टीकाओं में यही प्रधान हैं ।

अनुपिटक साहित्य में मुख्य स्थान बुद्धघोष का है । बौद्धधर्म और उनके तत्वों का प्रचार करने के लिए उन्होंने प्रशंसनीय कार्य किये । भिक्षु रेवत ने ही उनको बौद्ध धर्म की ओर अग्रसर किया था । उनके ग्रन्थों में विसुद्धिमग्ग, `ननोदय` आदि मुख्य हैं । इनमें

`विशुद्धिमग्ग` सिंहली-ग्रंथ है । महावंश के अनुसार, `विशुद्धिमग्ग` त्रिपिटकों का सार प्रस्तुत करता है । वस्तुत: यह ग्रंथ, बुद्धघोष के सूक्ष्म ज्ञान और तीक्ष्ण बुद्धि का परि है ।[१]

`विनयपिटक` पर लिखी हुई दो टीकाएँ हैं -- समन्तपसादिका और कंकविता ण्णी । विनय के नियमों के अतिरिक्त इनमें बौद्धसंगीति का उल्लेख, अठारह महाविहा का वर्णन, प्रातिमोक्ष का वर्णन आदि पर भी प्रकाश डाला गया है ।

बुद्धघोष ने जो कार्य अपूर्ण करके छोड़ा, उसे पूर्ण करने का श्रेय धम्मपाल क है । उन्होंने `खुद्दक-निकाय` और `विशुद्धिमग्ग` पर टीकाएँ लिखीं हैं । ये तत्कालीन रतीय धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण करती हैं । इसके अतिरिक्त पालि में बुद्ध की जीवनी पर `निदान-कथा` नामक एक ग्रन्थ भी उपलब्ध है । इसके ग्रंथकर्ता के बारे में आज तक हमारा ज्ञान अपूर्ण है ।

बौद्ध-साहित्य में वंशग्रंथों का स्थान मुख्य है । अनुपिटक-साहित्य के अन्तर्गत ही ये वंशग्रन्थ भी आते हैं । इन वंशग्रन्थों की सामग्री में अधिक संगीत, अधिक स्पष्टीक और अधिक सत्यता दिखाई देती है । इस वंश-साहित्य की रचना ई० की चौथी शताब्द से ही आरम्भ हुई । तब से आज तक इसका निर्माण निरन्तर चल रहा है । मुख्य वंशग्र का विवरण नीचे दिया जाता है --

(क) दीपवंश

यह श्रीलंका का मुख्य इतिहास-ग्रंथ है । लंका के साहित्य में यही पहला इति ग्रंथ है ।[२] लंका की प्राचीन शासन-परम्परा की जानकारी प्रदान करने वाले इस एकमात्र

१- '2500 years of Buddhism' - P.217.

२- `संस्कृत साहित्य का इतिहास`, वाचस्पति गैरोला, पृ० ४१८.

ऐतिहासिकता पर विशेष ध्यान दिया गया है । पालिसाहित्य और बौद्धधर्म के विकास पर भी दीपवंश प्रकाश डालता है । पालि की अट्ठकथाओं पर आधारित इस ग्रंथ ग्रंथकर्ता के बारे में सब कुछ हैं ।

ख) महावंश

विषय, क्रम, रूप, शैली-सभी दृष्टियों से महावंश और दीपवंश, दोनों में मानता है । इस ग्रंथ का रचना-काल विद्वानों ने पाँचवीं या छठी शताब्दी को माना । इसके रचयिता है मदन्त महानाम ।

वास्तव में दोनों ग्रंथ गौतम-बुद्ध की जीवनी से हमें परिचित कराते हैं । तीनों बौद्ध-संगीतियाँ, महेन्द्र और संघमित्रा द्वारा लंका में बौद्धधर्म का प्रचार आदि विषय भी दोनों ग्रंथों में समाहित हैं ।

ग) महाबोधिवंश (बोधिवंश)

ऊपर के दोनों इतिहास-ग्रंथों का आधार लेकर बोधिवंश की कथावस्तु तैयार हो गयी । इसमें बौद्धधर्म के इतिहास के साथ-साथ, लंका में स्थित बोधिवृक्ष पर लिखी हुई कुछ पंक्तियाँ भी मिलती हैं । इस ग्रन्थ का संबंध तो सिंहली-भिक्षु उपतिस्स(उपनिष्य) के साथ जोड़ा जा सकता है, जो ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य में जीवित थे । इसमें बुद्धदेव के जीवन की संबोधि, महापरिनिर्वाण, तीनों संगीतियों का आयोजन जैसी प्रमुख घटनाओं का वर्णन प्राप्त होता है ।

घ) दाठवंश

संस्कृत के प्रकांड पण्डित महास्थविर धर्मकीर्ति की रचना है `दाठवंश` या `दंतधातु-वंश` । संस्कृत-मिश्रित पालि में इसकी रचना हुई है । इसमें बुद्धदेव के दांत-धातु की कथा वर्णित है । बौद्ध साहित्य के लिए `दाठवंश` एक महत्वपूर्ण देन है ।

(ङ) थूपवंश

तेरहवीं शताब्दी में सिंहली भिक्षु वाचिस्सर द्वारा इस ग्रंथ की रचना की गयी । भगवान बुद्ध की स्मृति को बनाये रखने के उद्देश्य से निर्मित विविध प्रकार के स्तूप का वर्णन `थूपवंश` के अन्तर्गत आता है ।

(च) अत्तनगलुविहारवंश

तेरहवीं शताब्दी में इस ग्रंथ का चयन हुआ । इसके ग्रंथकर्ता का नाम अविदित है । किसी विहार के नाम पर ही इस ग्रंथ का नामकरण हुआ है ।

(छ) छकेसधातु वंश

उन्नीसवीं शताब्दी में किसी बर्मी भिक्षु द्वारा लिखित ग्रन्थ है `छकेसधातुवंश` छः केशों पर निर्मित स्तूपों का वर्णन इसमें प्राप्त होता है ।

(ज) गन्धवंश

पालि के ग्रंथ और ग्रंथकारों का इतिहास इस ग्रंथ के अन्तर्गत उपलब्ध होता है पालि ग्रन्थकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण, उनका ऐतिहासिक क्रम से परिचय, भारत औ लंका के ग्रंथकारों की विभिन्न सूचि आदि इसमें प्राप्त होते हैं । उन्नीसवीं शताब्दी में रचित इसके ग्रंथकर्ता है नन्दप्रज्ञा ।

(झ) सासनवंश

बर्मा के प्रसिद्ध भिक्षु पंनसामी ने उन्नीसवीं शताब्दी में इसकी रचना की । बर्मा में बौद्ध धर्म के प्रचार तथा देश-विदेशों में उसके प्रचार एवं प्रसार के बारे में यह उचित प्रकाश डालता है । बुद्ध-शासन का इतिहास इस ग्रंथ का मुख्य स्वर है । तृतीय संगीति के बाद विदेशों में भेजे गये धर्मोपदेशक भिक्षुओं का भी इस ग्रन्थ में वर्णन मि है ।

(न) बुद्धघोसुप्पत्ति

यह चौदहवीं शताब्दी की, सिंहली भिक्षु महामंगल की रचना है। यह बुद्धघो की जीवनी को प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ है। यह ग्रंथ अधिकतर अनुश्रुतियों पर ही आधारि है।

(त) सद्धम्मसंग्रह

यह बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ, दीपवंश तथा महावंश पर आधारित ग्रंथ है। भिक्षुसंघ के इतिहास का वर्णन इसमें किया गया है। इसके ग्रंथकर्ता हैं धम्मकीर्ति महासा

इन ऐतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्धधर्म से संबंधित अनेकों पुस्तिकाएँ पालि उपलब्ध हैं। चुल्लाधम्मपाल की `सककसंक्षेप', अनुरुद्धाचार्य की `अभिधम्मत्थसंगह', `नाम-रूपपरिच्छेद', `सुत्तसंगह', `सुबकशिक्षा' तथा `मूलशिक्षा' इसमें मुख्य हैं।

पालि के काव्यग्रंथ

पालि में काव्य-साहित्य का अभाव भी नहीं है। पालिकालपरवर्ती साहित्य शुद्ध धार्मिक हैं, इनमें कुछ साहित्यिक कृतियाँ भी हैं। काव्यग्रंथों में अधिक लंका और बर्म में ही लिखा गया है। दसवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक लंका और बर्मा में काव्य-निर्माण की प्रवृत्ति देख सकते हैं। मुख्य काव्य-ग्रंथ ये हैं --

अनागतवंश

कस्सप से इसकी रचना की गयी। इसमें बुद्ध के आने वाले जन्म की कथा वर्णि है। `बुद्धवंश' के अनुकरण पर ही यह भी लिखा गया है।

जिनचरित

मेधंकरकृत `जिनचरित' का रचनाकाल तेरहवीं शताब्दी है। निदान-कथा के आधार पर लिखित इस ग्रंथ में बुद्ध की जीवनी का चित्र अंकित किया गया है।

तेलकटाहगाथा

पंनमधु

तेरहवीं शताब्दी में स्थविर बुद्धप्पिय ने इस ग्रन्थ की रचना की । इसमें महात्मा बुद्ध के स्तुतिगीत हैं ।

सद्धम्मोपायन

सिंहली भिक्षु सोमप्पिय ने बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के बीच इस ग्रंथ का प्रणयन किया । महात्मा बुद्ध के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन इसका वर्ण्य-विषय है ।

पंचगतिदीपन

इसके रचनाकाल और ग्रंथकर्ता के बारे में कोई भी नहीं जानता । मनुष्य अपने मनसा, वाचा, और कर्मणा, जो कुछ करता है, उसी के फलस्वरूप उसका पुनर्जन्म होता है । अपने पापकर्म के अनुसार उसे नरक की यातनाएँ अनुभव करनी पड़ती हैं । ये सभी बातें इस ग्रंथ में समाहित हैं । इस ग्रंथ के बारे में डा० बी० सी० लॉ का मत है कि पुराने ग्रंथों की अपेक्षा यह ग्रंथ बहुत ही सरल है ।[१]

संस्कृत में बौद्धसाहित्य

मत-मतान्तर, वाद-विवाद आदि स्वाभाविक है । जहाँ लोग मिलते हैं, एक जैसा मत नहीं होता । क्योंकि लोगों के दृष्टिकोणों में अन्तर होता है । विचारों की भिन्नता मतमतान्तरों में परिवर्तित कर देती है । महात्मा बुद्ध के जीवन-काल में भी ऐसे अनेक मतों का अस्तित्व था । लेकिन ये वादविवाद उतने खुले रूप में नहीं थे, जितने उनके महापरिनिर्वाण के बाद था । उनके जीवन-काल में ये मत-मतान्तर केवल बीज-मात्र था, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात ये फूले-फले । विभिन्न मतों का दल बांधा गया । बुद्धदेव के सिद्धान्तों और शिक्षाओं की मौलिकता को लेकर उनमें वाद-विवाद होने लगे

१- 'Buddhism in India and abroad'-A.C. Banerjee,P.157.

संप्रदायों में थेरवाद, सर्वस्तिवाद, महासंघिक आदि मुख्य हैं । इन संप्रदायों ने
त्मा बुद्ध के सिद्धान्तों को अपने पास सुरक्षित रखा । थेरवादियों ने पालि को अपना
: बौद्ध-शिक्षाओं को उसी पालि साहित्य में सुरक्षित रखा । सर्वस्तिवादियों ने
त को ही अपनाया ।

स्थविरवाद या थेरवाद और सर्वस्तिवाद दोनों संप्रदायों का निकट संबंध
जो स्थविरवादी भिक्षु मगध से काश्मीर आ पहुँचे, वे ही सर्वस्तिवादी कहलाये ।
कनिष्क को ही अपना सबसे बड़ा पोषक मानते हैं । विभिन्न धर्माचार्यों के पारस्परिक
र्भ को दूर करके बौद्धधर्म के स्वरूप को निश्चित दिशा और स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य
ो कनिष्क ने अपने समय में बौद्धसंगीति का आयोजन किया था । इसमें बौद्धग्रन्थों की
ाणिकता का स्वरूप निश्चित किया गया और त्रिपिटकों पर टीकाएँ भी लिखीं
। इन सर्वस्तिवादियों ने संस्कृत को ही अपनाया था । इन्होंने प्रामाणिक ग्रन्थों
सुरक्षित रखने का बड़ा प्रयत्न किया था । सर्वस्तिवादियों के संस्कृत त्रिपिटकों का
छोटा-सा विवरण नीचे दिया जाता है --

संस्कृत में त्रिपिटकों के तीन विभाग हैं -- आगम, विनय और अभिधर्म्म ।

मपिटक

पालिपिटकों की तरह आगमपिटक भी चार ग्रन्थों में विभक्त है -- दीर्घागम,
मागम, संयुक्तागम और एकोत्तरागम ।

यपिटक

संस्कृत में विनयपिटक के चार विभाग हैं -- विनयविभंग, विनयवस्तु, विनय-
स्तु और विनयउत्तरग्रंथ ।

धर्म्मपिटक

थेरवादियों के अभिधम्मपिटक के समान सर्वस्तिवादियों के अभिधर्म्मपिटक के
सात ग्रंथ हैं --

१- ज्ञानप्रस्थान सूत्र
२- संगीतिपर्याय
३- प्रकरणपद
४- विज्ञानकाय
५- धातुकाय
६- धर्मस्कंध
७- प्रज्ञप्ति-शास्त्र ।

इनके अतिरिक्त अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यअसंग, वसुबन्धु, आचार्य दिङ्नाग, चन्द्रगोमिन्, धर्मकीर्ति, बुद्धपालित, भावविवेक, जैसे बौद्धाचार्यों ने संस्कृत में बौद्धकृतियों का प्रणयन करके अपने उदार विचारों से बौद्धधर्म का महत्व बढ़ाया ।

अश्वघोष

महायान संप्रदाय के आचार्य, बौद्धन्याय के प्रकाण्ड पण्डित, संस्कृत साहित्य के महाकवि अश्वघोष, कनिष्क के गुरु तथा सभापण्डित थे । बौद्धसाहित्य में ही नहीं, सारे संस्कृत-साहित्य के क्षेत्र में भी अश्वघोष के समान कोई साहित्यानुरागी आज तक नहीं हुआ है । उनके ग्रंथों में `बुद्धचरित` `सौन्दरानन्द`, और `सारिपुत्रप्रकरण` आदि मुख्य हैं । `बुद्धचरित` और `सौन्दरानन्द` में तो बुद्ध के जीवन संबन्धित कथाएँ वर्णित हैं । `सौन्दरानन्द` में तो बुद्धदेव के विमातृज भाई नन्द के बौद्धभिक्षु बनने की कथा भी उद्धृत की गयी हैं ।

नागार्जुन

आचार्यपाद नागार्जुन बौद्धन्याय के यशस्वी निर्माता हैं । उनकी बहुमुखी अं असामान्य प्रतिभा और पाण्डित्यपूर्ण कृतियों के कारण बौद्ध-साहित्य गौरवान्वित है । नागार्जुन के जीवन के संबन्ध में तर्कसंगत बातें चल रही हैं ।

बौद्धभिक्षु कुमारजीव के अनुसार नागार्जुन दक्षिण के एक ब्राह्मण परिवा में पैदा हुए थे । तिब्बतीय इतिहासकार लामा तारानाथ, तो नागार्जुन के जीवन के में ऐसा मत प्रकट करते हैं कि प्रौढ़ावस्था तक वेदों का अध्ययन करने के बाद, उन्होंने

बौद्धधर्म की दीक्षा ली । उसके बाद वे नलन्दा महाविहार आये । युवानच्वांग तो अश्वघोष, कुमारलात, आर्यदेव, और नागार्जुन को `चार सूर्य` कहते हैं । आचार्य नाग की स्वरचित बारह कृतियों का उल्लेख मिलता है । उनमें `माध्यमिक-कारिका`, `महा-प्रज्ञापारमितासूत्रकारिका` आदि का विशेष स्थान है ।

बुद्धपालित और भावविवेक

ये दोनों आचार्य, नागार्जुन के शून्यवाद के टीकाकार रहे । दोनों पाँचवीं शताब्दी में जीवित थे ।

आर्य असंग

बौद्धदर्शन को शास्त्रीय युग की ओर मुड़ा देने का श्रेय आर्य-असंग को है । विज्ञानवाद के प्रवर्तक के रूप में असंग यशस्वी हुए । `महायान संपरिग्रह`, `प्रकरण आर्य` `योगाचार-भूमिशास्त्र`, `महायानसूत्रालंकार`, आदि असंग की प्रमुख रचनाएँ हैं । इनमें से के दोनों नैतिकतापूर्ण और आदर्शपूर्ण ग्रन्थ हैं ।

वसुबन्धु

वसुबन्धु के स्थितिकाल के बारे में कई तर्क-संगत वाद-विवाद है । आधुनिक विद्वानों ने तो उनका स्थितिकाल २८०-३६० ई० के बीच निर्धारित किया है । बौद्ध साहित्य का चिरस्मरणीय ग्रंथ `अभिधर्मकोश` उन्हीं की अक्षयनिधि है । उनके समय आचार्यों ने उनको `दूसरा बुद्ध` की संज्ञा दी थी[१] । उन्होंने परमार्थसप्तति, तर्कशास्त्र

१- "Basomitra, who wrote a commentary named the SPHUTARTHA on Vasubandhu's 'Abhidarma Kosabashya', says that on account of his spiritual attainments, vasubandhu was known as 'Second Buddha' by his contemporaries".

-2500 years of Buddhism, P.197.

वादविधि, सद्धर्मपुण्डरिकसूत्र, महापरिनिर्वाणसूत्र, प्रतीत्यसमुत्पादसूत्र टीका, आदि महायान और हीनयान संप्रदायों से संबंधित कृतियों का उन्होंने प्रणयन किया है ।

आचार्य दिङ्नाग

बौद्धन्याय के पिता आचार्य दिङ्नाग गुप्तकाल में जीवित थे । तिब्बती ग्रंथ के अनुसार दिङ्नाग, वसुबन्धु के शिष्य थे । अपने गुरु से उन्होंने हीनयान तथा महाय दोनों संप्रदायों के सिद्धान्तों का ज्ञानोपार्जन किया । उनकी रचनाओं में `प्रमाणसमुच्च मुख्य है । इसके अतिरिक्त, `न्यायप्रवेश', `हेतुचक्रनिर्णय', `प्रमाणसमुच्चयवृत्ति', आदि ग्रं को लिखकर यह साबित किया कि वे तत्कालीन न्यायदर्शन के कितने निकट है ।

धर्मकीर्ति

दिङ्नाग की शिष्यपरंपरा में धर्मकीर्ति शान्तरक्षित और कर्मशील विशेष उल्लेखनीय हैं । वे सातवीं शताब्दी के उपज थे । नलन्दा विश्वविद्यालय के धर्मपाल के शिष्यत्व में ही धर्मकीर्ति ने अपना जीवन बिताया था । प्रमाण-विनिश्चय, न्यायबिन्दु हेतुबिन्दु आदि उनके ग्रंथ हैं । सब बौद्धसिद्धान्तों से संबंधित ग्रन्थ हैं ।

चन्द्रगोमिन्

आचार्य चन्द्रगोमिन् की प्रतिभा वैविध्यपूर्ण थी । उन्होंने बौद्धसाहित्य को अनेक अनूठी कृतियां भेंट कीं । वे महायानी बौद्धाचार्य वसुबन्धु के शिष्य थे ।

इन बौद्धाचार्यों के ग्रंथों के अतिरिक्त बौद्धधर्म के मुख्यग्रंथ `महावत्थु' और `ललितविस्तर' भी संस्कृत में ही रचे हैं, जो क्रमश: हीनयान और महायान के मुख्य ग्रंथ हैं । महात्माबुद्ध के जीवन-चरित के अतिरिक्त, इसमें अनेक जातक-कथाओं का भी उल्लेख मिलता है । महायान-ग्रंथ `ललितविस्तर' तो बुद्ध की लोकोत्तरकथाओं को प्रस्तुत करता है । इसके अतिरिक्त `सद्धर्मपुण्डरीक' भी महायान पर बहुत प्रकाश डालता है । शुद्ध औ पवित्र जीवन, साधारण मनुष्य को `बुद्ध' बनाता है, यही पवित्र सन्देश ग्रंथ का सार है । महायान संप्रदाय का एक अन्य ग्रंथ `अवलोकितेश्वर-काण्ड-व्यूह' भी अवलोकितेश

यशोगान करता है । इसमें दया के सागर अवलोकितेश्वर सभी प्राणियों का दु:ख चन न होने तक बुद्धत्व प्राप्त करना नहीं चाहते ।

दिव्यावदान, अवदानशतक, जातक माला आदि संस्कृत के बौद्धग्रंथ हैं, जिनमें के पूर्व जन्म की घटनाओं का वर्णन मिलता है । अन्त में हम यह देख सकते हैं कि द्धों ने संस्कृत में मंत्र-तंत्रों की `धारणी` नामक पुस्तकों की भी रचना की है । समस्त धाओं को दूर करने का जादू उसमें वर्णित है । वस्तुत: यहाँ हमें शाक्त एवं शैव-तंत्रों प्रभाव ही देखने को मिलता है ।

३- भारत के सांस्कृतिक बौद्ध-केन्द्र और गुहागृह

भारत में अपनी पूर्ण छाप डालकर महात्मा बुद्ध ने अपनी इहलीला समाप्त । आज हमारे बीच में तथागत का पार्थिव रूप नहीं, तो भी उनके चरणकमलों से हुए स्थान इतने पवित्र हैं कि लोग उन स्थानों की धूली को सिर-चढ़ाकर अपने को य मानते हैं और उनके प्रति अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं । भगवान की निर्वाण-प्ति के पहले, उन्होंने चार ऐसे स्थानों की ओर संकेत किया था, जिन्हें वे सबसे वत्र मानते थे । वे हैं -- लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ और कुशीनारा । इनके तरिक्त उनके जीवन और बौद्धधर्म से निकट संबंध रखने वाले स्थान हैं -- श्रावस्ती, जगृह, वैशाली आदि ।

महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् भी उनके दिव्य-धर्म का प्रचारकर और र होता रहा । उनके अनुयायियों ने उस धर्म के आलोक को युग-युग तक प्रसारित करने हेतु कलादेवी की शरण में जाने का निश्चय किया । गुप्तों के जैसे कला के साधकों ने इसी समय भगवान बुद्ध के जीवन और उनके सिद्धान्तों को कलात्मक ढंग से सजाया । प्रकार बौद्धधर्म ने इन स्थानों को भी आकर्षक और पवित्र बना दिया । लेकिन श: बौद्ध धर्म के लुप्त हो जाने के साथ-साथ, इन स्थानों का प्राधान्य कम होता ा और उनके खंडहर ही रह गये । यह सौभाग्य की बात है कि भारत के पुरातत्व

वेत्ताओं के अनुसंधान के फलस्वरूप अंधकार में विलीन उन खंडहरों को हम प्रकाश में ला सके ।

(क) मुख्य बौद्ध-तीर्थ

लुम्बिनी

बौद्ध-पुण्य तीर्थों में लुम्बिनी सर्वप्रथम आता है, जहाँ बुद्धदेव का जन्म हुआ था । बौद्धग्रंथों में बताया गया है कि यह लुम्बिनी-वन कपिलवस्तु से बारह मील की दूरी पर स्थित था । कहा जाता है कि जब प्रसवकाल का समय निकट आया तो सिद्धार्थ की माँ महामाया ने देवदाह में स्थित मायके जाने का आग्रह प्रकट किया । मार्ग में लुम्बिनी-कानन के प्रकृति सौन्दर्य से आकृष्ट होकर मायादेवी ने वहाँ क्षण भर विश्राम लेना चाहा । एक शाल-वृक्ष की डाली पकड़ने के लिए रानी ने अपना हाथ उठाया । उसी समय सिद्धार्थ का जन्म हुआ । एक दिव्य ज्योति से चारों दिशाएँ प्रकाशित हुईं । पहले देवताओं तथा पश्चात् उनके गृहवालों ने बच्चे का स्वागत किया । कहा जाता है कि जन्म होते ही बच्चे ने एक अलौकिक चमत्कार दिखाया था । भूमि पर स्थित होकर उसने कहा था कि मैं जगत का नायक हूँ ।[१]

बुद्ध देव के इस जन्म स्थल को भारतीय कला में एक उन्नत और विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है । शिल्पकला और चित्रकला में सुन्दर रेखों और रूपों के साथ इसे व्यंजित भी किया है ।

उत्तरप्रदेश की रुमिनदेई जगह ही लुम्बिनी साबित हुई है । प्रकृति सौन्दर्य से युक्त इस कानन में महात्मा अशोक ने एक स्तंभ खड़ा किया था और अपनी तीर्थयात्रा की स्मृति में उस पर बुद्ध के जन्म संबंधी प्रमाण प्रस्तुत किये हैं ।

१- "I am the foremost of the world"
-"Buddhist Shrines in India", P.13.

बोधगया

बौद्धधर्म के इतिहास में बोधगया का महत्व भी अद्वितीय है । 'गया' के पास उरुवेला नामक स्थान में ही शाक्यमुनि ने ज्ञान-प्राप्ति की थी । एक पीपल वृक्ष की छत्रछाया में बैठे हुए गौतम को संबोधि प्राप्त हुई । तब से यह स्थान बोधगया के नाम से प्रसिद्ध हुआ और यह वृक्ष 'बोधिवृक्ष' । पुराने जमाने में तो इस स्थान को 'संबोधि' की संज्ञा ही दी गयी थी ।[१] बौद्धों के लिए यह स्थान इतना पवित्र है कि कोसों मील की दूरी से भी लोग यहां आते थे । आज भी इसकी महत्ता कम नहीं हुई । इस स्थान की पवित्रता के कारण ही क्रमश: यहाँ असंख्य स्तूपों और विहारों का निर्माण कराया गया ।

सर्वप्रथम यहाँ के बौद्ध स्तूपों और विहारों पर प्रकाश डालने वाले महान् थे सुश्री अलक्साण्डर कुन्निंगहाम । यहाँ पर अशोक ने भी एक विहार का निर्माण करवाया था । लेकिन उस चैत्य या विहार का पुनर्निर्माण बाद के राजाओं ने किया । वहां के स्तंभों पर जेतवनदान, बोधिवृक्ष उपासना आदि अंकित किये गये हैं । प्राचीनकाल में तो यही 'वज्रासन-गंध-कुटी विहार' के नाम से प्रसिद्ध था ।[२] चीनीयात्री हुएनसांग इसे महाबोधि विहार पुकारते हैं और कहते हैं कि यहाँ का यह विहार बर्मा के महाबोधि

१- In ancient days the place was known as Sambodhi, as stated in an inscription of Asoka who visited this sacred site when he had been anointed for ten years'

- 'Buddhist Shrines in India', P.15.

२-'कला के प्राण बुद्ध' - जगदीश चन्द्र, पृ० १७४.

विहार के समान ही है ।[१] इसमें भगवान बुद्ध की एक ऊँची प्रतिमा है । उनके सिर के ऊपर एक छत्र रखा है, जो उनके धर्म का प्रतीक है । विहार में जो `वज्रासन` है, वहीं बुद्धदेव को संबोधि प्राप्त हुई थी । इसके अलावा एक उन्नत स्थान भी वहाँ देखने को मिलता है । कहा जाता है कि वहीं संबोधि के पश्चात् एक हफ्ता बुद्धदेव ने विश्राम किया था । विहार के चारों ओर असंख्य खंडहर बिखरे पड़े हैं । इनमें पत्थरों के कटघरे मुख्य हैं । ये दो विभिन्न समय की ओर संकेत करती है -- कुछ अशोककालीन और कुछ गुप्तकालीन ।[२]

सारनाथ

महात्मा बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित एक अन्य स्थान है सारनाथ । ज्ञान प्राप्त करने के तुरन्त पश्चात्, भगवान ने सारनाथ के हिरनवन की ही ओर प्रस्थान किय

1.This grand temple supplies the prototype of the Mahabodhi temple in Burma.

As it now stands the Mahabodhi temple at Bodh-Gaya is approximately 160 ft high and consists of a straight-edged pyramid tower surmounted by a stupa, complete with the 'Harmika' and the 'htī' with a fluted 'amalaka' like lower member and with 'angle-amalakas' at the corners demarcating the different stages in the ascent of the tower. The entrance porch, evidently built later than the original temple, is on the east. Each of the four sides of the tower presents several tiers and niches, while the front face has a tall laneet opening for the admission of light into the sanctum. At the base of the tower rises a turret, at the four corners of which there is a replica in miniature of the main spire"

-'Buddhist shrines in India', P.17.

2."These stone-railings represent two different periods of construction, the earlier going back to about the 2nd century B.C and the later to the early Gupta period"

- 'Buddhist shrines in India', P.19-20.

जहाँ के शान्तिपूर्ण वातावरण में बैठकर वे अपने ज्ञान के आलोक को चारों दिशाओं में बिखेर सके । वहाँ आकर उन्होंने अपने पाँच शिष्यों को `दु:ख और `दु:ख-निरोध` का दिव्य संदेश सुनाया था । यहीं से उनके `धर्मचक्रप्रवर्तन` का श्रीगणेश होता है और यहीं उन्होंने उसकी नींव डाली थी ।

इस प्रकार बौद्धधर्म के जन्मस्थान होने के नाते यह आने वाली पीढ़ियों का एक आकर्षक केन्द्र बन गया । वहाँ के हिरन वन के बारे में अशोक के शिलालेख हमें जानकारी देता है ।[1] इस स्थान की पवित्रता और विशिष्टता के कारण ही बौद्ध ग्रंथकारों ने उसे `सद्धर्मचक्रप्रवर्तनविहार` नाम से भी अभिहित किया था ।[2] सन् पाँचवीं और छठी शताब्दी में भारत में आये हुए चीनी यात्रियों ने इस पुण्य स्थान के बारे में बहुत लिखा है और बताया है कि हिरनवन बहुत ही श्रेष्ठ था ।[3]

लेकिन बारहवीं सदी (ईसवी) का मुगलों का विनाशकारी आक्रमण सारनाथ पर भी आतंक लाया । इसके साथ-साथ बौद्ध इतिहास के सभी जीवन्त स्मृति चिह्न मिट्टी के नीचे दब गये । आज पुरातत्व विभाग सारनाथ के इन संडहरों के बारे में गहराई से अध्ययन कर सका ।

---

1. "This saintly monarch, erected a series of monuments, including a pillar inscribed with an edict of warning to the resident monks and nuns against erecting sehisms in the church"

   - 'Buddhist shrines in India', P.21.

2. "The inscriptions refer to the site as the 'Monastery of the turning of the wheel of Righteousness' (Saddarmachakra Pravatana Vihara) by which name this sacred place was known to the ancient Buddhist writers"

   - 'Buddhist shrines in India', P.21.

3. "........the Deer park with no less then 1500 monks and nuns residing in the various establishments of the numerous edifices described by him the principal ones consisted of a magnificient temple with a life-size brass image of the Buddha represented in the act of turning the wheel of law a stupa built by Asoka and a stone pillar erected by the same monarch".

   -'Buddhist shrines in India' P.22

सारनाथ के खंडहर बड़ी विशालता में व्याप्त है । इन खंडहरों में 'चौखड़ी' नामक ईंटों से बनाया हुआ टीला है । यह एक स्तूप का खंडहर है । अपने धर्म से च्युत होकर गये हुए पाँचों शिष्यों से भगवान यहीं मिले थे । यह गुप्तकालीन स्तूप है । यहाँ की प्रतिमाओं में बुद्ध के धर्मचक्रप्रवर्तन की प्रतिमा सबसे विशिष्ट है । यहाँ के पद्मासन पर बैठे हुए भगवान एक दिव्य-शक्ति का ही प्रतीक हैं । इस प्रतिमा के बारे में श्री जगदीश चन्द्र का कहना है --'संबोधि प्राप्त करने वाले, मुक्तकाम तथागत ही मानो सम्मुख आकर बैठ गये हैं ।'[१]

जहाँ हिरण-वन था, वहाँ आज करीब १५० फुट ऊँचा एक स्तूप ही स्थित है जो 'धम्मेख स्तूप' कहलाता है । इसके चारों ओर अनेक मठ और विहारों के खंडहर दिखाई पड़ते हैं । चीनी यात्री हुएनसांग ने तो अशोक निर्मित एक स्तूप की ओर भी संकेत किया है और उसका खंडहर भी वहाँ प्रस्तुत है । इसके अलावा वहाँ एक अशोक-स्तंभ का स्तंभ मात्र खड़ा है और उसके ऊपर स्थित सिंह-शीर्षक को 'आर्कियोलोजिकल म्युसियम' में रखा है । इस सिंह-शीर्षक के ऊपर एक चक्र रखा हुआ था, वह भी टूट गया है । इस चक्र की भी बड़ी महत्ता है क्योंकि चक्र तो, धर्म का प्रतीक है और 'बुद्ध के चरण में भी चक्र अंकित था ।'[२]

हाल ही में, तक्षशिला में जो खुदाई की गयी उसके फलस्वरूप अनेक बौद्ध भग्नावशेष प्राप्त हुए, जिन्हें प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से 'महाबोधि संस्था' ने 'मूलगन्धकुटी-विहार' का निर्माण किया । इसकी निर्माण-चातुरी प्रशंसनीय है । उसकी चमकती फर्शें, सुन्दर चित्रकला सब निरालेपन को लिये हुए हैं । यहाँ नवम्बर महीने में एक त्यौहार मनाया जाता है और सारे विश्व के बौद्ध भिक्षु यहाँ एकत्र हो जाते हैं । इस विहार के पास एक 'बोधिवृक्ष' भी है और कहा जाता है कि सन् १९३६ में इसे श्रीलंका से लाकर बोया गया था ।

१-'कला के प्राण बुद्ध'- श्री जगदीश चन्द्र, पृ० १६६.

२- वही

(४) कुशीनारा

बौद्धों के लिए कुशीनारा या कुशीनगर भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना लुम्बिनी । क्योंकि एक भगवान का जन्मस्थान और दूसरा कुशीनारा उनका अन्तिम विश्रामस्थान । यहीं अपनी अस्सी वर्ष की अवस्था में एक शाल-वृक्ष के नीचे भगवान बु ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था ।

इस स्थान की पवित्रता के कारण थोड़े ही दिनों में यहाँ अनेक विहारों और चैत्यों का निर्माण किया गया । लेकिन अज्ञात कारणों से इनका नाश हो गया । आज भी इस पवित्र स्थान के बारे में यथेष्ट जानकारी देने वाले प्रमाण हमारे सम्मुख नहीं हैं इस ओर पुरातत्व विभाग ने अपना अनुसंधान जारी रखा है ।

(५) श्रावस्ती कौसल राज्य की प्राचीन राजधानी श्रावस्ती भी बौद्धों के लिए बहुत पवित्र है । प्राचीन काल से लेकर बौद्धग्रंथों में श्रावस्ती का एक अपना विशिष्ट स्थान है । क्योंकि बौद्धग्रंथों में बताया गया है कि श्रावस्ती में ही भगवान ने कई चमत्कारी कार्य दिखाये थे ।[१]

भगवान बुद्ध के काल में भी श्रावस्ती बौद्धधर्म का सजीव केन्द्र था । बाद को, अनेक चैत्यों और विहारों का यहाँ निर्माण किया गया ।

(६) संकास्या

श्रावस्ती का महत्वपूर्ण चमत्कारी कार्य करने के बाद भगवान ने संकास्या में

१- "It was here that the Master, in accordance with the practise of the previous Buddhas, performed the greatest of his miracles to confound the heretic, Tirthika teachers. According to sacred literature this great event consists of a series of miraculous episodes, such as the sun and the moon shining together in the sky, fire and water emanating alternately from the upper and lower parts of the Master's body, and the Buddha creating multip representations of himself"

- Buddhist shrines in India, P.37.

भी ऐसे ही कुछ कार्य दिखाये, जो बड़े चमत्कारपूर्ण रहे ।[१] इन सभी कारणों से श्रावस्ती की पवित्रता बढ़ गयी और प्रतिदिन असंख्य विहारों और मठों से श्रावस्ती अलंकृत हुआ ।

अनुसंधान से विदित हुआ है कि यह स्थान उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद में था ।

(७) राजगृह

राजगृह विविध कारणों से मुख्य है । बौद्धधर्मावलंबियों के लिए भी यह बड़ा पवित्र स्थान है । यह मगध की राजधानी थी । भगवान बुद्ध ने इस स्थान पर कई बार पदार्पण किया था । राजगृह में ही महाराज बिंबसार की प्रथम महिषि खेमा ने अपने पति की आज्ञा लेकर भगवान से उपसंपदा ग्रहण की थी ।[२] यहीं उनके चचेरे भाई देवदत्त ने भगवानबुद्ध को मारने की व्यर्थ कोशिशें की थीं । इतना ही नहीं, यहाँ के विदर्भा पर्वत की सप्तपर्णी गुहा में अजातशत्रु[३] ने भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद पहली बौद्धसंगीति का आयोजन किया था । उप्पलि और आनन्द इसमें सम्मिलित थे और विनय तथा सुत्त-पिटक के संग्रह का कार्य यहीं आरम्भ किया गया था ।

(८) वैशाली

प्रारंभ में ही वैशाली बौद्धधर्म का एक बलशाली केन्द्र था । गौतमबुद्ध ने तीन बार यहाँ की यात्रा की थी । अपने जीवन-काल में भगवान ने जो आठ चमत्कारी कार्य दिखाये उनमें एक यहीं दिखाया था ।[४] कहा जाता है कि यहीं भगवान ने एक बार अपने

१- ".....Sankasya, where the Buddha is said to have descended to the earth from the Trayastrimsa Heaven where he went to preach the Abhidharma to his mother and other gods.....According to the Buddhist legends, the Lords came down by a triple ladder, accompanied by the gods Brahma and sakra...."

-'Buddhist shrines in India'- P.40.

२-३. कला के प्राण बुद्ध - श्री जगदीश चन्द्र, पृ० ३८.

४- "Several monkeys are said to have offered the lord a pot of honey, an incident that finds mention among the eightgreat events in the life of the Master"

निर्वाण की बात की थी और वहां के लिच्छवियों ने उनके लिए एक स्तूप का भी निर्माण किया था । बौद्ध धर्म के इतिहास में द्वितीय बौद्ध संगीति का महत्वपूर्ण स्था है और वह यहीं वैशाली में आयोजित की गयी थी । यह संगीति बुद्ध के निर्वाण के व सौ साल बाद ही आयोजित की गयी थी ।

(ख) मुख्य बौद्ध-स्तूप

महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद भी बौद्धधर्म की प्रतिष्ठा शताब्दियों तक भारत में कायम रही थी । ज्यों ज्यों उसका विकास होता गया, त्यों-त्यों पुराने बौद्ध-भग्नावशेष के आसपास नये नये स्तूपों, विहारों तथा मठों का निर्माण होता गया । जहाँ बौद्धधर्म ने कदम रखा, वहाँ अपनी निशानी को छोड़कर ही वह गायब हुआ ।

अशोक ने करीब ८४००० स्तूपों का निर्माण करवाया था ।[1] बौद्धधर्म में स्तूपों का अद्वितीय स्थान है । इसके बारे में स्वयं बुद्ध ने ही कहा है ।[2] ये स्तूप भगवान बुद्ध को प्रतिनिधित्व करते थे । पुराने जमाने में थे स्तूप चैत्यों के नाम से प्रसिद्ध थे और स्व 'चैत्य' का भक्तिपूर्वक दान सबसे पवित्र कार्य माना जाता था ।

इनके अतिरिक्त भारहुत, अमरावती, नागार्जुन कोंडा जैसे बौद्ध स्थानों में भी अनेक स्तूप देखने को मिलते हैं । ये स्तूप अपनी पुरानी शानशौकत को छोड़कर अब खंडहर मात्र हैं । मध्यप्रदेश के अजन्ता, बाग की गुफाएँ, बिहार की नलन्दा भी ऐसी जगहें हैं, जहाँ बौद्धों से संबंधित कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है ।

---

1. 'Buddhist shrines in India, P.49.
2. "It is the most sacred of Buddhist monuments".....
   -' Buddhist shrines in India", P.49.

लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि तक्षशिला, पुरुषपुरा, गान्धार के कुछ स्थान, सोणापुर महाविहार भी बौद्धों के केन्द्र थे, वे पाकिस्तान में है । सांची में तो एक बौद्धस्तूप है, जो आज भी अपनी पुरानी संस्कृति का स्मरण दिलाता है ।

(१) सांची

आज भारत में बौद्ध- संडहर सबसे बड़ी मात्रा में सांची में ही देखने को मिलते हैं । सांची का उल्लेख हमें बौद्धग्रंथों में कहीं भी देखने को नहीं मिलता । तो सांची के स्तूप और अशोक से संबंधित कहानी सांची को बौद्धधर्म के निकट लाती है ।[१]

सांची के बारे में तो श्री जगदीश चन्द्र जी का कहना है --"सांची का नाम यद्यपि बुद्धगया, सारनाथ या कुशीनगर की शृंखला में नहीं जुड़ता फिर भी वह अपनी बौद्धकला के कारण उतना ही महत्वपूर्ण और पुण्यभूमि समझा जाता है । इसके स्तूपों के तोरणों की कला ने अमिताभ की स्मृतियों, उनकी जीवन-कथाओं को रत्न मंजुषा की भाँति संजोकर रखा है ।"[२]

१- In the circumstances, there is considerable force in the view that sanchi is the modern representative of Chetiyar giri of the ceylonese chronicle in the neighbourhood of Vidisa, connect with the story of Asoka's marriage with the merchant's daughter and the erection of a monastery on the hill where Mahendra, Asoka's son by that marriage is said to have halted on the way to his proselytising mission to ceylon. Whether the story is true or not, the fact remains that the earliest monuments at sanchi date from the time of Asoka and it is not possible that it was the patronage of this constantine of Buddhism which turned the place into an active centre of the religion of Gautama Buddha and was iResponsible for the Splendour of the site in days gave by "

-' Buddhist Shrines in India', P.53.

२- कला के प्राण बुद्ध - श्री जगदीश चन्द्र. पृ० ५१

यहाँ के सारे स्तूप एक पर्वत के ऊपर स्थित है । विभिन्न समय के ये स्तूप अपने-अपने इतिहास को बताते हैं । इनमें एक अशोक स्तंभ का खंडहर देखने को मिलता है । उसका शीर्ष चार सिंहों से अलंकृत है । उसके नीचे महात्मा बुद्ध के कुछ उपदेश अंकित किये गये हैं । अशोक के शिलालेखों में यही सबसे मुख्य है । वहाँ पूर्व दिशा के तोरण पर एक अर्धचित्र आंका गया है । बीच में दो भागों में बांटा हुआ एक विशाल बोधिवृक्ष है । बायीं ओर के दृश्य में महाराज अशोक अपनी सम्राज्ञी और पुत्र के साथ बोधिवृक्ष के निकट पूजा करने आये हैं । यह सांची की कला का एक श्रेष्ठ नमूना है ।

(२) अमरावती

अमरावती मद्रास के निकट है । ईसा पूर्व दूसरी तीसरी शताब्दी में दक्षिण भारत पर आन्ध्र शासकों का शासन था । कला के मर्मज्ञ और सभी धर्मों के मानने वाले इन ब्राह्मण शासकों ने अनेक स्तूप बनवाये । अमरावती में भी उन्होंने अनेक बौद्धस्तूपों की रचना की । उनके बाद उनके वंशजों ने भी इस परम्परा को नहीं छोड़ा । इन ब्राह्मण शासकों ने एक बौद्ध-स्तूप की रचना की थी । पीछे की पीढ़ियों ने उस स्तूप के निचले भाग को संगमरमर की शिला से ढंक दिया और इस पर बुद्ध के जीवन व आदर्शों को अंकित किया गया ।

अमरावती के पुराने शिल्पों में बुद्ध की प्रतिमाएँ नहीं लेकिन तीसरी शताब्दी के शिल्पों में ही प्रतिमाएँ मिलती हैं ।

अमरावती में अनेक गोलाकार अर्धचित्र भी हैं । इसमें कुमार सिद्धार्थ की घोड़े पर की सवारी, गौतम पर मार का आक्रमण तथा पागल हाथी का आक्रमण आदि दिखाया गया है ।[१] यहाँ की बुद्ध प्रतिमाओं पर भी आध्यात्मिकता की छाप दृष्टिगत होती है ।[२]

१- कला के प्राण बुद्ध - श्री जगदीश चन्द्र, पृ० १०६.

२- वही, पृ० १०७.

(३) अजंता और एलोरा

बौद्धधर्म को कलात्मक, सुन्दर तथा सजीव रूप देने में अद्वितीय दो स्थान हैं, महाराष्ट्र की अजन्ता एवं एलोरा की गुफाएँ। अपनी शिल्पकला, वास्तुकला तथा चित्रकला की अनुपम छटा को प्रदर्शित करने वाली ये गुफाएँ पुरानी संस्कृति के जैसे जीवित चित्र ही हैं।

भारतीय इतिहास के गुप्तकाल में कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। शिल्प में नये रंगों से नवप्राणों का संचार करने का कार्य गुप्तकाल में साकार हुआ।

संसार की इस स्वर्णयुग की सबसे बड़ी देन है, अजन्ता के भित्ति चित्र। इन कलायोगियों ने महात्मा बुद्ध के जीवन के दृश्यों का भी उन पर अंकन किया है।

अजंता में पर्वतों को काटकर अनेक चैत्य और विहार बने हैं, उनमें कुछ आज प्राप्त नहीं। यहाँ निकट ही एक विश्वविद्यालय भी था।

अजंता की पहली गुफा में पद्मपाणि बोधिसत्व का चित्र दृष्टिगोचर होता है। एक दूसरे दृश्य में भगवान बुद्ध तपश्चर्या करते हैं, मार का आक्रमण भी चित्रित किया गया है। वास्तव में यह पाप और पुण्य के बीच का संघर्ष ही है। यह तो पाशविकता पर मानवीयता की विजय ही है। क्योंकि, भगवान बुद्ध के चारों ओर अत्यन्त भयंकर प्राणी दिखाई दे रहे हैं। भगवान बुद्ध उन पाशविक वृत्तियों के बीच में ऐसे जान पड़ते हैं मानों गहन अंधकार में दीपक जल रहा हो। भगवान पीत चीवर धारण किये वज्र आसन पर बैठे हैं। उनके पीछे बोधिवृक्ष भी आंका गया था किन्तु वह मिट गया है और अब पीपल की कुछ पत्तियाँ ही दिखाई दे रही हैं। भगवान का कंधा चीवर से ढंका हुआ है और दूसरा अनावृत है। उनका एक हाथ गोद में रखा है और दूसरे हाथ की दो उंगलियों से वे भूमि को स्पर्श कर रहे हैं। बलिष्ठ आकृति का एक पुरुष हाथ में तलवार लिये भगवान बुद्ध की ओर झपट रहा है। उसकी भृकुटि

चढ़ी हुई हैं । बाल कंधों पर बिखरे हैं । उसकी सेना अथवा वृत्तियां राक्षसों के रूप में आंकी गई हैं । वे अत्यन्त भयावह हैं । किसी के मुख में से सर्प निकल रहा है तो कोई अपना विकराल मुख फाड़े हुए, भगवान को निगल लेने के लिए आकुल जान पड़ता है । उनके हाथों में तीक्ष्ण शस्त्र हैं । आसन के नीचे के भाग में अर्धनग्ना स्त्रियाँ हैं जो विविध हाव-भाव प्रदर्शित कर रही हैं । एक स्त्री मधु-कलश लिये खड़ी है । यह सब मार की कन्यायें मानी गई हैं । अजंता के चित्रकार ने इस एक ही चित्र में क्रोध, शृंगार, शांत और भयानक रसों का चित्रण किया है, मार का क्रोध, अर्धनग्ना नारियों का शृंगार, मार की सेना की भयावहता और भगवान तथागत का शान्त रूप ।[१]

करुणा और चिन्तन की इस मूर्ति की सुन्दरता अलौकिक है । पद्मपाणि का मुकुट, रत्नखचित कुण्डल, मोतियों की माला, सोने की लड़, कमल का फूल, यज्ञोपवीत सब गुप्त काल की कला का उत्कर्ष ही दिखाते हैं ।

अजंता की दूसरी गुफा में भी बुद्ध की एक प्रतिमा रखी है । यह तो धर्मचक्र मुद्रा में बैठी हुई भगवान बुद्ध की प्रतिमा है । इस गुफा के भित्ति चित्र पर और भी एक श्रेष्ठ चित्र है । इसमें भगवान के जन्म को दिखाया गया है ।[२]

श्री जगदीश चन्द्र के अनुसार,[३] गुफा के समस्त चित्रों में सबसे उत्कृष्ट कृति है भगवान बुद्ध का प्रत्यागमन । हाथ में भिक्षापात्र लिये हुए यशोधरा के द्वार पर करुणा-सिन्धु भगवान खड़े हैं जो बड़ा सजीव लगता है ।

अजन्ता की उन्नीसवीं गुफा एक चैत्यगृह है । इस गुफा के बाहर कुछ मूर्तियाँ खड़ी कर दी गयी हैं । इनमें भगवान बुद्ध की कमलदल पर खड़ी होने वाली एक प्रतिमा है

१- कला के प्राण बुद्ध - श्री जगदीश चन्द्र, पृ० १२७

२- वही, १३८.

३- वही, पृ० १४१-४२.

भगवान का एक हाथ वरदमुद्रा में है । इतना ही नहीं, गुफा के अन्तर के खम्भों व चारों ओर बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ हैं । ये प्रतिमाएँ विभिन्न मुद्राओं को लिये रहती

छब्बीसवीं गुफा में भी बुद्ध के परिनिर्वाण एवं मार के आक्रमण के चि हैं । इसमें मारविजय का चित्र बड़ा आकर्षक है । परिनिर्वाण का दृश्य तो शोक है । शय्या पर लेटे हुए भगवान और दु:खार्त होकर निकट बैठे हुए उनके भिक्षुगण के पात्र हैं ।

अजन्ता की अपेक्षा एलोरा श्रेष्ठ है । यहाँ भारत के मुख्य त्रिधर्म--बौद्ध ब्राह्मणधर्म और जैन धर्म को सुन्दर ढंग से अंकित किया गया है । एलोरा की कु बारह गुफाएँ बौद्धधर्म का परिचय देती है । इनमें भी बुद्ध और बोधिसत्वों को प्र किया गया है ।

नलन्दा

यह बौद्धविहारों का एक आकर्षणीय केन्द्र है । भगवान बुद्ध ने यहाँ कई बार यात्रा की है । यहाँ के सबके सब स्तूप अशोक कालीन है । नलन्दा का महान् इतिहास प्रसिद्ध है और वहाँ के सब बौद्धाचार्य इतिहास के रत्न थे । इसके भी खण्ड विशाल रूप में व्याप्त है । वहाँ के वे खण्डहर आज भी पुरानी शान को बनाये र

भारहुत

भारहुत विन्ध्यप्रदेश के निकट का एक गाँव था । यहाँ एक प्राचीन स्तू वहाँ तो अनेक अर्धचित्र देखने को मिलते हैं । इनमें कई भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की क की ओर भी संकेत करते हैं । भारहुत के शिल्प के सबसे उत्कृष्ट चित्र हैं मायादेवी

स्वप्न और जेतवन का दान ।[१] भारहुत के एक स्तंभ पर अजातशत्रु के द्वारा की गयी बुद्ध-पूजा भी दर्शित की गयी है ।

ऊपर संस्कृति, कला, और साहित्य के क्षेत्र में बुद्धदेव तथा उनके धार्मिक अनुयायियों की देन का संक्षिप्त परिचय हो गया है । भगवान बुद्ध ने केवल मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य की ओर ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन की ओर भी पैनी दृष्टि रखी । अपने सिद्धान्तों को सामान्य जन तक पहुँचाने के लिए ही उन्होंने संस्कृत के स्थान पर पालि को स्वीकृत किया था और समूचा बौद्ध-धर्म-साहित्य पालि में उपलब्ध है तथा धर्मनिरपेक्ष अनेक संस्कृत और पालि रचनाएँ बौद्ध-धर्म का प्रदेय हैं । साहित्य के समान ही चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकला के अद्भुत अनावरण गुफा-मन्दिरों में हैं, जो कला-संबंधी औन्नत्य को दर्शाते हुए बौद्ध-धर्म की विजय-ध्वजा फहरा रहे हैं । एक ओर धर्मप्रचार और दूसरी ओर संस्कृति का प्रसार, यही इन सब का मुख्य लक्ष्य था ।

१- 'कला के प्राण बुद्ध' - श्री जगदीश चन्द्र, पृ० ६०.

तृतीय अध्याय

१- बौद्ध-संगीतियाँ

जन्म और मरण का आँखमिचौनी खेल है -- मनुष्य का जीवन । मृतिजन्मरूपी कूलों के बीच के क्षणिक जीवन को अपनी उद्देश्यसिद्धि में लगा देना मनुष्य का धर्म है । वह उद्देश्य लोककल्याण की भावना से युक्त हो, तो उसका जीवन सफल संतुष्ट तथा सार्थक बन जाएगा । समस्त प्राणियों के हितैषी तथा लोकानुकंपा के मूर्त रूप तथागत ने इसी लोक कल्याण की भावना के आँचल को पकड़ कर आगे कदम बढ़ाया । उनकी उद्देश्यपूर्ति की सफलता का इतिहास ही सबसे बड़ा गवाह है । सारे संसार में व्याप्त दु:ख से भस्मीकृत प्राणियों को शीतल छाया प्रदान करने वाले बौद्धधर्म की स्थापना से बुद्धदेव का जीवन धन्य हुआ । धार्मिक उपदेशों से लोगों में नवजीवन का संचार करके अंत में ई० पू० ५४३ की वैशाख-पूर्णिमा को कुशीनारा में अस्सी वर्ष की अवस्था में बुद्धदेव ने महापरिनिर्वाण को प्राप्त किया ।

उनके महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनके उपदेशों और शिक्षाओं का संग्रह करने की आवश्यकता हुई । क्योंकि बुद्धदेव ने अपने उपदेशों को मौखिक रूप में ही प्रदान किया था । उसका कुछ लेखाजोखा नहीं था । इसलिए इनको सुरक्षित रखने की भावना से प्रेरित होकर बुद्धवचनों का संकलन किया गया । बुद्धदेव के महापरिनिर्वाण के समय भी संघों में कुछ आपसी-फूट हुई । फलस्वरूप बौद्धधर्म कई संप्रदायों में विभक्त हुआ । बुद्धवचनों की

प्रामाणिकता पर तर्कसंगत-चर्चा में प्रस्तुत होने लगी । परिणामत: बौद्ध-संगीतियों का आयोजन किया गया ।

'बौद्धधर्म और साहित्य के इतिहास में संगीतियों की घटनाएँ, मूल उपदेशों के संग्रह, संरक्षण और धार्मिक दार्शनिक विवादों को दूर करने के लिए हुई । इस प्रकार संगीतियों का संबंध जहाँ एक ओर साहित्य की व्यवस्था, संरक्षण आदि से है, वहीं दूसरी ओर अनेक संप्रदायों, मत-मतान्तरों का प्रकाशन भी उन्हीं के माध्यम से हुआ ।'[१] इन संगीतियों के विषय में डा० विनयतोष भट्टाचार्य का मत है कि बौद्ध-साहित्य के विकास और नवीन संप्रदायों के उद्भव के अध्ययन में इनका विशेष महत्व है ।[२]

इन संगीतियों में बुद्ध के वचनों को उद्धृत करना, दुहराना, गाना आदि कार्य उनके प्रिय शिष्य बड़ी निपुणता के साथ करते थे । बाद में जो भी नये विचारों का उदय होता था, उन्हें इन संगीतियों की मान्यता से ही प्रकाशित होने देते थे ।

(१) प्रथम संगीति

बौद्ध धर्म के इतिहास में पाँच प्रधान संगीतियों का उल्लेख मिलता है । महात्मा-बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तुरन्त पश्चात् 'राजगृह' में प्रथम संगीति का आयोजन किया गया । राजगृह में वैभार पर्वत की सप्तपर्णी गुहा ही पहली संगीति का केन्द्रस्थान माना जाता है । यह सभा धर्म और विनय के वचनों को व्यवस्थित करने के लिए बुलायी गयी थी । अभिधर्म का उल्लेख इस संगीति में कहीं भी प्राप्त नहीं होता है ।[३]

चुल्लवग्ग से विदित होता है कि बुद्धदेव के परिनिर्वाण के समय आयुष्मान् महा-काश्यप घटना-स्थान पर नहीं थे । एक बड़े भिक्षु-संघ के साथ पावा से कुशीनारा की तरफ जाते समय ही गुरुकी निर्वाणप्राप्ति का समाचार महाकाश्यप को मिला । किन्तु

१-२. तांत्रिक बौद्धसाधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० २८.

३- २५०० ईयर्स आफ बुद्धिज्म, पृ० ३१.

उनमें ऐसे भिक्षु भी थे जिनको बुद्ध की निर्वाण-प्राप्ति से पूर्ण शान्ति और संतोष प्राप्त हुआ । प्रव्रजित सुभद्र ने कहा कि हम इस श्रमण से मुक्त हुए । सुभद्र के इस अनुचित विचार से महाकाश्यप पीड़ित हुए । परम गुरु के धर्म के भविष्य के संबंध में उनके मन में शंका पैदा हुई । अपने गुरु के उपदेशों और धर्म को सुरक्षित रखने तथा उनको एक स्थायी रूप प्रदान करने के उद्देश्य से महाकाश्यप ने बुद्ध के वस्त्रों को ले लिया और उसके प्रति सम्मान दिखाया ।

सप्तपर्णी-गुहा में संगीति के लिए मण्डप का निर्माण करवाया गया । स्थविर लोग संगीति के लिए श्रावण मास के कृष्णपक्ष की द्वितीया को मण्डप में एकत्र हुए । `सामन्तपसदिका` में इस उत्सव का अच्छा वर्णन किया गया है ।

इस संगीति का संघनायक महाकाश्यप हुआ । आयुष्मान् उपालि से विनय के प्रश्न पूछे गये । धर्म के प्रश्नों को आनन्द से पूछा गया । इस प्रकार, विनयपिटक तथा सुत्तपिटक को आकार और स्वरूप मिल गया ।

जब संपूर्ण धर्म और विनय के प्रश्नोत्तर की समाप्ति हुई तो संगीति में भाग लेने वाले भिक्षुओं ने उसका संगायन किया । चीन यात्री युवाच्वांग ने इस संगीति में भाग लेने वाले भिक्षुओं की संख्या एक हजार बतायी है । लेकिन इस संख्या में सत्यता दृष्टिगोचर नहीं होती, क्योंकि युवाच्वांग ने जो प्रमाण दिये हैं, उसके और प्रथम संगीति के समय के बीच एक बड़ा अंतर है । साधारणतया यही मानी हुई बात है कि इसमें अन्यूनाधिक पाँच सौ भिक्षु सम्मिलित हुए थे, इसलिए इस संगीति को पंचशतिका भी कहते हैं, बुद्धचर्या और विनयपिटक से यही प्रमाणित होता है । स्थविरों के द्वारा आयोजित हो जाने के कारण इस संगीति को स्थविर-परंपरा की संगीति भी कहा गय है । महावंश के अनुसार यह संगीति सात मास में समाप्त हुई थी ।

इस संगीति ने चार महान् कार्य किये --

१- सर्वश्रेष्ठ आयुष्मान् उपालि के द्वारा विनय की सुरक्षा ।

२- आयुष्मान् आनन्द के द्वारा धर्म की सुरक्षा ।

३- आनन्द की अर्हत्वप्राप्ति ।

४- महात्माबुद्ध के रथी क्षेमा को अर्हत्व की उपाधि प्रदान करना ।

यद्यपि प्रो० ओल्डनबर्ग जैसे विद्वानों ने इस प्रथम संगीति को संशय की दृष्टि से देखा है,[१] तो भी अनेकानेक पूर्व तथा पाश्चात्य देश के विद्वानों ने उसको स्वीकार किया है । इसलिए उसका अस्तित्व ही सिद्ध होता है ।

(२) द्वितीय संगीति

बुद्ध के समय से ही विनय और नैतिक नियमों का विरोध आरंभ हो गया था। किन्तु प्रथम-संगीति के करीब सौ वर्ष के भीतर ही बौद्धावलंबियों को यह भी दुरन्त देखना पड़ा कि बौद्धधर्म के व्यवस्थित नैतिक नियमों के प्रति प्रतिपक्षियों ने विरोध प्रकट किया । इस विरोध के शमन के लिए द्वितीय संगीति बुलायी गयी । लगभग ई० पू० ३८३ में वैशाली में आयोजित यह सभा आठ मास तक निरन्तर चलती रही ।

धार्मिक-भावना से ओतप्रोत स्थविरवादी बौद्ध बुद्धशासन के प्रचार तथा प्रसार से जीवन व्यतीत करते थे कि धीरे धीरे वैशाली की वज्जिपुत्रक भिक्षुओं में कुछ दोष उत्पन्न हुए । इन भिक्षुओं ने दस बातों का प्रचार करना आरंभ किया[२] --

(१) सींग में नमक अपने पास रखा जा सकता है कि जहाँ अलोना होगा, वहाँ उसका उपयोग करेंगे, शृंगिलवणकल्प में इसका उल्लेख मिलता है ।

(२) दोपहर में दो अंगुल की छाया जब होगी तब भोजन करना विहित है, द्वयंगुल-कल्प में इसका उल्लेख मिलता है ।

(३) भोजन कर चुकने पर ग्राम के भीतर भोजन करने जाया जा सकता है, ग्रा न्तरकल्प में इसकी चर्चा है ।

१- "Prof: Oldenberg is sceptical about the historical authentic of the first council
- '2500 years of Buddhism - P.36.

२- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावती मालविका, पृ० ६३.

(४) एक सीमा के बहुत-से आवासों में उपोसथ करना उचित है, आवास-क का यह उल्लेख है ।

(५) अनुमति-कल्प के अनुसार यह मान्य है कि `यह विचार करके एक वर्ग के संघ का विनय-कर्म करना कि जो भिक्षु पीछे आयेंगे, उनको स्वीकृति दे देंगे ।

(६) आचीर्ण-कल्प के अनुसार आचार्य और उपाध्याय द्वारा किये गये आचा को उचित मानकर उसी का आचरण करना चाहिए ।

(७) अमथित कल्प बताता है कि जो दूध दूधपन को छोड़ चुका है और दहीप को नहीं प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकने पर अधिक पीना ।

(८) जलोगी कल्प में बताया गया है कि जो सुरा अभी सुरापन को प्राप्त नहीं हुई है, उसका पीना विहित है ।

(९) अदशक निषीदनकल्प के अनुसार बिना किनारी का आसन रखा जा सकता है ।

(१०) जातरूप रजतकल्प के अनुसार सोना, चाँदी (जातरूप, रजत) ग्रहण कि जा सकता है ।

इसी समय काकण्डक पुत्र आयुष्मान् यश वैशाली पहुँचे । विनय के विरुद्ध के आचार-विचारों को देखकर वे तिलमिला उठे । उन्होंने उपासकों को फटकारा । व वज्जिदेश के सभी भिक्षुओं ने एकत्र होकर यश को प्रतिसारणीय दण्ड दिया । वहाँ से यश कौशाम्बी पहुँचे । कौशाम्बी में उनके बड़ी तादाद में उपासक बन गये । वज्जि पुत्रों के और यश के बीच जो वाद-विवाद खड़ा हुआ, इसे शान्त करने के उद्देश्य से बड़े-बड़े महास्थविरों को भी रंगमंच पर आना पड़ा । सब वैशाली पहुँचे ।

बालुकाराम विहार में संघ-सभा का आयोजन किया गया । यही द्वितीय- के नाम से प्रसिद्ध हुई । महावंश से यह बात प्रमाणित होती है कि रेवत स्थविर की अध्यक्षता में आयोजित इस संगीति में बारह लाख भिक्षु उपस्थित थे । लेकिन दीप में तो इस संगीति को `सप्तशतिका` नाम दिया गया है, क्योंकि इसमें अन्यूनाधिक

सात सौ भिक्षु थे ।

इस संगीति की समाप्ति होने पर बौद्धधर्म के दो भेद हो गये -- महासांघिक और स्थविरवादी । प्रथम-संगीति में जिन बौद्धनियमों को व्यवस्थित किया था, उनमें दोष खोजकर वज्जिदेशीय भिक्षुओं ने सुधार करना चाहा । इसी का समर्थन करने वा बातों को इन लोगों ने इस संगीति में प्रस्तुत किया । किन्तु इस संगीति में वज्जिदेशी भिक्षुओं के तर्कों का खण्डन अपरिवर्तनवादी कट्टर भिक्षुओं ने किया जो संख्या में अधि थे । इसलिए वज्जिदेशीय भिक्षु सफल नहीं बन सके । असफल इन भिक्षुओं ने कौशाम्ब में दस हजार भिक्षुओं का एक संघ बनाया । संघ की विशालता से ये `महासांघिक` क लाये गये । विनय में परिवर्तन न चाहने वाले भिक्षुओं को `स्थविरवादी` नाम दिया गया । समय और परिस्थितियों के अनुसार इनके और भी कई विभाग, उपविभाग आ बनते गये । इस प्रकार वाद-विवाद को शान्त करने के हेतु जो संगीति आयोजित की गयी थी, उसने भिक्षु-संघ में एक बड़ी क्रान्ति ही लाकर खड़ी कर दी ।

(३) तृतीय संगीति

द्वितीय संगीति से भिक्षुसंघ के कई विभाग और उपविभाग बने । विभिन्न संप्रदायों का उदय भी हुआ । इन विभिन्न संप्रदायों के मतभेद के परिणाम ने तृतीय संगीति को स्वरूप दिया ।

बुद्धदेव के महापरिनिर्वाण के दो सौ साल पश्चात् पाटलीपुत्र में तृतीय संगी का आयोजन किया गया । अशोक ने ही इसका प्रबन्ध किया था । लगभग ई० पू० २५१ में यह सभा बुलायी गयी थी, महास्थविर मोग्गलिपुत्ततिस्स की अध्यक्षता में । एक हजार भिक्षुओं की उपस्थिति में बुलायी गयी यह संगीति नौ-मास में समाप्त हु थी । इस संगीति की समाप्ति होने के साथ-साथ अभिधर्म को स्वरूप दिया गया । कथावत्थुप्पकरण की देशना भी इस संगीति में हुई थी । इसी संगीति के पश्चात् ति टकों को पूर्ण स्वरूप मिल गया । सारे बौद्ध-साहित्य को विपिटकों में समाहित कि गया ।

अशोक के बौद्ध बनने की घटना सामन्तपासादिका, महावंश और दीपवंश में कुछ इस प्रकार है --

बिन्दुसार के ज्येष्ठ-पुत्र सुमन का लड़का न्यग्रोध श्रमणेर की शान्त-मुद्रा से वित होकर एक दिन अशोक ने उसे बुलवाया और आदर-सत्कार किया । धम्मपद के अप्पमादवग्ग की पहली गाथा की देशना से अशोक को संतोष और धर्मरस का अनुभव हुआ । बौद्धसंघ में तुरन्त शामिल होकर अशोक ने बौद्धधर्म के प्रति अपनी श्रद्धांजली अर्प की । बुद्धचर्या में कहा गया है कि उसने संपूर्ण जंबूद्वीप के चौरासी हज़ार नगरों में च हज़ार चैत्यों से युक्त चौरासी हज़ार विहार बनवाये ।[१] उनके आश्रय में जीवन बिता के उद्देश्य से इन बौद्ध-विहारों की शरण लेने लगे । प्रव्रजित न होने पर भी भिक्षु सं में ऐसे कपट वेषधारी बौद्धों की भरमार रही । महात्मा बुद्ध के उन आदर्शमय-तत्वों के भविष्य पर शंका उत्पन्न होने से अशोक पीड़ित हुए । उन्होंने अहोगंग पर्वत से वि तथा मुख्य बौद्धभिक्षु मोग्गलिपुत्रतिस्स को पाटलीपुत्र बुलवाया । उन्होंने देखा कि स बौद्धों की संख्या इन वेषधारी बौद्धों की संख्या से बहुत कम है ।[२] सभी भिक्षु अशो राम में इकट्ठे हुए । अपने अपने मतों को प्रकट करने के बाद राजा ने वहाँ अपने मत भिन्न मत रखने वाले दूसरे पंथवालों को वहाँ देखा । इनको उन्होंने श्वेत वस्त्र पहन अप्रव्रजित कर दिया ।[३] उस दिन उन्होंने फिर उपोसथ किया । जब भिक्षुसंघ सर्वस के लिए शुद्ध हुआ तो मोग्गलिपुत्रतिस्स स्थविर ने दूसरे सभी वादों का खण्डन करते कथावत्थुप्पकरण का भाषण दिया यही 'महावंश' का कथन है । उसके बाद स्थ तिस्स ने एक हज़ार विद्वान् अर्हत् भिक्षुओं को चुनकर अशोकाराम-विहार में तृतीय का आयोजन किया, जो अपनी महत्ता में प्रथम तथा द्वितीय संगीतियों का स्मर

१- भगवान् गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ७२.

२- The number of the herctics and false monks became far l than that of the true believers'
- '2500 Years of Buddhism' - P.40

३- भगवान् गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ७३.

है। इसकी समाप्ति नौ मासों में हुई थी । महावंश के अनुसार यह संगीति आश्विनपूर्णि को ई० पूर्व २३५ में पूर्ण हुई थी ।[१]

पालि साहित्य के इतिहास में कहा गया है कि अशोक के शिलालेखों में इस संगीति के अस्तित्व का उल्लेख या वर्णन ही नहीं मिलता ।[२] किन्तु इसी समय 'नेपाल यात्रा' के अनुसार हम देख सकते हैं कि 'इस संगीति के पश्चात् धर्मप्रचार के लिए विभिन्न देशों में भिक्षु भेजे गये थे और उनकी अस्थियाँ नामांकित पत्थर की मंजूषाओं में प्राप्त हो चुकी हैं ।[३] अशोक के पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा की अस्थियाँ श्रीलंका में पायी गयी थीं ।[४] इसी प्रकार यह भी विदित होता है कि विदेशों में बौद्धधर्म का प्रचार इस तृतीय संगीति के बाद ही हुआ था और अशोक ने अपने पुत्र और पुत्री को सधम्म के प्रचारार्थ श्रीलंका तक भेजा था ।[५] इन सभी उपर्युक्त प्रमाणों से तृतीय संगीति के अस्तित्व और ऐतिहासिकता पर संदेह करना निर्मूल है ।

(४) चतुर्थ संगीति

चतुर्थ संगीति सम्राट कनिष्क के समय आयोजित की गयी । महात्मा अशोक के बाद बौद्धधर्म के प्रचार में समस्त शक्तियों को लगा देने का श्रेय कनिष्क को है। उन्ह बौद्धधर्म के प्रचार के लिए ही नहीं उसके मूल-सिद्धान्तों को समझने का यत्न भी किय लेकिन इसमें उनको बहुत कष्टों को सहना पड़ा । विभिन्न धर्माचार्यों के मतों में पा स्पर्धिक द्वन्द्व काफी प्रचुर परिमाण में उत्पन्न हो गए थे ।[६] इससे इन सिद्धान्तों में

१- भगवान् गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ७३.

२-३. वही

४- वही - पृ० ७४.

५- 'Mahinda, the son of Asoka, & Sanghamitta, his daughter were charged with missionary work in the island of ceylon' - 2500 years of Buddhism - P. 42.

६- भारतीय इतिहास की रूपरेखा - रतिभानुसिंह 'नाहर', पृ० १६०.

जटिलता आ गयी थी । बौद्धग्रंथों से प्रमाणित होता है कि चतुर्थ संगीति का उद्देश्य विवादास्पद सिद्धान्तों का निर्णय करना था । युवानच्वांग के अनुसार 'सम्राट कनि ने बौद्ध ग्रंथों में बड़ा शौक दिखाया, वे बौद्ध भिक्षुओं के समीप गये । लेकिन उन्होंने देखा कि उनकी सारी उक्तियाँ विवादपूर्ण सिद्ध हुई । इसलिए वे पार्श्वाचार्य के पा गये । उन्हीं के मतानुसार चतुर्थ संगीति का आयोजन किया गया, जिसमें बौद्धधर्म के विविध संप्रदायों के आचार्य प्रतिनिधि के रूप में आये थे ।'[१]

कहा जाता है कि यह संगीति ईस्वी सन् २०० के आसपास हुई थी । कुछ ग्रंथकार इस संगीति को जलन्धर में तथा अन्य कुछ काश्मीर में होने का दावा करते हैं इस संगीति में सर्वास्तिवादियों ने ही भाग लिया था ।

सम्राट ने पाँच सौ भिक्षुओं को रहने योग्य एक मठ की स्थापना की । सं में जो वाद-विवाद हुए उनको भाष्य-रूप में संकलित किया गया । सुत्तपिटक पर १० श्लोकों को समाहित करने वाली टीका लिखी गयी । विनयपिटक पर 'विनयविभा लिखी गयी है जिनमें भी १००,००० सूत्र समाहित थे । इनके अतिरिक्त अभिधम्मविभ का भी चयन किया गया । संक्षेप में कहा जाय तो त्रिपिटक पर प्रामाणिक भाष्य की रचना हुई, जिसे सम्राट ने ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किया । केर्न महोदय के अनुसा 'तीसरी संगीति की प्रमुख विशेषता थी कि उसने बौद्धधर्म के विभिन्न संप्रदायों में दे जाने वाले सारे पुराने वाद-विवादों का पटाक्षेप किया, साथ-साथ उनके नये विच और आकांक्षाओं का दमन नहीं किया ।'[२]

---

1. 'According to Yuanchwang, King Kanishka became interested the Buddhist Scriptures and sent for a monk everyday to g him instruction but, as the instruction differed and was contradictory the king was perplexed and consulted the ve Parsva about the true doctrine. It was on his advice tha he decided to convoke a council in which the various sect would be represented."
   - 2500 years of Buddhism-P.42.

2. "The most significant trait of the third council,"Says k is that it closed a period of old quarrels between the s it did not prevent the rise of new aspirations."
   - 2500 years of Buddhism - P.43

इस संगीति के निर्णय ने बौद्धधर्म को एक नयी दिशा की ओर अग्रसर किय इसके परिणामस्वरूप दो महत्तम कार्यों का दर्शन होता है । कनिष्क के संरक्षण में यान का उदय, विकास तथा उसको राजधर्म का आकार देना आदि इसी संगीति की देन है । बौद्धधर्म के इतिहास में नवीन युग के आरंभ को सूचित करने वाले कनिष्क के समय में हम महायान का उदय देखते हैं । विदेशी आक्रमणकारियों ने बौद्धधर्म के मूल को लुप्त कर दिया । बौद्धधर्म प्राचीन रूप परिवर्तित होते-होते उसने एक नये मिश्रि रूप को प्राप्त किया था । उसमें विभिन्न तत्वों का भी समावेश हुआ । दूसरा मुख कार्य था नवीन लिपिकरण में संस्कृत-भाषा का व्यवहार । बौद्धदर्शन में उदित होने वाले नव्य विचारों को नये ढंग पर लिपिबद्ध करना इस संगीतिका अद्वितीय और स कार्य रहा । परन्तु खेद की बात है कि युवानच्वांग और तिब्बतीय इतिहासमें इस में उपयुक्त लिपि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता । तो भी हाल में घोषक से लिखित 'अभिधर्मामृत' सभी तरह के तर्कवितर्कों से हमें निवृत्त कर देता है ।[1] इस प्रकार बौद्धध के इतिहास में यह एक अद्भुत घटना है कि बौद्ध-धार्मिक ग्रंथों का माध्यम संस्कृत रह महाशय केर्न के शब्द सारी रूढ़ियों को चेतावनी दे देते हैं । उनके अनुसार 'तृतीय में स्वीकृत विशुद्ध ग्रंथों की शैली के विषय में सभी व्याख्याएँ मूक हैं, मगर उस स्थि से हम अनुमान न करें कि चीनी यात्रियों को किन्हीं ग्रंथों का ज्ञान ही न था जो को छोड़कर किसी अन्य भाषा में रचित हों । वह तो एक प्रतिकूल परिस्थिति थी जो सभी पुराने ग्रंथ जैसे त्रिपिटक, जो शब्द का सही प्रकार स्वीकार है और अब तक सुरक्षित है, वे संस्कृत ग्रंथों के अनूदित रूप द्वारा ज्ञात है ।'[2]

---

1. The discovery of the work of Ghosaka, the Abhidharma-mr which is not far removed from the time of Kanishka, Should clinch all controversy'
   - 2500 years of Buddhism - P

2. 'All the accounts are silent on the idiom of the sacre approved or revised at the third council, but from tha we must not infer that the chinese pilgrims had no na canon that was written in another language but Sanskr an untoward circumstance that all the works of the ol the Tripitaka in the proper acceptation of the terms, they have been preserved, are only known through trar Sanskritised texts. -2500 years of Buddhism - P.44

२- महायान

वैशाली में आयोजित द्वितीय संगीति के पश्चात् भिक्षु-संघ में आपसी फूट के बीज अंकुरित होने लगे । पश्चिमी और पूर्वी बौद्ध अलग-अलग हुए । इन दोनों निकायों को स्थविरवाद तथा महासांघिक नाम दिया गया । पूर्वी बौद्ध ही महासांघिक कहलाये और इसी से `महायान` का भी उदय हुआ ।

महायान का उत्थान ईस्वी सन् की पहली शताब्दी में हुआ ।[१] किन्तु बुद्ध-धर्म में इसके आरंभ की तिथि का निश्चय करना बहुत कठिन है। कनिष्क की चौथी संगीति में महायान के पूर्व के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है । इतना होने पर भी महायान ग्रंथ `प्रज्ञापारमिता` से विदित होता है कि ई० सन् पहली शताब्दी में महायान का प्रचार अवश्य हो गया था, तभी तो `प्रज्ञा-पारमिता` की रचना हुई ।[२] इसके अतिरिक्त महायान दर्शन के मुख्य ग्रंथकार नागार्जुन का जन्म भी ई० सन् की प्रथम शताब्दी में हुआ था । तब यह स्वयं सिद्ध होता है कि महायान का उदय इसके पहले ही हो चुका था ।

`महायान` का शब्दार्थ है `प्रशस्त` या `श्रेष्ठ मार्ग` । उच्च आदर्शों से बौद्धधर्म को अलंकृत करने वाला यह मत वास्तव में प्रगतिशील तथा हीनयान से भी श्रेष्ठ था । महायान के लिए `अन्धक` नाम भी प्रयुक्त था । इसका भौगोलिक कारण था । कृष्णा नदी की घाटी आन्ध्रदेश के नाम से प्रसिद्ध थी । इस देश में भी महायान का प्रसार हो गया था । इसलिए `अन्धक` नाम भी पड़ा । इसी प्रकार बोधिसत्व की भावना से ओतप्रोत यह मत `बोधिसत्वयान` के नाम से भी प्रसिद्ध है । ई० सन् की तीसरी शताब्दी तक महायान अत्यन्त लोकप्रिय बन चुका था । नासिन तथा कार्ले के लेख तो सिद्ध करते हैं कि यह विशाल संप्रदाय उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-भारत तक व्याप्त हो चुका था । पाश्चात्य विद्वानों में कीथ ने महायान के उदय और यवनों के भारत में आने की घटना

१- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७६.

२- साहित्य कोश - पृ० ६३६.

में निकट संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया है ।[१]

महायान के दार्शनिक सिद्धान्तों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं --

(१) बोधिसत्वों की भावना

ज्यों ही महायान का विकास होता गया त्यों ही वह संप्रदाय बौद्ध कम, हिन्दू अधिक हो गया ।[२]

यह पहले ही बताया जा चुका है कि बौद्धधर्म की स्थापना में तृष्णा-निरोध की मुख्यता कितनी है ? अपने परमपूज्य भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद भी कई सालों तक उनके शिष्य उन्हीं के उपदेशों तथा शिक्षाओं के प्रकाश में आगे बढ़े । तृष्णा-निरोध को अपना ध्येय बनाकर अपनी वैयक्तिक उन्नति के लिए शिष्यों ने कोशिश की । अपने जीवन-काल में ही तथागत ने दिखा दिया था कि उन्होंने व्यक्तिनिष्ठ होकर नहीं, परन्तु समस्त लोककल्याण को दृष्टि में रखकर ही धर्म का प्रचार किया था । लोगों की यह भी धारणा रही कि अनेक जन्मजन्मान्तरों के परिणाम स्वरूप ही उनको संबोधि की प्राप्ति हुई । बोधि प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को बोधिसत्व[२] की संज्ञा दी गयी थी । अनेक बुद्धों और बोधिसत्वों की कल्पना की गयी । अनेक अतीत बुद्धों के चरित्र का संग्रह रघुवंश में मिलता है । जन्मान्तरों में जकड़ाकर बुद्ध को अवतारवाद में भी खींच लिया गया । शील, परोपकार तथा उदारता के गुणों से परिपूर्ण है बोध-सत्व । निर्वाण-प्राप्ति ही बोधिसत्व का भी अन्तिम ध्येय होता है । 'बोधिसत्व महामैत्री तथा करुणा से संपन्न होता है तथा जगत् के प्राणी को क्लेश से मुक्त तथा निर्वाण में प्रतिष्ठित करना उसका लक्ष्य होता है ।'[३]

करुणा और मैत्री का चरम उत्कर्ष महायानी चिन्तन में प्रकट हुआ ।[४] इस

१- बुद्धमत - ए० जी० कृष्णवारियर, पृ० ३२६.
२- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७४.
३- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ० ३२.
३- साहित्यकोश
४- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७६.

इस पवित्र संदेश से उन्होंने वैयक्तिक-मोक्ष की प्राप्ति का भी उपदेश दिया था। यह भी चिन्तनीय है कि जो करुणा का सागर है, वह अपने भाई-बंधुओं को इस सागर में ही अकेले छोड़कर क्यों अपनी मुक्ति का विचार करे ? इसलिए महायानियों ने यही निष्कर्ष निकाला कि जो वैयक्तिक मुक्ति का अधिकारी बनने का यत्न करता है उसको अवश्य निर्वाण की प्राप्ति होती है। किन्तु उसे निर्वाण को स्वीकारना नहीं चाहिए। इसके बदले उसे जन्मजन्मान्तरों के कालचक्र में फँसकर, दुःखाग्नि में जलकर राख होने वाले प्राणियों के उद्धार का सत्कार्य करते रहना चाहिए। इस प्रकार विश्वकल्याण की सद्भावना को मन में धारण करके जो बार-बार जन्म ग्रहण करता है, वही महायान के अनुसार बोधिसत्व है।[१]

जो बोधिसत्व मोक्ष और निर्वाण के लिए योग्य रह गया है उसे बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। महायान ने बोधिसत्वों के गुणगायन से उनकी महत्ता को प्रकट किया है। स्वार्थी जन ही वैयक्तिक मोक्ष की खोज में रहता है। जब तक एक भी व्यक्ति मोक्ष से दूर है, तब तक साधक के लिए यही उत्तम है कि वह बुद्धत्व को छोड़ बोधिसत्व की कोटि में बना रहे।[२] महायान के मत से समानता रखने वाले विचार हम वैष्णव धर्म में भी देख सकते हैं।[३]

(२) दश भूमि

महायान की तीसरी विशेषता है दशभूमि की कल्पना। इसमें महायान हीनयान से एक कदम आगे है। हीनयान में केवल चार भूमियों का ही उल्लेख मिलता है जबकि महायान दशभूमियों को मानता है। इन दशभूमियों को पार करके ही अर्हत्वप्राप्त निर्वाण तक साधक पहुँचता है।

१-२. संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७६, १७७.

३- तुलसीदास और सूरदास के समय में वैष्णव भी यह मानते थे कि मोक्ष प्राप्ति अपेक्षा यह कहीं श्रेयस्कर है कि हम अपने आराध्य की सेवा करते रहें। यह भावना कदाचित्, महायान से ही वैष्णव धर्म में पहुँची थी। -- संस्कृति के चार अध्याय — दिनकर

(३) त्रिकाय की कल्पना

त्रिकाय की कल्पना महायान की और एक विशेषता है। धर्मकाय संभोग काय तथा निर्वाण काय इन तीनों तरह के कायों को महायान में मान्यता मिली है।[१] वास्तविक बुद्ध धर्मकाय है। उसे उनका आध्यात्मिक शरीर माना जाता है। उसे ही बुद्धकाय, प्रज्ञाकाय, स्वाभाविककाय, बोधिकाय, और अधर्मकाय भी कहते हैं। यही परमार्थ सत्य है।[२] इसी प्रकार 'तुषित लोक में रहकर लोक-कल्याण के लिए जो बोधि सत्वों को मार्ग दिखलाते हैं, वह संभोगकाय है।[३] कथावत्थुप्पकरण से तो विदित होता है कि स्थविरवाद में त्रिकायवाद को कोई मान्यता नहीं दी है।[४] साहित्यकोशकार ने जो तीसरे काय की कल्पना की है, वह है निर्वाणकाय। लेकिन अन्य विचारकों ने तीसरे काय के रूप में रूपकाय को ही लिया है तथा उनका कथन है कि जिस रूप में भगवान् बुद्ध ने जन्म लेकर उपदेश दिया था वह उनका रूपकाय है।[५]

(४) निर्वाण की कल्पना

महायान में सर्वोपरि लक्ष्य निर्वाण माना गया है। जो आनन्दस्वरूप है। लेकिन यहाँ वैयक्तिक मोक्ष प्राप्त करके निर्वाण-प्राप्ति का अधिकारी बनना अत्यन्त हेय समझा गया, यह अन्यत्र प्रतिपादित किया गया है। समस्त लोकजीवन की मुक्ति के बारे में सोचने के कारण महायान के साधकों का लक्ष्य बदल गया। 'पहले साधक जो यह प्रतिज्ञा करते थे कि मैं आवागमन के बंधन से छूटकर निर्वाण प्राप्त करूँगा, वहाँ अब वे यह प्रण लेने लगे कि सारे जगत् के सब प्राणियों के सभी दुःखों को दूर करने के लिए मैं बुद्ध बनूँगा। बुद्ध ने मनुष्यों और देवताओं के उद्धार की बात कही थी। महायानी साधक जीवन-मात्र के उद्धार को अपना ध्येय मानने लगे।[६]

१- साहित्यकोश - (बालसुधा), पृ० ६३६.

२-५. भगवान गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ८७.

६- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७७.

महायान के इन उदात्त ध्येयों का निरूपण आचार्य शान्तिदेव के ग्रंथों में अत्यन्त प्रखर रूप में मिलता है[१]।

(५) भक्ति का समावेश

महायान मत का आधार भक्ति है। अन्धविश्वास मानव का जन्मसिद्ध स्वभाव है। अपनी उद्देश्य-पूर्ति के लिए प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करना, मनुष्यों में अलौकिकत्व का आरोपण करना, देवी-देवताओं की पूजा करना आदि उसके इस स्वभाव के द्योतक हैं। जब बुद्ध को अलौकिक देवता का रूप प्रदान किया गया तो उसके अनुयायी बढ़ गये क्योंकि महायान ने वैरागी और गृहस्थों को एक समान मोक्ष के अधिकारी सिद्ध किये वैपुल्यवादियों ने जिस नारी-समागम को त्याज्य बनाया था, उसे महायान ने भी प्रोत्सा हन दिया। इन सभी कारणों से बौद्धधर्म के अनुकरण में कठोर-नियमों का अस्तित्व नहीं देखकर अनेक महायान के असंख्य अनुयायी हो गये।

जिस ईश्वर के विषय में बुद्ध स्वयं मौन रहे थे, उन्हीं बुद्ध को महायान ने ईश की संज्ञा दी। बुद्ध-भक्ति पर विशेष बल देने वाले महायानियों के लिए बुद्ध मुक्तिदात भी हैं, यह सद्धर्मपुण्डरीक में उद्धृत किया गया है। 'महायान के बुद्ध का संकल्प है -- 'जितने दुखी प्राणी हैं, उन सब का भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ।' महायान में पूजा, वन्दना, शरण-गमन, पाप-देशना, पुण्यानुमोदना, अध्येषणा (प्रार्थना) याचना, बो चितोत्पाद और बोधिपरिणामना -- ये नौ प्रकार की पूजाएँ मानी गयी हैं -- इसी में भक्ति पूर्ण होती है।[२] संक्षेप में कहा जाय, तो बुद्ध-भक्ति से ज्ञान प्राप्त करना इनका लक्ष्य है।

१- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७७.

२- भगवान् गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ८७.

३- वही.

(६) मानवतावाद

महायान का उदय बौद्ध-धर्म के इतिहास में नवीन-युग के आरंभ को सूचित करत है।[१] इस नवीन युग की विशेषता रही मानवतावाद की गुंजाइश। संपूर्ण मानवजाति की एकता और कल्याण रहा धर्मों का मूल आधार। बौद्धधर्म की महायानी शाखा जगत् के कष्टों को अपने कष्ट समझकर संपूर्ण मानवता की कामना करने वाली रही। इसलिए सामाजिक उन्नति को दृष्टि में रखकर महायानी पंथ सार्थक हुआ। 'संन्यास का मार्ग कभी भी समग्र मानवता का मार्ग नहीं हो सकता।'[२] इसलिए उन्होंने गृहस्थों के लिए भी अपने द्वार खोल दिये। इनको आकर्षित करने के लिए महायानियों ने 'पारमिता' की शिक्षा दी।[३] 'शिक्षासमुच्चय' में बोधिसत्व के गुणों का उल्लेख मिलता है, साथ-साथ उनके कर्त्तव्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। ये गृहस्थों के भी कर्त्तव्य रहे हैं दान की भावना, समचित्त होना, ज्ञान प्राप्ति का अवलम्बन, अधिक प्रेम या आकर्षण में न पड़ना, समभावना, अहंका त्याग, भौतिक वस्तुओं से विरक्ति, क्रोध, दुराचार आदि से विमुख रहना, परोपकार की भावना आदि ही तृष्णारहित सुख और लोक-कल्याण के साधन समझने लगे।

महायान संप्रदाय की इस भक्ति और पूजा की भावना ने जनमन को नीरस मरुस्थल से उठाकर सरस नन्दनवन में लाकर खड़ा कर दिया। कला ने एक नयी दिशा ले ली। बौद्ध प्रतिमाओं तथा बोधिसत्व के आकारों को पाकर कला सार्थक हुई। ग कला का उदय, भोगी, भिक्षु, राजकुमार आदि आकारों में बुद्ध प्रतिमाओं का निर्मा होने लगा। सफलता के उन्नत शृंग पर कला ने अपना कदम बढ़ाया।

१- भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - नाहर, पृ० १६१.

२- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १७४.

३- साहित्यकोश, पृ० ४६०.

महायान के निकाय

यहाँ महायान के निकायों के बारे में भी संक्षिप्त परिचय दिया जाना चाहिए महायान दो दार्शनिक-निकायों में विभक्त हो गये -- माध्यमिक और योगाचार । माध्यमिक को शून्यवाद और योगाचार को विज्ञानवाद भी कहते हैं । इसी समय हम हीनयान के भी दो भेद देख सकते हैं -- (१) सर्वास्तिवाद (वैभाषिक) और (२) सौत्रान्तिक । अपना ग्रंथ 'भारतीय दर्शन' में पं० बलदेव उपाध्याय ने तो सौत्रान्तिक को भी महायान के अन्दर रखा है । तत्वसमीक्षा से विदित है कि कतिपय अंशों में सर्वास्तिवाद का समर्थन होने पर भी, अन्य सिद्धान्तों में वह योगाचार की ओर झुकता है ।[१] महायान के दार्शनिक मत नीचे दिये गये हैं --

(१) माध्यमिक मत या शून्यवाद

ज्यों ही महायान लौकिक-पक्ष की ओर झुकता जा रहा था, त्यों ही उसका दार्शनिक पक्ष भी बल को प्राप्त किये समस्त शक्तियों का खजाना बन गया था । महायान के निकायों में प्राचीनता को दृष्टि में रखकर माध्यमिक मत या शून्यवाद को ही पहला स्थान दिया जा सकता है ।[२] शून्यवाद को हम एक व्यक्ति से संबंधित न कर सकते, तो भी माध्यमिक मत के समर्थकों में अग्रगण्य थे नागार्जुन जो ई० सन् प्रथम शताब्दी में जीवनयापन करते थे । एक नव्य दार्शनिक विचारधारा के ज्ञाता नागार्जुन की अद्भुत रचना 'माध्यमिक-कारिका' में हमें शून्यवाद का यथार्थ स्वरूप देखने को मिलता है । सन् १९२७ ई० में रूसी दार्शनिक शेरबात्स्की ने भी लिखा था कि नागार्जुन की गिनती विश्व के बड़े-से-बड़े दार्शनिकों में की जानी चाहिए । इतना ही नहीं, यह भी कहा जाता है कि नागार्जुन नहीं हुए होते, तो भारत में शंकराचार्य के अद्वैतवादी दर्शन का आविर्भाव नहीं होता ।[३] विन्टरनित्स ने तो नागार्जुन के माध्यमिक शाखा, प्रज्ञापार-

---

१- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० ४९.

२- बुद्धमत - ए० जी० कृष्णावारियर, पृ० ३३२.

३- भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, दिनकर, पृ० १८१.

यितासूत्र-शास्त्र, युक्तिषष्टिका, शून्यता-सप्तति, प्रतीत्यसमुत्पादहृदय, महायानविंशिका, विग्रहव्यावर्तिनी, दशभूमिविभावाशास्त्र, एकश्लोक शास्त्र, आदि ग्रंथों का विवेचन किया है।[१] इन ग्रंथों के विषय से स्पष्ट है कि नागार्जुन की दृष्टि में महायान के तीन विचार स्तंभ हैं -- शून्यवाद, पारमिताएँ तथा दशभूमियाँ।

दैनिक जीवन में हम `शून्य` का अर्थ `खाली` या `रिक्त` मानते हैं। लेकिन दर्शन में इस शब्द का अर्थ है `वह अवस्था जिससे सारी चीजें निकली हैं।`[२] नागार्जुन ने हर चीज़ को शून्य माना है। `सभी भौतिक तथा मानसिक पदार्थ कल्पित हैं। वे मृग-मरीचिका, आकाश, वन्ध्यापुत्र के समान तत्वत: शून्य है।`[३] लंकावतार सूत्र में कहा गया है कि `वासना का ही यह लोक है जो अद्वय, वितथ और शून्य होता हुआ भी आलात-चक्र की भाँति गतिशील दृष्टिगत होता है।`[४]

अपने शून्यवाद को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करने के लिए नागार्जुन ने दो सत्यों को मान्यता दी है -- एक संवृत्तिसत्य और दूसरा परमार्थ सत्य। संवृत्ति सत्य परमार्थ-सत्य की सीढ़ी है।[५] जो दिखायी पड़ता है वह सत्य का असली रूप नहीं है। हम जो कुछ देखते हैं, वह शून्य है, स्वप्न है, कुछ नहीं में कुछ का मिथ्याभास है। तब भी, हमें व्यवहार में इसे सत्य मान लेना पड़ता है।`[६] यही संवृत्ति सत्य है। यह अविद्याजनित व्यावहारिक सत्य है।[७] लेकिन इनसे परे परमार्थ सत्य है। यह तो प्रज्ञाप्राप्त सत्य है।[८] जब हम हर चीज़ को शून्य मानते हैं तो हम इसी को अन्तिम सत्य भी मान

१- तांत्रिक बौद्धसाधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० ५०.

२- भारतीय संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १८१

३- भगवान् गौतम बुद्ध - विद्यावति मालविका, पृ० ६२

४- वही.

५- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ० ५५.

६- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १८१.

७-८. तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० ५५.

लेने को तैयार होंगे जब तक हमें संबोधि की प्राप्ति नहीं होती । अनुभव से प्राप्त है यह दूसरा सत्य । महात्मा बुद्ध ने जिन चार आर्य सत्यों के संदेश से चारों दिशाओं को मुखरित किया था उनमें पहले तीनों संवृत्तिसत्य के अंतर्गत आते हैं और चौथा परमार्थ सत्य के अन्तर्गत । हमारे आचारविचारादि का कारण यह जगत तथा इससे संबंधित क्लेश हैं। इनका निरोध ही शून्यता है । जब तक हम इस शून्यता से अज्ञ हैं, तब तक हम मोक्ष-प्राप्ति के लिए अयोग्य रह जाते हैं । इसलिए आध्यात्मिक साधना के लिए इस शून्यता का ज्ञान होना आवश्यक बतलाया है ।

नागार्जुन ने स्वयं इसको माना है ।[१] यही उनका मध्यम मार्ग भी है । क्योंकि किसी वस्तु के प्रति अत्यधिक राग, अत्यधिक द्वेष और त्याग, सभी अनुचित है ।[२] इस-लिए इन दोनों के बीच में जो सत्यता पायी जाती है, उसी को मध्यम मार्ग की संज्ञा दी गयी है ।

नागार्जुन का शून्यवाद और महात्मा बुद्ध का प्रतीत्यसमुत्पाद दोनों समान हैं । परिवर्तनशीलता पर प्रकाश डालते हुए कार्यकारण के सिद्धान्त को ही यह प्रतिपादित करना है । माध्यमिक-कारिका में कार्य-कारण की शृंखला का वर्णन मिलता है । वहाँ कर्म और कर्म करने वाले का वर्णन मिलता है । ललितविस्तर में तो यह एक और ढंग से वर्णित किया गया है, वहाँ इस कार्य-कारण शृंखला को `बीजाकुरन्याय` से अभि-हित किया गया है । सभी पदार्थ अपनी सत्ता के लिए कारण के ऊपर अवलंबित होते हैं । वस्तु का अकृत्रिम स्वरूप ही परमार्थ है ।[३] इसके समर्थन के लिए नागार्जुन `माध्यमिक कारिका` में यों बताते हैं --

---

१- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० ५०.

२- वही - पृ० ५२.

३- वही - पृ० ५३.

प्रभवति च शून्यतेयं यस्य प्रभवन्ति तस्य सर्वार्थाः ।
प्रभवति न तस्य किंचित् न भवति शून्यता यस्य ।

अर्थात् जिसे शून्यता का ज्ञान हो जाता है, वह सब कुछ समझ सकता है । इसी वाद से प्रतीत्यसमुत्पाद की भी उत्पत्ति हुई ।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि शून्यवाद सत्ता का निषेध करता और लोक को शून्य मानकर वासनामय जगत् से मुक्ति का आकांक्षी है । इसी प्रकार शून्यवादी के व चार, नैतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी विचारों का परिचय हमें उनके 'सुहृत्लेख' में मिल जाता है, धन के विषय में उनका कहना था --'धन को चंचल और असार समझ धर्म सार उसे भिक्षुओं ब्राह्मणों, गरीबों और मित्रों को दो, दान से बढ़कर दूसरा मित्र नहीं है'।[१]

संस्कृति का विश्लेषण करते हुए दिनकर ने शांकर मत और शून्यवाद में संबं स्थापित किया है । यही अन्तर है कि शंकराचार्य ने बुद्धत्व की जगह आत्मज्ञान या ज्ञान को रखा है । इस अवसर पर धर्मानन्द कौशाम्बी का यह उद्धरण समुचित लगता है --'अद्वैतवादियों के दर्शन में केवल यही दोष है कि उनके विचार से ज्ञान नित्य है अन्य विषयों में उनके और बौद्धों के दर्शन में कोई भेद नहीं है ।

(२) योगाचार मत या विज्ञानवाद

बुद्ध के दार्शनिक विचारों में प्रतीत्यसमुत्पाद का शीर्ष-स्थान है, जो पहले देखा जा चुका है । दर्शनदिग्दर्शन में इसी को बौद्धधर्म का आधार भी माना है । इस बारह अंग हैं -- अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृ उपादान, भव, जाति और जरामरण । इन अंगों में विज्ञान का स्थान प्रमुख है । 1

१- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ० ५६.
२- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० १८२.

विज्ञान को केन्द्र मानकर ही सारा चक्र गतिमान रहता है । अविद्या से उत्पन्न संस्कार और तत् जनित विज्ञान मनुष्य को संसार में निरन्तर खींचता रहता है । इस विज्ञान का निरोध या संयम आवश्यक है ।

विज्ञान, मन, चित्त, आत्मा आदि बौद्धधर्म में समानार्थी हैं । इसी विज्ञान को विज्ञानवादियों ने मुख्यता प्रदान की है । `दशभूमिश्वरसूत्र` के अनुसार विज्ञानवाद की मान्यता है कि `जो कुछ भी यह जगत् है, सब चित्तमय है`।[१] अर्थात् विज्ञान या चित्त सत् है । अन्य सभी वस्तुओं या पदार्थों को असत् माना गया है । जहाँ शून्यवाद सभी पदार्थों को शून्य मानता है, वहाँ विज्ञानवाद केवल विज्ञान को सत् मानता है । इसी कारण इसका विज्ञानवाद नाम पड़ा । विज्ञान सत्ता के समर्थन के लिए लंकावतारसूत्र में बताया गया है --

चित्तं प्रवर्तते चित्तं चित्तमेव विमुच्यते ।
चित्तं हि जायते नान्यच्चित्तनेव विरुध्यते ।।

अर्थात् चित्त ही प्रवर्तित होता है, चित्त ही विमुक्त होता है, चित्त ही उत्पन्न होता है, चित्त ही निरुद्ध होता है, अन्य कोई भी पदार्थ चित्त के अतिरिक्त विद्यमान नहीं है ।

विज्ञानवादियों ने क्षणिकता, परिवर्तनशीलता आदि को भी प्रधानता दी है `योगाचार भूमि` में पंचस्कन्धों का भास भ्रममात्र सिद्ध किया गया है ।

इतना ही नहीं, इन के मत में चित्त निरन्तर प्रवाहमान है । इस प्रवाह में पिछले जीवन के संस्कार निहित रहते हैं । इन अतीत संस्कारों को एकत्रित करके भविष्य जीवन का निर्माण विज्ञान से ही हो सकता है ।

विज्ञानवाद को `योगाचार` नाम पड़ने के कारणों पर अनेक आलोचनाएँ सामने आयी हैं । योगाचार मत में बौद्धसिद्धान्तों और योग के समन्वय को देखने के कारण

१- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावति मालविका, पृ० ६१.

राधाकृष्णन् ने उसे योगाचार का नाम दिया है । लेकिन श्री राहुल सांकृत्यायन ने असंग की रचना `योगाचारभूमिशास्त्र` के आधार पर इस मत का `योगाचार` नाम सभी चीन माना । वास्तव में मैत्रेय और असंग ने ही बौद्धधर्म में योग को प्रतिपादित किया था ।[१]

३- हीनयान

जैसे जैसे बौद्धधर्म का विकास होता गया, उनमें नये-नये विचारों का उदय हुआ नयी-नयी शाखाएँ और उपशाखाओं में बौद्धधर्म विभक्त हुआ, इन नवोदित शाखाओं को नये-नये नाम भी दिये गये । परन्तु बौद्धधर्म की प्राचीन शाखा `हीनयान` के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

`हीनयान` शब्द का अर्थ है `नीच-मार्ग` जो प्रगति को रोकता है । मोक्षप्रा के लिए या निर्वाण की प्राप्ति के लिए साधक जिस मार्ग से होकर प्रयाण करते थे, वही मार्ग `हीनयान` था । बुद्ध के समय से लेकर करीब दो सौ सालों तक हीनयान अपनी समानगति से आगे बढ़ता रहा । किन्तु ई० सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर जब पालि का महत्व घट गया और संस्कृत उस स्थान पर विराजमान हुई, तब से `हीनया` का भी महत्व घट गया और उसे हेय-दृष्टि से देखने लगे । ई० सन् की प्रथम शताब्दी जब महायान का उदय हुआ तो महायानी आचार्यों ने उसे लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से अपने को श्रेष्ठ बतलाया और हीनयान को `नीच-मार्ग` बतलाया । तब से यह पतन के गर्त की ओर झुकने लगा ।

ई० सन् ४१४ में चीनी यात्री फाहियान ने अपने यात्राविवरण में सबसे प्रथम `ह यान` का प्रयोग किया । लेकिन उनका इस शब्द से जो मतलब है, वह बहुत अस्पष्ट है उसी प्रकार `सद्धर्मपुण्डरीक` में भी कहीं हीनयान का उल्लेख ही नहीं मिलता । इस ग्र में तीन शाखाओं का उल्लेख मिलता है -- श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान तथा महायान ।

१- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० ७०.

यहां भी हीनयान नहीं है । कभी-कभी श्रावकयान ही हीनयान हो सकता है । ललित-विस्तर में भी `हीनयान` को एक तुच्छ मार्ग के रूप में ही चित्रित किया गया है । फिर हम चीनी यात्री ईत्सिंग के काल तक आते हैं । लेकिन ईत्सिंग तक आते-आते `हीनयान` का शब्दार्थ ही बदल जाता है । जो देवताओं और स्वर्ग की सत्ता पर विश्वास नहीं रखता, उसे ही ईत्सिंग ने `हीनयानी` बतलाया ।[१] ई० पूर्व शताब्दियों में बौद्धधर्म के जो अठारह प्रकार या मत प्रचलित थे, उनमें हीनयान भी आता था ।

दार्शनिक-दृष्टि से हीनयान और थेरवाद दोनों का निकट सम्बन्ध है । ई० पूर्व ३५० तक भारत में `हीनयान` का निरन्तर प्रवाह देखने को मिलता है । लेकिन उसके बाद हीनयानियों की संख्या भारत में बहुत कम होती गयी । इसके बाद बौद्धसंगीतियों का आयोजन, नाना-विचारधाराओं का उद्गम आदि से बौद्धसाहित्य भरा पड़ा है । इस प्रकार हीनयान की मुख्यता ई० शताब्दियों में घटती गयी ।

हीनयान सद्धर्म को ही प्रधान मानता है । यह मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है । इस मार्ग से होकर जाने वाला साधक पुनर्जन्म के भंवर में फंसे बिना जीवन्मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।

भगवान बुद्ध के वचन कई शताब्दियों तक संग्रहित किये गये । लेकिन वैशाली की बौद्ध-संगीति के बाद उनके वचनों को आकार दिया गया । ग्रंथों में उन्हें समाहित किया गया । यही हीनयानी-साहित्य के अंतर्गत आता है । ईसा के पूर्व लिखे गए बौद्धग्रंथ हैं `अट्ठकथा` तथा `कथावत्थु` । उसी प्रकार हीनयान साहित्य में ललितविस्तर, दिव्यावदान तथा महावत्थु का भी नाम कम-प्रसिद्ध नहीं है । चीनी तथा तिब्बती भाषाओं में ही हीनयानी साहित्य ज्यादातर बिखरा पड़ा है । पालि लिपिटकों को भी इसी हीनयानी साहित्य से संबंधित किया गया है ।

१- साहित्यकोश.

४- हीनयान तथा महायान का पारस्परिक एवं सैद्धान्तिक संबंध

बौद्ध-सिद्धान्त की आदिम और प्राचीन शाखा हीनयान और उससे विकसित महायान का विस्तार से ऊपर वर्णन हुआ है। अब इन दोनों मतों में जो सैद्धान्तिक सम्बन्ध देखने को मिलता है, इस पर कुछ प्रकाश डालना है।

एक ही धर्म से उद्भूत दो शाखाएं हैं, हीनयान और महायान। बुद्ध ने जिस आदिम धर्म को प्रवर्तित किया, इसके अनुयायी पहले `श्रावकयान` और `प्रत्येकबुद्धयान` नाम से प्रसिद्ध थे।[१] जिन्होंने बुद्ध के मुख से धर्मोपदेश सुना था वे बुद्धानुयायी ही निर्वाणप्राप्ति के अधिकारी रह जाते हैं, इसी सीमित मत ने इनको `हीनयान` का नाम दिया। परन्तु आगे चलकर बौद्धाचार्यों ने तो यह घोषणा कर दी कि संपूर्ण संसार तो निर्वाणप्राप्ति में दीक्षित हो सकता है। इसी महोद्देश्य ने इसको `महायान` की संज्ञा दी। निर्वाण संबंधी उपर्युक्त उनकी हीन या संकीर्ण-भावना के कारण महायानियों ने उनको हीनयान से पुकारा।

वस्तुत: स्थविरवाद ही हीनयान था। लेकिन इसके विरुद्ध उठ खड़े हुए भिक्षु निकायों का जो सम्मिश्रण था, वही महायान था। तीसरी शताब्दी तक बौद्धधर्म का जनता पर अत्यन्त प्रभाव ही देखने को मिलता है, लेकिन तीसरी शताब्दी के बाद ही बुद्ध को लोकोत्तर मानकर उनके अद्भुत रहस्यों से युक्त लीलाकार्यों के साथ उनके उपदेशों को मानना आरंभ किया। थोड़ा सा अन्तर होने पर भी दोनों में पारस्परिक सैद्धान्तिक संबंध भी था। बौद्धधर्म दर्शन में ह्वेनसांग ने ऐसे भिक्षुओं का उल्लेख किया है, जो हीनयानी होकर भी महायान के अनुयायी थे और विनय में पूर्ण थे। हीनयानी भिक्षु का महायान में परिवर्तन, सत्य, निर्वाणप्राप्ति आदि में उनकी समानता आदि दोनों मतों के संबंध को स्वयं सूचित करता है। बौद्ध ग्रंथों से प्रमाणित होता है कि नालन्द

१- संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक` - गंगाराम गर्ग, पृ० ३३१.

विक्रमशिला जैसे विद्याकेन्द्रों में दोनों मतों के भिक्षुसंघों की शिक्षा समान रूप से दी जाती थी । इन सभी बातों से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दोनों मतों में हम विशेष रूप से कोई भेद नहीं देख सकते अपितु पारस्परिक संबंध ही देखा सकते हैं ।

पण्डित नलिनाक्षदत्त ने महायान की उत्पत्ति पर लिखते हुए कहा है कि उसकी उत्पत्ति दक्षिणापथ में हुई । प्रारंभ में इसके जो लक्षण देखने को मिले, उनमें मुख्य थे -- बुद्ध को लोकोत्तर रूप प्रदान करना और बोधिसत्व के उपदेशों का प्रतिपादन करना बोधिसत्व और करुणातत्व महायान को हीनयान से अलग रखने वाले तत्व हुए । 'बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन' नामक अपने ग्रंथ में डा० भरतसिंह उपाध्याय का भी मत है कि 'महासांघिक भी हीनयानी ही थे, केवल बुद्ध के संबंध में उनके भिन्न विचार थे ।[१] हीनयान के अनुसार बुद्ध ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने मानवीय गुणों और अनुभवों सहित इस पृथ्वी पर पदार्पण किया । लेकिन महायानियों ने उनको अलौकिक या लोकोत्तर रूप प्रदान किया ।

महासांघिकों के महोद्देश्य के बारे में पहले ही लिखा जा चुका है । दोनों में निर्वाण संबंधी जो भिन्न मत हैं, वे भी देखने लायक हैं । व्यष्टिगत निर्वाण हीनयानियों का परम लक्ष्य रहा, परन्तु समष्टिगत निर्वाण ही महायानियों की मान्यता थी ।

यह स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि भगवान् बुद्ध ने विशुद्धि का एक सर्वश्रेष्ठ यान या मार्ग का उपदेश दिया था जिसे मध्यममार्ग के नाम से अभिहित किया गया था । लेकिन सद्धर्मपुण्डरीक से प्रमाणित हो जाता है कि महायानियों ने और एक यान को स्वीकृत किया है, वह मार्ग है 'बुद्धयान' । मध्यममार्ग से होकर साधक शीघ्र ही दु:खों को पार कर लक्ष्य तक पहुँच सकता है । लेकिन बुद्धयान में तो लक्ष्य तक पहुँचने के लिए ऐसी कई सीढ़ियों को पार करने की आवश्यकता है जो बोधिसत्वों के गुणों से परिपूर्ण है ।

१- भगवान गौतम बुद्ध - डा० विद्यावति मालविका, पृ० ८५.

इन गुणधर्मों की पूर्ति ही साधक को `बुद्ध` बना देती हैं । इस प्रकार महायान बुद्धों का मार्ग है और हीनयान बुद्ध के बतलाए हुए धर्म को सुनकर उस पर चलने वाले श्रावकों का । हीनयान में तो परिनिर्वाण के पश्चात् की अवस्था पर मौन धारण किया गया है, हीनयान का लक्ष्य `अर्हत्व` रहता है और महायान `बुद्धत्व` पर जोर देता है ।

इसके बाद महायान और हीनयान में हम दो प्रकार की बुद्ध देशना को देख सकते हैं -- व्यावहारिक और पारमार्थिक । दोनों मतों ने दोनों देशनाओं को मान्यता दी है, लेकिन अपनाने का ढंग विभिन्न है । महायानी बुद्ध को लोक के पिता और स्वयंभू मानकर उनको अमरता प्रदान करते हैं । जिस बुद्ध के द्वारा लोगों को उपदेश मिला, उसी बुद्ध के रूप को वे वास्तविक रूप मानते हैं । इस रूप को वे बुद्ध द्वारा निर्मित रूप बतलाते हैं । इसके बाद महायानियों ने बुद्ध को जन्ममरण से मुक्त बतलाया और कहा कि वे गृध्रकूट पर्वत पर ठहर कर धर्मोपदेश देते हैं । इसी गुह्य रूप को वे लोग संवृत्ति रूप मानते हैं । इसके विरुद्ध हीनयानियों ने बुद्ध के जन्म, उनके इस संसार में रहना, परिनिर्वाण आदि पर विश्वास किया और उनके वास्तविक तथा व्यावहारिक बातों को प्रकट किया । महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनको कोई भी नहीं देख सकता या उनके बारे में कोई भी नहीं जान सकता । इसके समर्थन के लिए दीघनिकाय की उक्ति ही पर्याप्त है -- `शरीरपात हो जाने के बाद उनके जीवन-प्रवाह के निरुद्ध हो जाने से उन्हें देव और मनुष्य नहीं देख सकते ।` इसी भावना से प्रेरित होकर महायान में त्रिकायों की भावना भी आ गयी । इसका उल्लेख पहले दिया जा चुका है ।

हीनयान में बुद्ध को शास्ता या गुरु मानकर चलने वाले धार्मिक पंथ का ही उल्लेख प्राप्त है लेकिन बाद में जो महायान शाखा ने स्वरूप ले लिया, उसका आधार था भक्ति । वहाँ बुद्ध मुक्तिदाता के रूपमें ही विराजमान हुए । स्थविरवादी बुद्ध मार्गदर्शी बनकर सांसारिक दु:खों से मुक्ति दिलाने के व्याख्याता हैं और महायानी बुद्ध

सबको दु:खों से त्राण प्रदान करने का भार स्वयं अपने ऊपर ले लेते हैं । बुद्ध को केव गुरु मानकर ही स्थविरवादी पूजा-अर्चना करते हैं । लेकिन महायानी उनके भक्ति-स को मानते हैं ।

ऐसे पारस्परिक संबंध होने पर भी सम्राट कनिष्क के समय दोनों धार्मिक-मत का अन्तर बड़ी मात्रा में हुआ । इतिहासकारों ने महान् अशोक को हीनयान का पो बतलाया है और कनिष्क को महायान का ।[१]

५- बौद्धधर्म में तांत्रिक साधना का विकास

भारतीय संस्कृति को निगमागममूलक कहकर उसकी विशेषता सिद्ध की जाती है । इसमें निगम वेद-सूचक तथा आगम तंत्र का द्योतक है । तंत्र की साधनापद्धति रहस्यमयी एवं गूढ़ होने के कारण जनसामान्य को उस साधना पद्धति के प्रति अत्यन्त उपेक्षा की भावना ही रही । लेकिन उसके दार्शनिक विचार इतने उदात्त हैं कि उनके अनुशीलन से अभ्युदय (लौकिक कल्याण) तथा नि:श्रेयस (मोक्ष) के उपाय बुद्धि में आरूढ़ होते हैं तंत्र का शाब्दिक अर्थ है शास्त्र, सिद्धान्त तथा अनुष्ठान । श्रीकंठाचार्य ने भी तंत्र को वेदतुल्य अक्षुण्ण प्रामाण्य माना है । मंत्रों के शुद्ध उच्चारण में मंडलों, वृत्तों और नानाविध यंत्रों के निगूढ़ रहस्य-चिंतन में और योग-पद्धति के द्वारा शरीर में निहित सूक्ष्म शक्तियों के जागरण और विकास में होता है । जब उसकी कुंडलिनी-शक्ति जा हो जाती है, तभी वह समझता है कि उसके आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त गया ।[३]

इस तांत्रिक साधना के साथ गुह्यता का रहना भी अनिवार्य हो गया । ल के बीच यह धारणा फैली थी कि प्रच्छन्नता तांत्रिक साधना को ज्यादा फल प्रद

१- विश्वविज्ञानकोश, पृ० १६४.

२- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग) - राजबली पाण्डेय, पृ० ५०

३- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० २२१.

कर सकती है । इतना ही नहीं, इसके लिए वामाचार भी लोगों ने अपनाया था । मद्य मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन से युक्त पंचमकार-पूजा को वामाचार में स्थान मिल गया था । इन सभी कारणों से तंत्र को प्रच्छन्न रूप से रखने की लोगों ने कड़ी कोशिश की थी ।

तंत्रों के भी दो प्रकार हैं -- वेदानुकूल तथा वेदबाह्य, वेदबाह्य तंत्रों के ऊपर बौद्ध प्रभाव तिब्बत तथा भूटान की ओर से माना जाता है जिसका विशेष उग्र रूप वामाचार पूजा में दिखलाई पड़ता है ।[१] इस प्रकार तंत्रों का बौद्धधर्म में भी प्रवेश हो जाने का हमें प्रमाण मिलता है ।

भारत में महायान को बड़ी प्रचुर मात्रा में लोकप्रियता मिल गयी । उसके असंख्य अनुयायी भी हुए । इन्होंने महायान में जो बुद्धभक्ति, बुद्धकृपा, अनेक स्वर्गों, देवताओं तथा देवियों की कल्पना की, उसके फलस्वरूप स्तोत्र-मंत्रों का निर्माण, बोधिसत्व के लिए करुणा प्रसार, प्रज्ञोपलब्धि आदि समाज में प्रचलन हुआ । इन धार्मिक तथा दार्शनिक परिस्थितियों से वज्रयान का विकास हुआ ।[२] महायान में तंत्र के प्रवेश हो जाने पर उससे विकसित शाखाओं को ही 'तांत्रिक बौद्धधर्म' की संज्ञा दे सकते हैं । मंत्रयान, वज्रयान या सहजयान इसी शीर्षक के अंतर्गत आ जाते हैं । अद्वयवज्रसंग्रह के 'तत्वरत्नावली' में महायान के दो विभाग देखने को मिलते हैं -- पारमितानय और मंत्रनय । इसी मंत्रनय से वज्रयान, सहजयान, कालचक्रयान आदि का विकास हुआ । लगभग पाँचवीं ईस्वी शताब्दी के पूर्व तक महायान में पाँच पारमिताओं को पार करके प्रज्ञापारमिता की प्राप्ति करने वाले संप्रदाय के अनुयायी थे । इन्हीं को पारमितानय में रखा गया था । दूसरा था मंत्रनय, जिससे मंत्रयान विकसित हुआ ।

१- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - राजवली पाण्डेय, पृ० ५०१.

२- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १०

(१) मंत्रयान

सारे पारमिताओं को पार किये बिना ही प्रज्ञाप्राप्ति के लिए साधक यत्न करते थे । पाँचवी शताब्दी के बाद लोगों का सहज रूप से मंत्रों की ओर आकर्षित हो जाने की रोचक कथा सुनने को मिलती है ।

लंबे-लंबे सूत्रों का पठन और पाठन की असुविधा से बौद्ध भिक्षुओं ने उन्हें छाँटकर छोटी-सी धारणियों का निर्माण किया । 'इन्हीं धारणियों को और संक्षिप्त करके मंत्रों की सृष्टि हुई ।'[१]

सर्वश्री राहुल सांकृत्यायन मंत्रयान को ई० सन् सातवीं शताब्दी तक मानते हैं । परन्तु श्री एच० केर्न, तारानाथ जैसे ग्रंथकारों के सूचनानुसार तांत्रिक साधना के अन्य तत्वों का प्रचलन भी इस मंत्रयान में शामिल था । तो भी हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि शक्तितत्व, पंचमकार (मत्स्य, मुद्रा, मैथुन, मांस, और मद्य) के तत्वों से समन्वित साधना मंत्रयान में सातवीं शताब्दी के बाद ही प्रविष्ट हुई । इसका प्रमाण यह है कि इसका पोषण करने वाले तत्वों को समाहित करने वाले कोई भी ग्रंथ प्राप्त नहीं है ।

मंत्रायान भी बौद्धधर्म की अन्य विभिन्न शाखाओं की तरह आध्यात्मिक निर्वाण प्राप्ति को ही अपना लक्ष्य मानता है । उस लक्ष्य तक जाने का मार्ग ही भिन्न है । मंत्रयान में साधक को अनेक परिश्रमों के बाद ही फलप्राप्ति होती है । इन परिश्रमों में मंत्र-आचारादि का अनुष्ठान भी करने की आवश्यकता है । पहले साधक को अपने मन को दृढ बनाना है । 'बोधिचित्त' को प्राप्त करने पर ही साधक इस मार्ग से आगे बढ सकता है । उसके लिए उसे बौद्धधर्म का केन्द्र त्रिरत्नों की शरण लेनी पड़ती है।

१- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० २३०.

त्रिरत्न ये हैं -- बुद्ध, धर्म तथा संघ ।[१] त्रिरत्नों की शरण से साधक एक ऐसे रंगमं पर आकर खड़ा हो जाता है जहाँ से वह अपनी चारों ओर से सारे संसार का दि करता है और नये मार्ग की खोज में रहता है । इसी समय उसे संसार के दुर्व्यवहारों से रक्षा पाने के हथियारों के रूप में मंत्रों से शक्ति उत्पन्न हो जाती है । मन को लौकिकता से बचाने का भी माध्यम यही मंत्र होता है । बौद्ध ग्रंथकारों ने मंत्रयान और भी कई विभाग उपस्थित किये हैं ।

डा० विनयतोष भट्टाचार्य का अनुमान है कि ई० सन् की आरंभिक शताब्दी में भिक्षुसंघों में भिक्षुणियों का प्रवेश होने से ब्रह्मचर्य के निर्वाह में एक बाधा उपस्थित हुई । इसीलिए बाह्य के तंत्र मार्ग को अपनाकर इन बौद्धों ने अपनी बात का समर्थन किया । ये बातें बौद्ध धर्म-शास्त्रों के बाह्य की थी । इसलिए इन क्रियाओं को गुप्त समाज से संबंधित बताकर एक गुह्य-समाज का ही इन लोगों ने सृजन किया । इन का पहला धर्म ग्रंथ रहा, `गुह्य-समाज-तंत्र` । असंग-कृत प्रज्ञापारमिता से ही उक्त की सामग्री ली गयी है । गुह्य-समाज तंत्र ने खुलकर बता दिया कि शरीर को कई सजा देकर तथा लौकिक सुखों से पलायन प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्ति नहीं हो इन्द्रियों की तृप्ति से ही लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है ।[२] शक्ति सेवन या नारी पूजा अथवा उसके सहयोग की अनिवार्यता पर भी गुह्य समाज वालों ने भी बल दि

(२) वज्रयान

मंत्रों के प्रचार के बाद लगभग तीन सौ वर्षों तक पंचमकारों की साधना रही । इस यान से वज्रयान, कालचक्रयान तथा सहजयान का उद्गम हुआ । गुह्य-के प्रभाव ने महायान को गौणता तथा वज्रयान को प्रमुखता प्रदान की ।

१- "Refuge is taken in the three Jewels, the Buddha, the Dh & the Sangha"
- '2500 years of Buddhism - P.329.

२- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० २२६.

वज्रयान वह यान है जिसमें वज्र शब्द से अभिव्यक्त होने वाली सभी वस्तुओं को भी साधन के रूप में व्यवहृत किया जाता है । यहाँ वज्र को कठोर, अप्रवेश्य, अ अदाह्य, अविनाश्य जैसी वस्तुओं का प्रतीक माना गया है ।[१] प्रतिकूल शक्तियों के चलाने का अस्त्र भी यही हो सकता है । माध्यमिकों का शून्य तथा योगाचारियों विज्ञान अविनाशी था, इसीलिए ये भी वज्र हैं । वज्रयानियों ने अपने अन्तिम लक्ष्य 'युगनद्ध' की संज्ञा दी है । परम ध्येय को 'महासुख' भी कहते हैं । अपने मार्ग में आने वाले पच्चीस लोकों को त्यागकर जब साधक छब्बीसवें लोक में पहुँचता है तो वह नि प्राप्ति करता है । यही वज्रयान की मान्यता है ।

महायान धर्म में बुद्ध ने जहाँ त्रिकायों की कल्पना की है वहाँ वज्रयान में ए और सुखकाय की कल्पना है । यह महासुख तभी प्राप्त हो जाता है, जब साधक मां मद्य, तथा मैथुन का सेवन करता है । इस प्रकार विंटरनित्य के अनुसार वज्रयान ने अ दर्शन, भूतविद्या, शक्तितत्व, पंचमकार, तथा राग के साथ संक्षिप्त बौद्ध विचारों व मिश्रण कर एक नवीन मत की स्थापना की ।[२]

बौद्धसाधना में मनुष्य जीवन से संबंधित तीन वस्तुओं की बात कही है -- वचन और कर्म । इन तीनों के वज्र स्वभाव की प्राप्ति ही वज्रयान की साधना है प्रकार की साधना में मुख्य है वज्रचित्त । क्योंकि इसी चित्त से हम योग, भोग, मु भुक्ति, निर्वाण और संसार, सब प्राप्त कर सकते हैं । इसी प्रकार वज्रयानियों नात्मक राग की भी परिकल्पना की है । कृपा या करुणा का पर्यायवाची शब्द वास्तव में साधक को दु:खसागर में पड़े हुए व्यक्ति को उद्धार करने देता है ।

१- तांत्रिक बौद्धसाधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १११.

२- वही

समरस की भावना वज्रयानियों की एक दूसरी विशेषता है । यह तो परम सत्य के साक्षात्कार का मार्ग है । अर्थात् 'विश्व की अनेकता में एकता की उपलब्धि'।

इस प्रकार वज्रयान अद्वय, युगनद्ध, समरस, महासुख आदि विशेषताओं को लिए हुए है ।

(३) कालचक्रयान

ईसा की दसवीं शताब्दी में वज्रयान से विकसित एक संप्रदाय 'कालचक्रयान' के नाम से भारत भर में प्रचलित हुआ । परवर्ती सिद्ध-साहित्य से निकट का संबंध रखने वाले इस यान को वैष्णव धर्म की बौद्धशाखा भी मानते हैं जिसमें विष्णु के चक्र की कल्पना का समावेश हो गया था ।[१] श्री कोरेस ने इस यान का जन्म चीनी तुर्किस्तान के समीपवर्ती शम्भल नाम के देश को बताया है ।[२] सोलहवीं शताब्दी में जीवित पद्मा-कार्पो नामक किसी तिब्बतीय इतिहासकार ने अनुश्रुतियों के आधार पर इस यान का अस्तित्व नालन्दा में भी माना है। श्री वैद्य ने तो दसवीं शताब्दी में उत्तर भारत, काश्मीर और नेपाल में एक तरह के आसुरबुद्धों (या ऐन्द्रजालिक बुद्धों) से युक्त बहुदेवता-वादी एक तांत्रिक-संप्रदाय का अस्तित्व माना है। मंत्रयान की साधनाएँ इसमें भी विद्य-मान थीं । यही वज्रयान था । इसी से कालचक्रयान का भी उदय हुआ ।

कालचक्रयान वस्तुत: दर्शन नहीं,[३] अपितु योगप्रधान साधना थी ।[४] 'एकोद्देशटीका,' 'कालचक्रयान' आदि ग्रंथों के आधार पर यही ज्ञात होता है । इसमें ध्यानी बुद्धों, आदि-बुद्ध और भयंकरा-काली के संयोग से उत्पन्न होने वाली सृष्टि और प्रकृति की रहस्यमयी शक्तियों की व्याख्या मिलती है । इस कालचक्रयान में भयंकर देवी-देवताओं की प्रधानता

१- साहित्यकोश, पृ० २४७.

२- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १५५.

३- वही - पृ० १५६.

४- साहित्यकोश, पृ० २४७.

की ओर उल्लेख करते हुए डा० दासगुप्त ने इसे वज्रयान की भी एक उपशाखा या उप माना है ।

'कालचक्र' के सांकेतिक अर्थ भी हैं । पं० हरप्रसाद शास्त्री ने तो उसका यह अर्थ दिया है, कालचक्रयान वह है, जो काल या नाश के चक्र से रक्षा कर सके ।[१] क चक्रयान के प्रामाणिक ग्रंथ सेकोद्देशटीका में कहा गया है कि 'का' से 'शान्त कारण 'ल' से 'लय,' 'च' से 'चंचल चित्त' तथा 'क्र' से 'क्रमबंधन' अर्थ संकेतिक होता है । यह तात्पर्य निकाला गया है कि 'सांसारिक विषयों से चंचल चित्त के साथ परम श कारण (आदिबुद्ध) में प्राण के लय को कालचक्र कहते हैं ।' इस यान में आदिबुद्ध क सिद्धान्त समाविष्ट करके कहा गया है कि 'आदिबुद्ध तथा शक्ति (काली) के मिलन संसार की उत्पत्ति मानी गयी है । आदिबुद्ध ध्यानावस्थित होकर संभर या डाकिनी जैसी भयंकर शक्तियों को पैदा करते हैं । अतएव उस पैशाचिक कार्य की भयंकरता के ही मंत्रयान 'कालचक्रयान' के नाम से परिवर्तित हो गया । इसका अर्थ है 'समय का या 'नाश का चक्र' । काल को समय, मृत्यु या नाश के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है

सेकोपदेश्य चार प्रकार की योग प्रक्रियाओं पर विशेष रूप से बल देता है विशुद्धियोग, धर्मयोग, मंत्रयोग और संस्थान योग । इन चारों अवस्थाओं को पार ही मुक्ति का साक्षात्कार हो जायगा । इन योगों का नाम है 'वज्रयोग'। इन को पूर्ण करने के लिए साधक को चार विमोक्षों को ही प्राप्त करना चाहिए -- अनिमित्त, अप्रणिहित, और अनभिसंस्कार विमोक्ष । इसके फलस्वरूप उसकी आ स्थिर बन जाती है ।

इस यान के प्रधान देवता आदिबुद्ध हैं, जिसका अर्थ है आदि-अंत-विवर्जि ये सर्वज्ञ हैं । इस बुद्ध के चार काय निश्चित किये गये हैं, जो वज्रयान से मेल रख

१- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १५७.

ये चार काय हैं -- सहजकाय, धर्मकाय, संभोग काय और निर्माण काय । इन चतुर्कायों से युक्त ये आदिबुद्ध युगलरूप, युगनद्ध तथा शिवशक्ति की एकता के प्रतीक हैं ।

`वज्रयान की विचारधारा` में विवेचित किया गया है कि साधक की अंतिम सिद्धावस्था है महासुखावस्था । यही `तुरीयावस्था` है । जब करुणा का उदय चित्त में हो जाता है साधक इसे उन्नत अवस्था पर प्रतिष्ठित किया जाता है । ज्ञान की दृढ़ता, सहजानन्द आदि साधकों का प्राप्य यही परमोन्नत पद है ।

उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कालचक्रयान पर हिन्दू तांत्रिक प्रभाव अत्यधिक स्पष्ट है ।

(४) सहजयान

अपनी आवश्यकताओं के अनुसार, देश-काल तथा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल बौद्ध धर्मानुयायियों ने बौद्धधर्म में अनेक यानों को प्रचलित किया, जिनका उल्लेख हम कर चुके । लगभग दसवीं शताब्दी में वज्रयान का एक संप्रदाय अपने को `सहजयान` कहने लगा ।[१] पूजनीय हरप्रसाद शास्त्री जी ने तो सहजयान को वज्रयान का समकालीन माना है ।

किमुर द्वारा अनूदित `दशभूमिविभाषाशास्त्र` के अनुसार सहजमार्ग वही है जो विश्वास और श्रद्धा के बल पर लक्ष्यसिद्धि तक पहुँचाता है । नागार्जुन ने तो इस मार्ग को प्राप्त करने के लिए नामजप, नामस्मरण या नामगायन करने की सलाह दी है । जनसामान्य के लिए आसानी से अपनाने का मार्ग है यह । तीसरी तथा चौथी शताब्दी में आकर यह नामस्मरण अमिताभ बुद्ध तक ही सीमित हो गया ।[२]

१- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर, पृ० २३२.

२- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १६५.

तांत्रिक बौद्ध-साधना के ग्रंथों में सहज तत्व का अच्छा विवेचन आया है । सहज को भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है । प्रबोध चन्द्र बागची ने इसी को प्राचीन चीन धर्म के मूल सिद्धान्त से उद्भूत माना है ।[१] तो भी बारहवीं शताब्दी का वल्लभ देव के एक कामरूप वाले शिलालेख में सहज का उल्लेख है, जिसमें बताया गया है कि सहज जीवनपद्धति पर बल देने वाली तथा वैष्णवों के अधिक निकट का संबंध रखने वाली एक चिरन्तन परंपरा, बौद्धों के अतिरिक्त यहाँ विद्यमान थी ।[२]

सहजयान में तो इस तत्व को साधनात्मक जीवन के `परमलक्ष्य` या `परमतत्व` के रूप में वर्णित किया गया है । `अद्वयवज्रसंग्रह` में भी इस विशेष तत्व को अकृत्रिम, सुखोत्पादक आदि बताया है । डा० शशिभूषणदास गुप्त ने तो `सहज` तत्व के दर्शन-परक तथा साधनपरक, दो अर्थ निकाले हैं । उनके अनुसार शरीर को कष्ट दिये बिना स्वाभाविक मार्ग से होकर सत्यानुभव करना चाहिए । इसी प्रकार उन्होंने रागवृत्ति को भी सहज मानकर परम तत्व के साक्षात्कार के लिए आवश्यक बताया है । इस प्रकार दार्शनिकता के सहारे उन्होंने साधनात्मक पथ को प्रदर्शित किया ।

`सहज` शब्द का अर्थ है `जाति या जन्म के साथ उपजना`।[३] धर्मों या पदार्थों में हम जो तत्व देखते हैं, वही सहज है । यों कहा जाय तो इस विश्व का स्वभाव ही सहज है । यह तत्व कर्ने चित्त सम्बन्धी है, शारीरिक नहीं है । इसे महासुख के रूपमें मानकर धर्मकाय से समन्वित किया गया है ।[४] इसकी विस्तार से व्याख्या तिब्बतीय विद्वानों ने की है ।

१-२. साहित्यकोश - पृ० ८६८.

3. The literal meaning of this word is 'to be born together'.
- 2500 years of Buddhism- P.330

4. "It is the ultimate in Mind or the dharmakaya and the ultimate in Appearance or the light of the dharma kaya which are born together".
- 2500 years of Buddhism - P.330.

उस महासुख या परमतत्व की प्राप्ति गुरु के उपदेशों के अनुकरण से ही हो सकती है । अपने अमृत रूपी वचनों से प्रपंच की सारी शंकाओं के जाल से मन मुक्त हो जाता है । उस महासुख तत्व की विशेषता इस प्रकार की गयी है --'वह न तो सुनने से प्राप्त होता है, न देखने से । वह न तो पवन से कंपित होता है, न क्षय को प्राप्त होता है । वह अनिर्वचनीय है ।'[१] एकमात्र गुरूपदेश ही इस अवस्था की प्राप्ति का उपाय है ।'[२] सहजिया लोगों ने तो इस श्रीगुरु को मिथुनाकार यानी 'युगनद्धरूप' प्रदान किया है । सहजयानियों ने एक बोधिचित्त को मान्यता दी है, जो स्वतंत्र रूप से उद्भूत है । शून्यता और करुणा का समन्वित प्रतीक या मीलित मूर्ति है यह । शाक्त धर्म में शिव को जैसे निश्चल माना है उसी प्रकार इस यान में शून्यता को ही 'प्रज्ञा' की संज्ञा दी गयी है । दया, सहानुभूति आदि से उत्पन्न होने वाली क्रियाशील गति है करुणा । और यही उपाय है । इन युगलरूपों की समरसता ही परमार्थरूप या महासुख है । इस प्रकार प्राप्त यह सहजामृत या सहजसुख का निर्वाचन करना सबके बस की बात नहीं है । इसीलिए राहुल सांकृत्यायन जैसे महान् बौद्ध-ग्रंथकारों ने भी कहा है कि जो दृष्टिगोचर है, उस में परमार्थता का छोटा-सा अंश भी नहीं है । जो कुछ परमार्थ है वह केवल अपने 'स्वकसंवित्ति' से ही प्राप्य है ।[३] इसी बात की पुष्टि करने के लिए सहजिया मत की 'मौनमुद्रा'[४] को भी यहाँ उद्धृत करना उचित होगा । सहजिया मत के अनुसार वाक्य या शब्द द्वारा सहज ज्ञान को प्रदान नहीं किया जा सकता, यह श्रीगुरु का उपदेश है । इन्द्रिय मन गोचर सभी विकल्प के अंतर्गत आते हैं । ये विकल्प साधक को पृथग्जन बना देते हैं, जो कदापि सहज तत्व प्राप्त नहीं करते । क्योंकि विकल्प-मन साधक को पथभ्रष्ट करा देता है ।[५] इस श्रीगुरु को सहजिया लोग 'जिनर

१- तांत्रिक बौद्धसाधना और साहित्य, पृ० १७१. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय
२- भारतीय संस्कृति और साधना - डा० गोपीनाथ कविराज, पृ० २५७.
३- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १७२.
४- भारतीय संस्कृति और साधना - डा० गोपीनाथ कविराज, पृ० २५८.
५- 'The dichotomizing activity of the mind is accompanied & eve supported by conflicting emotions which has an obscuring influence (Moha, andhakara)
- '2500 years of Buddhism-P.330.

भी कहते हैं । यह श्रीगुरु मौनरूप धारण करते, केवल आनन्द अथवा रति के प्रभाव से साधक को महासुख की उन्नत श्रेणी में ले जाता है । 'सद्गुरु: शिष्ये रतिस्वभावेन महा-सुखं तनोति' इस प्रकार का महासुख शिष्य में प्रसारित करने में ही उस परम दयनीय गुरु का गौरव निहित है ।[१] इस प्रकार बुद्ध की कृपा का स्थान सहजयान में गुरुकृपा ने ले लिया । इसीलिए चर्यापदों, दोहों जैसे मध्यकालीन साहित्य में गुरु की महिमा का गायन देखने को मिलता है ।

इस बोधिचित्त की अप्राप्ति साधकों को मार्ग भ्रष्ट करा देती है । जब उसका मन मुक्त नहीं रहता, तो वह शून्य को विकृत देखता है, परमतत्व को पहचानने में हार मान बैठता है । विभिन्न विकल्पों से युक्त उसका मन संसार में व्याप्त अमृत को पहचाने बिना, विष को पीने में मग्न रहता है । निर्वाणप्राप्ति उसको नहीं होती । जब बोधिचित्त से वह युक्त होता है तो वह इसी संसार से निर्वाण, परमसुख, महासुख आदि प्राप्त कर सकता है । वह किसी देवता के अस्तित्व को नहीं मानता, यह निरर्थक मानता है । 'परम ज्ञान या शून्यता का ज्ञान या प्रज्ञा प्राप्त कर लेने पर चित्त अजर अमर तथा सतत सुखमय बन जाता है । यह जगत न सत्य है, न मिथ्या । सहज, सहजसुख, महासुख, बोधि प्राप्ति ही साधक का लक्ष्य है । बाह्य साधना निरर्थक है और अंतर्साधना सार्थक है । संक्षेप में सिद्धों के जीव, जगत्, परमतत्व, मुक्ति आदि के विषय में ये ही विचार हैं ।'[२]

हमने देखा कि धर्मकाय चित्त या महासुख प्राप्ति ही सहजयानियों की साधना की चरमावस्था है । इस चरमोत्कर्ष या उन्नत अवस्था की प्राप्ति के लिए उन्होंने यंत्र या मंत्र को, बाह्य बताकर निस्सार माना । उनके अनुसार यह स्वत: या भीतर ही अनुभव करने वाली अत्युत्तम अवस्था थी । सिद्धाचार्यों में लुईपाद कृष्णपाद, सरहपाद,

---

१- भारतीय संस्कृति और साधना - डा० गोपीनाथ कविराज, पृ० २५८.

२- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १७४.

जैसे महात्माओं ने तंत्र-मंत्र, ब्राह्मणों का कर्मकांड, वेदपाठ, उच्छ भोजन, केशधारण, पूजा-अर्चना, तपोवनगमन, गंगास्नान, शास्त्रपुराण आदि का कट्टर विरोध किया। इस शरीर से ही बोधि प्राप्त करने के लिए इन सभी आडम्बरों की जरूरत नहीं।[१] यही सिद्धाचार्यों का नारा रहा। तत्कालीन सभी साधनापद्धतियों का अस्वीकार करते हुए इन सहजमार्गी सिद्धों ने एक साधना-मार्ग बताया, जिसे वे 'सहजसाधना' कहते थे। गुरु, शिष्य को इस मार्ग से होकर महासुख का अधिकारी बना देता है। इस महासुख की उत्पत्ति की प्रणाली इस प्रकार है --

सहजियागण के अनुसार उष्णीषकमल में ही महासुख की अभिव्यक्ति निहित है। सहजिया साहित्य में सिद्धि प्राप्त किये हुए को 'वज्रधर' की संज्ञा दी गयी है। उष्णीषकमल की कर्णिका के मध्य में ही इस वज्रधर का आसन रहता है।[२] इस आसन रूपी बिन्दु को स्थिर करके वज्रधर मध्यमार्ग का अवलंबन करके महासुखपद्म के केन्द्रस्थान तक पहुँचता है। इसमें उसे गुरुकृपा, प्रज्ञोपाय आदि की सहायता भी मिलनी चाहिए। उनका यह भी विश्वास है कि प्रज्ञा तथा उपाय, नर और नारी का प्रतीक है, इसलिए प्रज्ञोपाय या नर-नारी समागम से ही महासुख की स्थिति संभव है। इसी प्रक्रिया को नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने कमलकुलीश साधना के रूप में वर्णित किया है।

सहजयानियों का और एक विश्वास था कि शरीर में ही सत्य का निवासस्थान भी है। सिद्ध काया को साधनातीर्थ मानते थे। ~~हिंदू तन्त्रशास्त्र के सिद्धान्त का आश्रय~~ लेकिन ~~आन्तरिक क्रियाओं के द्वारा उस सत्य तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील रहे।~~ योग ने भी सहजयान में सबसे अधिक प्रभाव डाला। सेकोद्देशटीका में चक्रों तथा ताड़ियों का उल्लेख मिलता है, जो योग-मार्ग के साधन हैं। यहाँ तो सहजयान पर पूर्णरूप से शाक्त-दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है।

१- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्र नाथ उपाध्याय, पृ० १७६.

२- भारतीय संस्कृति और साधना - डा० गोपीनाथ कविराज, पृ० २५८.

३- तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य - नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० १७६.

ऊपर के पूर्ण विवेचन से एक बात स्पष्ट हो जाती है अभी तक जिन या का उल्लेख किया था, उनसे बढ़कर जो कार्य इस सहजयान ने किया वह था बाह्याः का विरोध । उसने अंतस्साधना पर पूर्ण बल दे दिया । सहजयान की इन विशेषत के कारण आधुनिक विद्वानों ने उसे `बौद्ध-रहस्यवाद` नाम से भी अभिहित किया

वस्तुत: सहजयान ने अभी तक जो निष्प्राण होकर पड़ी थी उन सारी सा पद्धतियों में नवजीवन का ही संचार किया । महो० एच० वी० गूवेनथर के अनुसार `सहजतत्व समझने तथा समझाने में कठिन इसलिए लगता है कि वह मस्तिष्क संबंधी व्यवस्था या अनुशासन के अभ्यास करने का निर्देश नहीं देता । इसके अलावा, सहजय स्वाभाविक मार्ग स्वीकार करने पर बल देता है और यह तो सच ही है कि दोनों त्तियों के ढंग बिलकुल भिन्न हैं[1]।

६- अपभ्रंश पर बौद्धधर्म का प्रभाव

`सिद्ध` शब्द सिद्धि से संबंधित है, सिद्धि के साधन से संबंधित है तथा सिद्धि साधना से संबंधित है । `साधक` को जब सिद्धि प्राप्त हो जाती है, तब साधक `सि की परमोच्च आसन पर विराजमान होता है । कई प्रकार की सिद्धियाँ हैं इनमें उत्त कोटि की सिद्धि आध्यात्मिक सिद्धि कहलाती है। यह आध्यात्मिक सिद्धि ही महा वर्णा है, सर जान उडरफ ने अपने `इंट्रोडक्शन टु तंत्रशास्त्र` में इसका उल्लेख किया इस आध्यात्मिक सिद्धि की प्राप्ति के पथ पर अनेक ऐसी सिद्धियाँ भी हैं जिनके आव में पड़कर साधक भी पथभ्रष्ट हो जाता है । लेकिन जो इन निम्नकोटि की सिद्धियों

---

1. "The very fact that what Sahajayana teaches is no intellect system but a strict discipline that has to be practised in order to be known makes it difficult to comprehend and to define. Moreover, Sahajayana emphasizes the intentive appr to Reality & it is a fact that the function of intention is not the same as that of the intellect & that their modes of operation are completely different.".

   - 2500 years of Buddhism.-P.331.

बचकर आध्यात्मिक सिद्धि की ओर अग्रसर होता है वही उद्देश्य तक पहुँच सकता है। भारतीय इतिहास में लगभग पाँचवीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक के साहित्य में ऐसी ही सिद्धियों को प्राप्त करने की वृत्ति मुख्यतया गुंजायमान होती है।

भारतीय साहित्य में साम्प्रदायिक दृष्टि से देखें तो कई प्रकार के सिद्ध थे -- नाथ सिद्ध, बौद्ध सिद्ध, रस सिद्ध, शैव सिद्ध, महेश्वर सिद्ध आदि। इनका मिश्रण भी कहीं-कहीं दिखायी पड़ता है। इनमें बौद्ध सिद्धाचार्यों ने अपने सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए अपभ्रंश को ही अपना माध्यम बनाया था। इन सिद्धाचार्यों की उपलब्ध अपभ्रंश रचनाओं का विस्तृत अध्ययनकरने में महापंडित हरप्रसाद शास्त्री, डा० सुनीति कुमार चटर्जी, डा० शहीदुल्ला, डा० प्रबोधचन्द्र बागची, डा० सुकुमार सेन तथा राहुल सांकृत्यायन ने सफल प्रयास किया है।

इन सिद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ दो तरह की विचारधाराएँ प्रस्तुत करती हैं। इसमें एक सिद्धान्तों का विवेचन तथा दूसरी उपदेश, लंछन आदि को मुख्य मानती है।

वज्रयान `शून्यवाद` को प्रमुख मानता है। वे वज्र को `शून्यता` का भौतिक विज्ञान मानते हैं और वज्रयान का अर्थ है सब बुद्धों का `ज्ञान`। करुणा को भी कालान्तर में वज्रयान में प्रश्रय मिल गया। फिर मंत्र, मुद्रा, मंडल, देवता आदि सिद्धिमार्ग के सहायक माने गये।

इसके बाद वज्रयान ने सर्ववाद को प्रचलित किया। इसके अलावा वज्रयानियों केवल बोधिचित्त को ही सत्य माना है, जो शून्य और करुणा का संयोग है। इन सिद्धियों के अतिरिक्त शान्ति, वशीकरण, पंचमकारादि असाधारण शक्तियों तथा आचारादि को इस संप्रदाय में स्थान मिल गया।

अपभ्रंश में जो सिद्ध की वाणियाँ प्राप्त हैं उनमें तो जो सिद्धान्त और तत्व पाये जाते हैं, वे वज्रयान के सिद्धान्तों का क्रमरूप से विवेचन नहीं प्रस्तुत करता, मगर उसकी एक झलक ही प्रस्तुत करती है। मगर एक तो विशेषता उनमें यह है कि सभी

ाणियों में परमानन्द के अनुभव को या महासुख-सिद्धि को एक ही स्वर से गाया गया ।

इन सिद्धों की संख्या के बारे में मतभेद हैं । तो भी प्राप्त पद चौबीस सिद्धों ो रचनाएँ हैं । इन चौबीस सिद्धों के संपूर्ण सैंतालीस चर्यागीत मिलते हैं । इन चौबीस सिद्धों का नाम इस प्रकार है[१]--

कान्हपाद (कृष्णाचार्य), युसुकपाद, सरहपाद, कुक्कुरीपाद, लुइपाद, शबरपाद, ालिपाद, विरूपाद, गुंडरीपाद, चाटिलपाद, कामलिपाद (कम्बलपाद)डोम्बीपाद, हीधर , वीणापा , आर्यदेव, टेण्टणपा, दारिकपा, भादेपा, ताडकपाद, कंकण-ाद, जयंतदीपा, धामपा, तंत्रीपा और तिलोपाद ।

इन सिद्धों की अपभ्रंश वाणियों में जो भावधारा व्यक्त है, वह संक्षेप में इस कार है --

१) सहजानन्द

अविद्या से युक्त इस संसार में लीन रहने से कोई भी सहजसुख को प्राप्त नहीं र सकता । इसलिए सहजानन्द को प्राप्त करने के लिए इस अविद्या से छुटकारा पाना । तिस पर भी इस सहजमार्ग को छोड़कर और कोई भी मार्ग सीधा नहीं है । सरहपा अपने चर्यागीत में बताया है --

उजुरे उजु छाड़ि मा लेहु रे बंक
निअड़ि बोहि मा जाहुरे लांक ।
हाथेर कांकन मा लेउ दापन ।
अपने अपा बुझन्त निअमन ।

- प्राकृत अपभ्रंश साहित्य - रामसिंह तोमर, पृ० १६२.

न पंक्तियों के द्वारा कवि ने सीधे मार्ग पर चलने का आह्वान किया है । क्योंकि ह सहजमार्ग अर्थभाव से मुक्त होने की दशा है, सरहपा ने अपने चर्यागीत में लिखा है --

अणुभुअ भव मोहरे दिसइ पर अप्पना ।
ए जग जलबिम्बाआरे सहजे सुन अपना ।

शबरिपा ने तो योगी के सिर में स्थित सहस्रार कमल आदि से महानिर्वाण ाप्ति का बोध कराया है । इस प्रकार एक ही स्वर या वाणी में सभी सिद्ध सहजानंद र पहुँच जाते हैं ।

२) गुरु

इस सहज सुख की प्राप्ति सभी सिद्धों ने जिस प्रकार स्वीकार की है, वैसे ही स सहजमार्ग का दर्शक एक `गुरु` का ही अस्तित्व सब सिद्धाचार्यों को मान्य है । चित्त ो चंचलता तथा जगत को जल में प्रतिबिंबित चन्द्र के समान न झूठ न सत्य बतलाने ाले भूसुक ने जगत को मायाजाल में फंसा हुआ, ऐसा माना है । इस मायाजाल से ाक्ति प्रदान करने वाले के रूप में ही गुरु की आवश्यकता होती है । इसके समर्थन के लिए भूसुक ने अपनी वाणियों में अपने आशय को प्रकट किया है ।

सरहपा ने भी गुरुवचनरूपी अमृतरस को प्रदान करके मरुस्थली में भटकने वाले ो सहारा दे दिया है ।

काहनपा, तिलोपाद डोम्बीपाद आदि शिष्यों ने भी इस महासुख की अनि- चिनीयता का उल्लेख किया है, तथा इस राजपथ से अग्रसर होने का मार्ग पूछने के लिए ुरु का भी संकेत किया है । इसके साथ साथ लाडकपा ने उस सहजानन्द के साथ जिन विषयों से हम रहित हो जाते हैं उनका भी उल्लेख अपने चर्यागीत में किया है --

---

:- प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य - रामसिंह तोमर, पृ० १७५.

वांछकुरण्ठ सन्तारे जामी ।

वाकृप थातीत कांहि बखानी ।

अर्थात् संसार का भय, जन्म, मृत्यु आदि के कारण भी सहजानन्द की प्राप्ति नहीं होती ।

इसके बाद सरहपा ने अपने दोहाकोष में तो इस सहजानन्द की प्राप्ति के पश्चात् की दशा का वर्णन करके मन की समरसता का वर्णन किया है ।

(३) वेदशास्त्र आदि की अनावश्यकता

इस सहजानन्द की प्राप्ति के लिए सिद्धों ने किसी आगम वेद या शास्त्रों की आवश्यकता नहीं बतायी है । सरह ने तो शास्त्रों पर विश्वास करने वालों की खिल्ली उड़ायी है। 'देह में निवास करते हुए बुद्ध को पहचाने बिना ही ये सब पंडित शास्त्रों की व्याख्या करते हैं ।[१]

(४) अन्य मतों का खण्डन

मुक्ति के लिए हर धर्म या संप्रदाय ने विभिन्न ढंग को अपनाया है । मुक्ति प्राप्त होने के लिए ये विभिन्न मत जो जो उपदेश देते हैं उन्हें अलीक मानकर सब छोड़ने का उपदेश ही सिद्ध देते हैं । इन्होंने ब्रह्म, ईश्वर, अर्हन्त, बौद्ध लोकायत और शांख्य षड्-दर्शनों का खंडन किया है, ब्राह्मणों के जातिभेद, चार वेदों, यज्ञादि का खण्डन करते हुए वे कहते हैं कि उनसे मुक्ति नहीं हो सकती है ।[२]

इन सबको छोड़कर दान परोपकार आदि मानवीय शुभकर्म करने का दिव्य संदेश सभी सिद्धों की वाणियों में गूंज उठता है । यहाँ आकर हम बौद्धधर्म की विशिष्टता को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं ।

१- प्राकृत अपभ्रंश साहित्य - रामसिंह तोमर, पृ० १७६.

२- वही.

इन तत्वों के अलावा बौद्ध सिद्धों के क्रीड़ाक्षेत्र में हम अक्खड़पन वैराग्यभावना आदि प्रवृत्तियां भी देख सकते हैं । इसके अतिरिक्त तंत्र-साधना से संबंधित ग्रंथ 'डोकार्ण तंत्र' है जिसमें योगाचार और माध्यमिक बौद्ध-दर्शनों पर आधारित बौद्धतंत्र का विवेचन मिलता है ।

७- बौद्धधर्म का नैतिक-पक्ष

विश्व के सारे नीतिशास्त्रों में बौद्धनीति-शास्त्र का अपना एक विशिष्ट स्थान है । उसकी विशेषताएँ हैं --

(१) प्रकाशवाद

सभी आस्तिक धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म की नैतिकता बहुत ही विलक्षण है । भगवान बुद्ध -- लोकचक्षु अर्थात् संसार का प्रकाश के नाम से प्रसिद्ध हैं । यह संज्ञा उन्हें नास्तिकता की श्रेणी में नहीं रख देती, वरन् उनके उपदेश के मूल का स्मरण कराती है । उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में एक ज्योति विद्यमान है । उस ज्योति की खोज करना ही मनुष्य का यहाँ कर्तव्य है । हममें सुप्त पड़ने वाली उस ज्योति को प्रकाशमान या प्रदीप्त करने में ही मनुष्य-जन्म की सफलता निर्भर है । यह उनकी नैतिकता का आधारस्तंभ है ।

(२) मन की विशुद्धि और बुद्धिवादिता

बौद्ध नीतिशास्त्र केवल एक पक्ष पर ही बल नहीं देता । वह बाह्य और साथ साथ आन्तरिक पवित्रता पर बल देता है । केवल बाह्य उपदेशों एवं आचरणों की ही बात का उल्लेख हम नहीं प्राप्त करते, लेकिन मन की विशुद्धि एवं बुद्धि की अनिवार्यता की भी आवश्यकता बौद्ध नीतिशास्त्र के विषय है । इसका प्रमाण हम उनके उपदेशों की तह में पा सकते हैं । उन्होंने शील के आचरण की अनिवार्यता बतायी, इसी के

साथ उन्होंने सम्यक् संकल्प की बात की है । क्योंकि उन्होंने प्रमाणित किया है कि सम्यक् संकल्प और विवेक-बुद्धि के द्वारा किये जाने वाले कार्य ही प्रभावपूर्ण एवं सफल बन जाते हैं । धम्मपद के सारे उपदेश वास्तव में सदाचरण और मन की विशुद्धि को आधार बनाकर रचे गये थे ।

(३) आध्यात्मिकता

बौद्ध धर्म ने ईश्वरवाद तथा आत्मवाद का खण्डन किया । लेकिन वे भौतिक-वादी नहीं कहलाये । उन्होंने शरीर और जीव में कोई अन्तर नहीं देखा । मनुष्य पाप और पुण्य कर्मों को करते हैं, लेकिन इसका फल जीव और शरीर को भोगना पड़ता है । इस आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के कारण बौद्धधर्म ने एक अलौकिक बल प्राप्त किया । इसी बल के ऊपर उन्होंने धर्म का दृढ़ स्वरूप निर्मित किया ।

(४) लोककल्याण कामना

बौद्धधर्म का केन्द्रबिन्दु करुणा है । इसी एक बात से हम समझ सकते हैं कि यह करुणा सार्वजनीन है, व्यापक है तथा व्यष्टि के लिए न होकर समष्टि तक व्याप्त है । लोककल्याण तत्परता से प्रेरित होने के कारण बौद्ध-नीतिशास्त्र में संग्रहीत सभी नियम भी विश्वकल्याणकारी हैं । इसी व्यापक चेतना के कारण बौद्धधर्म इतना लोक-प्रिय बन गया ।

(५) मध्यम प्रतिपदा

हमेशा यह देखा जाता है कि उन्नतम अवस्था विपत्तिजनक है । क्योंकि हमेशा अन्तों की अति को हमें स्वीकारना नहीं चाहिए इसलिए मध्यममार्ग ही सम्यक् है । हमें मध्यमार्गानुसरण करना ही अच्छा है ।

(६) कर्मवाद

बौद्धधर्म का नीतिपक्ष कर्मवाद पर केन्द्रित है । क्योंकि इसमें पुण्यकर्म और उसके सुखद फलों का ही उल्लेख मिलता है, बल्कि इसमें पाप और दुःखद फलों का

भी उल्लेख मिलता है । समस्त पापों के मूल में अज्ञात् अविद्या, मोह आदि को प्रवृत्त करने वाला बनाया है । काम, क्रोध, मद, और लोभ के कारण मन सदा विचलित होता रहता है । और सदाचार का लोप हो जाता है । इस प्रकार बौद्धनीतिशास्त्र में मन की विकृततम अवस्था तथा मन की शुद्धतम अवस्था, दोनों का उल्लेख मिलता है यह शुद्धतम मन `बोधिचित्ति` है ।`बोधिचित्ति मन की वह पवित्रतम और शुद्धतम अवस्थ है जिसमें चित्त महाकरुणा से प्रेरित हो लोककल्याणार्थ सम्यक् संबोधि रूप ज्ञान में प्रतिष्ठित हो जाता है ।`[१] हमारे कर्मों के फलस्वरूप ही ऐसा होता है । यही कर्म है । महायान में तो बोधिसत्वों की चर्चा आयी है, जो जन्मजन्मान्तरों में पुण्यकर्मों को करके अर्थात् सदाचरणों में प्रवृत्त होकर बोधिसत्व होने की चेष्टा करता है ।

बौद्धधर्म के नीतिशास्त्र को दो भागों में विभक्त किया है ।[२] ये हैं --

(१) बौद्धधर्म का सामान्य कर्तव्यशास्त्र ।

(२) बौद्धधर्म की भिक्षु-नीति ।

बौद्धधर्म के सामान्य कर्तव्यशास्त्र में चार आर्य सत्य और सैंतीस बोधि-पक्षी धर्म आते हैं । इसमें आर्यसत्यों और सैंतीस बोधि-पक्षीय धर्म की ओर पहले ही प्रथम अध्याय में प्रकाश डाल चुके हैं ।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि बौद्ध धर्म पूर्णरूप से वैराग्य प्रधान रह गृहस्थों का स्थान बौद्धधर्म में भिक्षुओं की अपेक्षा कम था । क्योंकि उन्होंने कहा थ कि, `भवचक्र से छुटकारा भी मिल सकता है जब घरबार छोड़कर भिक्षुधर्म स्वीकार कि जाय ।`[३] इसके परिणामस्वरूप भिक्षुओं की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती गयी और नीतिशास्त्र का भी व्याप्ति हुई ।

१- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव - सरला त्रिगुणायत,पृ०

२- वही - पृ० २२५

३- वही - पृ० २२५.

स्त्रियों के संघ में प्रवेश कराने का विरोध भगवान बुद्ध ने प्रकट किया । क्योंकि वे जानते थे कि यदि संघ में स्त्रियों को दीक्षा दी जायेगी तो धर्म का पवित्रतम रूप अधिक दिन तक टिक नहीं सकेगा । इसके बारे में उन्होंने आनन्द से स्वयं इस प्रकार कहा था --`किन्तु अब संघ में स्त्रियों के प्रवेश से उसका सत् रूप लगभग ५०० वर्ष से अधिक नहीं चल पायेगा ।`[१] लेकिन आनन्द के बार-बार प्रार्थना कर लेने के पश्चात् गौतम बुद्ध ने स्त्रियों को भी भिक्षुणी बनाने की आज्ञा दी, लेकिन कुछ नियमों के साथ ही ।

८- निर्वाण

सभी धर्म और दर्शन किसी एक परमतत्व पर अटल विश्वास रखते हैं । आस्तिक-दर्शन ब्रह्म या ईश्वर की सत्ता को मानते हैं और बौद्धधर्म और दर्शन निर्वाण पर । महात्माबुद्ध के सिद्धान्तों का केन्द्रबिन्दु और बौद्धधर्म की आत्मा है निर्वाण । इसी `निर्वाण` तक पहुंचने के लिए भगवान ने सद्धर्म के नाम पर अपने शिष्यों को उपदेश दिया था । इसी उच्चपद की प्राप्ति के लिए असंख्य मनुष्यों ने अपना धन-वैभव छोड़कर, शिष्य-त्व ग्रहण कर भिक्षु का जीवन बिताया था । बौद्धों के लिए यह निर्वाण परमपूजनीय था । शाक्यमुनि ने भी इसी निर्वाण को अपने धर्मप्रवर्तन में सर्वस्व बनाया था । निर्वाण सम्बन्धी सभी विचार त्रिपिटक ग्रंथों में ही संगृहीत है । निर्वाण का अर्थ `बुझाना` है। इस `निर्वाण` में आत्मा का परमात्मा में विलीन होना नहीं है ।`[२] लेकिन नास्तिक बौद्धों के लिए यह दुःख से निवृत्ति मिलने का मार्ग है ।

निर्वाण परमानन्द की अवस्था

निरीश्वरवादी बौद्धधर्म किसी का अस्तित्व न मानते थे । लेकिन उनका सर्वस्व था निर्वाण । अर्थात् वे निर्वाण के अलावा और किसी का अस्तित्व न मानते थे । इस निर्वाण की अवस्था के बारे में जेम्स हेस्टिंग्स ने बताया है कि यह दशा हमें परमानंद

१- मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव - सरला त्रिगुणायत, पृ० २६१.
२- कवयित्री महादेवी वर्मा - डा० शोभनाथ यादव, पृ० १२४.

प्रदान करती है ।[१] इस उच्चतम पद पर गौतम बुद्ध पहुँच सके । इस अवस्था को प्राप्त कर ही वे अपने को मगध के सम्राट बिंबसार से भी अधिक सुखी मानते थे ।[२] बौद्धग्रंथों से प्रमाणित होता है कि तथागत के अलावा अन्य अनेक भिक्षुओं को भी इस परमपद की प्राप्ति हुई थी । जब भगवान ने देखा कि वे इस परमपद के लिए योग्य बने, तो उनके आनन्द की सीमा नहीं रही । निर्वाण के प्रति इतना मोह या आकर्षणीयता भारतीय पुराणों में हम कहीं भी नहीं देख सकते ।[३]

पार्थिव निर्वाण

भगवान बुद्ध निर्वाण को अनुभव की एक उच्चतम अवस्था मानते थे । पूर्ण विशुद्धि से ही इस अवस्था पर साधक पहुंच सकते हैं । इसीलिए बताया गया है कि इसे जीवन में प्राप्त होने वाली वस्तु है यह । इस पार्थिव या लौकिक निर्वाण के बारे में चिल्डेर्स ने बताया था कि यह पार्थिव निर्वाण तभी हम प्राप्त कर सकते हैं जब हम सारी आशाओं और तृष्णाओं से निवृत्त हो जाते हैं ।[४] जब हम सारी लौकिक वस्तुओं

१- "Nirvana is the father shore (Para), the island (dvipa), the endless (alyanta), the immortal (amrta), the immortal state (amrata pada), the Summum Bonum (Naihs'reyasa). It is bette than any existence, however plesant". (Vol:IX)

-'Encyclopaedia of religion and ethics by James Hastings.

२- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव - डा० सरला त्रिगुणायत,

3. "It is difficult to find in the Brahmanic literature, or ev in the Upanishads feelings, so tervid and enthusiatic." (Vol IX)-Encyclopaedia of Religion & Ethics by James Hasting (P.No.:376-77)

4. "Childers was the first to point out that, in a number of t nirvana does not mean deliverance from existence, the stat beyond death of the dead saint, but the 'brief period of bl enjoyed by man who has literated himself from desire and be a saint, before he obtains final nirvana at death-in other the state of the ar hat or the jivanmuktha".
(Vol IX) 'Encyclopaedia of religion and Ethics' by James HASTINGS P 378

से विरक्त हो जाते हैं, हमारा मन स्थिर हो जाता है और सारे शोक, सन्ताप, दु:ख आदि से भी मुक्त हो जाते हैं । तृष्णा रहित, रागरहित, आशारहित व्यक्ति का फिर आवागमन नहीं होता । हम शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं । यह शान्ति सत्य-स्वरूप है । इसी प्रकार सब प्रकार की वासनाएँ -- काम, क्रोध, मोह, लोभादि -- के क्षय हमें निर्वाण की श्रेणी तक पहुँचाता है । इस प्रकार जब भव का निरोध हो जाता है, तब हमें मुक्ति मिलती है । जब हमारी आशाओं और तृष्णाओं का निरोध होता है तो स्वयंमेव हमनिर्वाण प्राप्त करते हैं ।

निर्वाण का उद्भव

बौद्धों का `निर्वाण` ब्रह्मनिर्वाण` के बहुत निकट है । ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् `असीम में विलीन हो जाने` के बारे में श्रीमद्भगवत्गीता में इस प्रकार कहा गया है --

योऽन्त: सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव य:
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्म भूतोऽधिगच्छति ।।२४।।

अर्थात् जो पुरुष निश्चय करके अन्तर आत्मा में ही सुखवाला है(और) आत्मा में ही आरामवाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञानवाला है (ऐसा) वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव हुआ सांख्ययोगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है ।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषय: क्षीणकल्मषा: ।
छिन्नद्वैधा यतात्मान: सर्वभूतहिते रता: ।।२५।।

अर्थात् नाश हो गये हैं सब पाप जिनके (तथा) ज्ञान करके निवृत्त हो गया है संशय जिन (और) संपूर्ण भूतप्राणियों के हित में है रति जिनकी एकाग्र हुआ है भगवान् के ध्यान में चित्त जिनका (ऐसे) ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त परब्रह्म को प्राप्त होते हैं ।

कामक्रोधविमुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।२६।।

अर्थात् कामक्रोध से रहित जीते हुए चित्त वाले परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए ज्ञानी पुरुषों के लिए सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त है ।[१]

इसप्रकार निर्वाण अतिप्राचीन शब्द सिद्ध हुआ । वास्तव में बौद्धों ने इस शब्द को अपनाया और साधकके प्राप्य परमपद के रूप में इसी का व्यवहार किया ।[२] इसके बाद सिद्धों ने निर्वाण को एक अन्य माध्यम से व्यंजित किया । उन्होंने उस परमपद को 'महासुख' की संज्ञा दी । गुरु के द्वारा प्राप्त होने वाला यह महासुख वास्तव में 'समरस है, सहजानन्द है, जो न तो श्रवण से सुन पड़ता है, न नयन से देख पड़ता है, न पवन उसे हिला पाता है, न अग्नि उसे जला पाती है, न जलवर्षा से वह आर्द्र होताहै, न वह बढ़ता है, न घटता है, न वह अचल है, न वह गतिशील है ।[३] इस प्रकार वह सीमातीत है, वर्णनातीत है तथा अनिर्वचनीय है । नाथपंथियों ने इस नाडु से प्राप्त होने वाले आत्मानुभव को ही निर्वाण बताया ।

वस्तुत: निर्वाण ही मुक्ति या मोक्ष है । यह सब तृष्णाओं का सत्यनाश है । यह निर्वाण कल्पनातीत है और तर्कसंगत भी । इसी मुक्ति या मोक्ष के बारे में गौतम बुद्ध ने हमें दिव्य उपदेश सुनाये थे । बुद्धदेव के अनुसार सारी तृष्णाओं का निरोध या विध्वंस ही 'मुक्ति' है ।[४] लेकिन इस निर्वाण के पश्चात् की अवस्था के बारे में भगवान् बुद्ध ने मौन धारण किया । इस अवस्था के बारे में बुद्ध के सम्मुख उनके अनेक अनुया-

---

१- श्रीमद्भगवद्गीता - अध्याय ५, पृ० २०१-२०३.

२-३.साहित्यकोश - पृ० ४५४, पृ० ६३६.

४- "All the mystic or psychological data - all idea of a transeende self, of an immanent absolute that could give any support to a conception of survival of whatever kind, personal or impersonal, have been sedulously destroyed by Buddhist pholosophy"

-'Encyclopendia of Religion and Ethics - P.377. (Vol IX)

यियों ने प्रश्न किये, तो भी वे मौन थे, उन्होंने केवल इतना ही कहा, 'दु:ख का निरोध है निर्वाण'।

मोक्ष

भारतीय दर्शन प्राचीन काल से मोक्ष की महत्ता को मानता आ रहा है। उस समय दु:ख से छुटकारा पाना, मृत्यु से न डरना, दीर्घ जीवन प्राप्त होना, लौकिक सुख की उपलब्धि ये ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। इन सबकी प्राप्ति का माध्यम था देवताओं की उपासना और उनको संतुष्ट करने की प्रथा।

मोक्ष के बारे में बताया गया है --'अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष -- ये चार मनुष्य जीवन के लिए परमलक्ष्य बताये गये हैं। इन चारों में भी मोक्ष को सर्वोत्तम और चरम लक्ष्य कहा गया है। मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, परमपद, परमगति, परमसुख आदि शब्द पर्यायवाची हैं। ये सब जीव की उस स्थिति एवं दशा की ओर संकेत करते हैं, जहाँ उसे त्रिविध ताप से छुटकारा मिल जाता है और वह अपने शुद्ध, बुद्ध नित्य मुक्त स्वभाव में तल्लीन होकर जीवन मरण के रहस्य को जान पाता है।'[१] यही मोक्ष है।

उपनिषद् तो अज्ञान से छुटकारा पाकर ज्ञान के माध्यम से जीवन-ब्रह्म के साक्षात्कार को ही 'मुक्ति' मानता है। गीता में भी 'पूर्ण आत्मज्ञान'[२] को ही मोक्ष बतलाया है। मुक्ति के बारे में भगवद्गीता का कहना है --

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायण: ।
विगतेच्छाभयक्रोधो य: सदा मुक्त एव स: ।।

अर्थात् जीती हुई है इन्द्रिया मन और बुद्धि जिसकी ऐसा जो मोक्ष परायण मुनि (परमेश्वर के स्वरूप निरन्तर मनन करने वाला), इच्छा भय और क्रोध से रहित है, वह सदा मुक्त ही है।[३]

१-२. कबीर दर्शन - डा० रामजीलाल सहायक, पृ० २३५, पृ० २३६.

३- श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर (५ अध्याय, पृ० २०४)

न्याय-वैशेषिक दर्शन तो दु:ख के पूर्ण-निरोध को मोक्ष कहता है । अथवा शरीर और इन्द्रियों के बन्धनों से आत्मा का विमुक्त होना ही मोक्ष है । योग द तो विकारी चित्त और विवेक ज्ञान पर प्रकाश डालता है । विकारी चित्त सुख-दु:ख द्वेष आदि का अनुभव करता है । यह तो लौकिक बंधन है। योग साधना के मार्ग में अग्रसर होने वाला ईश्वर के सतत् चिन्तन से अपनी बुद्धि को पवित्र और स्थिर बनात है । ऐसे पुरुष को ही 'केवल्य' की प्राप्ति हो जाती है । यही मोक्ष है ।

वेदान्त दर्शन जीवब्रह्म की एकता पर विश्वास करता है । लौकिकता के भ्रम और बंधन में पड़ने वाला जीव जब तक जीव और ब्रह्म की पृथकता को मानता है तब तक वह मुक्तिसिद्धि के लिए योग्य नहीं होता । लेकिन जब जीव ब्रह्म का ऐक्य वह जानता है तो वह मुमुक्षु होता है ।

बौद्ध-दर्शन में इसी मुक्ति या मोक्ष के लिए निर्वाण बताया गया है । वह निर्वाण सभी भेदों से रहित मन की निश्चेष्ट एवं विकार-विहीनता की अवस्था है

तो भी इसमें हम थोड़ा अन्तर तो देख सकते हैं । हिन्दुओं के अनुसार मुक्ति पाये हुए लोगों की आत्मा परमानन्द को प्राप्त करती है ।[१] लेकिन बौद्धों के अनुस आत्मा-रूपी तृष्णाओं के समूह के नष्ट होने के बाद ही हम मुक्त हो सकते हैं । नि प्राप्ति के बाद जो पार्थिव शरीर रहता है, वह जीर्ण-शीर्ण होकर प्रकृति से मिल है ।

संक्षेप में कहा जाय तो, सभी दार्शनिकों ने मोक्ष को स्वीकार किया है, किन्तु विभिन्न नामों से । उसे मोक्ष; मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण, परमपद, परमल

१- 'Parinirvana, a state beyond suffering, beyond pain beyond desire, beyond the consciousness of both sensation and ide

- "Bhagavan Buddha"- R.R. Diwakar, P.127.

आदि नामों से पुकारा है, मात्र इसी को जीवन का चरम लक्ष्य माना है ।

ऊपर मध्यकालीन बौद्ध धर्म के विविध परिवर्तित रूपों का आकलन हुआ है । कई अन्य धर्मों के लौकिक-तत्व बौद्धधर्म में समाविष्ट हुए । और बौद्धधर्म के अनेकतत्व दूसरे धर्मों में जा मिले । एक समन्वयात्मक परिवेश धार्मिक चेतना को प्राप्त हुआ था, जिस कारण बौद्धधर्म सनातन-धर्म के भीतर भी समा गया । दोनों इस तरह मिलजुल गये कि गंगा-जमुना के संगम के समान प्रतीत हुए । बौद्धधर्म का सदाचार मूल्य भी मानवीय सभ्यता के लिए एक नवीन अध्याय की सृष्टि करता है । जहाँ ये नियम अत्यन्त कठिन हुए वहाँ कुछ प्रतिक्रिया तथा नैतिक पतन भी सामने आता है । जैसे योगविद्या में आत्मा-परमात्मा का एक होना लक्ष्य है, या अन्य भारतीय धार्मिक-लक्ष्य के रूप में मुक्ति, मोक्ष आदि का स्थान है, उससे अभिन्न निर्वाण का प्रभाव भी हम धार्मिक जीवन में अनुभव करते हैं । ये बातें धार्मिक और सामाजिक पक्ष में नहीं, परन्तु साहित्य तथा कला के क्षेत्र में विकासोन्मुख परिवर्तन ला सकीं । हिन्दी साहित्य के आविर्भाव-काल में अपभ्रंश-भाषा का योगदान अनिषेध्य है । वस्तुत: अपभ्रंश भाषा की विशेष उन्नति बौद्धधर्म के चिर सामिप्य का परिणाम है । तात्पर्य यह हुआ कि बौद्धधर्म ने अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी-भाषा के आदिम रूप के विकास के लिए अन्यून सहायता प्रदान की है । बौद्ध साहित्य अर्थात् पालि तथा संस्कृत के धर्म-साहित्य ने जन-जीवन को तथा साहित्यिकों को अवश्यमेव प्रभावित किया जिसका विकास आगामी सात-आठ शताब्दियों के हिन्दी साहित्य में दृष्टिगत होता है ।

चतुर्थ अध्याय

१- भारतेन्दु-काल तक के हिन्दी साहित्य में बौद्ध तत्व

इतिहास तो इन बातों को प्रमाणित करता है कि बौद्ध धर्म का मूलोच्छेदन करने की चेष्टा आचार्य शंकर ने छठी-सातवीं शताब्दी में की थी । अब यह प्रश्न उठता है कि जब बौद्धधर्म का भारतवर्ष में नामावशेष हो गया तो हिन्दी साहित्य उस पवित्र धर्म से कैसे प्रभावित रहा ।

बौद्ध धर्म के लुप्त होने के बाद भी यहाँ बौद्ध धर्म के तत्वों की प्रतिष्ठा रही और छठी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक धार्मिक कार्य-कलाप रहा और अन्य संप्रदायों में विलीन होकर भी वे तत्व यहाँ भी स्वतंत्र रूप से यदा-कदा प्रवृत्त रहे । वस्तुत: अबौद्ध जनता में भी बौद्ध धर्म ने लोकप्रियता पायी । कोई भी धर्म संपूर्णतया विनाश को प्राप्त नहीं होता । इस तरह भारतवर्ष में बौद्धधर्म भी यद्यपि अपनी जर्जरित स्थिति में पहुंच गया था तो भी जड़ से वह उखाड़ा नहीं गया था ।

अनेक ऐतिहासिक और धार्मिक कारणों से वैष्णव धर्म के बढ़ते हुए विकास ने बौद्धधर्म को भी अपने में आत्मसात् कर दिया । और बुद्धदेव जगन्नाथ के रूप में पूजे जाने लगे । मूर्ति और मन्दिर के साथ-साथ वैष्णव धर्म में बौद्धों के बहुत-से तत्वों को वैष्णव रूप अवश्य दे दिया गया । जब मध्यकालीन हिन्दी साहित्य को वैष्णव विचारधारा प्रभावित करती थी, तब दूसरी ओर वैष्णव धर्म के प्रभाव के माध्यम से

उस पर बौद्ध प्रभाव भी पड़ने लगा ।

इसी समय शैवधर्म का भी विकास हम देख सकते हैं । बौद्धधर्म के ह्रास से शैवों ने भी उससे कई लाभ उठाये । शैवों ने बौद्धधर्म को आत्मसात् करते वक्त उसके सिद्धान्तों, मूर्तियों और मन्दिरों को शैव रूप देने का प्रयत्न किया । इसके कारण शैव धर्म के नाथपंथ जैसे सम्प्रदायों में हम बौद्ध-तत्वों का मिश्रण ही पाते हैं । बौद्धों के अवलोकितेश्वर मत्स्येन्द्रनाथ के रूपों में प्रतिष्ठित हो गये । इसका यही अर्थ है कि नाथ सम्प्रदाय में आका बौद्धतत्वों ने शैव रूप ग्रहण कर लिया था । इन्हीं नाथों के बाद सिद्धों का प्रादुर्भाव हुआ और उसके पश्चात् संतों का । इन तीनों सम्प्रदायों में बौद्ध-तत्वों की स्वीकृति हुई है ।

इतिहास-कारों ने नाथ-सिद्धों को प्राचीन काल में रख दिया है, क्योंकि इनकी भाषा शुद्ध हिन्दी न होकर अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी थी । हिन्दी का वास्तविक रूप मध्ययुग या भक्तिकाल से ही आरम्भ होता है । भक्तियुग की चारों-धाराओं में, अर्थात् ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी के प्रतिनिधि कवियों पर बौद्ध प्रभाव का यहाँ उल्लेख किया जाता है ।

निर्गुणी सन्तों की परम्परा पूर्णतया बौद्धधर्म से प्रभावित थी तथा सिद्धों और नाथों की विचारधारा ही संत-संप्रदाय की मूल-स्रोत थी । पूर्वकालीन सन्तों की वाणी `आदिग्रंथ` में संग्रहीत हैं और यह ग्रंथ इस बात का प्रमाण भी है कि सभी संतों की साधनापद्धति बौद्धधर्म से प्रभावित थी । इन पूर्वकालीन संतों में जयदेव, सधना, लालदेव, वेणी, नामदेव तथा त्रिलोचन विशेष उल्लेखनीय हैं । इनकी वाणी तथा साधनापद्धति मूलत: बौद्धधर्म से प्रभावित है । सगुणोपासक या निर्गुणोपासक होते हुए भीये संत बौद्धधर्म से प्रभावित रहे । ये संत सहजरूप से अस्पृश्यता, प्रतिमाओं की उपासना, याग-यज्ञ आदि के निन्दक रहे । वास्तव में सन्तों का यह गुण बौद्धधर्म के मूल-तत्वों का स्मरण दिलाता है ।

२- पूर्वकालीन संत

जयदेव

जयदेव का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था, जब एक ओर बौद्ध-सिद्धों के समय का अस्त हो रहा था और दूसरी ओर नाथपंथ एवं भक्तिमार्ग की धाराएं उदित हो रही थीं। जयदेव की रचनाओं में जो राधाकृष्ण के अलौकिक-प्रेम की चर्चा है, वह सहजयान के `प्रज्ञा`, `उपाय` तथा `महासुख` के तत्व के आधार पर है।

वैष्णव-सम्प्रदाय के भक्ति-साधकों ने भगवानबुद्ध को अवतारपुरुष मान लिया और बुद्ध को `हरि` की संज्ञा से अभिहित किया। गीत-गोविन्द में भी दशावतारों की स्तुति करते हुए जयदेव ने महात्मा बुद्ध का भी उल्लेख किया है।[१]

वज्रयान में तो बुद्ध सर्वत्र विराजमान एवं विद्यमान स्वरूप हो गये थे। ये ही बुद्ध जयदेव के `हरि` बने थे। `गीत-गोविन्द` में `हरि` नाम-स्मरण को प्रधानता दी गयी है। क्योंकि इसके सब सर्ग `हरि` नाम-स्मरण से समाप्त किये गये हैं। उनके अनुसार हरि-स्मरण सबसे श्रेष्ठ था। इस प्रकार गीत गोविन्द के ग्रंथकर्ता एक भक्त के रूप में ही हमारे सामने आते हैं।

सिद्धों और नाथों की हठयोग-साधना को जयदेव भी मानते हैं। इस साधना में जो नाद, ब्रह्म, निर्वाण आदि पद आते हैं, वे सब बौद्धधर्म की ही देन है। हठयोग-द्वारा निर्वाण-प्राप्ति सभी सिद्ध-संतों से मानी हुई बात है। `जयदेव पर सहजयान का प्रभाव पड़ा था, क्योंकि उनके समय में उड़ीसा तथा बंगाल प्रदेशों में सहजयान बौद्धधर्म का प्रभाव बना हुआ था और जगन्नाथ बुद्धस्वरूप माने जाते थे।`[२] वैसे श्रीबुद्ध विष्णु के अवतार

१-`निन्दसि यज्ञ विधेरहहश्रुतिजातम्
सदय हृदय-दर्शित पशुघातम्।
केशव! धृत बुद्ध शरीर, जय जगदीश हरे।` --नये पुराने झरोखे, `बच्चन`, पृ० १०२.

२-`हिन्दी संत साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव`, डा० विद्यावति मालविका, पृ० १२३.

रूप में परिणत हो गये थे ।

संत सधना

संत सधना पर प्रकाश डालने वाला कोई ग्रंथ नहीं है । केवल उनका एक पद मिलता है जिसके आधार पर हमें सन्त सधना के बारे में थोड़ी-सी जानकारी होती है । अन्य संतों के जैसे उन पर भी सिद्धों और नाथों का प्रभाव पड़ा था । उनकी लिखी हुई एक पंक्ति देखिये --

`मैं नाहीं कछु हउ नहीं, किछु आहि न मोरा`

यहाँ नैरात्म्य एवं अध्यात्म्य का सुन्दर समन्वय किया गया है । जीव के बारे में संत-सधना का कहना है कि जीव या सत्व, नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, वह है अनात्म, निर्जीव और नि:सत्व, वह शाश्वत भी नहीं है अनात्म भी । इसलिए आत्महीन इस जगत् में `अपना` कहने योग्य कुछ भी नहीं है । संत-सधना ने इस प्रकार अपनी वाणी के द्वारा बौद्धों के अनित्य, दु:ख तथा अनात्मवाद का सुन्दर ढंग से चित्रण किया है । बौद्धानुयायी होने पर भी संत-सधना मांस बेचने का काम करता था । अहिंसा के अनुसरण करने-वाले होने पर भी उन्होंने माना कि मांस बेचना या खाना पाप-पंकिल नहीं है । लेकिन जीवहिंसा सदा वर्जनीय है ।बौद्धग्रंथों में यह मानी हुई बात है कि दृष्ट, श्रुत तथा परिशंकित मांस का उपभोग नहीं करना है । इसी तरह एक अन्य मान्यता भी है कि प्रवर्त्त मांस का उपभोग करना पाप नहीं है ।

संत लालदेद

सभी संप्रदायों पर विश्वास रखने वाली एक शैव योगिनी थी संत लालदेद । किसी भी सम्प्रदाय पर अटल विश्वास रखने पर सभी दु:खों से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी, यही आदर्श उन्होंने जनता के सम्मुख रखा था । उनका उपदेश है `मूर्तिपूजा न कर, इसी जीवन में सदाचार, अहिंसा आदि धर्मों के पालन से मुक्ति को प्राप्त करो ।`

संत वेणी

संत वेणी पर भी नाथ-संप्रदाय का खूब प्रभाव है । इनके केवल तीन ही पद प्राप्त हैं । हठयोग की साधना भी इन्होंने अपनायी थी । चन्दन लगाये, स्नान करके, मृगचर्म पर आसीन होने, तुलसी माला रुद्राक्ष-धारण करने मात्र को धर्म समझने- वाले ढोंगी साधकों पर उन्होंने व्यंग्य बाणों की वर्षा की है ।

संतनामदेव

शुद्ध निर्गुणी संत होने पर भी सन्त नामदेव भक्त थे । सिद्धों की तरह नामदेव ने भी जाति भेद, पत्थर की पूजा आदि का कट्टर विरोध किया था। इन अंधविश्वासों में डूबे हुए हिन्दू तथा मुसलमानों को उन्होंने फटकारा भी है ।[१] तीर्थ यात्रा से पुण्यलाभ करने के हेतु व्यर्थ समय गंवाने वालों के बारे में भी सन्त नामदेव ने व्यंग्य किया है । वे तो अपनी काया को ही तीर्थ मानते हैं ।

'ग्रंथ साहब' से ज्ञात होता है कि उन्होंने भैरव, दुर्गा, शिव आदि की पूजा की भी निन्दा की है । यही मूर्तिपूजा विरोध बौद्धधर्म तत्वावलंबी है ।

सिद्धों की हठयोग-साधना से वे भी प्रभावित थे तथा उनके अनहद नाद का उन्होंने भी अनुभव किया था । वे गाते हैं --

'धनि धनि ओ राघ बेनु बाजे ।
मधुर-मधुर अनहत गाजे ।'[२]

१-'कोटिज तीरथ करै, अनुज अहिबाले गाहे ।
रामनाम सरि तऊ न पूजे ।।
वेद पुरान सासतर बानन्ता, गीत कवित्त न गावहु गो ।'
--'हिन्दी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव', डा० विद्यावति मालविका, पृ० १२५.

२-'हिन्दी संत साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव', डा० विद्यावति मालविका, पृ० १२८.

संत त्रिलोचन

इस संत की चर्चा भी 'आदि ग्रंथ' में ही मिलती है । उनके केवल चार ही पद प्राप्त हैं । उससे ज्ञात होता है कि वे भी सिद्धों तथा नाथों से खूब प्रभावित थे । गुरुमहिमा, निर्वाण आदि के बारे में उन्होंने बड़ा सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है । संत-काव्य में उनकी वाणी उद्धृत की गयी है --

'गुर बिनु ततु न पाइ वा ।'[१]

अर्थात् गुरु के बिना परमतत्व को पाना कठिन है । गुरु के उपदेश के अनुसार ही निर्वाण की उपलब्धि हो सकती है । इसी बात को यहाँ बताया गया है --

'तज चउरासीह जिनि उपाई,
सो सिमाहु निरवाणी ।'[२]

इसी प्रकार वेष बदलकर मिथ्या संन्यास का अनुकरण करने वालों पर भी उनका तीखा व्यंग्य है ।

यहाँ हम कह सकते हैं कि पूर्ववर्ती संतों की विचारधारा और साधना-पद्धति बौद्धधर्म के प्रभाव से अलंकृत हुई । इस प्रकार बौद्ध और हिन्दू-धर्मों की प्रवृत्तियों का मिश्रण इनकी विचार-धारा में रूपान्तरित होकर निहित था । इन पूर्ववर्ती संतों ने कबीर-दास जी के लिए जो महान् पथ प्रशस्त किया, उससे होकर वे आसानी से औन्नत्य की चरम-सीमा तक पहुँच गये ।

३- संतों में सर्वश्रेष्ठ कबीर तथा उन पर बौद्धधर्म का प्रभाव

संतमत के प्रमुख प्रवक्ता थे कबीरदास । युगनिर्माता व धर्मप्रवर्तक के रूप में उन्होंने भारत के धार्मिक रंगमंच पर प्रवेश किया । लोकोद्धार की भावना को अपना लक्ष्य मानने से कबीरदास जी ने लोकप्रियता पायी । कबीर-पंथी उनको एक अजर-अमर अलौकिक पुरुष

१- 'हिन्दी संत साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव', डा० विद्यावति मालविका, पृ० १२८.
२- वही.

मानते हैं । महान् व्यक्तित्व से सम्पन्न कबीरदास जी के उपदेश रूपी अमृत की वर्षा से सचमुच जनजीवन फूले-फले ।

अलौकिक और आध्यात्मिक ज्योति से परिपूर्ण व्यक्तित्व वालों का जीवन-वृत्तान्त अचिन्त्य होता है । कबीरदास जी का जीवन वृत्तान्त भी चर्चास्पद है । उनकी जन्मतिथि विक्रमी संवत् १४५५ और देहावसान काल संवत् १५७५ ही मानना युक्तिसंगत है ।

सैद्धान्तिक रूप से विश्लेषण करने पर कबीरदास एक समन्वयवादी की श्रेणी में आते हैं । क्योंकि उनका मन हिन्दु, बौद्ध, इस्लाम तथा सूफीधर्मों के सत्त्विक सद्-विचारों का समन्वय मात्र था । उनका समय अत्याचारों और आपसी फूटों का था । इन आपसी झगड़ों और मन के मैल को धो डालने का उपाय उन्होंने यही देखा । उन्होंने समन्वयवाद को अपनाया ताकि उनको तर्क-वितर्क की आवश्यकता ही दीख नहीं पड़ी । अपने इष्टदेव को वे विभिन्न नामों से पुकारते हैं । उनका कहना है -- "हमें भिन्न नामों के फेर में न पड़कर उस अद्वितीय परमतत्व को स्वीकार करना चाहिए जो सबके मूल में स्थित सत्य स्वरूप है और जिसे प्रकट करने के ही प्रयत्न में लोग बहुधा विविध नामों के प्रयोग कर डालते हैं । राम, रहीम, करीम, अल्लाह, खुदा व गोरख जैसे नामों के आधार पर उसे व्यक्ति-विशेष के रूप में समझ लेने की आवश्यकता नहीं है । मूलत: वही एक सत्य है जो सर्वत्र व्याप्त हो रहा है जिसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं । विरोध का तो कहीं कोई कारण ही नहीं है । उसके वास्तविक रहस्य को न समझकर लोग एक दूसरे को विरोधी समझ बैठते हैं और यही भ्रम सारे झगड़ों की जड़ है ।"[१] इसी के बारे में कबीरदास का कहना है --

"जोगी गोरख गोरख करै,
हिन्दु राम नाम उचरै ।
मुसलमान कहै एक खुदाइ,
कबीर का स्वामी रहा समाइ ।।"[२]

१- कबीर साहित्य की परख - परशुराम चतुर्वेदी. पृ० ११०

होंने हिन्दु-धर्म के राम, हरि, नारायण और मुकुन्द की उपासना की है और उसे
स, निरंजन मानते हुए भी कर्ता माना है, इस्लाम की भाँति उस कर्ता को एक ज्योति-
त्र माना है और उसी से जगत की उत्पत्ति होती है । उन्होंने सूफी सन्तों की प्रेम
धना का भी अनुसरण किया है और बौद्धधर्म के शून्यवाद, अहिंसा, मध्यममार्ग, सहज-
धि आदि को ग्रहण किया है । अर्थात् तत्कालीन कलुषित वातावरण, राजनीतिक,
र्मिक, सामाजिक, साहित्यिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में विषमता एवं अनेकत्व का बाहुल्य
कर कबीर एकत्व की साधना की ओर उन्मुख हुए । सभी ओर दु:ख की ज्वाला प्रज्वलित
सभी वर्ग `मैं, `मेरी` में उलझकर घृणा, द्वेष, वैर, ईर्ष्या आदि के द्वारा परस्पर
द्र-व्यवहार में लगे हुए थे । मनुष्य मनुष्यता का परित्याग कर अमानुषिक एवं हिंसक
यों में संलग्न थे । कबीर ने इस सार्वजनिक दु:ख को निजी दु:ख बना लिया ।[१]

ीरदास जी के विचार-तत्व

कबीरदास जी ने जिन बातों का अनुभव किया, उसी को उन्होंने अपने ग्रंथों
व्यक्त किया । इसके लिए उन्होंने दो बातों की शरण ली -- प्रथम जनसमाज में
म्परागत व्याप्त भावना तथा दूसरा सज्जनों का सत्संग । जब-जब वे पर्यटन करते रहे,
होंने साधुसंतों से धर्मचर्चा की । इस प्रकार बड़ी मात्रा में उनको लोकज्ञान प्राप्त हुआ
र वे `सारसंग्रही` कहलाये ।

कबीरदास जी ने बाह्याडंबर, मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा गंगास्नान, वेदकुरान,
न आदि के विरुद्ध घोर विरोध प्रकट किया । इसी प्रकार महान-ग्रंथों की प्रामाणिकता
उनको संदेह ही था । क्योंकि उन्होंने अपने मन के प्रकाश की ज्योति में सत्य की खोज
थी और उससे आत्मसंतुष्टि की उपलब्धि हुई थी ।

`कबीर-दर्शन` - डा० रामजीलाल `सहायक, पृ० १११.

कबीर के समय भारत में बौद्धधर्म का रूप

कबीर के समय भारत में बौद्धधर्म अपने सहजरूप में विद्यमान न था । तो भी उसका प्रभाव जनों पर पूर्णरूप से था । क्योंकि सिद्धनाथों के समय का अन्त भारत कुछ दिन पहले ही देखा था । संवत् १२७६ में गाधिपुर के एक कायस्थ द्वारा श्रावस्ती में बौद्धविहार का निर्माण करवाया गया था, सन् १३३१ में बर्मा के राजा ने बुद्ध-गय मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था और १५वीं शताब्दी के प्रारंभिक काल (सन् १४३ में बंगाल में बौद्धभिक्षु तथा बौद्ध-गृहस्थ थे । ऐसे ही महाराष्ट्र में भी उस समय बौद्ध के होने के प्रमाण मिलते हैं । कन्हेरी की बौद्धगुहाओं में सन् १५३४ तक बौद्ध थे, जि पर पुर्तगाल लोगों द्वारा अनेक अत्याचार किए गए थे । मणिपुर, नेपाल, चटगाँव, आस उड़ीसा आदि में बौद्ध पर्याप्त संख्या में थे और जिनकी परम्परा अभी भी चली आ है ।[1]

लेकिन कबीरदास जी के समय तक पहुँचते-पहुंचते बौद्धधर्म में अनेक परिवर्तन आ निर्गुण-सगुण ही नहीं, सभी धार्मिक विचार धारायें बौद्धधर्म से प्रभावित हुए बिना नहीं रही । पूर्णरूप से बौद्धधर्म में परिवर्तन तो आया नहीं था । क्योंकि जब कबीर जी उस रूपान्तरित बौद्धधर्म का प्रचार कर रहा था तब लंका, तिब्बत, नेपाल जैसे दे में बौद्धधर्म अपने जीवन्त रूप में प्रचार में था । कबीर के समय में तो बौद्धधर्म अपने जी रूप में न रहने का यह भी कारण था कि उस समय बौद्ध पाखण्डी बने थे तथा सिद्ध- सब माया के बंधन में फंस गये थे ।

कबीर की वाणियों में बौद्धतत्वों का समावेश

हम देख चुके हैं कि बौद्धधर्म को कबीर ने अपने जीवन्त रूप में नहीं देखा था उन्होंने उस पवित्र धर्म का अध्ययन भी किया नहीं था । तो भी यह निश्चित है कि बौद्धधर्म के विचारों से प्रभावित समाज में वे रहे थे और बौद्धधर्म से प्रभावित विद्वानों के साथ उन्होंने सत्संग किया था । उनकी वाणियों में निहित बौद्धतत्व में है --

सत्यनाम

सबके जीवन की यात्रा का एक-मात्र लक्ष्य है मोक्ष या परमपद की प्राप्ति इस परमपद की प्राप्ति केवल सत्यनाम से ही संभव है। गुरु ही हमें इस सत्यनाम का ज्ञान प्रदान कर देते हैं। इस गुरु के बारे में कबीरदास जी का कहना है --

"सत्यनाम निज औषधि, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रुपथ रहि, ता की वेदना जाय।।"

अर्थात् यह सत्यनाम औषधि के समान है। जो इसका सेवन करता है, उसे सुख प्राप्त हो जाता है।

परमतत्व

अनात्मवादी होने के कारण महात्मा बुद्ध ने परमतत्व के अस्तित्व पर शंका प्रकट की थी। परमतत्व के बारे में वे हमें कुछ भी परिचय नहीं दे सके। जब उनसे इस परमतत्व के बारे में पूछा गया, तब उन्होंने मौनावलंबन किया। उसी प्रकार परमतत्व बारे में कबीर का विचार है --"जैसा वह है वैसा दिखाई नहीं पड़ता। वास्तव में गूँ की बोली और संकेत को गूंगा ही समझ सकता है। इस मौन के बारे में कबीरदास का कहना है --

"मारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूं तो झूंठ।
मैं क्या जानूं राम कौं, मैंनां कबहुं न दीठ।।"[1]

इस परमतत्व की कबीर ने अनेक प्रकार से व्याख्या की है। पुष्प की सुगन्ध, जल में रेखा, गूंगे का गुड आदि अवतरणों से इसे व्यंजित किया है। उस परमतत्व के बा कबीरदास जी कहते हैं --

"जो लोग उस साईं का वर्णन करते हैं, वह उनका कोरा अनुमान और व मात्र है। लोग जैसा उसका वर्णन करते हैं वह वैसा है नहीं। जैसा वह है वैसा

१-'कबीर ग्रंथावली', पृ० १६३.

नहीं पड़ता ।"[१]

इस परमतत्व को जानने के लिए जिस गुरु की आवश्यकता है, उसकी महिमा प्राचीन काल से चलता आ रहा है । बौद्धकाल में इसका और भी महत्व बढ़ा और उस समय बुद्ध को ही मार्गद्रष्टा और गुरु की उपाधि दी गयी । गुरु-दीक्षा के बिना हमें ज्ञान प्राप्ति नहीं होती और शरीर के भीतर स्थित बुद्ध की जानकारी भी हमें नहीं होती । यही उस समय प्रचलित मत था । जिस प्रकार गोरखनाथ जैसे सिद्ध-नाथों ने गुरु महिमा का वर्णन किया, वैसे ही कबीरदास जी ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं ।

कबीरदास जी गुरु को हमारा सबसे निकट बन्धु मानते हैं । वे कहते हैं कि उस हरि की कोई भी जाति नहीं । वही दयालु प्रभु की खोज करने में हमें सहायता देता है । कबीर के शब्दों में यह भाव देखिये --

"सतगुर सवांन को सगा, सोधी सई न दाति ।
हरि जी सवांन को हिन्दु हरिजन सई न जाति ।।"[२]

मनुष्य की सारी दुर्बलताओं को दूर कर उसे दिव्यगुण से युक्त करा देने वाला ही गुरु है । नीचे की पंक्तियों में कबीरदास जी कहते हैं --

"बलिहारी गुर आपकी, घौ हाडी सौ बार ।
निज मानित्व तें देवता किया, करत न लागी बार ।।"[३]

उसी प्रकार गुरु हमारा मार्गदृष्टा है । जब हम मार्ग का अंधानुकरण करते हैं, तो गुरु ही हमें ज्ञानदीप की ज्योति से ज्ञान प्रदान करता है । इसी ज्योति के सहारे हम अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं । इस आशय को हम इन पंक्तियों में देख सकते हैं --

---

१- "मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव" - सरला त्रिगुणायत, पृ० ६६.
२- "कबीर ग्रंथावली" सटीक - पुष्पपाल सिंह, पृ० ७७.
३- कबीर ग्रंथावली", पृ० १३८.

`पाछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि ।
पैंडे में सतगुर मिला, दीपक दीया हाथि ।।`[१]

इसी प्रकार,

`भली भई जो गुरु मिले, नहिंतर होती हानि ।
दीपक जोति पतंग ज्यों, पड़ता पूरी जानि ।`[२]

अर्थात्, हम सब कीड़े की भाँति हैं, जो सांसारिक माया रूपी दीपक के चारों ओर भ्रमण करके उसमें कूद पड़ते हैं । लेकिन गुरुदेव ने इस अनिष्ट से अपने साधकों की रक्षा की है ।

इस प्रकार कबीरदास जी ने दिखा दिया कि गुरु की महिमा अपार है, वर्णनातीत है और सीमाहीन है । यही भावना हम महायान में भी देख सकते हैं । महायान में देखा जाता है कि बुद्ध, धर्म और शरण में जाने के पूर्व, गुरु की शरण में जाते हैं ।

साधुसंग

यह एक मानी हुई बात है कि स्वामी रामानन्द के शिष्यत्व को ग्रहण करके ही कबीरदास जी विद्वान बने थे । स्वामी रामानन्द तो ऐसे संत थे, जिन पर सिद्धों तथा नाथों का पूर्णरूप से प्रभाव पड़ा था । इस बात से यह स्पष्ट है कि कबीरदास जी भी इस प्रभाव से दूर नहीं रहे होंगे । महात्मा बुद्ध के समय से ही `साधुसंग` की महिमा गायी जाती थी । बौद्धग्रंथों में यह घोषणा की गयी है कि सत्संग सर्वमंगलकारी है । उससे हमारा कल्याण होता है, न कि नाश । हम अपने सारे दुःख और शोकों को भूल चिरकाल तक सुखी बन जाते हैं । कबीरदास जी ने भी यही बात दुहरायी है --

---

१-`कबीर ग्रंथावली`, पृ० १३७.

२- वही, पृ० १३६.

`कबीर संगति साधु की, कदे न निरफल होइ ।
चन्दन होसी बावना, नींब न कहसी कोइ ।।[१]
कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं ।
अंक भरे भरि भेटिए, पाप सरीरु जाहिं ।।[२]
सोद साद धरती सहै, काट कूट बनराइ ।
कुटिल बचन साधू सहै, दूजे सह्या न जाइ ।।`[३]

श्री धर्मानन्द कोशाम्बी ने भी कल्पना की है कि संतों को बौद्धसाहित्य से ही साधुसंगति का मंत्र मिला है । लेकिन हमारे सम्मुख ये प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संतों ने जीवन्त रूप में बुद्ध व बौद्ध धर्म को देखा व सुना न था । इसीलिए कोशाम्बी जी ने भगवान बुद्ध के उपदेशों पर ज़ोर देते हुए समीचीन ही कहा है -- इन साधु-सन्तों के वचनों में बौद्ध-साहित्य में मिलने वाले भूतदया, सब लोगों के साथ समता का व्यवहार तथा संत-संगति के गुण वर्णन के जो उद्गार मिलते हैं, वह आये कहाँ से ? इसका उत्तर यही है कि जनसाधारण या जनतावों से बुद्धोपदेश के बीज समूल नष्ट नहीं हुए थे, किसी-न-किसी रूप में वह बने हुए थे और इन साधु-संतों ने उन्हीं को अनेक प्रकार से बढ़ाया ।`[४]

जातिभेद

बौद्धधर्म में जाति भेद के लिए कोई स्थान नहीं है । जो भिक्षुत्व स्वीकार करता है, उसे अपनी जाति-गोत्र आदि न त्याग कर `शाक्यपुत्रीय श्रमण` कहा जाता था । जिस प्रकार महासमुद्र में मिलने से सब नदी-नाले अपने नाम व आकार को छोड़कर एकाकार हो जाते हैं, वैसे ही बौद्धधर्म में दीक्षा प्राप्त होने के बाद सब `बौद्ध-भिक्षु` के

१-`कबीर ग्रंथावली`, पृ० १५५.
२- वही, पृ० १५६.
३- वही, पृ० १५६.
४-`भारतीय संस्कृति और अहिंसा` - धर्मानन्द कोशाम्बी, पृ० २०६.

नाम से पुकारे जाते थे । यहाँ हम समता का आदर्श देख सकते हैं । कबीरदास जी भी समता के अवलंबी थे । समता के समर्थक कबीरदास जी ने तो सबको एक ही ज्योति से उत्पन्न माना है । उनके लिए न कोई मुसलमान है, न कोई हिन्दू, सब उनके लिए मनुष्य जाति के थे । एक ही पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य तथा महादेव मुहम्मद ब्रह्मा और आदम में उन्होंने कोई भी भिन्नता नहीं देखी । कबीर के समय, तो समाज उन्नत कुल वाले को ही श्रेय प्रदान करता था । मगर पंचतत्व से युक्त हमारा शरीर निर्मित करने वाला कुंभकार एक ही है तो फिर जन्म के आधार पर ये भेद कैसे ? इसलिए तत्कालीन समाज के ठेकेदार ब्राह्मणों से कबीर दास जी ने पूछा --

`जो तुम बाह्मन बाम्हनि जाए ।
और राह तुम काहे न आए ।।`[१]

ब्राह्मणों की छुआछूत की भावना के वे कट्टर विरोधी थे । उस समय छुआ-छूत की यह भावना इतनी ऊँचे पैमाने की थी कि शूद्रों की छाया तक पड़ने पर ब्राह्मण अपने को भ्रष्ट मानते थे । एक स्थान पर उन्होंने ब्राह्मणों से खुलकर इस प्रकार पूछा था --

`काहे कों कीजै पाँडे छोति विचारा ।
छोतिहि तें उपना संसारा ।
हमारे कैसें लोहू तुम्हारे कैसे दूध ।
तुम्ह कैसे ब्राह्मण पाँडे हम कैसें सूद ।
छोति छोति करत तुम्हही जाए ।
तो ग्रभवास कहें कों आए ।`[२]

१- `कबीर-वचनावली`,-`हरि औध`, पृ० २०८.

२-`कबीर ग्रंथावली, पृ० ७९.

। कबीर की अनेक पंक्तियाँ हैं जिनका सारांश यही है कि एक ज्योति से ही सब पन्न है, इनमें कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र नहीं है, उत्पन्न होते हुए भी सभी माँ पेट से ही बाहर आते हैं, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र ।

जाति-विरोधी महात्मा बुद्ध ने भी जाति की अपेक्षा आचरण पर ध्यान देने उपदेश ही दिया था, उसी प्रकार कबीरदास जी ने भी कहा,

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान ।।"[१]

जाति भेद को न मानने वाले भगवान बुद्ध ने सुत्तनिपात में कहा गया है --

"चाण्डाल सोपाक, सद्व्यवहार के कारण मातंग नाम से प्रसिद्ध कृषि गया, इसमें क्या बिगड़ा है ?"[२]

सिद्ध और नाथों के समय में उनको केवल वर्गगत भेद मिटाकर समता को स्था-त करने का प्रयास करना पड़ा था । लेकिन कबीर के समय में आते-आते हम और भी कष्टमय परिस्थिति को देखते हैं -- हिन्दू-मुसलमानों में संघर्ष । कबीरदास जी को का भी हल करना पड़ा था । उन्होंने दोनों धर्मावलंबियों की आपसी फूट और भाव को खुलकर निन्दा की और उसे मिटाने का सफल प्रयास किया । दोनों धर्मावलंबी पस के दोषों को देखते थे, न कि अपने-अपने दोष को । कबीर ने तो निष्पक्ष रूप दोनों के दोषों को देखा और दोनों में आत्मीयता स्थापित करने का प्रयत्न किया ।

"कबीर वचनावली",- हरिऔध, पृ० १२२.

" न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
कम्मुना वसलो होति कम्मुना होति ब्राह्मणो ।।
तदहमिनापि जानाथ यथा मेदं निदस्सनं ।
चण्डालपुत्तो सोपाको मातंगो इति विस्सुतो ।।
सो यसं परमं पत्तो मातंगो यं सुदुल्लभं ।
आगच्छुं तस्सु पट्ठानं खत्तिया ब्राह्मणा बहू ।।"
-- "हिन्दी संत साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव -डा० विद्यावति मालविका, पृ०१५२

उन्होंने एक ओर हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा व पत्थर-पूजा, सिर-मुंडन आदि पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया, तो दूसरी ओर मुसलमानों की भी खिल्ली उड़ाई । इस प्रकार उन्होंने कहा --

"मूंड मुड़ाए हरि मिलें सब कोई लेहि मुंडाय ।
बार-बार के मूंडने भेड़ न बैकुंठ जाय ।"[1]

- - -

"मुल्ला बंग देह सुर जानी, आप मुसला बैठा तानी ।"[2]

बाह्याडंबर

भगवान बुद्ध ने पूजा-पाठ आदि का विरोध किया था । उनके अनुसार जो अच्छा आचरण करता है, उसी का जीवन सार्थक बन जाता है । भय के कारण ही लोग प्राकृतिक वस्तुओं की पूजा करते हैं । लेकिन यह शरण तो कल्याणकारी नहीं है । दु:ख से छुटकारा पाने का यह तो माध्यम नहीं है । कबीर ने भी इसी आदर्श को अपनाया है । मन्दिर में जाकर भगवान की मूर्ति के सामने बैठकर घंटों तक पूजा मेंलीन होने वाले बाह्याडंबरी तथा पाखण्डियों की भर्त्सना उन्होंने की है । कर्मकाण्डी तथा योगियों की भी उन्होंने निन्दा की है --

"ना मैं देवल ना मैं मसजिद, न काबे कैलास में ।
ना तो कौनो क्रिया कर्म में नहीं जोग बैराग में ।
खोजी होय तुरते मिलिहौं, पल भर की तलास में ।"[3]

१- कबीर वचनावली -'हरिऔध', पृ० १२४.
२- कबीर-ग्रंथावली-'सटीक' - प्रो० पुष्पपाल सिंह, पृ० ५३०.
३- कबीर वचनावली -'हरिऔध', पृ० १८०.

न्य साधकों की भाँति कबीरदास जी का भी परमलक्ष्य था परमतत्व से साक्षात्कार। किन उन्होंने स्वानुभूति को मुख्यता दी। ज्ञानविहीन लोग प्रामाणिक ग्रंथों की शरण जाकर परमतत्व को जानने की कोशिश करते हैं। यहाँ कबीरदास जी तो कहते हैं, यह रमतत्व तो अनुभव से जानने योग्य है। अपनी 'आध्यात्मिक यात्रा में उन्होंने किसी पोथी' को अपने संबल के रूप में स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे जिस चरम-सत्य को मझने का प्रयास कर रहे थे, वह पुस्तकी ज्ञान की सीमित परिधि में नहीं आ सकता, त: इसके लिए कबीर ने अनुभूति को आधार बनाया और एतद्विषयक अनुभूति की थासाध्य अभिव्यक्ति करने का भी उन्होंने प्रयास किया ..... यही कारण है। बीर ने परमतत्व की जो अनुभूति की थी, उसका ज्ञान उनकी रचनाओं के आधार पर र्ण रूप से नहीं प्राप्त किया जा सकता कि वहाँ पर उस अनुभूत सत्य का आभास अवश्य ाया जा सकता है।'[१]

इतना ही नहीं, 'चारों वेदों के मतों का निर्णय करते करते संसार धोखे में पड़ ता है और श्रुति-स्मृति पर की गई आस्था उन्हें बंधन में डाल देती है।'[२] बौद्धों समान बुद्धिवादी होने के कारण ही कबीर ने ग्रंथों के अन्धानुकरण करने वालों पर यंग्य किया था। ऐसे रोज़ानमाज़ पढ़ने वाले पाखंडी मुल्लों तथा लोक और वेद के न्धानुकरण करने वालों पर कबीर व्यंग्य ही नहीं घृणा भी करते थे। उनको इस कार उन्होंने फटकारा है --

'पाछे लागा जादू था लोक वेद के साथि।
पैंडे में सतगुरु मिला, दीपक दीया हाथि।'[३]

- कबीर और कबीर पंथ - डा० केदारनाथ द्विवेदी, पृ० ६५.
- कबीर साहित्य की परख - परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४६.
- कबीर ग्रंथावली, पृ० १३७.

अनात्मवाद

कहीं-कहीं महात्मबुद्ध ने आत्मशब्द को कई अर्थों में उपयुक्त किया है । वह अहंकार के लिए आता है । कहीं कहीं बुद्ध ने भी अपने आपको ढूंढने का भी उपदेश दिय है । इसका हम उदाहरण संत कबीर में देख सकते हैं । उनका कहना है --

"पूज्या देव बहुरि नहि पूजौं न्हाये उदिल न नाऊं ।
मागा प्रम ये कही कहंता, आये बहुरि न आऊं ।।
आपै में तब आपा निरख्या, अपन में आपा सूझ्या ।
आपै कहत सुनत पुनि अपना, अपन में आया बूझ्या ।।
अपनें परचै लागि तारी, अपन पेखाप समांनां ।
कहे कबीर जे आप विचारै, मिठि गया आवन जांनां ।।"[१]

क्षणिकता

बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का मूलमंत्र है क्षणिकता । मिट्टी के घड़े के समान भगवानबुद्ध ने शरीर को अनित्य माना है । उसे पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर माना है । इसी तत्व को कबीरदास जी ने भी अपनी वाणी से सजाया है । वे भी शरीर को मिट्टी का बनाया हुआ मानते हैं और कहते हैं --

"यहु तन कांचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि ।
ढकका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि ।।"[२]

इस क्षणिक संसार के राग और मोह को भगवान बुद्ध ने सर्वनाश की आग समझा था और कबीर ने भी देखा कि उस राग तथा मोह की अग्नि में संसार जल रहा है । कवि का कहना है --

---

१-'कबीर-बानी',- डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ४१-४२.

२- कबीरग्रंथावली', पृ० १६३.

"देखहु यह तन जरता है, घडी पहर विलंबी रे भाई जरता है ।
काहें कौं रता किया पसारा, यहु तन जरि बरि ह्वै है छारा ।
नव तन द्वादस लागी आगी, मुग्ध न चेतै नलसिख जागी ।
काम क्रोध घट मरे विकारा, आपहि आप जरै संसारा ।।"[१]

आर्यसत्यों की भावना

पूजाविधियों और बाह्याडंबरों के माध्यम से ईश्वर की खोज करके दु:ख के उस पार पहुँचने का प्रयत्न करना व्यर्थ है । बुद्धदेव का कहना है कि जीवन का मूल उ है दु:ख । "समस्त सन्त-दर्शन दु:खवाद में इतना ही अटूट विश्वास रखता है और कबी के दु:ख के रूप वे ही हैं, जो गौतम के थे ।"[२] जिस प्रकार गौतम बुद्ध ने दु:ख को देखा था, उसी प्रकार कबीर ने भी दु:ख को देखा । बुद्धदेव ने इस दु:ख को दूर करने के लि आर्य-सत्यों का मार्ग बता दिया । ये आर्यसत्य चार हैं और जिनका लक्ष्य है 'दु:ख न निरोध' । इन आर्यसत्यों के बारे में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है । संसार को 'दु:ख का आलय' बताने वाले बुद्ध ने दु:ख के मूल में तृष्णा को स्थान दिया और उसे उखाड़कर फेंक देने का अद्भुत आह्वान किया है । कबीरदास जी ने भी दुनियाँ को दु:ख का घर बताया उन्होंने इस प्रकार कहा --

"दुनियाँ माँडा दु:ख का, मरी मुहांमुह मूष,
अदया अलह राम की, कुरहे अंणीं कूष ।।"[३]

दु:ख का मूलभूत कारण है तृष्णा । इस तृष्णा की कबीर ने खूब भर्त्सना की है । क्योंकि यह तृष्णा, माया बनकर आती है और व्यक्ति को कर्म के फंदे में डालती है उस माया व तृष्णा के बारे में कबीरदास जी ने कई पंक्तियाँ लिखी हैं । उन्होंने उस तृष्णा को डाकिनी बताया है ।जीवन का काल या नाश भी यही तृष्णा है । कबी

१- कबीर ग्रंथावली, पृ० ९१.
२-'कबीर' (सं०) विजयेन्द्र स्नातक, पृ० २२५.
३-'कबीर-ग्रंथावली' सटीक, प्रो० पुष्पपाल सिंह, पृ० १४५.

जी कहते हैं --

"की त्रिस्ना है डाकिनी की जीवन का काल ।
और और निसदिन चहे जीवन करै विहाल ।।"[१]

\- - -

कबिरा माया मोहनी मोहे जान सुजान ।
मागे हूं छूटे नहीं मरि-मरि मारैं बान ।।[२]

इस तृष्णा को विनष्ट करने के लिए हरिभक्तिरूपी दवा का सेवन करने के लिए कबीर-दास जी कहते हैं । केवल हरिभक्ति से ही मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है । उस हरि-भक्ति के बारे में कबीर दास जी कहते हैं --

"अंध मया सब डोलई यह नहिं करै विचार ।
हरिभक्ति जाने बिना बूडि मुआ संसार ।।"[३]

हम देख सकते हैं कि कबीरदास जी ने प्रत्यक्षत: आर्य-सत्यों का नाम ही नहीं लिया है । लेकिन अप्रत्यक्षत: उन्होंने इनका अनुकरण भी किया है और उल्लेख भी किया है ।

कार्य-करण शृंखला के सिद्धान्त की ओर संकेत करते समय भगवान बुद्ध ने दु:ख के मूल में प्रवृत्त होने वाली उसी तृष्णा के बारे में कहा था । उस तृष्णा की कबीर दास जी ने भी खूब खिल्ली उड़ाई है । उन्होंने उस पापिनी तृष्णा से बैर करने का ही उपदेश दिया है । अग्नि-सदृश वह तृष्णा क्षण में सारे विश्व को भस्म कर डालती है "वह तृष्णा शरीर के नष्ट होने पर भी जीवित रहती है ।"[४]

१- "कबीर वचनावली" - "हरिबोध", पृ० १३८.

२- वही, पृ० १४०.

३- वही, पृ० १०२.

४- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव - सरला त्रिगुणायत, पृ० ६१.

यह तृष्णा, जो लोभ और राग से युक्त है, और पुनर्जन्म का कारण होती है। विश्वव्यापी उस तृष्णा का स्वरूप कबीरदास जी इस प्रकार देखते हैं --

"जो देखा सो दुखिया देखा तनु धरि सुखी न देखा।
उदय अस्त की बात कहत हौं ताकर करहु विवेका।।
बाटे बाटे सब कोइ दुखिया क्या गिरही बैरागी।
शुकाचार्य दुःख ही के कारन गरभै माया त्यागी।।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया तापस को दुख दूना।
आशा तृष्णा सब घट व्यापै कोई महल नहिं सूना।।
सांच कहो तो सब जग खीझै झूठ कह्यो नहिं जाई।
कह कबीर तेई में दुखिया जिन यह राह चलाई।"[1]

यहां तो भवतृष्णा का रूप अंकित किया गया है। कामतृष्णा तो कामिनी और कनक से ही उत्पन्न होती है। इन दोनों के कारण भव का बंधन दृढ़ होता है। कामिनी और कनक दोनों बहुत ही विपत्तिजनक है। इनसे बचते रहने का कवि का उपदेश देखने लायक है --

"चलौं चलौं सब कोइ कहै पहुंचै बिरला कोय।
एक कनक औ कामिनी दुरगम घाटी दोय।।
- - -
कनक कामिनी देखि कै तू मति भूल सुरंग।
बिछुरत मिलत दुलेहरा केंचुकि तजै भुजंग।।"[2]

दुःख के कारण को समझने के बाद हम ऐसा एक मार्ग खोजते हैं, जिससे होकर हम आगे बढ़ सकें। इस प्रकार तृष्णा का शमन करने के लिए का जो मार्ग है, उसे गौतम ने

१-'कबीर वचनावली',-'हरिऔध', पृ० २४५-२४६.

२- वही, पृ० १४१.

मध्यमप्रतिपदा` की संज्ञा दी है ।` यह जो कामोपभोग का हीन, अनार्य अनर्थकर जीव है और यह जो अपने शरीर को व्यर्थ क्लेश देने का दु:खमय अनार्य अनर्थकर, जीवन है, इन दोनों किनारों से बचकर मध्यम-मार्ग प्राप्त होता है जो शमन के लिए, बोध के ! निर्वाण के लिए है ।`[१] यही मध्यम प्रतिपदा है ।

यह मध्यमप्रतिपदा ही बौद्धधर्म की सबसे श्रेष्ठ-प्राप्ति है । जीवन के सारे सुखभोगों का कुमार सिद्धार्थ ने अनुभव किया था । इसी तरह क्लेशमय तप को भी उन्ह अपनाया था । इससे उनको `बोध` प्राप्त हुआ था कि `अतियों` का सेवन करना व्यर्थ है इसलिए उन्होंने `अति सर्वत्र वर्जयेत्` उपदेश का अनुकरण किया । इस `अति` के बारे में कबीर दास जी का कहना है --

`अति का भला न बोलना अति का भला न चूप ।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ।।`[२]

दु:ख-निरोध तक पहुँचने के लिए तथागत ने जिस मध्यममार्ग का उपदेश दिया था, उसके बारे में कबीरदास जी का कहना है --

`मजूं तो को है भजन को, तजूं तो को है आन ।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन-मान ।।`[३]

इन मूल तत्वों के अतिरिक्त कबीरदास जी के निर्गुणावाद उनकी उलटबां सहजसमाधि, हठयोग, सुरतिनिरति शबद आदि पर भी परोक्ष रूप से बौद्धधर्म का ! देख सकते हैं ।

बौद्धधर्म शून्यवाद को मानता है । इसी भावना को सिद्धनाथों ने भी अप और उसी प्रभाव से कबीरदास जी ने भी परमतत्व को शून्य, निर्गुण सगुण से परे स्वरूप से रहित माना । महात्मा कबीर दास जी की वाणियों में भी हम उलटब

१-`कबीर` - सं० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० २२७.
२-`कबीरवचनावली` -`हरिऔध`, पृ० ११७.
३- वही

का प्रयोग देख सकते हैं । सिद्ध सरहपा के शब्दों में भी यही प्रभाव देखने को मिलता[१] है यही कबीर पर भी प्रभावित है । सहज समाधि के बारे में तो कबीरदास जी का कह है --

"सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हे कोइ ।
जिन्ह सहजे हरि जो मिले, सहज कही वे सोइ ।।"[२]

अर्थात् सहज-योग से सहज भगवान को मिलना ही उत्तम है । सहजयोग 'रामनाम' की आवश्यकता मानता है । "उसमें हठ या क्लेशपूर्वक अस्वाभाविक रूप से विषयों का अत्यन्त त्याग नहीं करना पड़ता । सांसारिक कर्मों को करते हुए भी उसकी साधना की जा सकती है । जैसे कुंज(क्रौंच) पक्षी के मन में चारा चुगते समय भी अपने बच्चे के लिए ममता जागती रहती है और वह रह-रहकर चारा छोड़ उसकी ओर देखने लग है, उसी प्रकार राम का भक्त सांसारिक विषयों का उपभोग करते हुए भी राम को नहीं भूलता, उसका मन बराबर उन्हीं में लगा रहता है ।"[३] इस प्रकार विषयवासना बाह्याडंबर आदि के त्यागने पर जो सहज आनन्द प्राप्त हो जाता है उसके बारे में कबीर दास जी ने इस प्रकार कहा है --

"जो कछु आवे सहज में, सोई मीठा जान ।
कड़ुवा लागै नीम-सा जामें ऐंचातान ।।
सहज मिले सो दूध सम मांगा मिले सो पानि ।
कहै 'कबीर' वह रक्त सम जामें ऐंचातानि ।।"[४]

१- दोहाकोश, पृ० ७.
२- कबीरवचनावली - 'हरिऔध', पृ० ११५.
३- कबीर साहित्य का अध्ययन - पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव, पृ० १४०.
४- कबीरवचनावली - हरिऔध', पृ० ११५.

सरहपा भी इसी सहजसमाधि के बारे में दोहाकोश में बताते हैं ।[१]

हठयोग

कबीर के समय नाथ-पंथी योगी हठयोग-साधना पर बहुत बल देते थे । कबीर पर भी इसका प्रभाव देखने को मिलता है । ये हठयोगी अनाहत नाद, और ब्रह्मानंद की अनुभूति पर ज़ोर देते थे ।

निर्वाण

निर्वाण को महात्मा बुद्ध की तरह कबीरदास जी भी मानते हैं । वे इस अवस्था को अनुभव की अवस्था मानते हैं और कहते हैं --

आतम अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात ।
सो गूंगा गुड खाइ के कहे कौन मुख स्वाद ।।[२]

इसी जीवन में निर्वाण-प्राप्ति होने की बात कबीरदास जी भी करते हैं । ऐसा यह निर्वाण जो सुख और शान्ति की अवस्था है, वास्तव में सभी पापों को विनष्ट कर देता है । क्योंकि जब निर्वाणानुभूति हुई तो समस्त पाप स्वयमेव नष्ट हो गये और परमसुख की प्राप्ति हो गयी । उस सुख से हृदयय आप्लावित हो गया । जब इस निर्वाण की अनुभूति होती है तो सब कामक्रोध-मदादि त्रिविध ताप शान्त होते हैं । कबीरदास जी का कहना है --

`तन भीतरि मन मानियां, बाहरि कहा न जाइ ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ।।`[३]

१- दोहाकोश, पृ० ४५.

२- कबीरवनावली -`हरिऔध', पृ० १००.

३- कबीर ग्रंथावली सटीक -`प्रो पुष्पपाल सिंह, पृ० ११५.

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अलावा कबीरदास जी ने हंस,[१] शील,[२] चित्त[३] कनक-कामिनी[४] आदि शब्दों का जो प्रयोग किया, वे शब्द बौद्धग्रंथों में भी देखने को मिलते हैं

इस प्रकार दोनों बौद्धमत और संतमत समानताओं को लिये हुए हैं। दोनों का पहला आर्यसत्य है दु:ख, केवल थोड़े अन्तर के साथ। बौद्धधर्म तो किसी अज्ञात शक्ति की सहायता से दु:ख का तरण करना नहीं चाहते। किन्तु संतों ने, विशेष तौर पर कबीर ने तो इस अनिर्वचनीय शक्ति के रूप में सद्गुरु को देखा और उन पर सब कुछ अर्पण कर दिया। यही संतों का लक्ष्य रहा। 'गौतम की उपलब्धि 'बोध' है, समर्पण नहीं। ..... बुद्ध का मार्ग बुद्धिवादी है, विश्वासी मात्र नहीं।'[५] संक्षेप में, बुद्ध की शिक्षा का सार धम्मपद में इस प्रकार दी गयी है --'अशुभ कर्मों का न करना, शुभ कर्मों का करना, और चित्त को संयम में रखना -- यही बुद्धों की शिक्षा है।'[६] इसी से कबीर के विचार भी अवश्य मेल खाते हैं।

४- मध्यकालीन धार्मिक स्थिति और कबीर के समसामयिक संत

मध्यकालीन उत्तरभारत की धार्मिक दशा बहुत ही संकटापन्न थी। यवनों के जैसे विदेशों के आक्रमणों के क्रूर थपेड़ों को सहता हुआ वह निर्जीव-सा पड़ा हुआ था। इसके अतिरिक्त भारत के अन्तर्गत जो आपसी फूट और वैर की चिनगारी कायम थी, उसके कारण भी भारत क्षीणकाय बन चुका था। मुसलमान शासकों का अन्यायपूर्ण शासन और अनीतिपूर्ण व्यवहार से भी हिन्दुओं की धार्मिक व्यवस्था और कुलमर्यादा तक निराशापूर्ण बन गयी थी। इसी समय ऐसे कुछ समर्थ संतों का उद्भव हुआ जो भारतीय जन-जीवन में सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना जागृत कर सके, एवं शासकों के अत्याचार अन्याय तथा विद्वेष का विरोध कर सके। उन्हीं के बल पर धर्म का प्रासाद सारी संकटावों को सहता हुआ खड़ा रह गया।

१- कबीर ग्रंथावली 'सटीक,- प्रो० पुष्पपाल सिंह, पृ० ४७८.
२-३-४. वही, पृ० १५३, पृ० ६३, पृ० १८१.
५-६. 'कबीर' - सं० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० २३०.

कबीरदास जी के समसामयिक संतों में सेननाई, स्वामी रामानन्द, राघव पीपा, रैदास, धन्ना, मीराबाई, माली-रानी और कमाल मुख्य हैं।[1] इनके अतिरिक्त और भी संत हुए, मगर वे ज्यादा प्रकाश बिखेर न सके। इन पर भी बौद्धधर्म परोक्ष रूप से प्रभाव देखने को मिलता है। "कबीर के समसामयिक इन संतों के सिद्ध भी बहुत-कुछ कबीर के समान ही हैं।"[2]

५- संत परम्परा

जो जो महान् संत हुए, उनके क्रमशः असंख्य शिष्यगण हुए। थोड़े ही दिन में इन शिष्यों में सांप्रदायिकता की भावना जागरूक हुई। अपने गुरुओं की विशेष और साधना पद्धति के अनुसार उन्होंने अलग-अलग संप्रदाय स्थापित किये। सब निर्गुण के प्रवर्तक थे। विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवर्तक होने पर भी, सभी की मूल-भावना में ए थी। इन संप्रदायों में साधसंप्रदाय, लालदास का संप्रदाय, दादू दयाल का संप्रदाय, निरंजनी संप्रदाय, बावरी साहिबा का पंथ, मलूकदास का धर्म, बाबालाली संप्रदाय, प्रणामी संप्रदाय, जगजीवन साहिबा की शिष्य-परम्परा, धरनीश्वरी-संप्रदाय, दरिदासी संप्रदाय, चरणदासी संप्रदाय, गरीबदासी संप्रदाय, पानव संप्रदाय, रामसनेही सम्प्रदाय आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त इस समय संत जम्भनाथ, शेख फरीद, संत सिंगाजी, संत मीरन, दीन दरवेश, बुल्लेशाह, बाबा किन्नाराय, जैसे कई फुटकर संत का भी प्रादुर्भाव हुआ। ये सारे संप्रदाय वाले कबीरदास जी के समान निर्वाण, अनिर्गुण सत्यनाम, अलख, निरंजन, घट-घट व्यापी परमात्मा, पुण्यपाप, स्वर्ग-नरक को मानने वाले तथा बाह्य-कर्म-काण्ड, तीर्थव्रत ग्रंथ-प्रमाण आदि के विरोधी थे।

इसके उपरान्त मध्यकाल के अन्य तीनों शाखों -- प्रेमाश्रयी शाखा, रामाश्रय शाखा और कृष्णाश्रयी शाखा के कवियों पर प्राप्त बौद्ध-तत्वों के प्रभाव को संक्षिप्त रूप में नीचे दिया जाता है।

१- हिन्दी संत साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव - डा० विद्यावति मालविका, पृ० २

६- मध्यकाल के अन्य तीनों शाखों के प्रतिनिधि कवियों पर बौद्ध प्रभाव

प्रतीत्यसमुत्पाद वाद

यह प्रतीत्यसमुत्पादवाद बौद्धधर्म के दर्शन का दृढ़ आधार है । यही 'कार्य-कारण-सिद्धान्त' भी है । विश्व की सारी वस्तुएँ इसी सिद्धान्त के आधार पर गतिशील है । जगत के मूल में प्रवृत्त होने वाले दु:ख के कारण को ढूँढ निकालने के लिए ही भगवान बुद्ध ने इस वाद का अनुकरण किया था । उन्होंने सफल प्रयत्नों के द्वारा दु:ख का मूल कारण तृष्णा या अविधा के अस्तित्व पर भी प्रकाश डाला । इस सिद्धान्त का प्रभाव हमें भक्तिकाल के कवियों पर प्रत्यक्षत: नहीं प्राप्त होता, तो भी परोक्षरूप से इसका प्रभाव प्रत्येक कवि पर देखने का मिलता है । उदाहरण के लिए सूफियों में प्रमुख जायसी ने अपना ग्रंथ 'पद्मावत' में तृष्णा को समस्त दु:खों का कारण बताया । इसी तृष्णा या काम-क्रोध-लोभादि के कारण ही लोग भवबंधन में पड़े हैं, यही उनका कहना है ।[१] उन्होंने क्षणिकता पर भी बल दिया है । क्षणिकता के बारे में जायसी का कहना है कि जब तक लोग क्षणिकता के बारे में अनजान रहते हैं, तब तक वे तृष्णा में पड़े रहते हैं । जब उसे क्षणिकता या नश्वर जगत का ज्ञान प्राप्त होता है तो वह तृष्णा को छोड़ता है और जगत को असार मानता है ।[२]

तुलसीदास जी पर यह सिद्धान्त एक और ही रूप में दिखाई पड़ता है । तुलसीदास जी ने अविधा और तृष्णा के बदले में दु:ख के कारण के रूप में मोह को लिया है । मानस-रोगों का उल्लेख करने में कवि कार्य-कारण सिद्धान्त के माध्यम से मोह को समस्त व्याधियों का मूल मानते हैं । इन कामक्रोध-मोह आदि चित्तमलों को नष्ट करने के लिए श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति करना उन्होंने अनिवार्य माना है । क्योंकि

१-'जायसी-ग्रंथावली' - रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५४.

२- वही,

सूर्य के समान प्रखर तेज वाले श्रीरामचन्द्र जी के उदय से ये बुरी-वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। यहाँ तो सगुण धारा की विशेषता देखने को मिलती है। जहाँ नास्तिक धारा में ईश्वर पर विश्वास नहीं रखते वहाँ तुलसीदास भी श्रीरामचन्द्र के उदय मात्र से अविद्या का नाश मानते हैं। दोनों का लक्ष्य एक ही है, लेकिन लक्ष्य तक पहुँचने के मार्ग विभिन्न हैं। तुलसीदास जी का कहना है --

"जिन्हहि शोक ते कहउं बखानी। प्रथम अविद्यनिसा नसानी॥
अघ उलूक जहां तहां लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने॥"[१]

अर्थात् काम क्रोध मदादि चित्तमलों को पापरूपी उल्लू मान लिये गये हैं, जो सूर्य के उदय से अंधे बन जाते हैं। ऐसे मोह के वश पड़ने वाला व्यक्ति अपने तथा औरों के सुख-संतोष का भी नाश करता है। इसी का उल्लेख यहाँ मिलता है --

"मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं। आपु गये अरु घालहिं-आनहिं॥
करहिं मोहबस द्रोह परावा। संत-संग हरिकथा न भावा॥"[२]

ये मोहाधीन जीव तो नाना प्रकार के पाप करके स्वार्थी बन जाते हैं। इस पर तुलसीदास जी का कहना है --

"नर सरीर धरि जे परपीरा। करहिं ते सहहिं महा-भव-भीरा।
करहिं मोहबस नर अघनाना। स्वारथरत परलोक नसाना॥"[३]

कृष्ण भक्त कवि सूरदास जी ने भी भवचक्र के मूल में तृष्णा को माना और निर्वाण-प्राप्ति के लिए इस तृष्णा का निराकरण अनिवार्य बताया है। इस भवचक्र में व्यक्ति के आकर फंस जाने के बारे में सूरदास जी का कहना है --

"जब जब प्रकट भयो जल थल में तब तब बहु वपु धारे।
काम-क्रोध-मद-लोभ मोह-बस, अतिहिं किए अब भारे।"[४]

१- रामचरितमानस, पृ० १६०७.
२- वही, पृ० १०१५.
३- वही, पृ० १०१६.

इन दुष्वृत्तियों के कारण ही मनुष्य पाप करता है और भवचक्र में फंस जाता है । भव की तृष्णा के कारण हमें असंख्य कष्टों और दुःखों का अनुभव करना पड़ता है । सूरदास जी का कहना है --

"इहिं संसार अपार विरत ह्वै, जम की त्रास न सहिये ।।
दुःख सुख कीरति भाग आपनें आर परै सो गहिये ।

अर्थात् "इस अपार संसार से विरक्त होकर रहो ताकि यम का त्रास न सहना पड़े । दुःख सुख और यश जो अपने भाग में आ पड़े उसे ले लेना चाहिए ।"[१]

परमतत्व

नास्तिक भगवान बुद्ध ने किसी भी सत्ता का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया था । क्योंकि उन्होंने आत्मवाद का खण्डन किया था । तो भी उन्होंने अहंकार मूलक आत्मवाद का खंडन ही किया था । अहंकार का विनाश करने मात्र से ही हम अपनी लक्ष्य-प्राप्ति में सफल हो सकते हैं । इस परमतत्व के बारे में बुद्ध तो मौन थे । उन्होंने कहा था कि यदि मनुष्य आत्मा, जीव, ब्रह्म आदि के अनावश्यक प्रश्नों में उलझ जाय तो इस छोटे से जीवन में भव रोगों का इलाज करना असंभव हो जाता है । यही सोच-कर उन्होंने केवल व्याकृत-दुःखादि चार आर्यसत्यों का -- प्रश्नों पर ही विचार किया था । महात्मा बुद्ध के इस मौनावलंबन के बारे में अनेक समीक्षाएँ और आलोचनाएँ आयी हैं ।

सूफी काव्यधारा में भी हम बहुत कम मात्रा में ही बौद्धों के मौनावलंबन का प्रभाव देख सकते हैं । क्योंकि उसकी उपासना साकार और सगुण साधना को लेकर ही चली हैं । तो भी एक-दो उदाहरण हमें इस परमतत्व के बारे में सुनने को मिलते है । जायसी का परमतत्व के बारे में कथन है --

---

१-"सूरसागर - सटीक" -- सं० डा० हरदेव बाहरी, डा० राजेन्द्र कुमार, भाग-१,पृ० ६

" है नाहीं कोई नाकर रूपा । ना ओहि सन कोई आहि अनूपा ।
ना ओहि ठाऊं, न ओहि बिनठाऊं । रूपरेख बिनु निरमल नाऊं ।
ना वह मिला न बेहरा, ऐस रहा भरि पूरि ।
दीठिवंत कहं नीचरे, अन्ध मूरुखहि दूरि ।।[१]

रामकाव्य और कृष्णकाव्य बौद्धों के परमतत्व की अनिवार्यता और मौनवाद का स्वीकार ही नहीं करते । क्योंकि वे सगुणोपासक रहे । इसलिए उनके काव्य में इसके लिए बड़ी मात्रा में गहराई से खोज करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

निर्वाण

बौद्धधर्म का परम-लक्ष्य निर्वाण है । इसका प्रभाव मध्ययुगीन-साहित्य पर भी देखने को मिलता है । सूफी कवियों ने इसी जीवन में निर्वाण की प्राप्ति का उल्लेख किया है । निर्वाण के बारे में सूफी कवियों की धारणा है --

"साधक घोर साधना करके सातवें समुद्र में अथवा साधना की अन्तिम पराकाष्ठा पर आ पहुँचे । ..... मानसरोवर रूपी साध्य का सौन्दर्य साधक को यहीं पर अनुभव होता है । साधक और साध्य का यह साक्षात्कार उल्लास के रूप में विकसित होकर सृष्टि के कण-कण में फैल जाता है । अज्ञान-जनित अंधकार दूर हो जाता है । ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है । उस समय साधक की दुविधा मिट जाती है और निर्वाण की ठोस अनुभूति होने लगती है । .... उस समय साधक का रोम-रोम उसी प्रकार उल्लसित हो जाता है जिस प्रकार कमल खिल जाता है ।"[२] लेकिन सूफी-लोग इह-लोक में निर्वाण की प्राप्ति नहीं मानते ।[३] रामकाव्य और कृष्णकाव्य के कवियों पर बौद्धधर्म की निर्वाण सम्बन्धी छाप दृष्टिगोचर नहीं होती । क्योंकि वे श्रोतदर्शन के समर्थक है । इसके अनुसार

१- जायसी ग्रंथावली - रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३.
२- मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रभाव - सरला त्रिगुणायत, पृ० १३६.
३- वही, पृ० १४०.

परलोक-गमन की अवस्था ही मुक्ति है ।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के निर्माण में बौद्धधर्म ने इस प्रकार सक्रिय योगदान दिया है । वस्तुतः, अगर बौद्धधर्म ने उस समय मध्यकालीन साहित्य को ऐसे प्रेरणात्मक योगदान से वंचित रखा होता, तो उसका स्वरूप इतना प्रसर नहीं होता ।

पंचम अध्याय

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रबन्धकाव्यों में बौद्धतत्व

हिन्दी साहित्य पूर्व संस्कृति से सदैव अनुबद्ध ही रहा । वैदिक संस्कृति के बाद बौद्ध-धर्म से उत्पन्न नवीन चेतना जो साहित्य की वृद्धि के लिए अनुकूल रही, वह युग-युगों से भारत की विभिन्न भाषाओं को प्रेरणा देती रही । आधुनिक हिन्दी-काव्यों को देखते समय यही हम अनुभव करते हैं कि कतिपय काव्य बुद्धदेव के जीवन-चरित के सम्यक्-वर्णन के लिए लिखे गये हैं और कुछ एक उनके सिद्धान्तों का सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत करते हैं । बुद्धदेव का जीवन-चरित प्रबन्धकाव्य के लिए अवश्य उचित कथ्य प्रदान करता है । `बुद्धचरित` जैसे काव्य यद्यपि अनूदित हैं, तो भी बुद्धदेव के जीवन के सांगो-पांग वर्णन के लिए यह विरचित है । इसी तरह `सिद्धार्थ` जैसा प्रबन्ध-काव्य भी चरितारव्यान की महत्वपूर्ण इकाई है । महाकाव्यों के समान अनेक खण्डकाव्य भी हिन्दी-प्रबन्ध काव्य-क्षेत्र में प्राप्त होते हैं, जिनमें कहीं विस्तार से और कहीं आंशिक रूप में, बुद्धदेव के जीवन के अमूल्य चरितांश प्राप्त होते हैं या उनके मार्मिक और सांस्कृतिक विषयों को अनुप्राणित करने का अवसर प्रदान करते हैं । बुद्धदेव इस प्रकार हजारों वर्षों से भारतीय कवि-मनीषा को संरचना के लिए नये-नये भाव प्रदान करते आये हैं ।

एक प्रकार से गांधीजी का जन्म और उनका चरित बुद्धदेव के विचारों का र्जन्म प्रस्तुत करते हैं । अशोककालीन-भारत में भगवान बुद्ध जैसे पुन: प्राणवान् हुए , उसी तरह गांधी जी ने अहिंसा और सत्य के सिद्धान्तों को मनुष्य-कंगालों तक ुँचाने के लिए बुद्धदेव कीपाद-मुद्रा को ही स्वीकार लिया था । विराट् रूप से बुद्धदेव प्राचीन भारतीय सभ्यता में रूढ़-मूल होकर स्थित अहिंसा-भाव को चरमोत्कर्ष पर ुँचाया था और वह समय को जीतकर भारत-वर्ष के जीवन में आच्छादित रहा । ी अहिंसा को गांधी जी ने अंग्रेजों को बाहर करके भारत को स्वतंत्र बनाने के हथि- ार के रूप में स्वीकार लिया था । इसलिए जब कभी गांधी जी का चरित कवियों काव्य रचना के लिए स्वीकार लिया, तब बुद्धदेवके सिद्धान्तों को वे भूल नहीं पाये । ् प्रकार से दोनों एक-दूसरे के पूरक कहे जाते हैं ।

नीचे हम हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्यों पर विचार कर रहे हैं, जिनमें त्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में भगवान बुद्ध के संबंध में विचार विद्यमान हैं ।

१- महात्मा बुद्ध के जीवनचरित संबंधी काव्य

द्धार्थ

संस्कृत के महाकवि `अश्वघोष के `बुद्धचरित` अंग्रेजी के श्रेष्ठ कवि एडविन र्नल्ड के `लइट आफ एशिया` और कविवर रामचन्द्र शुक्लकी ब्रजभाषा-कृति द्धचरित` की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवि सुश्री अनूपशर्मा का `सिद्धार्थ` बुद्ध ी बोली का एक विशिष्ट प्रबन्धकाव्य है । यह काव्य महाकाव्य के समस्त गुणों संपन्न है । `सिद्धार्थ` के अन्तरंग वैभव को व्यक्त करने के लिए महाकाव्यकार के ने शब्द इस प्रकार हैं --`यह काव्य केवल इसलिए `महाकाव्य` नहीं है कि इसमें ाकृतिक दृश्यों, ऋतुओं आदि का वर्णन है -- जैसा कि हमारे ग्रन्थों में महाकाव्य के ण दिये गये हैं, वरन् इसलिए भी कि इसमें मनुष्य जीवनकी उन सभी घटनाओं का

समावेश है जो उसमें किसी-न-किसी समय आ उपस्थित होती है ।"[१] यह कृति हिन्दी की नियक्लैसिकल कविता में बहुत लोकप्रिय हुई । 'हरिऔध' जी का 'प्रियप्रवास' और गान्धीवाद की अहिंसात्मक नीति ही 'सिद्धार्थ' महाकाव्य के प्रेरणास्रोत थे ।

'सिद्धार्थ' महाकाव्य का आरंभ शाक्य राजा शुद्धोदन की प्रसिद्ध और रम्य कपिलवस्तु-पुरी के वर्णन से किया गया है । उसी पुण्यभूमि में सिद्धार्थ का जन्म हुआ था । गौतम-देव के जन्म के वृतान्त से सभी आनन्दित हुए । कवि का कहना है --

संसार के सुखद, भूतल के विजेता
निर्वाण-शान्ति-प्रद गौतमदेव आये ।[२]

सिद्धार्थ का जन्म लोकहित के लिए था । इसे कवि ने इन पंक्तियों द्वारा व्यक्त किया है --

उत्पन्न है कमल मानव-मानसों का
जो काम-कंटक विहीन सदा रहेगा
नाना प्रदेश-पुर-आगत भृंग-प्रेमी
गन्धोपदेश सुख-धाम प्रकाम लेंगे ।[३]

बाल्यावस्था से ही बालक सिद्धार्थ बहुत ही दयाशील थे । आखेटक देवदत्त के द्वारा आहत किये हुए हंस पर सिद्धार्थ ने अपनी करुणा की वृष्टि की । रक्षक के पक्ष में गौतम के शब्द देखिए --

न स्वत्व है भक्षक का मृगव्य पै,
मराल का रक्षक मैं स्वतन्त्र हूं,
अत: न दूंगा खग देवदत्त को
कहो कि आखेट करे वनान्त में ।[४]

१- सिद्धार्थ - अनूपशर्मा (दो शब्द)
२- वही - पृ० २४.
३- वही - पृ० २६.
४- वही - पृ० ५७.

यह घटना तो उनके भविष्य के महान उद्देश्य की ओर संकेत करने वाली थी । तभी से उनके मन में मनुष्य-संतापित मूक जीवों से भरे हुए इस हिंसामय विश्व से घृणा पैदा हुई । उनके ये विचार जरा, दीन तथा शव के दर्शनमात्र से बहुत पक्के हो गये । सारी सुख संपदा की अपेक्षा उनको अपने ये विचार प्रिय लगे । इस स्वप्नमय विश्व से पलायन प्राप्त करने की लालसा से उनका मन उत्साहित हुआ । तभी उनको जीवन की क्षणिकता का अनुभव हुआ । उनके मुँह से ये शब्द निकले --

क्षणिक जीवन है, यह श्वास-सा
निकलता, हिचकी बस एक है -
अचिर फुल्ल प्रसून सुगन्धि जो
दिवस संग ही छिप जाएगी ।[१]

वे परम शान्ति की प्राप्ति के लिए चिन्तित हो उठे । उनके मन में ये विचार उठे --

समय एक अपार पयोधि है,
युग जहाँ व्यसनोदय-तुल्य है
अति अविश्वसनीय प्रशान्ति में
परम भीषण उग्र अशान्ति में ।[२]

संसार के क्लेशों के बारे में सिद्धार्थ के विचार और भी गहराई से उनके मन में जमते थे ।

अहो, प्राणि कैसे अवनितल पै क्लेश सहते,
दुखी हों, रोगी हों मृत बन पुनः जन्म धरते
सदा भोगों में वे रत रह अधी हाय । बनते
यही क्या भोगों का अथ, इति यही क्या जगत की ?[३]

१-२. सिद्धार्थ - अनूप शर्मा, पृ० १५३.

३- वही - पृ० १५७.

इनके परिणामस्वरूप गौतम ने जो निर्णय किया वह अटल था, दृढ़ था और स्थिर था --

> घरा छोड़ूँगा मैं अनल सनि है जो अनय की
> अभी मैं त्यागूँगा धन-विभव जो हेतु दुख का
> तजूँगा नारी जो विषय तरु की मूल दृढ़ हैं,
> अभी मैं जाऊँगा जगत-हित के हेतु गृह से ।[१]

इस प्रकार कमनीया पत्नी और गर्भस्थ शिशु की परवाह किये बिना अपने उद्दिप्त लक्ष्य की ओर वे निकल पड़े । सारी पृथ्वी उनके वियोग में दुखी हुई ।

काषाय-वस्त्र को अपनाकर गौतम ने श्रमणों का पथ स्वीकार किया । संबोधि-प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध बनकर वे अपनी राजधानी लौटे और खिन्न परिवार वालों को अमृतरूपी उपदेश प्रदान किये । उन्होंने अपने ज्ञान को सर्वलोक-सम्मुख रखा । अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के उपरान्त उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया ।

खड़ीबोली की आधुनिक प्रबन्धकाव्य परंपरा के ऐतिहासिक क्रम को देखते हुए `सिद्धार्थ-काव्य` हरिऔध जी के `प्रियप्रवास` का संस्कार लिए हुए है, यद्यपि वस्तु-व्यंजना एवं विचार-भूमि की दृष्टि से वह पूर्ववर्ती बुद्धचरित विषयक काव्यों की आत्मा को संभाले चला है । आज तक जिन बौद्धग्रन्थों की सृष्टि हुई है, उनमें कोई भी सिद्धार्थ की समता नहीं कर सकता । महाकाव्य का एक-एक सर्ग तो प्राकृतिक दृश्यों के सहज वर्णन से अलंकृत है ।

गुप्त जी के समान अनूपशर्मा ने भी यशोधरा का चरित्र उज्ज्वल बनाने का यथेष्ट प्रयत्न किया है । गुप्त जी के बाद अनूपशर्मा जी ही अन्धकार में पड़ी उपेक्षिता नारी को फिर भी प्रकाश में लाये हैं ।

१- सिद्धार्थ - अनूप शर्मा, पृ० १५७.

लेकिन गुप्त जी की यशोधरा और अनूपशर्मा की यशोधरा में बहुत अन्तर देखने को मिलता है । यशोधरा का परित्याग, अपमान सह लेने की उसकी क्षमता सब कुछ गुप्त जी की यशोधरा की विशेषताएँ हैं । गुप्त जी की यशोधरा एक क्षत्राणी थी, वह अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह जान लेती थी । लेकिन अनूप जी ने यशोधरा के एक अन्य रूप को ही हमारे सामने प्रकट किया है । वह आर्नल्ड की यशोधरा से अधिक मिलती है ।[१]

अनूप जी ने अपनी यशोधरा को रूप सौन्दर्य से लाद दिया है । यह कहना ठीक नहीं कि वह कालिदास की पार्वती के समान है । लेकिन गुप्त जी की यशोधरा कालिदास की पार्वती का स्मरण दिलाती है ।

इतना ही नहीं, अनूपजी ने वियोगिनी अवस्था में रहने वाली यशोधरा में उदात्तगुणों का अधिक समावेश किया है ।

इस प्रकार यह कृति महाकाव्य की परंपरा में उत्कृष्ट तथा संपूर्ण है । अवश्य यह कहा जा सकता है कि इस काव्य-समता हिन्दी में अन्य बौद्धकृति नहीं है । बंगाली काव्य `अमिताभ` भी इसकी तुलना में निम्नस्तरीय है ।

बुद्धचरित

बुद्धदेव के जीवन के आधार पर लिखा हुआ अन्यतम चरितकाव्य है `बुद्धचरित`। द्विवेदी युग में अनुवाद कार्य तूल पकड़े हुए था । फलत: शुक्ल जी की भी रुचि अनुवाद मार्ग से होकर आगे बढ़ी । उन्होंने भी प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि सर एडविन आर्नल्ड का ग्रंथ `लाइट आफ एशिया` का हिन्दी में अनुवाद किया । बहुत सरल शैली में ब्रजभाषा में उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की । प्रकृति के महान आराधक शुक्ल जी ने इसमें जगह-जगह पर प्रकृति के अनुपम दृश्य एवं ग्रामीण जीवन की सुन्दर झाँकियाँ भी प्रस्तुत की हैं ।

१- `गुप्त - अनूप और यशोधरा`- रामखिलावन चौधरी, पृ० ७५.

अपनी इस कृति के बारे में स्वयं शुक्ल जी का कहना है --'भरथरी और गोपीचन्द के जोगी होने के गीत गाकर आज भी कुछ रमते जोगी स्त्रियों को करुणार्द्र करके अपना पेट पालते चले जाते हैं, पर कुमार सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण की सुध दिलाने वाली वाणी कहीं नहीं सुनाई पड़ती है।'[१] इसलिए हमारे अतीत की स्वर्णिम संस्कृति की गौरवगाथा के रूप में उन्होंने इसका चयन किया।

जब बत्तीसों लक्षणों से युक्त शिशु का जन्म हुआ तो राजा शुद्धोधन फूले न समाये। 'सर्वार्थसिद्ध' कुमार को उन्होंने 'सिद्धार्थ' नामकरण किया। ज्योतिषियों के अनुसार --

हो बुद्ध धर्म सिखाय करिहै लोक को उद्धार,
अनुसरण करिहैं जीव जे ते होय है भव पार।
तब ताईं रहिहौं नाहिं, मेरी अवधि गइ नियराय।
तन राखि करिहौं कहा है कृतकृत्य दर्शन पाय ?[२]

शिक्षा के लिए बिठाए हुए बालक सिद्धार्थ असाधारण ज्ञान से युक्त दीख पड़ा। आ चकित होकर--

बोले मुनि, 'तू सकल गुरुन को गुरु जग माहीं।
तू मेरो गुरु, मैं तेरो गुरु निश्चय नाहीं।
वंदत हौं, सर्वज्ञ कुंवर। तेरो पद पावन,
मम चटसारहिं आयो तू केवल दरसावन -
बिनु पोथिन ही सकल तत्व तू आपहि ज्ञानत,
तापै गुरुजन को आदर हूँ पूरो जानत।'[३]

१- बुद्धचरित - रामचन्द्र शुक्ल (वक्तव्य)
२- वही - पृ० ७.
३- वही - पृ० ११.

किशोरावस्था प्राप्त सिद्धार्थ को राजा ने जरा, मरण दु:ख रोग, क्लेश से बहुत दूर रखा । उन्होंने सिद्धार्थ पर इन सबकी छाया भी पड़ने नहीं दी । लेकिन दुर्भाग्यवश सिद्धार्थ अपनी सीमा के बाहर झाँक लेता है । तभी उनको जीवन और संसार के नग्न चित्र की यथार्थता मालुम पड़ी । सिद्धार्थ के इन शब्दों से इसका परिचय मिलता है --

काल क्लेश के जाल बीच जो परे बेचारे,
देखत हौं या मर्त्यलोक की पीड़ा भारी,
औ असारता याके सुख-वैभव की सारी,
नीकी तें नीकी याकी वस्तुन को धोखो
और बुरी तें बुरी वस्तु को ताप अनोखो ।
सुख पाछे दु:ख औ वियोग-संयोग अनंतर
यौवन पाछे जरा, जन्म पै मरण लहत नर ।[१]

उन्होंने महाभिनिष्क्रमण के लिए निश्चय किया । लोकमंगल की भावना से प्रेरित था उनका यह गृहत्याग । नीचे की पंक्तियाँ उनके इस विचार को स्पष्ट करती हैं --

जग के मंगल हेतु होत हौं जग तें न्यारे,
पेहौं कोऊ युक्ति की यह चित धारे ।[२]

शान्ति की खोज में प्रव्रजित होने वाले गौतम को चारों ओर दु:ख ही दु:ख दिखाई पड़ने लगा । अन्त में उनको 'बोध' की प्राप्ति हुई । बोध-ज्ञान से युक्त उनके मुँह से यही अमृत-वाणी निकली --

हे गृहकार । फेरि अब सकिहै तू नहिं भवन उठाई ।
साज बंद सब तोरि धौरहर तेहो दियो ढहाई ।
संस्कार सों रहित सर्वथा चित्त भयो अब मेरो ।
तृष्णा को क्षय भयो, यह जन्म-जन्म को फेरो ।[३]

१- बुद्धचरित - रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७३.
२-३. वही - पृ० ६६.

इस प्रकार दु:ख के मूल में स्थित तृष्णा की ओर उन्होंने संकेत किया ।

संक्षेप में, व्याख्यान भगवान ने अपने धर्मचक्रप्रवर्तन हेतु देश-देशान्तरों का भ्रमण तो किया, अपने उपदेशों से सबको प्रभावित किया तथा उनके लिए एक सुपथ को प्रशस्त किया ।

निर्वाण

आधुनिक हिन्दी साहित्य का एक मुख्य बौद्ध-प्रबन्ध काव्य है डा० जगदीश कुमार कृत `निर्वाण`। निर्वाण या मोक्ष को मनुष्य जीवन का परम पुरुषार्थ माना गया है । यह ऐसा असंस्कृत और अमृत पद है, जहाँ पहुँच कर हमारा चित्त अद्वय की अवस्था को प्राप्त करता है और समस्त भव-चक्र स्थगित हो जाते हैं । सिद्धार्थ को इस पद पर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त था । उनके ऐसे आध्यात्मिक अनुभव पालि और संस्कृत बौद्ध-साहित्य में उपलब्ध हैं ।

संस्कार-सम्मुचय का एक अन्य नाम है व्यक्तिचित्त । यही व्यक्तिचित्त जन्म-जन्मान्तर में संक्रमण करता रहता है । ये संस्कार उदय और अस्त होते ही रहते हैं । अर्थात् कुशल संस्कारों का संग्रह और अकुशल संस्कारों का विग्रह होता है । कभी-कभी कुशल संस्कारों के संचय से चित्त संस्कारातीत की अवस्था को भी प्राप्त कर सकता है । लेकिन संस्कारक्षय की लोकोत्तर अवस्था परमानन्ददायक होती है, जिसे मोक्ष, समाधि, या `निर्वाण` बताया गया है । इस अवस्था में दृढ़ रहकर सांसारिक अनुभव की ओर लौटना व्युत्थान कहलाता है, जो साधारण साधकों से नहीं हो सकता । यही राम-कृष्ण परमहंस का मत है । मगर मात्र विश्वकल्याण को उद्देश्य बनाकर साधना में लीन होने वाले जगदुद्धारक महात्माओं को इसमें पूर्ण सफलता मिली है । निर्वाण-प्राप्त महात्मा `अर्हत्` कहलाता है । जगतोद्धार की भावना से ही इन अर्हतों में आरंभ से ही करुणा का अतिरेक देखा जा सकता है । महात्मा बुद्ध के जीवन का भी लक्ष्य था यही परमोन्नत पद । उनमें उनको बड़ी सफलता प्राप्त हुई । काव्य का शीर्षक `निर्वाण` महात्मा बुद्ध के उस परम उद्देश्य की ओर संकेत करता है, जो समीचीन है ।

सांसारिक दु:ख क्लेशों से विमुख होकर प्रव्रज्या के लिए निकलने वाले सिद्धार्थ को जगत की क्षणिकता का अनुभव होता है । उनका कहना है --

क्षणिक जग में आनन्द-विहार,
अमित है दु:ख का पारावार ।[१]

इस क्षणिक जगत के विषय-भोग तो ऐसे हैं, जो अविराम रूप से हमारा पीछा करते रहते हैं । यह उस भवचक्र का नियम-सा बना है । उस भवचक्र के बारे में कवि का कहना है --

किन्तु जग में ध्रुव है परिणाम,
हुआ कब भोग यहाँ अविराम ?
विधाता का यह चक्रविधान,
विरति में है रति का अवसान ।
विषय-भोगों का अन्तिम बिन्दु,
विरागोदधि का बनता इन्दु ।[२]

सांसारिक विषयों में लिप्त जीव कभी जीवन्मुक्त नहीं हो सकते । वे भोगी बन जाते हैं । भोग में मग्न प्राणी को दु:ख का बोझ सहन करना पड़ता है । इससे भी कहीं अच्छा है, उस विषयासक्त संसार से दूर रहे । यही गौतम के भी विचार थे --

तात, मैं देख चुका ये भोग,
जुड़ा है जिनसे सतत वियोग ।
कहीं पर मृत्यु कहीं पर रोग,
क्षणिक है विषय, अस्थिर है लोग ।
लिप्त होकर इनमें की भूल,
न प्रायश्चित किया अनुकूल ।[३]

१- निर्वाण - जगदीशकुमार, पृ० २०.
२-३. वही - पृ० ३५, ३६.

विरागी बनने का गौतम का अभिनिवेश उनको त्यागमयी मूर्ति बना देता है । जरा-मरण जैसे दु:खों से जीवन पूर्ण होने पर भी मनुष्य उससे मुक्ति पाने की ओर उन्मुख नहीं होता, बल्कि वह विषयोन्मुख होता रहता है । इस आशय को दिखाने वाली ये पंक्तियाँ देखिये --

मनुष्य के प्राप्य जरा, मृति, रोग,
किन्तु फिर भी विषयोन्मुख लोग ।
भूलते यौवन मद में चूर,
रूप बल नश्वर यथा कपूर ।
क्षणिक ज्यों सरि के बुद्बुद् झाग
असत् ज्यों माथ-मरीचि-तड़ाग् ।[१]

लेकिन सर्वस्व त्याग कर एक मात्र सत्य की शरण में जाने पर जो सुख उपलब्ध होता है, वह अनिर्वचनीय है । केवल योगी ही इस पद पर पहुँच सकते हैं । कवि का कहना है --

किन्तु मैं त्याग चुका गृह-मोह
लगी है एक सत्य की टोह ।
सत्य-मुख ढका स्वर्ण के पात्र,
खोलते उसको योगी मात्र ।[२]

अन्त में दु:ख का निरोध चाहने वाले बुद्ध-देव यही निष्कर्ष निकालते हैं --

अन्त में खोजा कारण मूल,
दिखी तृष्णा की प्रतिमा स्थूल ।
सितासित उसके ही उद्गार,
त्रिधा बनकर रचते संसार ।

१- निर्वाण - डा० जगदीश कुमार, पृ० ४२.

२- वही - पृ० ४४.

उसी के हाथों में बन यंत्र,
जगत् के भूत हुए पर-तंत्र ।
बने थे उसके भी आधार,
अविद्या-जनित सकल संसार ।
दिखे सम्यक् सुख, दुःख का हेतु,
अन्त दुःख का, तद्गामी सेतु ।
जानते ही फैला आलोक,
अविद्या गई, मिटा सब शोक ।
चित्त के शान्त हुए व्यापार,
बरसती थी अमृतमय धार ।
नामरूपों का करके अन्त,
शून्य से पूरित हुआ दिगन्त ।
शून्य जिसमें रवि, शशि, नक्षत्र,
बहे धाम में ज्यों शतपत्र ।
व्योम में विहग, सिन्धु में मीन,
हुआ त्यों चित्त शून्य में लीन ।
एक रस था गोचर संसार,
हुआ संबंधों का परिहार ।
नहीं था देश काल का बोध,
हुआ संज्ञा-वेदना-निरोध ।
चित्त की मुक्ति द्वंद्व से त्राण,
हुआ दीपक का ज्यों निर्वाण ।
देह थी, पर मुनि हुए विदेह,
भस्म था पंच स्कंध का स्नेह ।
जरा, मृत्ति रोग हुए निर्मूल,
लगा बहने आनन्द अकूल ।

। व्यक्तिचित्त, व्युत्थान की अवस्था को प्राप्त करता है, तो वह पूर्ण ज्ञानी हो
ता है । इसी अवस्था का वर्णन यहाँ किया गया है --

बोधि से लब्ध सत्य में स्नात,
मुक्ति-सुख-मग्न रहे दिन-रात ।
होगया जब सुस्थिर नव ज्ञान,
किया बल से मन का व्युत्थान ।[१]

प्रखर सूर्य के तेज वाली संबोधि से जब गौतम संपन्न हुए, तो उनसे जगत्कल्याण
। स्वर्णिम किरणों का भी उदय हुआ । जीवन्मुक्त उन्होंने सर्वप्रथम इसी पथ से सारे
श्व को आगे ले जाने का निश्चय किया । कवि कहते हैं --

बोधि से मिला देह को त्राण,
हुआ जिससे जग का कल्याण ।[२]

ोधरा

मैथिलीशरण गुप्त जी के खण्डकाव्यों में 'यशोधरा' का अपना विशेष स्थान
। भारतीय-नारी के उत्तम गुणों को संसार के सम्मुख रखने का कविका सफल प्रयत्न
स्तुत काव्य में हुआ है । महात्मा बुद्ध के जीवन की एक मुख्य घटना का सांगोपांग
र्न करने वाले प्रस्तुत खण्डकाव्य को हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ
। सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा की कई करुणाजनक मनोदशाओं को कवि ने पाठकों
सम्मुख उपस्थित किया है । अपनी अद्भुत कल्पना द्वारा बुद्ध के जीवन की सांस्कृतिक
ष्ठभूमि पर यशोधरा को उन्होंने अंकित किया । आधुनिक हिन्दी साहित्य में कहीं
' यशोधरा का इतना व्यापक तथा कारुणिक चित्रण नहीं मिलता ।

संसार की असारता ने गौतम को वैरागी बनाया । इसी का परिणाम था
ाभिनिष्क्रमण । इस असार-संसार के बारे में गौतम का कहना है --

---

२. निर्वाण - जगदीश कुमार, पृ० ६१, ६२.

देखी मैंने आज ज़रा ।
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा ?
हाय । मिलेगी मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा ?
सूख जायेगा मेरा उपवन, जो है आज हरा ?
सौ-सौ रोग खड़े हों सम्मुख, पशु ज्यों बाँध परा,
धिक् । जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा ?
रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर भरा भरा ?
कुछ न किया, यह सुना भव भी यदि मैंने न तरा ।[१]

सिद्धार्थ जगत को स्वप्नजाल कहते हैं । इस स्वप्न में सोये हुए जीवों की वे भर्त्सना करते हैं । अपना नाम `सिद्धार्थ` होने पर भी उसनाम के अनुरूप कल्याण के मार्ग से होकर सिद्धि पाना वे चाहते हैं । गौतम के विचारों को कवि इस प्रकार व्यक्त करते हैं --

मैं त्रिविध-दुःख विनिवृत्ति-हेतु
बाँधूँ अपना पुरुषार्थ-सेतु,
सर्वत्र उठे कल्याण-केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम ।[२]

उसके बाद वेदकालीन हिंसात्मक कर्मकाण्ड पर वे व्यंग्यात्मक ढंग से प्रकाश डालते हैं । संसार की क्षणभंगुरता पर भी यहाँ इशारा है --

वह कर्म-काण्ड-ताण्डव-विकास
वेदी पर हिंसा हास-रास
लोलुप रसना का लोल-लास
तुम देखो ऋक् , यजु और साम ।[३]

१- यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १५.
२-३. वही - पृ० २४

न सभी कार्यों की प्रतिक्रिया थी गौतम की विरागात्मक भावना । उनके मुँह से ये ो शब्द निकलते हैं --

वह जन्म-मरण का भ्रमण-भाण,
मैं देख चुका हूँ अपरिमाण ।
निर्वाण-हेतु मेरा प्रयाण,
क्या वातवृष्टि क्या शीत-धाम ।[१]

सिद्धार्थ के चले जाने के बाद यशोधरा शोक-समुद्र में डूब जाती है । अपने मन को वह स प्रकार सान्त्वना देती है --

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दु:खी न हों इस जन के दु:ख से,
उपालंभ दूँ मैं किस मुख से ?[२]

स्तुत: यशोधरा का यह वियोग 'साकेत' की ऊर्मिलाका ही स्मरण दिलाता है । र्मिला के भी विचार यशोधरा के विचार के समान ही थे । लक्ष्मण के वियोग में र्मिला भी यशोधरा के समान ही दु:खी थी ।

यशोधरा ही नहीं, नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोधन, पुरजन-- सब इसी प्रकार विलाप करते हैं । छन्दक के मुँह से गौतम के महाभिनिष्क्रमण की बातें सबको मालूम ोती हैं । जाते समय छन्दक से गौतम ने ये बातें संदेश के रूप में घरवालों को भेजी ो' --

करे न कोई मेरी चिन्ता, नहीं मुझे भय-लेश,
सिद्धि लाभ करके मैं फिर भी लौटूँगा निज वेश ।
सह सकता मैं नहीं किसी का जन्म-जन्म का क्लेश,
तुम अपने हों, जीव मात्र का हित मेरा उद्देश्य ।[३]

१-२. यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ३३
१- वही - पृ० ५७.

गौतम का महाभिनिष्क्रमण, यशोधरा के जीवन का एक बड़ा परिवर्तन था । वह संन्यासिनी बनकर एक विरागयुक्त जीवन के लिए तैयार हुई । यहाँ हम पतिव्रता यशोधरा को ही देख सकते हैं, जो अपने पति के चरणों का ही अनुसरण करती है । अपने पुत्र राहुल को एक मात्र सहारा मानकर जीने वाली यशोधरा वास्तव में करुणा का पात्र बनकर रह गयी थी ।

संबोधि-प्राप्ति के बाद 'बुद्ध' बनकर गौतम कपिलवस्तु की राजधानी के द्वार पर पदार्पण करते हैं । भिक्षाप्राप्ति के लिए द्वार पर खड़े होने वाले चरणों पर राहुल को अर्पण करने वाली यशोधरा का चरित्र तो बहुत उज्ज्वल बन गया है । बुद्ध को ही शरण मानने वाली इस नारी का कहना है --

> तुम भिक्षुक बनकर आये थे, गोधा क्या देती स्वामी ?
> था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी ।
> मेरे दे:ख में भरा विश्वसुख, क्यों न भरूँ फिर मैं हामी ।
> बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि ।।[१]

गौतम के जीवन की यह झाँकी गुप्त जी ने इतनी तन्मयता के साथ प्रस्तुत की है कि उसमें अल्पमात्र भी कृत्रिमता दीख नहीं पड़ती । नारी सहज सहनशीलता, सहानुभूति, ममता, त्याग-भावना सब एक साथ यशोधरा में आकर मिल जाती हैं । इस प्रकार सभी स्त्री सहज गुणों से युक्त-नारीपात्र की सृष्टि हिन्दी साहित्य के लिए एक अमूल्य देन है ।

अनघ

यह तो बुद्ध के जीवन और आदर्शों से संबंधित मैथिलीशरण गुप्त जी का पद्य-नाट्य है । इसका नायक मघ मानवता का प्रतीक है । 'उसका जीवन-वृत्त गौतम बुद्ध के पूर्व-जीवन की दिव्यगाथा के आधार पर निर्मित किया गया है ।'[२] प्राचीन वार्ता-

---

१- यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० २०८.
२- मैथिलीशरण गुप्त - व्यक्ति और काव्य - कमलाकान्त पाठक, पृ० ५७६.

वरण से कथा को ग्रहण करने पर भी उसको आधुनिक-युग-चेतना से अनुप्राणित किया गया है । महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित होने पर भी उसकी चरित्र-कल्पना, कार्य-पद्धति, प्रसंग-सृष्टि और जीवनादर्श की अभिव्यक्ति आधुनिक युग-चेतना से स्पंदित है।[१]

मघ सुधारक भी है । विषम-विश्व के एक कोने में रहने पर भी विश्व में पाये जाने वाले उबड़-खाबड़पन को दूर करके इस विषम एवं संघर्षमय विश्व का संस्कार और सुधार करना चाहता है । इसी समय कुछ चोरों द्वारा उसके घर को लूटा जाता है लेकिन अपने वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व से चोरों में वह जो परिवर्तन ला सका, वह प्रशंसनीय है ।

मनुष्य में ईर्ष्या हमेशा उदय होती रहती है । मघ के आकर्षक व्यक्तित्व को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से कुछ लोगों ने उसे समाजद्रोही ठहराया । तो भी वह अपने आदर्श को नहीं छोड़ता । अब अपनी गलती का अनुभव करके कुछ युवकों ने मघ के नेतृत्व में समाज-सेवा करने का निश्चय किया । इस प्रकार सदाचार की विजय यहाँ दिखायी गयी है । यहाँ फिर भी बुद्ध के आदर्शों का स्मरण दिलाया गया है । मघ का व्यक्तित्व इतना बलशाली था कि असंख्य युवकों का दल ही, उनके अनुयायी बने । यह दल अहिंसात्मक कार्यक्रम और करुणाशीलता के माध्यम से लोकसेवा करने का निश्चय कर चुका था । करुणा की महत्ता और करुणाशील बनने का उपदेश अपने अनुयायियों को सुनाते हुए मघ का कहना है --

> पापों से घृणा करो, प्रयत्न करो, पापी का,
> व्यंग्य छोड़ संग दो सदैव अनुतापी का ।[२]

बीच बीच में गीतों के द्वारा भी करुणा की महत्ता व्यंजित की गयी है । कवि का कहना है --

---

१- मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य - कमलाकान्त पाठक, पृ० ५७६.

२- अनघ - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६४.

किन्तु विरोधी पर भी अपने
करुणा करो, न क्रोध करो ।
विष भी रस बन जाय अन्त में
उसमें इतना रस घोलो,
अरे, बद्ध हो, क्यों अपने में ?
द्वार दया करके खोलो ।[१]

इस खण्डकाव्य का नवाँ सर्ग तो सबसे प्रमुख है । विलासी जीवन को त्याग कर यथार्थ और वास्तविकता की शरण लेने वाले राजा और रानी का यहाँ वर्णन किया गया है । इसके पश्चात् असार और अल्पायु कलिका के जीवन को मनुष्यों के जीवन की अपेक्षा धन्य बताते हुए जगत की नश्वरता की ओर यहाँ संकेत मिलता है --

कलिके, तेरा ही जन्म धन्य ।
- - -
जीवन है कितना अल्प हाय ।
- - -
तुझसा उदार है कौन अन्य ?
- - -
थोड़े में जीवन रस निचोड़,
- - -
हँसते-हँसते मधु गंध जोड़,
उसके देने में मुँह न मोड़,
झर पड़ती है तू बन्ध तोड़ -
फल छोड़ अन्य-हित आत्म जन्य ।[२]

१- अनघ - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ६४.
२- वही - पृ० ७२.

ालगीत

महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित दार्शनिक गीतिकाव्य `कुणालगीत` भी मैथिली-
ग गुप्त जी की एक अनुपम रचना है । इसमें मानवतावादी जीवनादर्श पूर्णरूप से
पक्व हुआ है । पूर्वगीतिकाव्यों की अपेक्षा उक्त खण्डकाव्य में कवि ने दार्शनिकता
ज्यादा अंश मिला दिया है । `कुणाल-गीत गुप्त जी के जीवन-दर्शन का शीर्ष
त है ।`[१] इस काव्य को लिखने में कवि का उद्देश्य है बुद्धकालीन भारतीय संस्कृति
स्वर देना । `कुणालगीत` में जो पथगीत गाये हुए हैं, वे उस दिव्य-संस्कृति के
त्तम आदर्श ही हैं । विश्वबन्धुत्व की भावना, सांस्कृतिक चेतना और करुणावाद
त्रिवेणी संगम से कुणालगीत परिपूर्ण है ।

पाटलिपुत्र का राजकुमार कुणाल अपने पिता अशोक के अनुरूप पुत्र था । कहा
ता है कि शान्ति-स्थापना के लिए राजा ने कुणाल और उसकी पत्नी कांचनमाला
ही काश्मीर भ्रमण के लिए भेजा था । लेकिन चन्द्र के पीछे राहु की भाँति रहने
ली उसकी सौतेली माँ ने कुणाल को अंधा बनाया । अंधा कुणाल तो गली-गली
न गाकर चलता रहा । उनके साथ उसकी पत्नी कांचनमाला भी थी । विश्वबन्धुत्व
भावना से भरे हुए शब्द अंधे कुणाल के मुँह से निकल पड़ते हैं । यहाँ भी कवि ने
त्मा बुद्ध का नामस्मरण किया है --

मेरे हैं सब जगती के जन,
जहाँ रहूँ मैं मेरा घर,
चलता हूँ मैं अंधा होकर
आज तथागत के पथ पर ।[२]

मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य - कमलाकान्त पाठक, पृ० ५७६.
कुणालगीत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ३६.

कोशा

कवि पोद्दार रामावतार 'अरुण' की कल्पना-तूलिका से निसृत पाटलिपुत्र की नर्तकी है कोशा । अन्त में पाठकों में करुणा की नदी बहाने वाली नर्तकी कोशा को कला की देवी के रूप में ही यहाँ चित्रित किया गया है । कला को सर्वस्व मानने वाली तथा नारी सहज-भावुकता से सांसारिकता की ओर आकृष्ट होने वाली कोशा का सहसा एक बार पाटलिपुत्र में आये हुए दुर्भिक्ष से हृदयपरिवर्तन हो जाता है । पाटलिपुत्र में हाहाकार मच गया, मानव के प्राणों पर तूफान-सा मच गया । चारों ओर अंधकार और क्रन्दन के भयंकर दृश्य व्याप्त थे । हर कोने से निर्धनों की कराहें गूंज उठती थीं । भूखी-प्यासी जनता की करुणापुकार से वसुन्धरा चीख उठी थी । अपनी विशाल अमराई में बैठी हुई कोशा, मानवता पर आयी हुई इस निष्ठुरता के बारे में सोचकर आँसू पोंछती हुई उठ खड़ी हुई । उसके हृदय से करुणा उमड़ आयी, भूखे-अधमरे लोगों की ओर बढ़कर उसने कहा --

मानव । तुम भूखे हो । मुझ से कुछ कहो नहीं
यह आम्रकुंज कोशा का नहीं तुम्हारा है
तुम एक एक फल को खालो ओ जन-समूह ।
यह देश तुम्हारा है, तुम इसके जीवन हो
समता की सृष्टि करो अपने ही हाथों से
सम्राट तुम्हारी दुर्बलता का वैभव है ।[१]

पाटलिपुत्र का मंत्री स्थूलभद्र कामरूपी नाग से दंशित होकर कोशा के कलानिकुंज में शरण लेता है । उस कवि के ही शब्दों में वर्णन देखिए --

मानव, सपने की निद्रा तोड़ो
ढूँढो जीवन का ज्ञान चिता की ज्वाला में
यौवन की मदिरा पिया नहीं है स्थूलभद्र ।

१- कोशा - पोद्दार रामावतार 'अरुण', पृ० ३१.

नयनों के जल में स्वर्ण कमल जो खिलता है
वह सूर्योदय से नहीं आत्म ज्ञानोदय से ।
कोशा की सुन्दरता भी तो जल जाएगी
उसके भी काले केश जीर्ण हो जायेंगे ।

\- - -

कर्त्तव्य बहुत है कठिन, तुम्हें करना होगा
ये ढेर हड्डियों के हैं देखो इधर उधर
सुन्दरता का सत्यान्त यही है, इतना ही ।

\- - -

ढूँढो आत्मा की शुभ्र ज्योति
कुछ नहीं और कुछ नहीं और
केवल रे केवल आत्म-ज्योति
मानवता की संपूर्ण शक्ति
जीवन का चरम अखण्ड ज्ञान ।[१]

यहाँ माया, काम, क्रोध, मद लोभ जैसे दुर्विचारों से दूर रहने का आदेश दिया गया है ।

आम्रपाली

यह 'अरुण' जी का एक प्रेमप्रधान काव्य है, जिसमें करुणा का आलोकस्तंभ ही दृश्य मान होता है । वैशाली की राजनर्तकी अम्बापाली को भी महात्मा बुद्ध का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त था । इस खण्डकाव्य में यत्र-तत्र बुद्ध के तत्वों का उल्लेख मिलता है । पहले बुद्ध के समता-आदर्श पर कवि 'अरुण' जी ने प्रकाश डाला है । महात्मा बुद्ध ने सब मनुष्यों को मनुष्य के रूप में देखा था । करुणा के अपार सागर भगवान बुद्ध की महिमा इस प्रकार गायी गयी है --

---

१- कोशा - पोद्दार रामावतार 'अरुण', पृ० ४१-४२.

सबका सम-अधिकार प्राप्त है विश्व चेतना लाली में ।
समता का आदर्श व्याप्त हो, यही बुद्ध की वाणी है
मानवता हो मुक्त, यही गौतम की अमर कहानी है ।
सागर से भी अधिक तथागत की आँखों में पानी है
राजा है आनन्द और करुणा ही उसकी रानी है ।[१]

अपनी आम्रवाटिका में भगवान बुद्ध को पदार्पण करने की बात सुनकर आम्रपाली बेहद खुशी का अनुभव करती है । महात्मा बुद्ध के बारे में उसका कथन है --

कितना प्रकाश
कैसी आभा
कितनी प्रदीप्ति
कैसी है उनकी ज्योति
किरण कितनी है उनके प्राणों में
मुस्कान,
एक मुस्कान ज्ञान से आती है ।
रोशनी वहां भी छाती है
देखी मैंने-
गंभीर, धीरे
विश्रान्त, शान्त
एकान्त मूर्ति कितनी ज्योतित
ज्योतिर्मय महासमुद्र ध्यान में सदा लीन
कितना प्रवीण तप में जीवन
आनन्द, महाआनन्द व्याप्त है सभी ओर
आ सकती वहाँ हिलोर नहीं

१- आम्रपाली - पोद्दार रामावतार 'अरुण', पृ० ३७.

लगता है जैसे शुभ्र भोर
अरुणिमा एक छायी विमुग्ध नीलाम्बर में
निस्तब्ध चित्र पर एक बूँद आँसू केवल
इतनी करुणा मन की अरुणा
इतना प्रशान्त अन्तरानन्द
सर्वत्र शान्ति, सर्वत्र शान्ति ।[१]

वासवदत्ता

यह सोहनलाल द्विवेदी जी से रचित एक सुन्दर खण्डकाव्य है । इतिहास में कहीं भी वासवदत्ता और बुद्ध की कथा नहीं मिलती । बौद्धग्रंथों में तो वासवदत्ता की कथा वर्णित है उसी से प्रेरणा लेकर कवि द्विवेदी जी ने भी उक्त काव्य की रचना की है । यहां वासवदत्ता द्वारा बुद्ध के प्रति प्रेम निवेदन तथा उसको ठुकराया जाना, मार्मिक ढंग से दिखाया गया है । वह अपने द्वार पर अतिथि को तभी पाती है, जब उसका रागोत्तिप्त हृदय एकदम निश्चेष्ट बन गया था । यह सहानुभूतिजन्य है ।

अपने द्वार पर आये हुए साधु पर निछावर होने वाली तरुणी दिवांगना वासवदत्ता का आत्मसमर्पण इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है । वह साधु से बताती है --

अतिथि देव ।
यौवन यह अर्पित पद-पद्म में है
इसको स्वीकार करो,
यह न तिरस्कार करो,
यौवन यह, रूप यह, जिसे प्राप्त करने को
यती यत्न करते, तपी तपते पंचाग्नि नित्य,

१- आम्रपाली - पोद्दार रामावतार 'अरुण', पृ० १२६.

बड़े-बड़े चक्रवर्ती मुकुट विसर्जित कर
चाहते अधर का दान, चाहते भृकुटि का दान ।
तप्त उर शीतल करो गाढ परिरंभन दे ।[१]

लेकिन वैरागी गौतम ने शान्तभाव से इस प्रकार कहा --

आऊँगा देवी । फिर
होगी जब कभी तुम्हें
मेरी टोहबाट में ।[२]

इन शान्त वचनों से वासवदत्ता का मन भी शान्त हुआ । कुछ वर्षों के बाद तरुणी वासवदत्ता भी वृद्धा हुई । उसके शरीर का अंग-अंग सड़ गया । सारा शरीर दुर्गन्धित हो गया । एक दिन उसने सहसा अपने द्वार पर किसी तेजोमय मूर्ति को पाया । वह सतृष्ण आँखों से उस मूर्ति की ओर देखने लगी । उस दुर्गन्धित अधमरे शरीर को देखकर भगवान का हृदय करुणा से भर गया । अतिथि तथागत ने वासवदत्ता से कहा --

यह आया हूँ, आज देवी ।
आज अनिवार्य था आना यहाँ मेरा यह ।
कंठ भर आया,
वासवदत्ता नत चरणों में
मस्तक धर
हृदय धर
प्राण धर
जड़ सी बनी बैठी वहीं,
बोल कुछ पाई नहीं,
अर्चना अचल बनी,

१-२. वासवदत्ता - सोहनलालद्विवेदी, पृ० ४.

वंदना सफल बनी,
हो गई मौन, कह पाई कुछ बात नहीं ।[१]

द्विवेदी जी के उक्त काव्य का दूसरा अंश है `महाभिनिष्क्रमण` । यहाँ गौतम की यात्रा का स्मरण किया जाता है । विरागी गौतम सुप्त पत्नी यशोधरा तथा अबोध बालक राहुल का त्याग करके शान्तिमयी निशा में विलीन हुए । शोकमग्न यशोधरा और उसके परिवार का विलाप अवर्णनीय था । निष्क्रमण के बाद ही गौतम ने `संसार को देखा था । जर्जर वृद्ध, कुष्ठगलित नर, शव आदि देखने मात्र से वे इस प्रकार चीख पड़े --

यही परम सत्य है ।
यही परम तथ्य है ।
गौतम । तुम्हें भी कभी
भोगना है गति सभी
अरुण तरुण हो अभी
इससे जान सकते विश्व का रहस्य न भी ।[२]

मृगदाव

सारनाथ का `मूलगन्धकुटी` विहार अपने भित्ति-चित्रों के लिए बहुत ही प्रसिद्ध है । इसका श्रेय जापानी बौद्ध चित्रकारों को है । आज जहाँ सारनाथ स्थित है,वहाँ वर्षों पूर्व मृगदाव नामक एक कमनीय वन था, जिसमें मनोहर हिरण सदा स्वच्छन्द विहार करते थे । यह स्थान `ऋषि-पतन` नाम से भी प्रसिद्ध था । क्योंकि वह वन उन हिरणों के सहचर मुनियोंका भी आवास-केन्द्र था । बौद्धधर्म में इसका विशेष स्थान है । यहीं सबसे पहले करुणावतार भगवान बुद्ध ने अपने पाँचों शिष्यों के समक्ष धर्मचक्रप्रवर्तन का श्रीगणेश किया था । वहीं उन्होंने उनको आर्यसत्यों का सन्देश भी दिया

१-२. वासवदत्ता - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ६

क्रमश: `मृगदाव``सारनाथ` के नाम से प्रसिद्ध हुआ । कवि त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री जी ने जब यहाँ की यात्रा की तो वे वहाँ के उन भित्तिचित्रों से बड़े आकर्षित हुए । उसी का फल है उक्त ऐतिहासिक महाकाव्य ।

कवि देखते हैं कि वह मृगदाव एक अलौकिक प्रकाश से आलोकित है । कवि का कहना है कि गौतम बुद्ध के चरणों के स्पर्श से शायद मृगदाव इतना आलोकित हुआ होगा, इसी आशय को कवि व्यक्त करते हैं --

परिवर्तित हो गया हिंसकों
का भी क्रूर स्वभाव,
एक अलौकिक आभा से
आलोकित था मृगदाव ।[१]

समस्त सुखों के बीच जन्म लेने वाले गौतम को विरागयुक्त जीवन की ओर उन्मुख कर देने वाला विषय था दु:ख । इस दु:ख-रूपी दावानल से जगत की रक्षा करने के लिए ही गौतम बुद्ध ने पृथ्वी पर अवतार लिया था । इसी आशय को यहाँ व्यक्त किया है--

बुझ जायेगा दु:ख-दावानल,
ये होंगे पर्जन्य,
विकल विश्व का विपद मिटाने
ये आये हैं धन्य ।[२]

बाल्यावस्था से ही सिद्धार्थ-कुमार को सभी जीवों पर बड़ी अनुकंपा थी । आखेटक देवदत्त द्वारा गिराये हुए हंस की रक्षा करने वाली घटना तो इतिहास प्रसिद्ध है । सिद्धार्थ के अहिंसात्मक विचार नीचे की पंक्तियों से व्यक्त होते हैं --

सच है मारा `देवदत्त` ने
पर मैंने की रक्षा,

१- मृगदाव - त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री, पृ० ४.

२- वही - पृ० ७.

यह तो मरने ही वाला था,
दी प्राणों की भिक्षा ।[१]

ऐसे विचारों ने उनको पूर्ण वैरागी बना दिया । महाभिनिष्क्रमण के लिए निकले हुए सिद्धार्थ रास्ते में काषायवस्त्रधारी एक साधु को देखते हैं, जिसके हाथ में शस्त्र भी था । भ्रम में पड़े हुए सिद्धार्थ-कुमार के पूछने पर मालूम हुआ कि वह छद्मवेष धारी व्याध है, जो मृगों का आखेटक है, यह सुनकर सिद्धार्थ उस व्याध को बताते हैं --

कोई न अपना है यहाँ
संसार सपना है यहाँ,
खाओ कमाओ धर्म से
मन में डरो दुष्कर्म से ।[२]

दयालु सिद्धार्थ जीवों के प्रति भी बड़े उदार थे । चारों ओर रहने वाले जीवों पर दया की वर्षा उन्होंने की । इसी आशय को कवि व्यक्त करते हैं --

डरते सिद्धार्थ नहीं मत्त गजराज से,
प्रेम करते थे वे गजेन्द्र युवराज से ।
देख उन्हें अश्व गण प्रेषा-रव करते,
मंदुरा को और घोर घोष से वे भरते ।[३]

वैशाली की प्रसिद्ध वेश्या आम्रपाली की करुणामरी कहानी को भी `मृगदाव` में स्थान प्राप्त हुआ है । युवती आम्रपाली भगवान बुद्ध के चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पण करती है । तब विरागी बुद्ध के वचन तो ये थे --

---

१- मृगदाव - त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री, पृ० २४.
२- वही - पृ० ६७.
३- वही - पृ० ८३.

शान्त पाप । शान्त पाप । अमिताभ ने कहा,

मेघ-मन्द्र-ध्वनि-गूँज गयी दिशा-दिशा में ।[१]

महात्मा बुद्ध के इस उपदेश के इस उपदेश ने आम्रपाली पर खूब प्रभाव डाला । उसका जीवन ही परिवर्तित हो गया । उसने जीवन भर अविवाहित रहने का प्रण किया । तब से वह कुष्ठियों की सेवा में मग्न रही । अन्त में वह स्वयं उस भयानक रोग का शिकार बन जाती है । अचानक एक दिन उसने भगवान बुद्ध को अपने द्वार पर खड़े हुए देखा ।

उसके बाद,

सेवा निज हाथ से की उसकी मुमुक्षु ने,

और बोले -- देवि । तुम तो हो सिद्धि-रूपिणी,

तुमने भी मुझ पर तन-मन वारा था,

इसी लिए आज आया हूँ तुम्हारे गेह में ।[२]

मार-विजय के पश्चात् गौतम को संबोधि की प्राप्ति हुई । तृष्णा के नाश से ही दु:ख से मुक्ति मिल सकती है,यह ज्ञान उनको प्राप्त हुआ । अपने ज्ञान को जन-कल्याण के लिए समर्पित करने के उद्देश्य से उन्होंने अपना धर्मचक्रप्रवर्तन शुरू किया । उस ज्ञान के पथ से होकर अग्रसर होने का वे इस प्रकार उपदेश देते हैं --

अब डूबना है यश । न तुम

दु:ख-दैन्य-चिंता-शोक में ।

मैंने दिखाया पुण्य-पथ,

सुख-शान्ति पाओ लोक में ।[३]

गौतम के गृहत्याग के बाद उनकी पत्नी यशोधरा ने भी काषायवस्त्र अपनाया । उसके

१- मृगदाव - त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री, पृ० २४.

२- वही - पृ० १२५.

३- वही - पृ० १७२.

बारे में कवि का कहना है --

जैसे नृप नल निष्ठुर ने
था त्यागा दमयन्ती को ।
उस बोधिसत्व ने त्यागा
वैसे ही उस युवती को ।[१]

अन्त में संबोधि प्राप्ति के पश्चात् शोक-समुद्र में डूबे हुए सब लोगों को अपना दिव्य-संदेश सुनाने के हेतु गौतम-बुद्ध कपिलवस्तु आये और अपने ज्ञान के प्रकाश से चारों दिशाओं को आलोकित किया ।

२- अन्य प्रबन्धकाव्य

सिद्धराज

भारतीय संस्कृति की गुणगाथा हमें मैथिलीशरण गुप्त जी के 'सिद्धराज' खण्डकाव्य में भी देखने को मिलती है । इस ऐतिहासिक खण्डकाव्य का विषय है पाटल-राज्य के अधिपति जयसिंह का जीवन-चरित । एक छत्रपति बनकर रहने की लालसा से प्रेरित होने पर भी अन्त में युद्ध से भाग जाने वाले राजा जयसिंह लोक-कल्याण की भावना को अपने मन में स्थान देता है । खण्डकाव्य के अंतिम सर्ग में तो सिद्धराज जयसिंह की राज्य-व्यवस्था का चित्रण है । प्रजा-हित को सम्मुख रखकर जयसिंह जैन-ब्राह्मण-इस्लाम जैसे सभी धर्मों को समता की दृष्टि से देखता है । इन विचारों की तह में तो एक ही ध्येय है -- भारतीय संस्कृति का यशोगान । इस बीच बुद्धदेव तथा उनके अहिंसा, करुणा आदि विचारों का भी कवि गुप्त जी स्मरण करते हैं --

जीना शतवर्ष कर्म करके कठिन है,
मुक्ति मरके भी मिलती है क्या सहज में ?

१- मृगदाव - त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री, पृ० २२०.

हिंसा मिटे, बुद्ध-महावीर की दया बढ़े,
किन्तु आत्मरक्षा हमें करनी पड़ेगी ही,
शूरता भी क्रूरता न मानी जाय अन्त में,
धार्मिक विरोध हमें दुर्बल बना रहे ।[१]

अंजलि और अर्घ्य

युग-पुरुष गान्धी जी के सत्य-अहिंसा सिद्धान्त के प्रति श्री मैथिलीशरण गुप्त भी बड़े आदरणीय रहे । उस दिव्यपुरुष की मृत्यु वास्तव में सबको चेतनाहीन बनाने वाली थी । तदवसरपर राष्ट्रकवि गुप्त जी ने भी गान्धी जी के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करने के हेतु 'अंजलि और अर्घ्य' खण्डकाव्य की रचना की, जिसमें उन्होंने कृष्ण, बुद्ध तथा ईसा मसीह का नामस्मरण किया है और बताया है कि इन तीनों अवतार पुरुषों के आदर्शों की पुनीत त्रिवेणी का संगम ही महात्मा गान्धी जी का जीवन रहा है । कवि का कहना है --

कृष्ण, बुद्ध, किंवा ईसा का
मिलता कहाँ दरस हमको,
तात, यहाँ तुझमें तीनों का
मिला पुनीत परस हमको ।[२]

नोआखाली में

यह सियारामशरण गुप्त जी का एक प्रसिद्ध खण्डकाव्य है, जो हिन्दू-मुसलमान एकता की मूल भावना से अलंकृत है । भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में जो जो हिंसात्मक अत्याचारों की व्याप्ति हुई उससे अनेकों व्यक्ति दु:खी हुए । कवि गुप्त जी इन असह्य अत्याचारों के कारण पीड़ित हुए । इन अत्याचारियों की भर्त्सना करते हुए कवि लिखते हैं --

---

१- सिद्धराज - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० १३१-३२.

२- अंजलि और अर्घ्य - मैथिलीशरण गुप्त, पृ० ४०

धर्म समझना है मनुजों का, तो अपने कवि से सुन जा,
धर्म-धर्म रटते हैं जो वे, धर्म बहाना है उनका।[१]

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति बहुत ही शोचनीय थी । जन-जीवन में उथल-पुथल मच रहा था । दूसरा विश्व महायुद्ध, बंग-विभाजन जैसी साम्प्रदायिकता की चक्की में जनता पिस रही थी । तभी नूतन शोक-गायन से पृथ्वीगूंज उठी । कवि का वह शोक-गान वास्तव में हृदयभेदी है --

हाय । अरे रे क्षुद्र मना कवि ।
यह कैसा कुत्सित कुविचार,
मरी नहीं अधमों से भी जो
उसके ऊपर हिंसा प्रहार ।[२]

क्रोध नाश का लक्षण है । कुपित आदमी स्वयं नाश का वरण करता है । लेकिन सहनशीलता से तो सुख, शान्ति एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । यहां हम क्रोध को हिंसा की कोटि में रख सकते हैं । क्योंकि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह क्रोध भी हिंसा का ही पर्यायवाची है । इसलिए लोककल्याण की भावना से पूर्ण मनुष्य क्रोधानल के मार्ग से हटकर सहनशीलता का मार्ग अपनाता है । वस्तुत: सहनशीलता की भावना हमें सौहार्द और भ्रातृत्व की भावना का संदेश देती है । इसे व्यक्त करने के लिए कवि गुप्त जी कहते हैं --

तुम हमको हम भी तुम्हें सहन करें सप्रेम
दोनों की इस जीत में दोनों का है क्षेम ।[३]

यही हमें एकता के बंधन में बाँध देता है । कवि हिन्दू और मुसलमानों के आपस की शत्रुता का अन्त करने के लिए भी यही उपाय सोचते हैं । सहनशीलता की भावना शान्ति प्रदान करती है । इसलिए वे लोगों को सहनशीलता की शिक्षा ही देते हैं । देश में

१- नोआखाली में - सियारामशरण गुप्त, पृ० ४६.
२- वही - पृ० ४७.
३- वही - पृ० १४.

एकता लाने के विचार से कवि शान्ति के प्रतीक बुद्धदेव का भी स्मरण करते हैं और कहते हैं --

बंगभूमि में दूर उधर वह उठा स्वबन्धु-विरोध,
इधर विहार-भूमि, तुझमें भी भभक उठा प्रतिशोध ।
बोधतीर्थ, तू द्रोहानलमें यह इंधन मत डाल,
बुरा असल ही हो तो अच्छा होगा क्या नकाल ।

\- - -

दग्ध हो रहा वहाँ उधर का जिससे निज भू-भाग,
बुझा सकोगे यहाँ न उसको यहीं लगाकर आग ।
तेरे बोधि-वचन अंकित हैं जन-जन में अथपि,
अनल अनल से, वैर वैर से बुझता नहीं कदापि ।।[१]

बापू

गांधीवाद का प्रभाव सियारामशरण गुप्त जी पर बड़ी मात्रा में देख सकते हैं । गांधी जी के जीवन की झलकियों को प्रस्तुत करने के हेतु सियारामशरण गुप्त जी ने उक्त खण्डकाव्य की रचना की है ।

बापूजी हमारे लिए एक विराट तीर्थ के समान हैं । इस पवित्र तीर्थ में दिन-रात अवगाहन करके भारतीय धन्य हुए । सत्य का बाना पहने, अहिंसा के शस्त्र को धारण करके, नरकतुल्य कारागृह में जाने के लिए वे कभी भी नहीं हिचकिचाये । देश के हित और विश्वकल्याण के लिए धन, गृह वैभव आदि त्याग देने में गान्धी जी सबसे आगे थे । ऐसी त्याग-भावना को देखकर गुप्त जी सिद्धार्थ की याद करते हैं --

तोड़ सब तुच्छ स्वार्थ,
हे सिद्धार्थ,

१- नोआखाली में - सियारामशरण गुप्त, पृ० २७.

छोड़ तुम नेह-गेह-धन को,
छूट पड़े नूतन महाभिनिष्क्रमण को ।[1]

मानवता के कवि सियारामशरण गुप्त जी बापू के अमूल्य गुणों से एकाकार हो ाने की अभिलाषा से युक्त हैं । अत: उनकी रचनाएँ भी उस मानवता के स्वरों को रित करती हैं । बापू के अलौकिक एवं दिव्य गुणों को जनसमक्ष प्रकट करने की गुप्तजी ा इतनी उत्कट आशा थी कि उन्होंने बापू में इसकी अभिव्यक्ति भी की है । विश्व-ल्याण चाहने वाले बापू में कवि लोक के समस्त महान विभूतियों का समन्वय देखते हैं[2] ।

'बापू' में कवि पहले तत्कालीन भारतीय जनता की दयनीय स्थिति का वर्णन रना अपना कर्त्तव्य समझते हैं । यहाँ गान्धी जी रक्तहीन क्रान्ति के अग्रदूत बनकर ारे सामने आते हैं । अहिंसा सिद्धान्त का तात्त्विक विवेचन इस काव्य में सबसे अधिक रित हुआ है । अहिंसा जैसे उदात्त गुणों के उदय से ही मनुष्य चित्त करुणा से आर्द्र ोता है, लेकिन हिंसा की अमानवीय प्रकृति उस मन को पीड़ित करती है । गान्धी ा ने इस अहिंसा को अमृत स्वरूप माना है । इस पर कवि का कहना है --

ऊर्जस्वित, सत्य के अहिंसा के अमृत से,
मुक्त, छल छद्म के अनृत से,
बोला, यह कोई मंत्र-द्रष्टा ऋषि नूतन के ।[3]

धी जी का जीवन तो प्रेम और अहिंसा को केन्द्र मानकर ही चलता था । महान् देश्य की पूर्ति में भी इन दोनों तत्वों को काम में लाने का उनका विचार वास्तव में ाश्चर्यजनक था । लेकिन अहिंसा के प्रति उनका दृष्टिकोण इतना व्यापक था कि अपने रोधियों पर भी वे उदारपूर्ण दृष्टि रखते थे । अहिंसा में इतना बल है कि उसके कारण

---

1. बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ० ३४.
2. "This principle of Ahinsa (non violence) has been inscribed in the spirit of India for more than two thousand years. Mahavira, Buddha and the cult of Vishnu have made it the substance of millions of souls"

   -- सियारामशरण गुप्त - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १६३.
3. बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ० ४८

समें उदारता, नैतिकता, सहिष्णुता, परोपकारिता जैसे महान् गुणों का भी आवि-
ार्व होता है । कहा गया है कि अहिंसा, आचरण का स्थूल नियम मात्र नहीं है,
ात्मिक मन की वृत्ति है । जिस वृत्ति में कहीं दोष की गंध तक न हो, वह अहिंसा है ।

अहिंसा के पथ को स्वीकार करने वाले, हिंसात्मक युद्ध का विरोध करते हैं ।
क्योंकि उसके कारण विश्व में अशान्ति फैलती है । उदाहरण के लिए --

इसका भय क्या ? -- रक्तपात हम नहीं करेंगे,
फेंकेंगे सब स्वयं, अहिंसक मरण वरेंगे ।
हिंसक भी है नहीं निरा-निरा दानव ही दानव
सोचा है अज्ञान दशा में उसका मानव ।[१]

इस अहिंसा का प्रतिपादन करते वक्त कवि कहते हैं कि यह अहिंसा तत्व सभी धर्मों में
है, लेकिन विभिन्न रूपों में । इस अहिंसा तत्व के बारे में कविका कहना है --

बुद्ध से मिला है परमार्थ भाव
ईसा से नरानुराग
हिंसा-त्याग धीर महावीर-- से वरद से
दृढ़ता मुहम्मद से ।[२]

केवल इस अहिंसा रूपी शस्त्र द्वारा ही हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं । यही दृढ़ विश्वास
गान्धी जी के मन में था । कवि का भी यही कहना है --

आत्मजयी, पावन तुम्हारे आत्मशासन में,
पाप-ताप-नाशन में
क्षात्रियत्व दुर्निवार शौर्य समन्वित है
अस्त्र-शस्त्र-हीन भी अर्चित अजित है ।[३]

१- बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ० १८.
२- वही - पृ० ६६.
३- वही - पृ० ७६.

अहिंसा के विचार से ही हम में प्रेम का उदय हो सकता है । इसी समय गांधी जी ने नाश के कगार पर स्थित होने वाले समाज को भी देखा । प्रेम के द्वारा ही समाज का उद्धार करना उन्होंने चाहा । प्रेम के बारे में कवि का कहना है --

प्रेम है स्वयं ही क्षेम
प्रेम ही की अंत में विजय है ।
प्रेम रत्न नित्य ही ज्योतिर्मय है
फैला दो उसी का मृदु दीप्ति-हास
हिंसा के तमिस्र का स्वयं हो ह्रास ।[१]

नकुल

त्यागमय जीवन से जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह सुख अवर्णनीय है और वह सुख अन्यत्र सुलभ भी नहीं । इस त्यागमय जीवन की महत्ता को प्रधानता देकर सियारामशरण गुप्त जी द्वारा रचित एक अन्य खण्डकाव्य है 'नकुल'। इसमें युधिष्ठिर और एक यक्ष के वार्तालाप से उस त्याग-भावना का वर्णन इस प्रकार किया गया है --

धरना होगा आत्मदान के पावन मग को
नव जीवन परिपूर्ण जिन्हें करना है जग को ।[२]

त्याग की भावना और उदारता मनुष्य को श्रेष्ठता के उन्नत पद तक पहुँचाती है । मनुष्यता का अर्थ है अपनों से भी दलितों के दु:ख और क्लेशों को दूर करना । लेकिन ऐसे अनुकूल वातावरण को यहाँ नहीं देखकर कवि बड़े दु:खी होते हैं ।

आत्मोसर्ग

महान नेता श्री गणेश शंकर विद्यार्थी पर श्री सियारामशरण गुप्त जी ने एक छोटा काव्य लिखा है । विद्यार्थी जी महान् अवश्य थे, हिन्दू-मुसलमान दंगे की अग्नि

१- बापू - सियारामशरण गुप्त, पृ० ४१.

२- नकुल - वही - पृ० १०२.

में उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था । उनका अन्त पत्थर जैसे कठोर हृदय वालों को भी हिलाने वाला एक था । ऐसे त्यागी वीर-पुरुष विद्यार्थी जी की जीवन-गाथा ही इस काव्य में वर्णित है । कवि बुद्धदेव का स्मरण करके कहते हैं --

ईसा को प्रणाम, पर होना
होगा हमें न ईसाई,
बुद्ध और बापू में हमने
यहाँ वही प्रभुता पाई ।[१]

हिंसा का बदला हिंसा से नहीं हो सकता, इस तत्व को लोगों के बीच प्रसारित करने के उद्देश्य से कवि ने जो पंक्तियाँ लिखी, वे द्रष्टव्य हैं --

पश्चिम पोंत चुका मस्तक पर,
अपने प्रभु ईसा का रक्त,
पर तुम अपने बुद्ध-देव के रहो
अखण्ड अहिंसक भक्त ।[२]

अहिंसा के पुजारी कवि गुप्त जी जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे के हृदयभेदक दृश्य को देखते हैं, तो उनसे रहा नहीं जाता । कवि का कहना है --

मिला जहाँ, कर दी हिन्दू ने
मुसलमान के ऊपर चोट,
मारा त्यों ही मुसलमान ने
हिन्दू को भी लूट-खसोट ।
पागल से अन्धे-से हो-हो,
अपनी अपनी जय-जय कर,

१- आत्मोसर्ग - सियारामशरण गुप्त, पृ० ५२.
२- वही.

हिन्दू मसजिद पर चढ़ दौड़े,
मुसलमान देवालय पर ।[१]

मिलन

श्री रामनरेश त्रिपाठी का `मिलन` एक प्रेमकाव्य है । इसके पहले सर्ग में अपने हावने वन को छोड़ कर जाने वाले एक युवक और युवती को दर्शाया गया है । युवक माज की सेवा करना चाहता है, लेकिन अपने से दूर जाने-वाले युवक को, युवती रोक ती है । अन्त में, दोनों वहाँ से निकलते हैं और एक नाव में चढ़कर नदी पार करना ाहते हैं । कुछ देर के बाद आँधी आती है तो युवती डरती है । भय से काँपने वाली स युवती से युवक इस नश्वर तन के बारे में कहता है । यहाँ भी विश्व की नश्वरता र प्रकाश डाला गया है --

देख प्रकृति का कोप भयानक
बोला प्रणयी वीर ।
प्रिये । हमें अब तजना होगा
यह क्षणभंगुर शरीर ।[२]

ामायनी

`कामायनी` महाकवि जयशंकर प्रसाद की अन्तिम तथा छायावाद की एक प्रमुख ति है । यह तो पूरे हिन्दी-साहित्य का एक प्रौढ़तम काव्य है । इसमें कवि ने पौरा-णिकता को आधार बनाकर आधुनिक धरातल पर पात्रों की सृष्टि की है । इसमें कवि ने आधुनिक-युग के समस्त प्रश्नों का समाधान भी प्रस्तुत किया है । यहाँ आकर कवि ो दार्शनिक चेतना का पूर्ण विकास हुआ है । इस रचना का उद्देश्य है, मानव की बुध-प्रतिष्ठा को बनाये रखना । साथ-साथ प्रसादजी ने जीवन का शाश्वत-संदेश भी

१- आत्मोसर्ग - सियारामशरण गुप्त, पृ० २५.
२- मिलन - श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृ० २४.

ा सुनाया है । यही काव्य की सफलता का चरम-बिन्दु है । 'कामायनी' में ऐसे कई ान हैं, जहाँ बौद्धदर्शन के अनित्यता, दु:ख आदि तत्वों को प्रश्रय मिला है ।

क्षणिकवाद से प्रभावित होकर प्रसाद जी ने अनेक स्थलों पर इसको अभिव्यक्त या है । संपूर्ण जगत को नश्वर बनाने वाली कवि की नीचे की पंक्तियाँ देखिये --

मौन । नाश । विध्वंस । अँधेरा ।
शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते ।
तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव ।[१]

। आशय को प्रकट करने वाली एक अन्य उक्ति भी 'कामायनी' में आयी है । वे वन को मृत्यु का अत्यन्त क्षुद्र-अंश मानते हैं । बादलों में बिजली के समान, यह वन भी संसार में क्षण भर रहता है और चमक कर चला जाता है । कवि का कहना --

जीवन तेरा क्षुद्र-अंश है
व्यक्त नील घन-माला में,
सौदामिनी-संधि-सा सुन्दर
क्षण भर रहा उजाला में ।[२]

ाद जी भी संसार के दु:ख का अनुभव करते हैं । सब सुख अस्थिर हैं, जीवन में सदा धी और पीड़ा की लहरों को देखकर कवि कहते हैं --

पवन की प्राचीर में रुक,
जला जीवन जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्व दिन की,
मैं कुसुम ऋतु रात रे मन ।[३]

कामायनी - प्रसाद, पृ० १८.
३. वही - पृ० १६, २२५.

। दु:ख के कारण को वे समूल नष्ट करना चाहते हैं । प्रसाद जी का कहना है कि स्तव में सुख की अधिकता ही दु:ख में परिणत हो जाती है --

जीवन की लंबी यात्रा में,
खोये भी हैं मिल जाते,
जीवन है तो कभी मिलन है
कट जाती दु:ख की रातें ।[१]

द्धधर्म का अनात्मवाद किसी भी वास्तविक सत्ता का अस्तित्व नहीं मानता । फल-रूप उसमें अनीश्वरवाद, परिवर्तनशीलता आदि तत्वों का उदय हुआ । इसी भाव ''कामायनी'' में मनु व्यक्त करता है --

देव न थे हम और न ये हैं,
सब परिवर्तन के पुतले,
हाँ कि गर्वस्थ में तुरंग सा
जितना जो चाहे जुत ले ।[२]

र्थात् हम सब परिवर्तन के पुतले हैं ।

प्रसाद जी अहिंसा के समर्थक भी हैं । अहिंसा और करुणा से प्रभावितहोकर होंने हिंसा का तिरस्कार किया । निरीह प्राणियों के बारे में कवि का अहिंसावादी ष्टकोण है --

पर जो निरीह जीकर भी कुछ
उपकारी होने में समर्थ,
वे क्यों न जियें उपयोगी बन,
इसका मैं समझ सकी न अर्थ ।[३]

कामायनी - प्रसाद, पृ० २२२.
वही - पृ० २५.
वही - पृ० १४८.

साद जी हिंसात्मक कार्यों को नीच समझते थे । प्राणियों की बलि को उन्होंने न्याय माना । हिंसात्मक-कार्य हृदय को चूर-चूर कर देता है । `कामायनी` में श्रद्धा ौर मनु के माध्यम से हत्याकाण्ड के विरुद्ध अपने विचार को प्रसाद ने व्यक्त किया । हिंसात्मक कार्यों के बारे में कवि का कहना है --

क्यों इतना आतंक ठहर जाओ गर्वीले,
जीने दे सब को फिर तू भी सुख से जी ले ।[1]

शुबलि को अमानवीय कर्म बतलाने वाली पंक्तियाँ देखिये --

वे द्रोह न करने के स्थल हैं
जोपाये जा सकते सहेतु,
पशु से यदि हम कुछ ऊँचे हैं
तो भव-जल-निधि में बने सेतु ।[2]

ामायनी` मानवतावादी स्वर को भी मुखरित करता है । कवि के ये विचार `वैष्णवों, ियों तथा बौद्धों की अहिंसा का रूपान्तर ही है । मूक पशुओं की निर्मम हत्या कवि दय को द्रवित किये बिना नहीं रह जाती है, और वे कवि एककंठ से मानवीयतावाद ेता का राग अलापने लग जाते हैं ।[3]

विश्वमैत्री का प्रतिपादन भी `कामायनी` का विषय रहा है । सेवा के गुण े बारे में कवि कहते हैं कि सामाजिक दु:ख को दूर करने के लिए हमें अपने व्यक्तित्व ो तपाना चाहिए । तभी जीवन सुन्दर और सुखमय बनेगा । `कामायनी` का सन्देश --

तप नहीं, केवल जीवन-सत्य,
करुणा यह क्षणिक दीन अवसाद,

-२.कामायनी - प्रसाद, पृ० २१३, १५६.
- प्रसाद की काव्य-प्रवृत्ति - डा० कामेश्वर प्रसाद सिंह, पृ० २१५.

तरल आकांक्षा से है भरा,
सो रहा आशा का आह्लाद ।[1]

पथगा

`त्रिपथगा` एक ऐसा काल है जिसमें भगवतीचरण वर्मा जी ने महाभारत के क्त वीर-पात्र कर्ण के चरित्र का सांगोपांग चित्रण किया है । कर्ण को इतनी प्रमु- ा देने का कारण वर्मा जी यही बताते हैं कि कर्ण ने ही उनको महाभारत के पात्रों सबसे अधिक प्रभावित किया है ।

वर्मा जी ने खण्डकाव्य के आरंभ में ही मनुष्य के कष्टपूर्ण जीवन की झांकी तुत की है । जीवन में आने वाली हिंसा, क्रोध, घृणा आदि से होने वाले नाशकारी य का वर्णन वर्मा जी ने इस प्रकार किया है --

मानव के दर्प से विक्षुब्ध आज पृथ्वी है,
मानव के क्रोध से विकंपित है आसमान,
मानव की घृणा से दिशाएँ सहमी-सी हैं,
मानव की हिंसा में मृत्यु आज मूर्तिमान ।[2]

र्ण के मुँह से भी कवि ने यही बात दुहराई है --

है जहाँ घृणा विद्वेष, क्रोध और मत्सर
तुम वहीं मृत्यु की सीमा को पहचानें ।[3]

एक क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने पर भी सूतपुत्र कहकर, कर्ण को समाज से रस्कृत और लांछित किया गया । तब से कर्ण के मन में इन उच्च पदों पर आसीन

कामायनी - प्रसाद, पृ० ६५.
त्रिपथगा - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ११.
वही - पृ० १५.

देवों और अमरता को प्राप्त करने वाले उत्सुकों के प्रति घोर घृणा और तिरस्कार था । वास्तव में यह अमरत्व और देवत्व व्यर्थ है । इसके बाद कर्ण कहता है कि ये देवतागण ही छल, कपट, भोग, तृष्णा आदि के प्रेरक हैं । इन्हीं से इन दुर्गुणों का आविर्भाव होता है । उसी समय मनुष्य सदाचारशील, सद्गुणी, सत्य एवं संयम का अनुयायी होता है । कर्ण इसका वर्णन इस प्रकार करते हैं --

अमरत्व और देवत्व -- अरे वह धिक् है --
हो महापात की इन्द्र कि जिसका स्वामी ।
छल कपट, भोग, तृष्णा देवों के गुण हैं
मैं मनुज, सत्य का संयम का अनुयायी ।[१]

प्राणार्पण

अमर शहीद स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के आत्मोसर्ग पर कवि `नवीन` जी ने अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाने के हेतु `प्राणार्पण` खण्डकाव्य की रचना की । भारत के उज्ज्वल सितारे के रूप में शंकर जी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए जो प्राणार्पण किया, उस शुभ और महत्वपूर्ण कार्य ने कवि के हृदय में उनके प्रति एक अमिट श्रद्धा जागृत की । लोककल्याण के मार्ग में कवि अहिंसा को अनिवार्य मानते हैं । हिंसा से जो अहित होता है उसका वर्णन इन पंक्तियों में कवि करते हैं । यहाँ अहिंसा की महत्ता को दिखाने का प्रयास है --

जहाँ सिंह के जीवन में है हिंसा का अपूर्ण उद्भव,
वहाँ नहीं मानवक्रीड़ा में हिंसा शुद्ध कभी संभव ।
मानव के जीवन में कितना कम है हिंसा का अनुपात,
यह तो उसके दैनिक जीवन से ही हो जाता है ज्ञात,
अत: नहीं हो सकता मानव केवल हिंसा-रत प्राणी,
हिंसा में कब हुई प्रस्फुटित सामाजिकता कल्याणी ?[२]

१- त्रिपथगा - भगवती चरण वर्मा, पृ० २८.
२- प्राणार्पण - `नवीन`, पृ० २१.

ौन्तेय कथा

महर्षि व्यास प्रणीत महाभारत की कथा पर आधारित कवि उदयशंकर भट्ट ा यह प्रबन्धकाव्य है। बहुमुखी प्रतिभा संपन्न कवि श्री उदयशंकर भट्ट का प्रस्तुत काव्य माज की प्रगति को दृष्टि में रखकर लिखा हुआ है। समाज को प्राचीन जीर्णता की ह से उठाकर नवीनता की हद तक ले जाना ही यहाँ कवि का उद्देश्य है । इस काव्य ा मुख्य स्वर है शिवसंस्कृति, जिसने प्राचीन आर्यों एवं अनार्यों को प्रेम के पाश में बाँध दया था । यह शिवसंस्कृति वस्तुत: उस समय समानता एकता, ऊँच नीच के भाव से हित एक विश्वास था, जिसने उस समय संपूर्ण देश में शान्ति, मर्यादा की स्थापना ा ।[१]

जुए में हारने के पश्चात् द्वैतवन में द्रौपदी के साथ रहने वाले पाण्डवों को दु:ख ा पहाड़ ही काटना पड़ा । मदान्ध कौरवों का अहंकार एवं पाण्डवों के दु:ख की हराई को अच्छी तरह जानकर वेदव्यास महर्षि ने पाण्डवों से युद्ध करने की प्रार्थना की नकी प्रेरणा से अर्जुन, इन्द्र और युद्ध के आराध्य देवता रुद्र को प्रसन्न करने के हेतु न्द्र शील पर्वत पर आसीन हो गए । प्रसन्न होकर इन्द्र ने उनको शिवोपासना का मंत्र ता दिया । संतुष्ट होकर शिव अर्जुन की परीक्षा लेने किरात के वेष में अर्जुन के पास ाये । एक शूकर पर बाण चलाने के वाद-विवाद में दोनों में युद्ध होता है । अन्त में सन्न होकर शिव अर्जुन को एक अपराजेय अस्त्र दे देते हैं । इसी समय लोककल्याण की ावना के बीज को अर्जुन के मन में बोने का शिव का श्रम भी बहुत सराहनीय है, जो ैद्धसिद्धान्तों की सीमा के अंतर्गत आता है । शिव अर्जुन को इस प्रकार उपदेश देते हैं --

जो ऊँचे बन कर नीचे देखा करते हैं नर वे,
जो सर्वोन्नति में उन्नति माना करते हैं नर वे ।
जो सबके हित में निज हित समझा करते हैं नर वे,
जो सबको अपने सम ही जाना करते हैं नर वे ।

- कौन्तेय कथा - उदयशंकर भट्ट, निवेदन.

हे अर्जुन, जीवन वह है जो पर को जीवन देता,
उसमें देवत्व छिपा है वह नर में ही रहता है ।[१]

ँ मानवतावाद की ही गुंजाइश है ।

उदयशंकर जी की एक अन्य रचना है तक्षशिला । यह भारत-भारती से प्रभावित कर लिखा हुआ खण्डकाव्य है । इसकी भूमिका में कवि करुणा के बारे में लिखते हैं ।

`तक्षशिला` खण्डकाव्य बौद्धधर्म से प्रभावित है । क्योंकि इसमें अशोक का राज्य-स्तार, बौद्धधर्मदीक्षा, कुणाल का तक्षशिला-शासन, तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल निर्वासित होना और अंधे होकर अपनी स्त्री कांचनमाला के साथ गिरि-नदी-कानन, पदों में घूमना, मगध राज्य में जाकर पिता से मिलना, अशोक का न्याय और कुणाल पुत्र संप्रति का तक्षशिला का शासक बनाया जाना आदि कथाएँ हैं ।

क्षेत्र

महाभारत के प्रसिद्ध पात्र युधिष्ठिर और भीष्म के प्रसंग को उठाकर दिखाने हेतु कवि `दिनकर` ने `कुरुक्षेत्र` खण्डकाव्य की रचना की । वास्तव में युद्ध एक च तथा कठोर कर्म है । किन्तु कुछ खास परिस्थितियों में जब अनीति का जाल बिछा-प्रतिकार लेने की भावना से हम आमंत्रित हो जाते हैं तब युद्ध अनिवार्य हो जाता है । कन भीष्म के मुँह से इस युद्ध की विनाशकारी और हिंसात्मक विभीषिका का वर्णन या गया है --

युद्ध को पहचानते सब लोग हैं,
जानते हैं, युद्ध का परिणाम अन्तिम ध्वंस है ।
सत्य ही तो, कोटि का वध पाँच के सुख के लिए ।[२]

अधर्म से संसार भर जाता है तो लोग कातर हो उठते हैं । उसे तब धर्म तथा दया दीपक की अनिवार्यता अनुभव होती है । इतना होने पर भी लोग भोगलिप्सा, लौकि-ा आदि से विमुख नहीं रहते । बरसों से जो दु:ख-दैन्य आदि चल रहा है, वास्तव

कौन्तेय कथा - उदयशंकर भट्ट, पृ० ७७.

' वह परंपरागत है, रहेगा भी । आज तक न जाने कितने महापुरुष हमारे देश में
दा हुए तो भी कोई भी परंपरा से चलते आने वाले इस दु:ख का अन्त न कर सके ।
सी बीच कवि दिनकर बुद्ध की ओर भी इशारा करते हैं --

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर याकि हों भगवान,
बुद्ध हों कि अशोक, गांधी हों कि ईसु महान्,
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान,
दग्ध कर पर लो, स्वयं भी भोगता दु:ख-दाह
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह ।[१]

ापू

लोकहित की भावना से संपूर्ण बापूजी नोआखली की यात्रा कर रहे थे । कवि दिनकर ने उन पर एक छोटा सा काव्य लिखने का निश्चय किया । यह काव्य उसी विचार का परिणाम है । मगर खेद की बात है कि उनकी मृत्यु पर ही एक शोककाव्य रूप में यह पुस्तक बाहर निकली । पथ के सारे अंगारों को सहता हुआ बापू लोक-ल्याण के कार्य में लगे थे । तभी कवि संसार की क्षणिकता नाम की क्रूर नीति पर देह प्रकट करते हैं । जिस प्रकार किसी की भी परवाह किये बिना सूर्य सारे लोक को ालोकित करता रहता है, उसी प्रकार कवि उस क्रूर नीति की परवाह किये बिना लोक-ि पर भासमान होने का आशीष गांधी जी को देते हैं । कवि का कहना है --

सच है कि समय के स्मृति-पट पर
रवि सा होगा तू भासमान,
हम चमक चमक बुझ जायेंगे
क्षीणायु, क्षणिक उडु के समान ।[२]

- कुरुक्षेत्र - दिनकर, पृ० १०८.
- बापू - दिनकर, पृ० ३१

मगर महात्माजी ने लोक-हित को दृष्टि में रखकर मृत्यु को सहर्ष वरण कर लिया । इस करुणानिधि के चरणों में अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करके कवि कहते हैं --

करुणामय, करुणाप्राण, निखिल
अशरण पतितों की एक शरण
जग को देने को अमृत
मृत्यु का किया जिन्होंने स्वयं वरण ।[१]

मुक्तियज्ञ

पन्त जी का `मुक्तियज्ञ` गांधी जी के नेतृत्व में लड़े गये भारत के स्वतंत्रता-संग्राम से संबंधित खण्डकाव्य है । यह उनका महाकाव्य `लोकायतन` का एक अंश है । भारतीय जन जीवन को चेतना शक्ति और प्रेरणा प्रदान करने वाले महात्मा गांधी जी का उत्कृष्ट व्यक्तित्व ही इस खण्डकाव्य का मुख्य पुरोधा है । इस खण्डकाव्य की रचना व्यष्टि तक ही सीमित नहीं, वह समष्टिगत भी है । `मुक्तिपथ का धुँआ भी केवल भारत के आकाश को ही नहीं संपूर्ण विश्व को सुरभित करता है, क्योंकि `मुक्तियज्ञ` के हवनकुंड से उठने वाले आलोक में भारत की महान सांस्कृतिक परंपराओं के अगणित ज्योतिखण्ड सम्मिलित है । विश्व की पृष्ठभूमि में भारत का ध्यान निरी बौद्धिक कल्पना और आदर्शवादी सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है । भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के प्रभाव के फलस्वरूप यह प्रभाव हमें दाय में मिला है ।`

कवि सहानुभूतिशील है । उनका भावुक कवि-हृदय पीड़ित मानवों की पुकारों से पिघला रहता है । बंगाल में जो दुर्भिक्ष आया था उसका एक करुणापूर्ण चित्र कवि ने यहां अंकित किया है --

सदियों के पिचके पेटों ने
किया क्षुधार्त करुण वन-रोदन,

१- बापू - दिनकर, पृ० ६१.

२- ~~मरियम~~ - ~~सरस्वती सिंहल~~, पृ० २२.

था दुकाल निर्मम प्रतीक भर,
कब से भूखे भूके जनगण ।[1]

काम

'सत्यकाम' तो कवि पंत जी के आध्यात्मिक चिन्तन को प्रतिफलित करने वाला नूतन काव्य है । इसका आधार वैदिक संस्कृति है । हिंसा-अहिंसा के बारे में भी विचारोत्तेजक वर्णन है । कवि के कथानुसार यह ज्ञात होता है कि महात्मा बुद्ध के भी अहिंसा पर लोगों की विशेष आस्था थी । उस दिव्य अमोघ अस्त्र अहिंसा वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है --

वह धरती का सुत जो सामूहिक मानव था
शील नम्र वाणी में बोला भू के जन से-
शान्ति । शान्ति । मत महानाश ढाओ भूतल पर ।
आत्मनिरीक्षण करो । सत्य का पथ न जुगुप्सा ।
हिंसा पशु का अस्त्र । अहिंसा ही मानव का
दिव्य अमोघ कवच । जिसको धारण कर ही नर
विजय वैजयंती फहरा सकता भूतल पर ।
अमरों को आमंत्रित कर सौहार्द्र के लिए ।
- - - -
मानव सत्य अहिंसा ही है -- परम प्रेम जो
यही सत्य पथ । जिस पर विकास के पग धर
मनुज प्रगति कर सकता शाश्वत । धरा धाम को
स्वर्ग लोक में, लोक-स्वर्ग में दिव्य परिणत कर ।
जीवन-सागर का मंथन कर अमृत और विष
निकले-विष घृणा, प्रतीक जो मनुज हृदय के ।

---

[1] मुक्तियज्ञ - पंत, पृ० ५६.

प्रेम अमृत कर पान, बनो निर्भय, अजेय तुम ।
देख रहा हूँ मैं भविष्य में सूर्य ज्योति हो,
सिन्धु वारि से तड़ित् शक्ति कर प्राप्त मनुजता
ऊर्जस्वल बन, नव भू जीवन स्वर्ग रचेगी ।[१]

ल का काल

सन् १९४३ में बंगाल में एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था । नग्न बुभुक्षित देश उस ा-ज्वाल में स्वहा हो गए । उन दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु के मुंह में पड़े हुए आदमियों की गार के लिए कवि `बच्चन` ने इस खण्डकाव्य की रचना की । इस समय बंगाल के ों के प्रति दया, सहानुभूति, सेवातत्परता आदि सद्विचार को रखना ही उनके नका लक्ष्य रहा । लोग कीड़ों की तरह मर रहे थे । उनकी दयनीय दशा का वर्णन न के ही शब्दों में सुनिए --

कैसे भूखों के दल के दल
दर-दर मारे मारे फिरते
दाने-दाने को बिलबिलाते,
ग्रास-ग्रास के लिए तरसते,
कौर-कौर के लिए तड़पते,
मौत मर रहे हैं कुत्तों की
अरे नहीं,
कुत्ता भी मरता नहीं इस तरह,
मौत मर रहे हैं कीड़ों की,
या इनसे भी निम्न कोटि की
(मनुष्य के महापतन की बनी न सीमा)[२]

सत्यकाम - पंत, पृ० १८८.

बंगाल का काल - बच्चन, पृ० ४९-५०.

ारगीता

यह कवि 'बच्चन' की रचना है । यह भगवद्गीता का अनुवाद है । महत्वपूर्ण
क्षेत्र की युद्धभूमि पर निराशमना रहने वाले पार्थ को साहस देने के लिए कृष्ण ने
ने सद्गुणों को संगृहीत करके गीतोपदेश दिया था । पुरुषार्थ जिनकी संपत्ति है उसे
वन अमरत्व प्रदान करता है । इस पुरुषत्व के नाम पर जो लोग गर्व करते हैं, उनको
ण के बताये हुए इस मार्ग से होकर चलना पड़ता है । कृष्ण का उपदेश है --

कौन्तेय,
संयोग
इन्द्रियों औ विषयों के
शीत-उष्ण-सुख-दुःखद,
भंगुर है, अनित्य है,
इन्हें सहन कर ।[१]

ा प्रकार जो सारी लौकिक वृत्तियों से ऊपर उठकर जीवन-निर्वाह करता है वह सच्चा
ष्य है । श्रीकृष्ण का कहना है --

सभी ओर से
जो अपनी इन्द्रियाँ
इन्द्रियों के विषयों से
सिमट लेता
जैसे कच्छप निज अंगों को,
उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है ।[२]

ात्मा बुद्ध ने जिस दुःख की व्याख्या की थी और उसके कारणों पर प्रकाश डाला था
का मूल हम भगवद्गीता में भी देख सकते हैं । लौकिक वासना से जो सर्वनाश हो जाता

---

१ नागरगीता - बच्चन, पृ० २८-२९.
२ वही - पृ० ३९.

का वर्णन करके अर्जुन को कृष्ण समझाते हैं --

विषयों के चिंतन करने से
उनके प्रति आसक्ति उपजती,
उससे जन्म कामना लेती,
उससे जन्म क्रोध का होता,
फिर उससे सम्मोह उपजता,
उससे स्मृति-विभ्रम हो जाता,
उससे बुद्धि नष्ट हो जाती,
जिससे सर्वनाश हो जाता ।[१]

र्वनाश से ही मानव जीवन दु:खपूर्ण बन गया है । लेकिन जो पुरुष इन्द्रियों को वश में कर लेता है वह इस सर्वनाश और दु:ख से स्वयं मुक्त हो जाता है । वह से ऊपर उठता है । यही कृष्ण का भी कहना है --

किन्तु विधेयात्मा,
विमुक्त हो राग-द्वेष से,
अपने बस की हुई इन्द्रियों से
विषयों का सेवन करता,
प्रसन्नता अनुभव करता है ।
उस प्रसन्नता से
सबके सब दु:ख कट जाते,
बुद्धि शीघ्र
सुस्थिर हो जाती ।[२]

य भोग से विरत होकर रहने का महात्मा बुद्ध के उपदेश यहाँ संस्मरणीय हैं । क्योंकि के अनुसार --

---

नागरगीता - बच्चन, पृ० ४०.

जिसकी सब इन्द्रियाँ
सर्वथा
अपने अपने विषय भोग से
खिंची हुई हैं,
उसकी प्रज्ञा प्रतिष्ठित है ।[१]

ा लौकिकता से हम मुड़ जाते हैं, तो अवश्य नाश के दुर्जय मार्ग से भी दूर हट जाते । उसके पीछे दु:ख का आवरण भी हट जाता है । वहीं हमें आनन्द या शान्ति का ुभव हो जाता है । कवि का कहना है --

नद नदियों से
नित्य भरे जाने पर भी ज्यों
अंबुधि
अचल प्रतिष्ठित रहता,
उसी तरह से
सर्व कामनाएँ
जिसमें जा, लय हो जाती
शान्ति वहीं पाता,
न काम से विचलित प्राणी ।
जो संपूर्ण कामनाएँ तज
निर्मम निरहंकार और निस्पृह
रहता है,
अर्जुन,
शान्ति वही पाता है ।
ऐसी ब्रह्मस्थिति को पाकर

---

१ नागरगीता - बच्चन, पृ० ४१.

वह फिर नहीं विमोहित होता,
अंतकाल में भी
ऐसी ब्रह्मस्थिति में रह
ब्रह्मानन्द उसे मिलता है ।[१]

चौथे अध्याय में तो कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग की शिक्षा देता है । जगती में जब जब धर्म का राज्य होता है तब कोई भी महात्मा यहाँ जन्म लेता है और साधुजनों के परित्राण का काम करता है । इसी प्रकार कृष्ण का अवतार भी लोक कल्याण-हित ो था । स्वयं अपने ही शब्दों में कृष्ण ने इसका वर्णन किया है --

साधुजनों के परित्राण के
औ असाधुओं के विनाश के
और धर्म संस्थापन के हित
युग-युग, भारत,
मैं अवतार लिया करता हूँ ।[२]

रक्तचन्दन

महात्मा गांधी जी का निधन हो गया था । वास्तव में गान्धी जी भारत शान्तिचंद्र थे, जो शोणित में डूब चुके थे । चेतनाहीन और किंकर्तव्यविमूढ़ लोग गांधी जी के साथ उस देशव्याप्त शोक में डूबे हुए थे । गांधी जी के शरीर से बहते हुए क्त को रक्त नहीं, बल्कि रक्तचन्दन मानते थे और भारत को पवित्र बनाने के लिए से सारे देश में छिटकाना चाहते थे । जनहित के लिए अपना सर्वस्व अर्पित किया था ौर वे शिव के समान थे, जिन्होंने लोककल्याण के लिए विषपान किया था । अब वि नरेन्द्र शर्मा उसी अहिंसा के पुजारी गांधी जी की महिमा व्यक्त करते हैं --

अहिंसा जिनके लिए रणचातुरी,

- नागरगीता - बच्चन, पृ० ४१-४२.
- वही - पृ० ५५.

वह नहीं समझे अहिंसा ही
प्रगति रथ की धुरी ।[१]

धार

महात्मा गान्धी जी के अहिंसात्मक अभियान का सुपरिणाम यह निकला कि त अहिंसात्मक जनक्रान्ति की सबसे उन्नत चोटी पर विराजमान हुआ । वहीं हम ट्रकल्याण के स्वप्न को साकार बना सकते हैं । राष्ट्रकल्याण के लिए पूज्य बापू ो सहयोग हमें दिया था, उसी का वर्णन प्रस्तुत काव्य में कवि सोहनलाल द्विवेदी दया है । भारत संकट में था, इस संकटापन्न स्थिति से उसे उबारने के लिए युवकों सबल सामने आना चाहिए । कवि द्विवेदी ~~की~~ युवकों को सामने आने का आह्वान हैं । उन युवकों में विद्यमान गुणों का भी वे आलेखन करते हैं । ये गुण तो वे हैं, महात्मा बुद्ध ने करुणा, परदु:खकातरता, सहानुभूति आदि नामों से पुकारा । देखिये --

रस विलास के रहें न लोलुप जिनमें हो विराग वैभव का,
अतुल त्याग हो क्षिपा देश हित
जिन्हें गर्व हो निज गौरव का,
सेवाव्रत में जो दीक्षित हों
दीन दु:खी के दु:ख से कातर
पर संताप दूर करने को
ललक रहा हो जिनका अंतर,
बनें देश के हित वैरागी
जो अपना घरबार छोड़कर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो संकट हर,

---

१ रक्तचन्दन - नरेन्द्र शर्मा, पृ० १३.

सदा सत्य-पथ के अनुगामी
जिन्हें अनृत से मन में भय हो,
दुर्बल के बल बनने के हित
जिनमें शाश्वत भाव उदय हो ।[१]

ना
--

ऐसा लगता है कि गांधी जी को बहुत ऊपर उठाने का श्रेय सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं को है । लगता है, गांधी जी को आराध्य देवता मानकर उनकी व्यसाधना धन्य हुई हो । उन्होंने अहिंसा और सत्य के चक्रों के सहारे जिस रथ आगे बढ़ाया उसका वर्णन यहाँ किया गया है --

सत्य अहिंसा के चक्रों में
सज्जित सुरथ तुम्हारा,
आगे बढ़ा अहर्निशि ले
आत्मा की उज्ज्वल धारा
गति अबाध रुक सका न रोके,
तुम जीते, जग हारा ।[२]

मुच द्विवेदी जी ने महात्मा गांधी जी और भगवान बुद्ध को बहुत निकट माना और धी जी को बोधिसत्व के रूप में देखते हैं --

तुम्हें देखकर किया विश्व
ने बोधिसत्व का दर्शन ।
किस भाषा में करूँ आज मैं
देव । तुम्हारा वन्दन ?[३]

युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ४५.
चेतना - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ८.
वही - पृ० १०.

'धी जी को मृत्यु के कराल-हस्तों ने दबोच लिया था । उनके निधन से द्विवेदी जी महानिर्वाण' शीर्षक से एक छोटी सी कविता लिखी । अपने प्राणप्रियों के बिछुड़ने दु:ख तो असहनीय है। इसके कई उदाहरण हमें इतिहास से मिलते हैं ।

श्री रामचन्द्र को बनवास की सजा मिली थी, तो सारी अयोध्यापुरी में 'हाकार मच गया था । उस समय शोकसिन्धु में डूबी हुई जनता और साथ साथ ा का वर्णन करना बड़ा मुश्किल है । उसी प्रकार व्रज से विदा लेकर चले हुए श्रीकृष्ण कारण व्रजवासियों के बहाये हुए अश्रुओं की मात्रा कम न थी । ईसा मसीह के शूली चढ़ने पर भी संसार का यही हाल था । इसी प्रसंग में कवि महात्मा बुद्ध का भी ारण करते हैं । कुशीनगर में भगवान बुद्ध ने निर्वाण को प्राप्त किया था । साथ थ वसुन्धरा विधवा भी हो गयी थी । बापू के निधन से भी यही शोचनीय दशा ्रत की भी हुई थी --

बोधिसत्व ने कुशीनगर में,
आज महानिर्वाण लिया ।
विधवा वसुन्धरा रोती
बापू ने महाप्रयाण किया ।[१]

। बापू ने हिंसा का तिरस्कार किया था और अहिंसा को गले लगाया था । एक ार कहें तो अहिंसा उनकी राष्ट्र के लिए अपूर्व देन थी । इस आशय को व्यक्त करके व कहते हैं --

राष्ट्रपिता की देन राष्ट्र को
सबसे बड़ी अहिंसा
जन-जन में सद्भाव जगे
जागे न कभी भी हिंसा ।[२]

---

२. चेतना - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ४१, ५३.

ध्यायन

गांधीयुग की भावनाओं का परिचय देने वाला यह काव्य भारत के समस्त लोगों आशा का केन्द्र है । गांधी जी के पवित्र सन्देशों को घर-घर पहुँचाने में द्विवेदी का प्रस्तुत काव्य सार्थक हो गया था । युगावतार गांधी जी ने युग-युग की रूढ़ियों तोड़कर नवजीवन की नींव डाली थी । कालचक्र में पड़कर पिसती कराहती जगती ाणों को उन्होंने अभय दान ही दिया था । महाकाल की छाती पर करुणा के श्लोक उन्होंने लिखे । वे शक्ति की मूर्ति थे । सेवाग्राम में बैठे हुए उस तपोमूर्ति दर्शनमात्र से लोगों में नयी चेतना की लहर उठने लगती थी । उनको देखकर ऐसा ा था मानो तपोमुद्रा में बुद्ध ही बैठे हों । यहाँ युद्ध की ओर संकेत किया गया है--

रह-रह बापू की तपोमूर्ति
तन-मन में देती नयी स्फूर्ति

\- - -

खिंचता है सहसा वही चित्र
ज्यों बोधिसत्व बैठे पवित्र..

ायक

`जननायक` कवि रघुवीरशरण `मित्र` की हिन्दी साहित्य को एक सर्वोत्तम देन सियारामशरण गुप्त जी के `बापू` काव्य के बाद यही एक विस्तृत काव्य है, गांधी जी के जीवन-चरित को आधार बनाकर लिखा हुआ है । महाकाव्यकार ` जी का यह काव्य वास्तव में उनके अनथक परिश्रम का फल है । युगधर्मानुकूल ना को लेकर ही उन्होंने अपनी भावनाओं को रूप दिया है । गान्धी जी का कतत्व इसमें इतना उज्ज्वल है कि उनकी हरेक पगध्वनि के साथ हमारा युग मुखरित ा है ।

गान्ध्यायन - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ६२.

गांधी जी आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ जननायक हैं । बौद्धधर्म में संघ का बहुत
ा स्थान है । बौद्धधर्म के त्रिरत्नों में तीसरा संघ है, जिसकी शरण में जाने के लिए
ने उपदेश दिया था । यहाँ भी सत्संगति करने की बात ही ध्वनित होती है ।
सत्संगति के बारे में उपर्युक्त काव्य में भी उल्लेख मिलता है --

सत्संगति वह गति है जिसमें रस मिलता आनन्द लोक का ।
सत्संगति वह दिव्य लोक है नाम नहीं है जहाँ शोक का ।।
सत्संगति में अमर ज्योति है, तम कुसंग में भरा हुआ है ।
खिलते हुए कमल को देखो, सत्य धरा पर धरा हुआ है ।।[१]

कल्याण-कामना पर आधारित बौद्धधर्म में सेवा भावना को मुख्य स्थान मिला है ।
सेवा भावना के बारे में कवि का कहना है --

सेवा से मेवा मिलती है, चमड़ी का क्या घिस जाता है ।
क्या नश्वर तन का घट जाए, सेवा कर नर सुख पाता है ।।
सच्ची सेवा में ईश्वर है, सुख का मुक्ति-द्वार खुल जाता ।
सेवा से दीपक जल जाते, दिन का अमिट दाता धुल जाता ।।[२]

धन की क्षणभंगुरता एवं नश्वर तन के बारे में काव्य में अन्यत्र प्रतिपादन हुआ है ।
देश से लौटने पर अपनी स्नेहमयी माता की मृत्यु के बारे में गान्धी जी जान लेते
। वे बड़े दु:खी होते हैं । तभी संसार की अस्थिरता पर वे दृष्टिपात करते हैं --

ईश्वर की इच्छा है इसमें, कोई कर ही क्या सकता है ।
क्षणभंगुर दुनियाँ में नश्वर, अधिक ठहर ही क्या सकता है ?
एक दिवस सबको जाना है, चार दिनों का यह मेला है ।
पानी के लहरों के ऊपर, क्षणिक बुलबुलों का रेला है ।[३]

जननायक - रघुवीर शरण मित्र, पृ० ५०.
वही - पृ० ५०.
वही - पृ० ७८.

श्वकल्याण के अन्तर्गत आने वाली सेवा-भावना नीचे की पंक्तियों में द्रष्टव्य है ।
ी जी के दलितोद्धार की भावना में निहित तत्व वही विश्वकल्याण है । देखिये--

हम उनको अछूत बतलाते, वे हमको पवित्र करते हैं ।
वे सबकी सेवा करते हैं, हम उनसे भिड़ते डरते हैं ।[१]

हर ज्योति

भारत में जिन महामानवों ने जन्म लिया, सबका जीवन बहुत महत्वपूर्ण और गास्पद ही रहा । महामना नेहरू जी का व्यक्तित्व भी इन महापुरुषों में तीय है । पंडित जवाहरलाल जी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करने के ए डा० अशोक शर्मा का यह खण्डकाव्य बड़ी मात्रा में सफल हुआ है ।

भारत-माँ ने अपनी सुखद गोद में पाल कर हमें बड़ा किया, लेकिन जब वह धीन होकर दु:खी थी, तब सब लाचार थे । तभी भारत के आकाश पर ऐसे कई त्रों का उदय हुआ, जिन्होंने परतंत्रता के चंगुल से छुड़वा कर उसे विजय का मुकुट वा दिया । अपने जीवन मार्ग के काँटों की परवाह किये बिना इन्होंने आगे का ी प्रशस्त किया । 'काश्मीर की समस्या' भारत के लिए एक दु:खद घटना थी । ने हिंसात्मक कार्यक्रम से उस प्रश्न को हल करना चाहा । लेकिन गांधी जी के अनुया-ों में प्रमुख नेहरू जी ने 'भाई-भाई में कैसा हो युद्ध ?' पूछकर आपस में समझौता ा । इसका कारण था नेहरू जी पर गांधी जी का खूब प्रभाव । जिस प्रकार सारे ल्व में बौद्धभिक्षु बौद्धधर्म के प्रचार के लिए घूमते थे, वैसे ही वे भी गांधीवाद के त्र संदेश के साथ सारे राष्ट्र में घूमते हैं । इसी का उल्लेख यहाँ किया गया है --

घूम रहे थे भारत भर में, वे प्रतिदिन कुछ ऐसे।
बौद्ध प्रचारक कभी विश्व में, घूम चुके थे जैसे ।[२]

जननायक - रघुवीर शरण मित्र, पृ० ७८.
जवाहर ज्योति - डा० अशोक शर्मा, पृ० २५.

भारत की विदेश-नीति तो अहिंसात्मक रही है । हमने इसी नीति से स्वतंत्रता भी पायी । लेकिन भारत स्वतंत्र होने पर भी गोआ पुर्तगाल के अधीन था । वहाँ मुक्ति के लिए लोग संघर्ष रत थे । उनके प्रश्न को हल करने के लिए सन् १९६१ में जवाहरलाल जी ने गोआ की ओर प्रस्थान किया । नेहरू जी के प्रयत्न-स्वरूप गोआ स्वतंत्र हुआ । इस प्रकार देश के उद्धारक और विश्वशान्ति के वाहक गांधी जी और नेहरू जी को असंख्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । फिर भी उनके राज्य में सदा शान्ति की लहरें ही उठती रही । देखिये --

शरच्चन्द्रिका जैसी जहाँ विराजती,
शान्ति-अहिंसा प्रभुवर गौतम बुद्ध की ।[१]

भारत की विदेश नीति अहिंसात्मक थी । कई बार ऐसी-परिस्थितियाँ आयीं, जिसमें हमारी परीक्षा ली गयी थी । तिब्बत पर ऐसा आतंक छाया हुआ था कि भारत-रत्न जवाहरलाल जी ने तिब्बत वालों की पुकार सुनी । क्योंकि वे जानते थे कि बौद्धधर्म के अनुयायी तिब्बत की निरीह जनता निर्दोष है । इसलिए अहिंसाचित्त वाले उन लोगों की सहायता करने के लिए वे दौड़ पड़े । इस पर कवि का कहना है --

तिब्बत पर चीनी हमले को,
कैसे हम अच्छा कह देते ?
गौतम के भक्तों की हत्या -
पर हम चुप कैसे रह लेते ।।[२]

विश्वज्योति बापू

महात्मा गांधी जी के बारे में लिखा हुआ डा० रामगोपाल शर्मा जी का एक खण्डकाव्य है यह । इसमें इतिहास पुरुष बापू जी की जीवनगाथा गायी गयी है ।

१- जवाहर ज्योति - डा० अशोक शर्मा, पृ० ४६.
२- वही - पृ० ६५.

ने हिंसा का अन्त करने के हेतु स्नेह की ज्योति फैलायी । जिस भूमि पर महात्मा जी ने कदम रखा, उसी पर पहले प्रेम के कुछ पैगम्बरों ने भी अवतार लिया था, ाम, कृष्ण, श्रीराम जैसे महापुरुषों का उल्लेख करते वक्त कवि बुद्ध की ओर विशेष रूप से संकेत करते हैं --

राम भू-सुता के आँसू का
सागर पाट रहे हैं ।
कृष्ण कंस के महादमन की
कारा काट रहे हैं ।
महावीर, फिर बुद्ध उतरते --
हंसा चढ़ कर शूली ।
उनके पीछे चले मुहम्मद
जहाँ मनुजता भूली ।।[१]

प्रकार से चार अन्य स्थानों पर भी उन्होंने गौतम बुद्ध का उल्लेख किया है ।

कवि शर्मा जी गान्धी जी के जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत करते वक्त उनके स्टर बनकर घर लौट आने का वर्णन करते हैं । बड़ी प्रसन्नता से ही वे घर लौटे लेकिन दूसरे ही क्षण उनका वह प्रसन्नवदन फीका पड़ गया । क्योंकि अपनी माँ की मृत्यु हो गयी थी । इस समय जगत की क्षणिकता और नश्वरता की वे स्वयं खिंच जाते हैं जैसे बुद्धदेव करते हैं और अपने मन को तसल्ली देते हैं । कवि ने हैं --

कस्तूरी । तुम कहती मुझ से,
नश्वर है जब सभी जग के ।
यह जीवन केवल यात्रा है
सब साथी हैं कुछ दिन मग के

---

१ विश्वज्योति बापू - रामगोपाल शर्मा, पृ० ११.

विश्वास करो मेरी प्रेयसि ।
मुझको जग शाश्वत लगता है ।
जड़ चेतन सबमें एक तत्व
आलोक बिन्दु बन जाता है ।[१]

प्तगृह

यह कवि केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' का एक ऐतिहासिक खण्डकाव्य है । इतिहास कारुणतम पृष्ठ को पलटते हुए कवि को बिंबसार और अजातशत्रु के बारे में लिखने ो प्रेरणा मिली । मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के सहारे इस खण्डकाव्य की चना की । कहा जाता है कि गिरिव्रज में उष्णता के लिए प्रसिद्ध एक कारागार था । जातशत्रु ने बिंबसार को कैद करके इसी उष्णता में रखा था । विशिष्ट बन्दियों को समें डाकलकर तरह-तरह की पीड़ाएँ दी जाती थीं । वास्तव में यह तप्त कारागार ातना-गृह ही था ।

आज मानव शैतान बन गया है । वह तो बर्बर कहलाने योग्य बना है । मानव ो ऐसी बर्बरता से मानवता विनाश की मुट्ठी में ही ढकेल दी जाती है । सब तो पनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि में ही मग्न हैं । इस संकटापन्न परिस्थिति में कवि गौतम द्ध का स्मरण करते हैं, उनके अमूल्य सिद्धान्तों की याद करके स्वयं आनन्दित हो जाते --

गौतम का तेज वह
ज्योति वह गरीयसि
द्युति वह वरीयसि
हृदय देवदत्त का
प्रतिपल थी सालती

- विश्वज्योति बापू - रामगोपाल शर्मा, पृ० ४५.

गौतम आत्मीय थे
बन्धु थे, सखा थे और
निस्पृह, निरीह थे
मंगल संसार का
परिमाण मानव का
त्राण मानवता का
गौतम के जीवन का
एकमात्र व्रत था
त्याग, सत्य, सेवा का
और संघवाद की
चतुरंग सत्ता का
तेज बढ़ा वेग से
गौतम के प्रेममय
पावन नेतृत्व में
चरण में अवनत थे ।[१]

ध-सम्राट बिंबसार की बौद्धधर्म पर बड़ी आस्था थी । उन्होंने बुद्ध के पैरों पर सब अर्पण कर दिया था । अपने राज्य तक को उनके चरणों पर सहर्ष आदर भाव से ण किया था । वे बुद्ध, धर्म तथा संघ की शरण को सर्वस्व मानते थे । लेकिन उनके रोधी देवदत्त को यह नीति असह्य लगी । वह अपने राज्य से बौद्ध धर्म के धर्मचक्र का ार नहीं चाहता था । वह अपने संकेत से अपने धर्मचक्र का प्रचार ही चाहता था । सरोष बोल उठा --

धर्मचक्र गौतम का
आगे ही बढ़ता है,
जनपदीय शासन भी,

---

१ तप्तगृह - केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ० ५.

वा चुका प्रभाव से
आचार्य मैं भी हूँ,
हिंसा को रोकेगी
गति अब संकेत से
चलेगा धर्मचक्र अब
मेरी ही इच्छा अब
होगी संचालित
शक्ति-संघ धर्म की,
चाहे चुकाना पड़े,
जो भी मूल्य इसका ।[१]

दी बिंबसार को तप्तगृह के कारागार में कैद रखा गया, उस यज्ञकुण्ड में बिंबसार ाधि लगाये बैठा था । उनकी समाधिस्थ मूर्ति यही बुद्ध जैसी थी । कवि का कहना
--

बिंबिसार बैठे थे
मानों बुद्ध बैठे हों
मूक संसार को
लीन अटल ध्यान में
होतो विकीर्ण थी
किरणें प्रकाश की
उनके प्रशान्त, सौम्य,
दीप्त, मुख-मण्डल से.. ।[२]

तगृह में बैठे-बैठे चन्दो नरेश अपने विरोधी कोणक तथा देवदत्त के क्रूर-कृत्यों के बारे ोचते हैं । इस प्रकार सोचते-विचारते वे संज्ञाहीन बन गये । साथ में उनकी पत्नी

तप्तगृह - केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ० ७
वही - पृ० ७१.

कुशला भी थी । राजा की इस शोचनीय स्थिति से पत्नी तिलमिला उठती है । वह दुष्ट कोणक और विपत्तिजनक देवदत्त को सर्वनाश की आग में जलाना चाहती है । जिस क्रूर पुत्र अजातशत्रु के कारण पिता जी की यह दशा बन गयी है, उस पुत्र का रक्त पीना वह चाहती है । इसके लिए वह शपथ भी कर डालती है । ऐसे पापपंकिल विचारों से कलुषित मन को पवित्रता प्रदान करने के हेतु वह बोधिसत्व का स्मरण करती है --

मूल्य इस जग में
मेरी पुकार सुन
आज राजगृह की
मिट्टी नहायेगी
शोणित में कोणक के
और भर अंजलि में
रक्त देवदत्त का
पूजूंगी आदर से
चरण बोधिसत्व के ।[१]

बिंबसार जब से बन्दी बनाये गये, तब से राज्य क्रान्ति से दुर्गन्धित हैं । कारागृह में वे इस दुर्गन्ध का अनुभव करते हैं । वे बोधिसत्व को ही एकमात्र सहारा मानते हैं, और उस दिव्य-आत्मा से दुष्ट और क्रूर कोणक तथा देवदत्त की तुलना करते हैं --

बोधिसत्व नेता है,
ऐसे ही युग के
और देवदत्त है
निष्ठुर प्रतीक उस
भीषण दुर्गन्ध का

१- तप्तगृह - केदारनाथ मिश्र `प्रभात`, पृ० ७६.

जिससे समाज की
प्राणवायु व्याकुल है
बोधिसत्व साधक है
देवदत्त बाधक है
जीवन में स्वार्थ और
हिंसा को साथ ले
बढ़ने को व्यग्र है,
हाथों में कोणक है
ढाल बन उसके ।[१]

लोकवृत्त

यह हिन्दी साहित्य के आधुनिक कलाकार गुलाब खण्डेलवाल की एक नवीनतम त है । इसमें कवि ने आलोकपुंज युगपुरुष महात्मा गांधी के सार्वभौम और सार्व-लिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है । भारत के क्षितिज पर उदय होने वाले ज्योति- गांधी जी का जीवन-वृत्त वास्तव में सबके लिए पाथेय है, भारतीय संस्कृति के सनातन वन-मूल्य अहिंसा और सत्य से विहीन मानवीयता निरर्थक है । इस सत्य की चरम ना है उनकी यह काव्य-कृति । आज बौद्धधर्म के समान गांधीवाद ने भी लोकप्रियता आंचल पकड़ा है । सत्य और अहिंसा की सक्रिय-प्रवृत्तियों के माध्यम से मानव की ष्टि से समष्टि तक जाने की संभावना है, इसी का उल्लेख कवि अपने ग्रंथ में करते हैं । ं-कहीं भगवान बुद्ध का स्मरण दिलाने वाली पंक्तियों का उल्लेख करके उनके सिद्धांतों अमूल्य निधि बताया है । कवि के शब्द द्रष्टव्य हैं --

विजय हृदय परिवर्तन से हो, वही विगत-भय- होगी,
पशुबल के समुख आत्मा की शक्ति जगानी होगी
मुझे अहिंसा से हिंसा की आग बुझानी होगी
- - - -

तप्तगृह - केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ० ८२.

प्रेम सृष्टि का मूलधर्म, चेतन का नियम सनातन
इसके कारण ही विनाश से बचा आज तक जीवन

- - - -

यही प्रेम की महाशक्ति लेकर मैं आज बढ़ूँगा
क्रोहूँगा न इसे, ईसा-सा सूली भले चढ़ूँगा ।[१]

इन विश्लेषणों से प्रतीत होता है कि हिन्दी के आधुनिक-प्रबन्धकाव्यों के बीच बुद्धदेव से संबंधित काव्यों की संख्या कम नहीं है । बुद्धदेव का चरित राम-कृष्ण-पाण्डवादियों के उदात्त-चरित्र के समान महाकाव्य के भी उपादेय रहे हैं । खण्डकाव्य तो संख्या में अतीव मिलते हैं, जिनमें बुद्धदेव के चरित्र तथा उनके तत्वों का वर्णन मिलता है ।

---

१ आलोकवृत्त गुलाबखण्डेलवाल पृ. २०

षष्ठ अध्याय

य छायावादी कवि -- प्रसाद, महादेवी, पंत और निराला की कविताओं में बौद्ध-तत्व

भारत एक दर्शन-प्रधान देश है । इस कारण यहाँ की कवि-मनीषा दर्शन से ाावित रही । छायावाद-युगीन कवियों पर भी बौद्धदर्शन का खूब प्रभाव पड़ा था । ा युग के मुख्य चार स्तंभ थे -- प्रसाद, महादेवी, पंत और निराला । इनमें प्रसाद र महादेवी पर हम गहराई से बौद्धदर्शन का प्रभाव देख सकते हैं । संभवत: इस युग जयशंकर प्रसाद ने सर्वप्रथम बुद्ध को काव्य-प्रांगण में उपस्थित किया । भारतीय संस्कृति इतिहास के सूक्ष्म विद्यार्थी होने के कारण वे बौद्ध संस्कृति की ओर भी अधिक झुके ? थे । महादेवी जी तो बुद्ध के जीवन की ओर बाल्यावस्था से ही आकर्षित रही । इसलिए इन दोनों की रचनाओं में यत्र-तत्र बुद्ध के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ । पंत और निराला में तो उतने सशक्त और गहन रूप से यह छाप नहीं पड़ी । निरा-ीजी तो पूर्ण रूप से मानवतावादी रहे । उनके मानवतावाद में तो बुद्ध की करुणा, हिंसा जैसे तत्वों को स्थान मिला है । पंत जी के काव्य पर बुद्ध के सिद्धान्तों की छाया त्र मिलती है ।

जयशंकर प्रसाद की कविताओं में बौद्ध-तत्वों का समावेश

यहाँ बुद्ध के तत्वों को तीन शीर्षकों में, जैसे क्षणिकता, दुःख और करुणा, व्यक्त करके प्रसाद जी की कविताओं में दर्शित बौद्ध-तत्वों पर प्रकाश डाला गया है--

णिकता

प्रसाद जी ने जगत में क्षणभंगुरता को व्याप्त देखा । मृत्यु हर पल आकर ष्य को घेर लेती है । इस नश्वरता के परिणाम स्वरूप मनुष्य को दुःख ही दुःख गना पड़ता है । देखिए --

चंचल चन्द्र, सूर्य है चंचल,
चपल सभी ग्रह तारा हैं ।
चंचल, अनिल, अनल, जल स्थल सब
चंचल जैसे पारा है ।
जगत प्रकृति से अपने चंचल
मन की चंचल लीला है ।
प्रतिक्षण प्रकृति चंचल जैसी
यह परिवर्तन-शीला है ।

ाद जी ने इसी क्षणिकवाद से प्रभावित होकर कई स्थलों पर जगत् की इस परिवर्तन-लता, क्षणिकता और नश्वरता को दिखाने का प्रयास किया है । उन्होंने जगत् के र्ण दृश्यों पर नश्वरता के बादलों को आच्छादित होते हुए देखा । उनका कहना है--

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के काननकुंज ।
जगत् नश्वरता से लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज ।

प्रसाद साहित्य और समीक्षा - रामरतन भटनागर, पृ० २६.

तुम्हारी कुटियों में चुपचाप चल रहा था उज्ज्वल व्यापार ।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिसमें संसार ।[१]

जगत् के इन्द्रजाल की महत्ता में कवि ने जीवन को अत्यन्त लघु और क्षणिक बताया है ।[२] `लहर` में कवि का कहना है --

जलता यह जीवन पतंग --
जीवन कितना ? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुंज से कण-कण,
तृष्णा वह अनलशिखा बन--
दिखलाती रक्तिम यौवन ।
जलने की क्यों न उठे उमंग ?[३]

जैसे नीले-बादलों में एक क्षण के लिए बिजली चमककर अपना प्रकाश कर जाती है, वैसे ही यह जीवन भी संसार में क्षण-भर के लिए आकर अपना उजाला कर जाता है ।[४]

`लहर` की पंक्तियाँ देखिये --

काली-काली अलकों में,
आलस, मद नत पलकों में,
सुख की प्यासी ललकों में
देखा क्षणभंगुर है तरंग ।[५]

`प्रेमपथिक` में तो कवि ने इस क्षणिक-संसार में मस्त रहने वालों पर व्यंग्य किया है --

`क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो । देखो`।।[६]

१- लहर - प्रसाद, पृ० १२
२- प्रसाद-दर्शन - द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ० २२५.
३-४. वही - पृ० ४६, पृ० २२५.
५- लहर - प्रसाद, पृ० ४८.
६- प्रेमपथिक - प्रसाद, पृ० २४.

`लहर` में सुख और दुःख दोनों की एक हल्की किरण देखने को मिलती है । वे और जगत के सारे सुख-वैभवों को नश्वर मानते हैं । पहले यहाँ का सुख, वैभव र के लिए सुखदायक प्रतीत होते हैं, लेकिन दूसरे ही क्षण में उनको घोर निराशा घेर लेती है । `अशोक की चिन्ता` शीर्षक कविता में प्रसाद जी इसी मानसिक का वर्णन करते हैं । कलिंग के नर-संहार से विरक्तिपूर्ण जीवन बिताने वाले स; अशोक, गौतम बुद्ध के चरणों की पुनीत रजधूलि को शिरोधार्य करके जगत के समस्त वैभवों से अपने मन को पीछे हटाना चाहते हैं । अशोक के विचारों को यहाँ कवि व्यक्त किया है --

यह सुख कैसा शासन का ?
शासन रे मानव मन का ।
गिरि-भार बना-सा तिनका,
यह घटा-टोप दो दिन का -
फिर रवि-शशि किरणों का प्रसंग ।[१]

- - - -

वैभव की यह मधुशाला,
जग पागल होने-वाला,
अब गिरा उठा मतवाला,
प्याले में फिर भी हाला,
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग ।[२]

हमारे शरीर की नश्वरता के बारे में प्रसाद जी का कहना है --

कौन प्रकृति के करुण काव्य सा, वृक्ष-पत्र की मधु छाया में ।
लिखा हुआ-सा अचल पड़ा है, अमृत सदृश नश्वर काया में ।।

- - - -

१-२.लहर - प्रसाद, पृ० ४७.

किसी हृदय का यह विषाद है, छेड़ो मत यह सुख का कण है ।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ, करुणा का विश्रान्त चरण है ।[१]

जगत की इस दारुणिकता के कारण मनुष्य का मन तो दाहयुक्त, निराशापूर्ण एवं विषादयुक्त बन गया है । प्रसाद जी का भी यही कहना है --

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसाने आयी ।[२]

दु:ख

प्रसाद जी का हृदय विश्वप्रेम, सहानुभूति, करुणा जैसी सद्वृत्तियों का आ है । उनका विचार है कि भगवान दीन-दुखियों को अत्यन्त प्यार करते हैं । क्योंकि दु:ख तो भगवान का पवित्र उपहार है । दु:ख ही मनुष्य को निकट लाता है । यही दु:ख मनुष्य के जीवन की सफलता की कुंजी है । ऐसी विचारधारा के कारण ही प्रसाद, बुद्ध के मैत्री और करुणा के उपदेश की ओर बढ़ते हैं और भगवान बुद्ध उनके एक महान् प्रतीक बन जाते हैं ।[३] ऐसे भगवान बुद्ध के पृथ्वी पर पदार्पण करने के का समस्त लोक में शान्ति व्याप्त हुई । इस पर प्रसाद जी का कहना है --

तुम्हारा यह अभिनन्दन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार ।
सकल वसुधा को दे सन्देश, धन्य होता है बारंबार ।
आज कितनी शताब्दियों बाद, उठी ध्वंसों में वह झंकार ।
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगन्त, विश्ववाणी का बने विहार ।[४]

१- झरना - प्रसाद, पृ० २८
२- 'आँसू' - प्रसाद, पृ० १४.
३- प्रसाद साहित्य और समीक्षा - डा० रामरतन भटनागर, पृ० २६.
४- लहर - प्रसाद, पृ० १३.

दु:खातप में भुनने वाले जीवों को वृक्षों की शीतल-छाया प्रदान करने वाले उस महात्मा के धर्मचक्रप्रवर्तन के पुण्य-दिवस की स्मृति में यह गीत गाया गया --

युग-युग की नव मानवता को,
विस्तृत वसुधा की विभुता को,
कल्याण संघ की जन्मभूमि आमंत्रित करती आई थी ।[१]

प्रसाद जी महात्मा बुद्ध के दु:ख-तत्व से बहुत प्रभावित हुए । इन शब्दों से यह बात स्वयं प्रकट होती है --`मैं स्वयं हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूँ, केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक -- इतना ही कि संसार दु:खमय है ।

सारे सुख अस्थायी होने के कारण मनुष्य निराश और दु:खी होते हैं । `करुणालय` में कवि लोगों के दु:ख की गहराई तक पहुँचना चाहते हैं । उनका कहना है --

अहा, स्वच्छ नभ नील, मनोहर रूप में,
नव प्रभात का दृश्य सुखद है सामने
उसे बदलना नील तमिस्रा रात्रि से
जिसमें तारा का भी कुछ न प्रकाश है
प्रकृति मनोगत भाव सदृश्य जो गुप्त-सह
कैसा दु:ख-दायक है ? हाँ बस ठीक है ।[२]

वस्तुत: कवि ऐसे अनाथ जीवों की जीवन रूपी नौका को संसार के दु:खसागर में निमग्न होते हुए देखकर आकुल हो जाते हैं । अब कवि प्रकृति की सारी वस्तुओं पर दु:ख की छाया देखते हैं । वे अनुभव करते हैं कि पर्वत, पथ, काँटे तथा मार्ग की बालू भी दु:ख से तपित है --

भुनती वसुधा, तपते नग,
दु:खिया है सारा अग-जग,

१- लहर - प्रसाद, पृ० ३२.

२- करुणालय, प्रसाद, पृ० १६.

कंटक मिलते हैं प्रति-पग,
जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग,
जलता है यह जीवन-पतंग ।[१]

इच्छा और जीवन का संबंध अटूट है । दोनों का योग अनिवार्य रूप से होता रहा है । अनियंत्रित इच्छाएँ तो मन को अतृप्ति और निराशा के गर्त में डाल देती हैं तभी दु:ख का हम अनुभव करते हैं । इसलिए इच्छारहित होना, यही दु:ख से मुक्ति मिलने का मुख्य उपाय है । इन इच्छावृत्तियों का उदय यौवन में ही अधिक होता यौवन में दु:ख को अनजाने ही गले लगाने के अनुरूप जो सीमासीन इच्छाएँ मन में हों हैं, उनके बारे में कवि का कहना है --

लालसा निराशा में ढलमल,
वेदना और सुख में विह्वल,
यह क्या है रे । मानव-जीवन ?
मिलता है रहा मिसर ।[२]

दु:ख के कारण उनकी आँखों में आँसू की जलधारा उमड़ती है, जो करुणा सागर को भर देती है । इस दु:खमय और वेदनापूर्ण धरती पर कवि को एक भी ऐसे जगह नहीं मिली, जहाँ वे दु:ख से थोड़ा विश्राम पाकर सुख की साँस ले लें । उनका विषाद से भर गया । सारी वसुधा के दु:ख के बारे में वे कहते हैं --

चिर दग्ध दु:खी यह वसुधा
आलोक माँगती तब भी
तम तुहिन बरस दो कन-कन
यह पगली सोये अब भी ।[३]

१-२ लहर - प्रसाद, पृ० ५०, पृ० ३०

३- आँसू - प्रसाद, पृ० ५५.

उनके दु:खी मन ने बहुत ही वेदना सही, उससे पलायन की आशा रखी, उसी का इन पंक्तियों में मिलता है --

जगद्द्वंद्वों के परिणय की
हे सुरभिमयी जयमाला
किरणों के केसर रज से
भव भर दो मेरी ज्वाला ।[१]

\- - -

वेदना विकल फिर आई
मेरी चौदहों भुवन में
सुख कहीं न दिया दिखाई
विश्राम कहाँ जीवन में ?[२]

दु:ख के कारणों का प्रतिपादन करते हुए कवि ऐसे निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि का मूल उत्स है तृष्णा, जिसकी तेजोमय शिखा में जीव छटपटाते रहते हैं । इस त का रूप अंकन `लहर` में इस प्रकार हुआ है --

जीवन कितना ? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुंज से कण-कण..[३]

पश्चात् उनके मन में यही प्रश्न उठता है कि तृष्णा का नाश कैसे संभव है, दु:ख व नाश कैसे संभव है ? दु:ख से कातर होकर वे शान्ति की खोज करते हैं और दु:ख से होने का मार्ग ढूँढ निकालते हैं । सांसारिक लोभ, मद, क्रोध आदि दुर्गुणों से ऊ उठने का वे मनुष्य को उपदेश देते हैं । तृष्णा के उस भयंकर रूप का कवि इस प्रका वर्णन करते हैं --

---

१- आँसू - प्रसाद, पृ० ६२.
२- वही - पृ० ५३.
३- लहर - प्रसाद, पृ० ४६.

तृष्णा वह अनलशिखा बन,
दिखलाती रक्तिम यौवन.[१]

दु:ख के मूल में पड़ी हुई उस तृष्णा का नाश या तृष्णा से मुक्ति ही भगवान बुद्ध उपदेशों का भी सार था । इसी उद्देश्य से तथागत ने अवतार लिया था । इसी भा को निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकट किया गया है --

छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार ।
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव शुलभ दुलार ।
दु:ख का करके सत्य निदान, प्राणियोंका करके उद्धार ।
सुनाने आरण्यक संवाद, तथागत आया तेरे द्वार ।[२]

महात्मा बुद्ध ने तो इस दु:ख से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय मध्यम प्रतिपदा बताया, लोगों को भवबंधन से मुक्ति पाने का एकमात्र उपदेश भी यही मान लिया `अरी करुणा की शान्त कछार`, `लहर` की बौद्धधर्म संबंधी कविता है । इसमें भी मध्यमप्रतिपदा का वर्णन किया गया है --

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्यपथ से लो सुगति सुधार ।
दु:ख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार ।
विश्व-मानवता का जयघोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर मंद्र ।
मिला था वह रावन आदेश, आप भी साक्षी हैं `रविचन्द्र` ।[३]

इतना होने पर भी प्रसाद जी का दु:खवाद पूर्णरूप से विरक्ति की ओर नहीं झुक शूल और फूल की तरह उन्होंने दुनियाँ में सुख और दु:ख देखे । `प्रसाद की वेदना की वेदना से भिन्न है । क्योंकि बौद्धों की वेदना तो संन्यास का संदेश देती है ।

१- लहर - प्रसाद, पृ० ४६.
२- वही - पृ० १२
३- वही - पृ० १२-१३.

दोनों महात्मा बुद्ध और प्रसाद जी ने दु:ख के अस्तित्व को स्वीकारा ने तो इस जगत में दु:ख की चिरसत्ता को स्वीकार किया, लेकिन प्रसाद जी ने दु अन्धकारमयी रात के बाद सुख की नवल किरण के उदय की प्रतीक्षा की । "यदि दिखाई भी देता है, तो यह कोई अभिशाप नहीं है, अपितु यह तो ईश्वर का र वरदान है । यहाँ सुख और दु:ख दोनों विकसित होते हैं और दोनों ही उस पूम मधुमय दान है ।"[१] यही प्रसाद जी का दृष्टिकोण है ।

संसार को केवल दु:खमय मानना प्रसाद जी समाज के कल्याण के विकास बाधा और विघ्न समझते थे । उनका स्पष्ट कहना है --"निस्सन्देह बुद्ध ने संसा दु:खमय बनाकर उससे छूटने का उपाय अवश्य सिखाया, कीट से लेकर इन्द्र तक की भी घोषित की, अपवित्रों एवं अछूतों को भी पवित्र बनाने का प्रयत्न किया, दु को गले लगाया और अपनी दिव्य करुणा की वर्षा से विश्व को प्लावित कि किन्तु अहिंसा अनात्मा एवं अनित्यता के नाम पर जिस कायरता, विश्वास के अ और निराशा का प्रचार किया, उससे मानव की बड़ी दुर्गति हुई । पारिवारिक को तोड़कर जनता जिस मुक्ति या निर्वाण-प्राप्ति की आशा में दौड़ने लगी, उ में अव्यवस्था, अनाचार एवं अविश्वास बढ़ता चला गया और शील एवं विनय के पर दु:शीलता एवं दुश्चरित्रता पनपती चली गयी ।"[२] संक्षेप में बौद्धों के दु:खवा वैराग्य का उदय हुआ, प्रसाद जी ने तो अपने दु:खवाद से जगदनुराग को जागृत बौद्ध निवृत्ति मार्ग पर चले, प्रसाद प्रवृत्ति मार्ग पर । अर्थात् प्रसाद जी ने दु:ख व को स्वीकार करते हुए भी आनन्दवाद का प्रचार किया । यही दु:ख के बारे में की मान्यताएँ हैं ।

१- प्रसाद दर्शन - द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ० २३१.

२- वही - पृ० २३३.

करुणा

बौद्धों की करुणा प्रसाद जी को भी स्वीकार्य है । भगवान बुद्ध के कर संदेश ने उन्हें विशेषतया प्रभावित किया । दु:खों, कष्टों की विवेचना क बौद्ध दर्शन ही उन्हें सहारा देता हुआ जान पड़ता है ।[१] करुणा के नाते ही प्रसाद को प्रिय थे ।[२]

इस करुणा को श्रेष्ठता और महत्ता प्रदान करके प्रसाद ने उसे सृष्टि का मूल रहस्य घोषित किया है । 'आँसू' के सभी छन्दों में वेदना और करुणा की भरमार है । कवि की वेदना का यही रूप उन्हें जनकल्याण के लिए प्रेरित करता ।

चुन चुन ले रे कन-कन से, जगती की सजग व्यथाएँ ।[३]

केवल करुणा ही दु:ख से पीड़ित जीवों को उस पार पहुँचा सकती है । इस करुण का कवि बारंबार स्मरण करते हैं --

प्रकृति मनोगत भाव सदृश जो गुप्त, यह
कैसा दु:खदायक है ? हाँ बस ठीक है ।[४]

हिंसा और पीड़ा की भावनाओं से युक्त मनुष्य करुणा के अधिकारी हैं । उनको करुणा के संदेश से कवि सांत्वना देते हैं --

संसृति के विकल पग रे ।
यह चलती है डगमग रे ।
अनुलेप सदृश तू लग रे ।
मृदु दल बिखेर इस मग रे ।
कर चुके मधुर मधुपान भृंग ।[५]

१-२. प्रसाद साहित्य और समीक्षा - डा० रामरतन भटनागर, पृ० १८, पृ० २६
३- आँसू - प्रसाद, पृ० ५८.
४- करुणालय - प्रसाद, पृ० १६.
५- लहर - प्रसाद, पृ० ५०.

करुणा के उदय से मनुष्य के मन में समता, परदु:खकातरता आदि के गुणों के बीज अंकुरित होते हैं । इसके बाद उनमें दीन दु:खियों के प्रति सहानुभूति, विश्व-कल्याण की कामना आदि उत्पन्न होती है । इसी आशय को यहाँ प्रकट किया गया है --

तेरा प्रेम हलाहल प्यारे, अब तो सुख से पीते हैं ।
विरह सुधा से बचे हुए हैं, मरने को हम जीते हैं ।।
दौड़ दौड़ कर थका हुआ है, पड़कर प्रेम पिपासा में ।
हृदय खूब ही भटक चुका है, मृग मरीचिका आशा में ।।
मेरे मरुमय जीवन के हे सुधास्रोत, दिखला जाओ ।
अपनी आँखों के आँसू से इसको भी नहला जाओ ।।
डरो नहीं, जो तुमको मेरा उपालंभ सुनना होगा ।
केवल एक तुम्हारा चुंबन इस मुख को चुप कर देगा ।[१]

कवि इसी करुणा को मानव-जीवन का केन्द्रबिन्दु और सृष्टि का विकास मानते हैं । क्योंकि 'करुणा संसार में आनन्द की, मंगल की वर्षा करती है ।'[२]

यही करुणा कवि को लोककल्याण की ओर उन्मुख कर देती है । 'उनके दर्शन की तह में एक विश्वमंगलकारी आशावाद का संदेश है ।'[३]

लोकमंगल की भावना से युक्त उनकी 'लहर' की पंक्तियाँ आने वाली पीढ़ियों को भी प्रेरणादायक हैं --

जगती की मंगलमयी उषा बन
करुणा उस दिन आयी थी ।

१- झरना - प्रसाद, पृ० ४४.
२- प्रसाद - निर्मल तालवार, पृ० १५३.
३- प्रसाद और उनका साहित्य - विनोद शंकर व्यास, पृ० १२८.

जिसके नव गैरिक अंचल की प्राची में भरी ललाई थी ।

भयसंकुल रजनी बीत गयी,

भव की व्याकुलता दूर गयी,

घन-तिमिर-भार के लिए तड़ित स्वर्गीय किरण बन आई थी ।[१]

यह करुणा मनुष्य के व्याकुल-मन को शान्ति प्रदान करती है । उसे ठीक पथ से अग्रसर होने का उपदेश देती है । पथभ्रष्ट प्राणी को वह सीधा पथ दिखलाती है ।

त्रस्त पथिक, देखो करुणा विश्वेश की

यही दिलाती तुम्हें याद हृदयेश की ।

शीतातप की भीति सता सकती नहीं

दु:ख तो उसका पता न पा सकता कहीं

भ्रान्त शान्त पथिकों का जीवन मूल है

इसका ध्यान मिटा देना सब भूल है

कुसुमित मधुमय जहाँ सुखद अलिपुंज है

शान्त हेतु वह देखो `करुणा-कुंज` है ।[२]

अहिंसा, दया, विश्वमैत्री धर्माचरण आदि मानवीय गुण भी करुणा से संबंधित हैं प्रसाद जी की कविताओं में ये तत्व भी समाहित है ।

`करुणालय` में धर्म के नाम पर होने वाले घोर अत्याचारों तथा हिंसात्मक कार्यों के विरुद्ध आवाज उठायी गयी है। इस रचना में कवि का लक्ष्य वही रहा है कि इन पाशविक और हिंसात्मक अत्याचारों का अन्त करें । प्रस्तुत काव्य के अन्तिम दृश्य में विश्वमित्र द्वारा कवि ने अपने लक्ष्य की पूर्ति की --

---

१- लहर - प्रसाद, पृ० ३२.

२- कानन कुसुम, प्रसाद, पृ० १४.

क्योंकि अधम है क्रूर आसुरी यह क्रिया,
यह न आर्यपथ है, दुस्तर अपराध है,
रह प्रकाशमय देव, न देता दुःख है,
अस्तु, सभी तुम शक्तिहीन हो गये ।[१]

अकारण हिंसा एवं शस्त्रप्रयोग गर्हित है, यही अहिंसा के बारे में प्रसाद जी का दृष्टिकोण है । अहिंसा के पथ से अग्रसर होने पर मनुष्य में प्रेम, सेवाभावना आदि सहज रूप से ही उत्पन्न होते हैं । 'झरना' में कविने उस सेवाभावना का गुणगायन किया है --

दीन दुःखियों को देख आतुर अधीर अति
करुणा के साथ उनके भी कमी रोते चलो,
थके श्रमजीवों के पसीने भरे सीने लग
जीने को सफल करने के लिए सोते चलो ।[२]

विश्वमैत्री की भावना हमें सुखी और संतुष्ट बना देती है । गौतम के प्रेमभरे और करुणापूर्ण शब्दों से लोग उन पर सहजरूप से आकृष्ट हुए । दुष्टों का भी मन उन पर लग गया था । उस विश्वमैत्री की भावना के बारे में कविप्रसाद जी का कहना है ।

मधुमंगल की वर्षा होती,
काँटों ने भी पहना मोती,
जिसे बबेरे रही थी रोती,
आशा समझ मिला अपना धन ।[३]

१- करुणालय - प्रसाद, पृ० ३१.
२- झरना - प्रसाद, पृ० ६३.
३- लहर - प्रसाद, पृ० ९७.

यही मानवतावादी स्वर `झरना` की पंक्तियों में भी दर्शित होते हैं --

सुखी कर विश्व, भरे स्मित सुषमा से मुख
सेवा सबकी हो, तो प्रसन्न तुम होते चलो ।[१]

`काननकुसुम` में आकर प्रसाद जी की मानवतावाद की भावना फूली-फली । उनकी यह भावना वैयक्तिकता से सामाजिकता की ओर झुकने लगी । यहाँ उनका ध्येय रहा, संपूर्ण जगत के कल्याण की कामना । उनकी प्रकृति-संबंधी कविताओं में भी यही भावना निखर उठती है । `धर्मनीति`, `गान` आदि इसके उदाहरण हैं । प्रसाद जी की इस मानवतावादी भावना के बारे में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है --`प्रसाद का काव्य चाहे उसे छायावाद कहिए या रहस्यवाद, मानवीय भूमि पर ही खड़ा है ।`[२]

सुश्री महादेवी वर्मा की कविताओं में बौद्ध-तत्व

महादेवी जी के काव्य को नयी दिशा तथा विशिष्टता प्राप्त होने के कई कारण और परिस्थितियाँ थीं । महात्मा गान्धी जी द्वारा राष्ट्रीय नवोत्थान, गरीबी और विपन्नता से युक्त जन-जीवन, उनका घरेलू वातावरण, समकालीन छाया-वादी काव्य-प्रवृत्तियाँ जैसी महान् परिस्थितियों में पलकर महादेवी जी के काव्य की पृष्ठभूमि तैयार हुई थी । इसलिए सुसंपन्न परिवार का एक अंग होने पर भी महादेवी में समकालीन समाज के दु:ख-दारिद्र्य की हलकी रेखा का प्रतिबिंब देखने को मिलता है । साथ ही सुख-दु:ख का सम्मिश्रण उनके दर्शन का आधार बना । इसीलिए `उनको सुख के साथ दु:ख का दर्शन मिला, उनका सुख करुणामय हो गया ।`[३]

महादेवी जी की जीवन-संबंधी धारणा बहुत कुछ बौद्धमत से प्रभावित है, जिसके अनुसार यह जीवन अनात्म अनित्य एवं परिवर्तनशील है तथा दु:ख ही इसका यथार्थ लक्षण

१- झरना - प्रसाद, पृ० ५१.
२- जयशंकर प्रसाद - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ३
३- कवयित्री महादेवी वर्मा - डा० शोभानाथ यादव, पृ० ३३.

है और दु:ख का मूल कारण अज्ञान-जन्य कामनाएँ हैं । वस्तुत: महादेवी जी ने अपने काव्य-निर्माण में बौद्धतत्वों को बड़ी मात्रा में सन्निहित किया है । स्वयं कवयित्री ने स्वीकार किया है, "इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दु:खमय समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया ।"[१]

वास्तव में महादेवी के सिद्धान्तों में बुद्धतत्व काफी मात्रा में नहीं आये हैं, तो भी उन्होंने बुद्धदेव का बारंबार स्मरण किया है । महादेवी पर जिन बौद्धतत्वों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है, वे हैं --

क्षणिकता

महादेवी जी भी इस दु:खमय संसार को अशाश्वत मानती हैं --

सखे । यह है माया का देश
क्षणिक है तेरा मेरा संग
यहाँ मिलता है काँटों में बन्धु ।
सजीला सा फूलों का रंग
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन ।[२]

विश्व की क्षणिकता और नश्वरता ने कवयित्री के मन को एक सीमित परिधि में बाँध दिया । इस अस्थिर संसार के प्रति वे सजग हैं । उनका कहना है --

निश्वासों का नीड, निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न

१- यामा की भूमिका.
२- नीहार - महादेवी वर्मा, पृ० ५७.

मुक्तावलियों के बन्दनवार
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार
आँसू से लिख-लिख जाता है `कितना अस्थिर है संसार ।[१]

`नीहार` में बड़ी मात्रा में यह दु:खाभिव्यक्ति हुई है । प्रतिपल उनके मनोमुकुर में जग के नश्वर और निष्ठुर रूपों का चित्र उदित होते रहते हैं । इन रूपों के उदय होने प उनके निराशाजन्य हृदय से ये दु:खात्मक शब्द निकलते हैं --

विकसते मुरझाने को फूल
उदय होता छिपने को चन्द्र
शून्य होने को भरते मेघ
दीप जलता होने को मन्द,
यहाँ किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन ?[२]

प्रकृति के फूल, चन्द्र, बादल, दीपक, सब क्षणिकत्व के आदर्श को मानते हैं । किसी का भी अनन्त यौवन नहीं है । तो भी एक महान् आदर्श वे विश्व के सम्मुख प्रस्तुत कर हैं --

शून्य में बन जाओ गंभीर
त्याग की हो जाओ झंकार
इसी छोटे व्यक्ति में आज
डुबा डालो सारा संसार
लजा जाये ये मुग्ध सुमन
बनो ऐसे छोटे जीवन ।[३]

१- नीहार - महादेवी वर्मा, पृ० २३.
२- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० ४२.
३- नीहार - महादेवी वर्मा, पृ० ५७.

दु:ख

वर्तमान हिन्दी-कवियों में यदि किसी ने दु:ख को सर्वाधिक गौरव प्रदान किया तो महादेवी जी ने । दु:ख को वे `जीवन के काव्य` के रूप में ग्रहण करती हैं । की अभिव्यक्ति मात्र `दु:खवाद` नहीं, अपितु दु:ख की स्वीकृति ही `दु:खवाद` साधारणतया यह देखा जाता है कि दु:ख को अपनाना कोई नहीं चाहता । लेकि वेदना की मधुर-गायिका महादेवी में यह गुण देखने को मिलता है कि वे दु:ख क काव्य का विषय बनाती है और उस दु:ख का गुणगान करती हैं । उनके इस दु से संबंधित तीन प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं -- प्रणयवेदना, करुणा और दु स्वीकृति ।

प्रणयवेदना

महादेवी जी के काव्य में वर्णित वेदना, मधुर है । साधारणतया वेदन कष्टपूर्ण होती है, लेकिन यह मधुमय पीड़ा जो प्रणय की भावानुभूति होती है, स्वप्नों में हमें निमग्न कराती है । महादेवी के दु:खवाद का यह खंड हमारे वि अर्थात् बौद्धधर्म के सिद्धान्त की सीमा से परे है, इसलिए यहाँ उसका गहराई से वि करना अनुचित होगा ।

करुणा

`करुणा की भावना` या `सहानुभूति और संवेदना कीभावात्मक अनुभू ही `करुणा` है । महादेवी में करुणा की यह भावना बाल्यावस्था से ही वि है । बचपन से ही पशुपक्षियों के प्रति उनके मन में करुणा के उद्गार थे । इसक क्रमश: बौद्धदर्शन के अनुशीलन से उनकी यह करुणा और भी बढ़ गयी ।

१- महादेवी का काव्य-वैभव - सं० प्रो० रमेशचन्द्र गुप्त, पृ० ८३.

उनकी करुणा का आलंबन पुष्प है । निष्कलंक वह पुष्प सदा परसुख के आद का पालन ही करता है । किन्तु बदले में उसको मिलता है दु:ख और अपमान । पुष्प की करुणापूर्ण इस कहानी को महादेवी इस प्रकार प्रस्तुत करती हैं --

मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुओं से सहमे अभिराम
तारकों से हे मूक अजान ।
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण ।[१]

क्रूर विश्व से पीड़ित पुष्प के प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाली एक अन्य कविता की पंक्तियाँ देखिए --

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
जिसके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल ?
अब इनमें क्या सार मधुर जब गाती भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है, कितना निष्ठुर है संसार ।[२]

विश्व की नश्वरता का कवयित्री के हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ा, साथ-स बुद्ध के जीवन से प्रेम होने के कारण उनका काव्य करुणाप्रधान भी है । बौद्धधर्म । करुणा का हर स्पन्दन उनमें समा गया और वे एक विह्वलता लिए सहसा गा उ

१- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० ६२.
२- वही - पृ० ६.

जाग बेसुध जाग ।
अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक हार
भीख दु:ख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,
- - - -
शूल जिसके फूल छू चन्दन किया, संताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद चाप,
करुणा के दुलारे जाग ।[१]

इसके बाद महादेवी जी ने वस्तुजगत के सुख-दु:ख से करुणा और वेदना को लेकर उनको कल्पना की मनोहर तूलिका से संचित कर दिया है, और अपने भावजगत को एक अनुपम रूप दिया है ।[२] जिस प्रकार सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक करुणा का अक्षय कोष निसृत होता आ रहा है, वैसे महादेवी जी भी करुणा के साम्राज्य में रहना पसन्द करती है ।

अपना जीवन वेदनामय होने के कारण महादेवी जी को उन सभी वस्तुओं के साथ सहानुभूति है, जिनका जीवन वेदनाप्रधान है । वे उनसे समवेदना प्रकट करती हैं कवयित्री की यह वेदना और करुणा आकाश-गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींचने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है । अपने व्यक्तिगत जीवन में जलती हुई, अश्रु को प्रवाहित करती हुई वे समष्टि-साधना की उत्कर्ष दशा `करुणा` तक पहुँची है, क्योंकि वे जानती हैं कि उस करुणा की विश्व को आवश्यकता है । `नीरजा` में कवयित्री इसी करुणा से अपने को उस लक्ष्य तक पहुँचाती है --

भिक्षुक-सा यह विश्व खड़ा है,
पाने करुणा का प्यार,
हँस उठ रे नादान, खोल दे पंखुरियों के द्वार,

१- नीरजा - महादेवीवर्मा, पृ० १०१
२- महीयसी महादेवी - गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० २६०.

रीते कर ये कोष, नहीं कल सोना होगा धूल ।
उठ रे तू जीवन पाटल फूल ।[१]

महात्मा बुद्ध की त्यागशीलता और करुणा से प्रेरित होकर ही महादेवी ने उनके पदचिह्नों का अनुकरण करने के लिए अपने को तैयार कियाथा । इसके बारे वे स्वयं कहती हैं -- रे मेरे करुण भरे प्राण । तू उस करुणार्द्र हृदयवाले त्यागपूर्ण भगवान बुद्ध का अनुसरण कर, जिसने राजसी वैभव छोड़कर स्वत: दु:ख का वरण किय और प्रति-व्यक्ति के दु:ख को दूर करने के लिए संसार में भटकता-घूमता फिरा, शून्य को अपने स्नेहस्पर्श से फूल और संताप को चन्दन की तरह शीतल बना दिया, तू उसी के पद-चिह्नों पर चल.. ।'[२]

ऐसी वेदना, पीड़ा और करुणा से उनकी आँखें सदा सजल ही रहीं । उनकी वेदना में आँसुओं की लड़ी पिरोई हुई है । अनेक प्रतीकात्मक शब्दों द्वारा उन्होंने वेद को प्रकट की है । दीपक को वेदना का प्रतीक मानकर `नीरजा` में महादेवी जी गाती हैं --

जला वेदनाओं के दीपक
आई उस मन्दिर के द्वार ।[३]

इसी प्रकार महापरिनिव्वाण-सुत्त में दीपक को आत्मा का प्रतीक मानते हुए महात्मा बुद्ध ने अपना संदेश सुनाया है --`हे भिक्षुओ । आत्मदीप बनकर विहरो तुम अपनी शरण में जाओ । किसी दूसरे का सहारा मत ढूँढो । केवल धर्म को अपना दीपक बनाओ । केवल धर्म की ही शरण में जाओ ।`

१- नीरजा - महादेवी वर्मा, पृ० ७६.
२- महीयसी महादेवी- गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० ५२.
३- नीहार - महादेवी वर्मा, पृ० ७७.

देवीजी के सामने विश्व के दो रूप हैं । सुख और दु:ख में सामंजस्य स्थापित करने में वे सफल होती हैं । एक ओर वे विश्व का चिर नूतन रूप देखती हैं, जो उल्लास पूर्ण है और दूसरी ओर विश्व का नश्वर रूप, जो वेदनापूर्ण है । इसी संघर्ष में पड़कर कवयित्री कहती हैं --

तुझमें अम्लान हँसी है
इसमें अजस्त्र आँसू-जल
तेरा वैभव देखूँ या
जीवन का क्रन्दन देखूँ ?[१]

इसमें वे निष्ठुर जीवन के वेदना-विगलित पक्षों को ही देखना चाहती हैं, क्योंकि वेदना ही उनका जीवन है । वे कहती हैं --

मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू-लड़ियाँ देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत, मुरझायी कलियाँ देखो ।।[२]

वेदना और कष्ट-विषमताओं को प्रकट करने वाले आँसू और निरन्तर बहने वाली आँखें के बारे में महादेवी जी का कथन है --

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जलकण से बने घन सा क्षणिक मृदुगात
जीवन विरह का जलजात ।[३]

कवयित्री इन आँसुओं को श्रेष्ठ मानती है और बताती है कि उनकी वेदना अनुसिक्त है । वह उस शलभ की वेदना नहीं है, जो अपने आँसुओं को चुपचाप पीकर इहलीला को समाप्त कर देता है ।[४]

१- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० १०२.
२-३. वही - पृ० १५४, पृ० १४२.
४- महादेवी वर्मा - देशसिंह माटी, पृ० ३१.

जब महादेवी जी ने विश्व के मौन-क्रन्दन का अनुभव किया, तो वे जगती के कल्याण-पथ की पथिका बनी । पथ के सारे कंटकों का सामना करती हुई वे विश्व-कल्याण की ओर अग्रसर होती हैं । यह विश्व-कल्याण की भावना व्यक्ति में तभी जागृत होती है, जब वह विश्व के मूल उत्स `अहंकार` का समूल नष्ट करें । यह दशा तभी व्यक्ति प्राप्त करता है, जब वह अपने को विश्व-जीवन में मिलाने में सफल बन जाता है । इसके उदाहरण के रूपमें हम महादेवी जी-कृत `दीपशिखा` को ले सकते हैं, जहाँ कवयित्री ने अपने को विश्व-व्यापक जीवन के प्रवाह में तरंगायित किया और दु:ख को समूल नष्ट भी किया । `विश्व की पीड़ित मानवता के प्रति महादेवी की `दीपशिखा` उसी अमर संदेश का विधान करती है, जो प्रथम महायुद्ध के बाद कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि ने किया था । अखिल मानवता एक दिन जीवन के कलह-कोलाहल से थक कर इन गीतों की छाया में शीतल विश्राम पायेगी ।`[१]

जिस प्रकार मानव समाज से अलग होकर नहीं रह सकता, वैसे ही उसका व्यक्तिगत जीवन भी लोक-जीवन से अलग रहने पर पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता । `जब वह अपने व्यक्तिगत जीवन को सामाजिक-संदर्भ में रखकर चलता है, तब उसमें जीवन का सहज विकास ही नहीं होता, वरन् मानवता और समग्रता का सूत्रपात भी हो सकता है ।`[२] कवयित्री की यह व्यक्ति पीड़ा और जगत की पीड़ा, करुणा तक व्याप्त हुई । विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है । वेदना को अपनाने का कारण भी यही है । `सर्वभूतहितेरता:` के कारण ही महादेवी ने दु:ख को अपनाया है, क्योंकि आदमी सुख को अकेले भोगना चाहता है और दु:ख को सबको बाँटकर ।

१- महीयसी महादेवी - गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० ३१६.

२- कवयित्री महादेवी वर्मा - डा० शोभानाथ यादव, पृ० २५.

पीड़ित मानवता के कल्याण के लिए जिस प्रकार सगुणोपासक भक्त कवियों ने भगवान के भिन्न रूपों की कल्पना कर उससे जगत उद्धार की प्रार्थना की थी, उसी प्रकार महादेवी करुणा के दुलारे को जगाती हुई कभी सिद्धार्थ का स्मरण करती हैं कभी वृन्दाविपिनवाले का --

अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक-हार,
भीख दु:ख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,

- - - -

शंख में ले नाश मुरली में छिपा वरदान,
दृष्टि में जीवन अधर में सृष्टि ले छविमान,
आ रचा जिसने स्वरों में प्यार का संसार,
गूँजती प्रतिध्वनि उसी की फिर क्षितिज के पार,
वृन्दा विपिन वाले जाग ।[१]

इसी मानवतावादी विश्वकल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही महादेवी में बौद्ध भिक्षुणी बनने की कामना जागृत हुई । मानवतावादी प्रवृत्तियों की ओर रूप से प्रेरित उनका मन 'दीन-हीन, पीड़ित गरीबों, जर्जरित परंपरा में जकड़ी नारी और असहाय-विवश मानवों का कल्याण करने के लिए संवेदनाशील रहा है ।'[२] जग के दु:खातिरेक से उद्भूत आँसू दूसरों की प्यास बुझाने के लिए ही प्रकटित है । समग्र करुणा का रूप यहाँ द्रष्टव्य है --

खोजते हो खोया उन्माद
मन्द मलयानिल के उच्छ्वास,
माँगती हो आँसू के बिन्दु
मूक फूलों की सोती प्यास
मिला देना धीरे से देव

१-२ यामा - महादेवी वर्मा, पृ० १६८.

उसे मेरे आँसू सुकुमार-
सजीले थे आँसू के हार ।[१]

लोकमंगल तथा उत्सर्ग की भावना नीचे की पंक्तियों में भी व्यक्त होती है --

`मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों तप्त सिकता में
सलिल-कण ।[२]

करुणा से भरे महादेवी जी के सेवा-भाव के बारे में श्री इन्द्रनाथ मदान का कहना है कि बुद्ध के प्रभाव से उनका जीवन ही बदल गया और महादेवी जी ने अपने भिक्षुणी होने के स्वप्न को सेवा द्वारा पूरा करना चाहा ।

दु:ख और करुणा का एक अन्य रूप है अहिंसा । अपने जीवन में भी महादेवी ने अहिंसात्मक पथ को ही स्वीकारा है । उन्होंने पशु-पक्षियों को भी कष्ट नहीं पहुँचाया । अपने द्वारा वे किसी को भी पीड़ा पहुँचाना नहीं चाहती, इसलिए आदमी से खींची जाने वाली रिक्शा में भी वे कभी नहीं बैठती ।

दु:ख की स्वीकृति

महादेवी के `दु:खवाद` में चार प्रमुख बातें आती हैं --

(क) व्यक्तिगत जीवन में जो अतिशय सुख की प्राप्ति हुई, उसकी प्रतिक्रिया के रूप में दु:ख का उदय ।

(ख) बौद्धदर्शन का प्रभाव ।

(ग) पिछले जन्मों के संस्कार ।

(घ) दु:ख का जीवन से संबंध ।

(क) व्यक्तिगत जीवन के सुख की प्रतिक्रिया के रूप में दु:ख का उदय

अपने में जिस दु:ख का उदय हुआ, उसे कवयित्री ने व्यक्तिगत सुख की प्रतिक्रि

१- नीहार - महादेवी वर्मा, पृ० ३२
२- यामा - ,, पृ० ३२.

का ही रूप माना है । 'अतीत के चलचित्र' से यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि महादेवी के पास भौतिक सुख साधनों का अभाव न था । लेकिन अपने भावों या विचार का आदान-प्रदान करने वाला कोई नहीं था । यही दु:ख उन्होंने अपने साहित्य में भी दर्शित किया है । 'यामा' की भूमिका में उनका कथन है -- 'सुख और दु:ख के धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दु:ख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है । यह क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है । संसार साधारणत: जिसे दु:ख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है । जीवन में मुझे बहुत दुत्कार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दु:ख की छाया नहीं पड़ी कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है ।'[१] वस्तुत: उनके लिए सारी सुख-संपत्तियों की प्राप्ति हो जाने पर भी भावात्मकता के स्तर पर समा विचारधारा रखने वाला उनके निकट कोई नहीं था । इसी अभाव की चरमसीमा पर पहुँचने का उन्होंने परिश्रम किया था । निरन्तर वेदना को सहने पर वह वेदना मीठी बन जाती है, महादेवी जी की भी यही स्थिति है ।

(ख) बौद्ध-दर्शन का प्रभाव

विश्व को दु:खमय देखकर उससे मुक्ति पाने के लिए महात्मा बुद्ध ने तो जिन चार-आर्यसत्यों का प्रतिपादन किया, उन्हें महादेवी ने अपने साहित्य में बहुत मान्यता दी है ।

बौद्धधर्म दु:ख के मूल कारण के रूप में तृष्णा को मानता है । इस तृष्णा से मुक्ति प्राप्त करना ही, वास्तव में दु:ख से मुक्ति है । अर्थात् तृष्णाओं से मुक्ति का अर्थ है, सुख-प्राप्ति की कामनाओं का त्याग । सुख-प्राप्ति की कामनाओं का त्याग ही बौद्धधर्म का निर्वाण है । दु:ख के प्रति महादेवी जी का भी यही दृष्टिकोण है --

---

१- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० (भूमिका से)

चिर ध्येय यही जलने का
ठंडी विभूति बन जाना,
है पीड़ा की सीमा यह
दु:ख का सुख हो जाना ।[१]

(ग) पूर्वजन्म के संस्कार

भारतीय आध्यात्मवादी-चिन्तन में इस बात को मान्यता मिली है कि पूर्व जन्मों के संस्कारों का अभाव अगले जन्मों में भी विद्यमान रहता है । पूर्वजन्म के सि के अनुसार, पूर्वजन्म में विद्यमान इच्छाएँ, भावनाएँ आदि अगले जन्म में भी विद्यमान हैं । इसके संबंध में तो महादेवी जी का कहना है -- अवश्य ही इस दु:खवा को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ सं विद्यमान है, जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती ।[२] इससे यह बात निश्चि हो जाती है कि दु:ख की प्रवृत्ति महादेवी में जन्मजात है । उनको लगता है कि यह जीवन भी तो पिछले जन्मों के कर्मों का फल है या वरदान है ? दु:ख के कारण के बारे में वे पूछती हैं --

दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियों की कंपन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन,
स्वप्न लोक की परियाँ इसमें
भूल गयी मुस्कान ।[३]

(घ) मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से दु:ख

मनोविज्ञान की दृष्टि से सुख की अपेक्षा दु:ख का अधिक महत्वहै । सुख के कारण मनुष्य स्वार्थी और अहंकारी बनता है । किन्तु दु:खी व्यक्ति, सुखी मनुष

१- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० ७७.
२- वही (भूमिका से)
३- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० ६६.

की अपेक्षा अधिक कोमल और उदार बन जाता है । इसके बारे में कवयित्री का कहन है --

उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कंपन का,
एक सूत्र सबके बंधन का ।[१]

सुख के कारण मनुष्य कंजूसी बनता है । वह सुख के स्वर्ग में मग्न रहता है, अपने आप भूल जाता है, तब दूसरों के दुख और कष्टों के बारे में सोचने का समय उसके पास नहीं होता । समवेदना उसमें बिल्कुल नहीं होती । महादेवी जी ने भी अपने शब्दों में इस बात को प्रकट किया है --

मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं लघु हूँ मुझ से क्या पतझर का नाता ?'[२]

रहस्यवादियों में हमेशा देखा जाता है कि वे भावनाओं के माध्यम से प्रिय साक्षात्कार करते हैं । ससीम और असीम का मिलन इनके लिए सबसे बड़ी सिद्धि है जब साधक इस लक्ष्यसिद्धि तक पहुँचता है, तो उसकी आत्मा का विस्तार हो जाता है । कवयित्री ने भी इसे स्वीकार किया है --

दु:ख के पद छू बहते झर झर,
कण-कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लघु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता ।[३]

१- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० ७६.
२-३. वही.

इस प्रकार महादेवी जी में अनेक स्रोतों के कारण दु:ख प्रस्फुटित हुआ । लेकिन उनका यह दु:ख, दु:ख ही न रहकर, एक स्थिति में सुख बन जाता है । 'जन्म-जात प्रवृत्तियों के कारण उनमें करुणा की भावना प्रबल रही, बौद्धदर्शन के प्रभाव के कारण यह करुणा दु:ख की स्वीकृति में परिणत हो गयी, निजी जीवन की विरक्ति ने इस स्वीकृति को जीवन की यथार्थ अनुभूति का रूप दे दिया तो अंत में अलौकिक प्रणय, रहस्यवादी साधना एवं आत्म-चिन्तन में उन्हें यह बोध हो गया है कि दु:ख ही जीवन का सार है, जिसकी गंभीरता में ही चरम लक्ष्य की पूर्ति निहित है ।'[१]

इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी भावात्मक प्रवृत्तियाँ भी महादेवी में मिलती हैं, जो दु:ख-बोध के विकास में महादेवी के लिए प्रेरणार्थक और सहायक रहीं ।

(१) प्रकृति में दु:ख का प्रत्यक्षीकरण

कवयित्री प्रकृति के क्रिया-कलापों में भी दु:ख का अनुभव करती हैं । अपने सूनेपन को वे प्रकृति में भी व्याप्त देखती हैं ।

(२) सुख और दु:ख में द्वन्द्व

संसार में सुख और दु:ख, दोनों का अस्तित्व है । इसमें किसको अपनाना है और किसको न अपनाना, इसी संघर्षावस्था में कवयित्री रह जाती है । उनके मन का यह द्वन्द्व इन पंक्तियों में व्यक्त है --

कह दे माँ क्या अब देखूँ ।
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ ।[२]

१- महादेवी नया मूल्यांकन - गणपति चन्द्र गुप्त, पृ० २२८.
२- यामा - महादेवी वर्मा, पृ० १०१.

प्रकृति का यह दु:ख कवयित्री को क्षुब्ध और निराश बनाता है । वे चाहती हैं कि इस दु:खमय संसार में जीवन धारण करना ही अच्छा नहीं है ।

(३) दु:ख साध्य और साधना के रूप में

'रश्मि' के रचनाकाल तक महादेवी इसी द्वंद्वावस्था में थी कि उनको जीवन भारस्वरूप लगा । पश्चात् उनमें सुख और दु:ख में सामंजस्य स्थापित करने की कामना जाग पड़ी । पहले उन्होंने दु:ख को साधना के रूप में स्वीकार किया । साध्य तक पहुँचने के लिए दु:ख को ही उन्होंने एकमात्र साधन समझ लिया । साधना के पथ में दु:ख को स्वीकार करने वाली महादेवी जी का कथन है --

तुम दु:ख बन इस पथ से आना ।
शूलों में नित मृदु पाटल सा,
खिलने देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना ।[१]

क्रमश: यही दु:ख, साध्य भी बन जाता है, यह बड़ी विचित्र स्थिति होती है। यहाँ आकर दु:ख सुखमय बनता है और सुख दु:खमय बनता है । इस अवस्था का वर्णन देखिये--

दु:खमय सुख
सुख भरा दु:ख,
कौन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते ।[२]

इसी प्रकार

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा,
दु:ख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ' न सीखा ।[३]

१-२-३. यामा - महादेवीवर्मा, पृ० १६२, २२०, २२७.

अन्त में कवयित्री इसी चिर-व्यथा को अपनी स्थायी निधि समझती है। वे अनुभव करती है कि खोज ही प्राप्ति है, साधना ही सिद्धि है और रुदन ही चि सुख है।

यहाँ एक बात विचारणीय है कि वे आध्यात्मिक पथ से होकर अग्रसर होती है तथा दु:ख को अपना चिरसंगी मानती हैं। इसलिए हम देखते हैं कि निरन्तर अनेक मानसिक उतार-चढ़ावों के बाद भी कवयित्री दु:ख के साथ सामंजस्य स्थापित करने म तत्पर हैं। प्राय: यह देखा जाता है कि आध्यात्मिक पथ से होकर अग्रसर होने वाले जब अलौकिकता से रागात्मक संबंध स्थापित करते हैं, तो लौकिकता से विमुख हो ज हैं। यही लौकिक-वैराग्य या दु:ख की स्वीकृति है। इस अलौकिक राग में निमग्न रहने पर ही उनको लौकिक रुदन पहरेदार के रूप में और मृत्यु निर्वाण के समान त है।

महादेवी जी की करुणा और महात्मा बुद्ध की करुणा के बारे में कहें दोनों के करुणा सम्बन्धी विचार में विभिन्नता है। बुद्ध की करुणा निवृत्तिमूल है, लेकिन महादेवी जी की करुणा प्रवृत्तिमूलक रही। इसके अतिरिक्त बुद्धदेव की करुणा साधनामय थी और महादेवी की वेदनामय रही। तो भी दोनों का ध्येय एक रहा -- विश्वकल्याण, जिसमें दोनों ने सफलता पायी।

इसी प्रकार दोनों के दु:खवाद में भी थोड़ा अन्तर तो है। महात्मा बुद्ध केवल दु:ख पक्ष का सहारा लिया और निर्वाण की ओर बढ़े तथा `निराशावादी रहे, लेकिन महादेवी जी ने सुख और दु:ख दोनों की समस्थिति को स्वीकारा है, इस दृष्टि से वे गीता दर्शन और उपनिषद् के निकट हैं। वे एक ओर दु:खी तथा जनता को देखकर अपनी मानवतावादी करुणा की अभिव्यक्ति करती हैं तो दूसरी ओर इस संसार को असार और माया से आपूर्ण देखकर जीवन की इसअनन्त यात्रा उस पार जाना चाहती है, जहाँ शाश्वत आनन्द का लोक है। यही महात्मा बुद्ध महादेवी जी की दु:ख सम्बन्धी भावनाओं का अन्तर है।

बौद्ध-दर्शन निर्वाण-प्राप्ति को मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं । अ रचनाओं में अनेक बार इस निर्वाण की व्याख्या, महादेवी जी ने भी की है । 'पं को निर्वाण माना, शूल को वरदान जानकर' समस्त प्रतिकूल परिस्थितियों से होक निर्वाण की ओर बढ़ना उनका लक्ष्य है । किन्तु महादेवी के निर्वाण सम्बन्धी वि पर हम अद्वैतवादी दर्शन का प्रभाव देख सकते हैं । तो भी बौद्धदर्शन के निर्वाण सम्ब विचार को पूर्ण रूप से तिरस्कार नहीं किया । हम इतना तो कह सकते हैं कि उन्ह अद्वैतवादी-दर्शन के निर्वाण सम्बन्धी विचार को प्रमुखता दी तथा बौद्धदर्शन के निर्व सम्बन्धी विचार को गौण रूप से स्वीकार लिया । इस प्रकार निर्वाण के संबंध में दोनों दर्शनों के विचारों में समन्वय स्थापित करने की महादेवी जी ने बहुत चेष्टा की है ।

श्री सुमित्रानन्दन पंत की कविताओं में बौद्धतत्व

पंत जी की रचनाओं ने हिन्दी काव्य-जगत को एक अभिनव-चेतना प्रदान की क्योंकि उनकी विचारधारा वैविध्यपूर्ण है । उनके काव्य के भाव और विचार अनेक विचारधाराओं और दर्शनों के प्रभाव का फल है । अरविन्द-दर्शन से वे काफी प्रभावि हुए । बौद्ध-दर्शन का प्रभाव तो हम पंतजी पर उतना नहीं देख सकते, जितना अन्य छायावादी कवियों पर । तो भी यहाँ-तहाँ क्षणिकता, दु:ख, जैसे बौद्ध सिद्धान्तों ने उनके काव्य में जगह पायी है ।

क्षणिकता

संसार की प्रत्येक वस्तु ने परिवर्तनशीलता को अपनाया है । प्रकृति के सुकुमार कवि होने के कारण उन्होंने प्रकृति में पल-पल होने वाले परिवर्तनों को जान लिया है । मधुमास का शिशिर में बदलना, सुनहरे प्रात:काल का संध्या की ज्वाला में जलना कोमल बचपन का जरा में बदलना, चाँदनी और अंधकार का आँखमिचौनी खेल, मिलन के सुखद क्षणों का विरह में बदलना, सब परिवर्तनशीलता को प्रदर्शित करते हैं । इसक परिणाम होता है अशान्ति । इस परिवर्तनशीलता को कवि ने छन्दबद्ध किया है --

अरे निष्ठुर परिवर्तन ।
तुम्हारा ही ताँडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन ।
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन ।[१]

। प्रकृति ने परिवर्तनशीलता को एक अनिवार्य नियम मान रखा है तो जीवन का क्या
ना ? जागतिक नश्वर जीवन से निराशा के सिवा कुछ भी नहीं मिलेगा । यही
चार कवि पंत जी के मन पर भी टीस और निरसता को व्याप्त कर देता है ।
ार की प्रत्येक वस्तु से उद्भूत विषाद ने कवि को दु:खी जीवन के पाठ पढ़ाये ।
तम बुद्ध के समान ही उसने जीवन आयाम सतत परिवर्तन होता हुआ देखा है और
मर्माहत होकर अपने 'स्व' से अनेक प्रश्न करता है ।[२] नीचे की पंक्तियाँ उनके इस
ष्टकोण का परिचायक हैं --

अहे विश्व ! ऐ विश्व-व्यथित मन ।
किधर बह रहा है जीवन ?
यह लघु पोत, पात, तृण, रज कण,
अस्थिर भीरु वितान,
किधर किस ओर ? अछोर अजान,
डोलता है यह दुर्बल-यान ?[३]

ले ही बताया जा चुका है कि मानव जीवन सुख-दु:ख से समन्वित है । इस जीवन
कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जो सुख-दु:ख के समन्वय का परिणाम है । लेकिन
समस्याओं को भी कवि ने शाश्वत नहीं माना है । कवि का कहना है --

अस्थिर है जग का सुख-दु:ख,

---

१ अभिषेकिता - पंत, पृ० १०५.
२ पंत का काव्य दर्शन - डा० प्रताप सिंह चौहान, पृ० १५.
३ पल्लव - पंत, पृ० ६०.

जीवन ही नित्य चिरन्तन ।
सुख-दु:ख से ऊपर, मन का,
जीवन ही रे अवलंबन ।[१]

यहाँ सुख और दु:ख के अस्तित्व को मानते हुए भी उस पर क्षणिकता की छाया को वे प्राप्त करते हैं । कवि को तो सुख भी पसन्द नहीं, दु:ख भी पसन्द नहीं । क्योंकि ये दोनों क्षणिक हैं । `अति सदा वर्जयेत्` सिद्धान्त का भी वे अनुकरण करते हैं । अति सुख से भी जग पीड़ित होता है और अति दु:ख से पीड़ित । मानव के इस हास-अश्रुमय जीवन के बारे में कवि का कहना है --

अविरत दु:ख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दु:ख सुख की निशा-दिवा में
सोता-जागता जग-जीवन ।[२]

यह जीवन का उत्थान-पतन हर्षमयवेदना का संचार करता है । सब को इस नियम का पालन करना पड़ता है । प्रकृति के फूल, चन्द्र, मेघ, दीपक आदि भी इस उत्थान-पतन के नियमों से रहित नहीं हैं । इसलिए कवि कहते हैं कि `विश्ववाणी ही क्रन्दन` है ।

प्रकृति के कवि पंत जी फूल के क्षणिक जीवन पर निराश होते हैं । खिलते हुए पुष्प कवि को सुख प्रदान करते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण में वह सुख निराशा में बदल जाता है । वे पूछते हैं --

क्षण भर की थी अतिथि,
फूल, तुम मंगुर जग में

१- गुंजन - पंत, पृ० २६.
२- वही - पृ० १६.

पथिक स्वर्ग की विलसी
भू जीवन के मग में ।[१]

इसलिए कवि संसार को माया का देश मानते हैं । मनुष्य का मन तो इतना कोमल है कि माया उसे जिस तरह चाहे, उस ओर घुमाकर अपने जाल में फँसाती है । यहाँ के सभी सुख तो माया में आवृत हैं । जब माया का आवरण हट जाता है तो हमें सच्चाई का ज्ञान होता है । हम आस्थारहित बन जाते हैं । यही आशय यहाँ द्रष्टव्य है --

क्षण भंगुर सुख,
संभव, अनजाने ही तुम भी
हो जाओ, अंतर से ओझल,
उठ जाए सहसा सुख से
माया का झीना अंचल
व्यर्थ सभी हों झूठ छलकल
बिना सत्य के
रहे न आस्था का भी संबल ।[२]

पंत जी के अन्य काव्यसंग्रहों को छोड़कर पल्लव और गुंजन में हम थोड़ा बौद्ध-प्रभाव को प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि "पल्लव और गुंजन के रचनाकाल में कवि का विचार-दर्शन प्राय: बौद्धों के शून्यवाद और क्षणिकतावाद पर आधारित रहा है ।[३]"

दु:ख

वैयक्तिक और विरहजन्य दु:ख से कवि का मन त्रस्त है । इस वेदना को सार्व-

---

१- राशि की तरी - पंत, पृ० ७८.
२- शंखध्वनि - पंत, पृ० १७०.
३- पंत का काव्य दर्शन - डा० प्रतापसिंह चौहान, पृ० २७.

मौन बनाने के उद्देश्य से उन्होंने `ग्रंथि` नामक कविता संग्रह की रचना की । वास्तव में इसे पढ़कर सहसा प्रसाद जी के विरह काव्य `आँसू` का स्मरण हो आता है । अन्तरमन की व्यथा के बारे में कवि का कहना है --

आज मैं सब भाँति सुख संपन्न हूँ,
वेदना के उस मनोरम विपिन में,
विजन छाया में द्रुमों की योग-सी,
विचरती है आज मेरी वेदना ।
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी,
ऊँघती है नींद-सी मेरी स्पृहा,
ललित लतिका के विकंपित अधर में,
कांपती है आज मेरी कल्पना ।[१]

उनका `गुंजन` कविता संग्रह भी सुख-दु:ख के आह्लाद विषाद को प्रस्तुत करने वाली अनेक पंक्तियों को प्रकट करता है । दु:ख के अस्तित्व को कवि ने भी माना है --

यह जीवन का है सागर,
जग जीवन का है सागर,
प्रिय प्रिय विषाद रे इसका
प्रिय प्रिय आह्लाद रे इसका ।
जग-जीवन में है सुख-दु:ख,
सुख-दु:ख में है जग जीवन,
है बंधे-विछोह-मिलन दो,
देकर चिर स्नेहालिंगन ।[२]

इच्छाओं से संचालित मन ही दु:ख को लाता है । इन इच्छाओं के मूल में तृष्णा का अंकुर या बीज रहता है । यह मानव को पशु बना देती है । यह तृष्णा हमें सदा सुखद

१- ग्रंथि - पंत, पृ० १३७.
२- गुंजन - पंत, पृ० १०४.

अनुभवों की ओर ले जाती है और नयी-नयी इच्छाओं को जन्म देती हुई भवबंधन में डाल देती है । इसी का आभास पंत जी की इन पंक्तियों में देखने को मिलता है --

माया ममता और अधूरी तृष्णाओं का
बोझ पीठ पर लादे वे सब भटक रही है ।
अंधकार में राह टोह ।[१]

यह तृष्णा बड़ी छलनामयी है । क्योंकि इसी तृष्णा ने 'सोने के मृग' का वेष धारण कर श्रीरामचन्द्र की दिव्यता और विवेक शीलता को भी नष्ट कर दिया था । तृष्णा हमें श्रीहीन करके दु:ख भोग का वरदान देती है । लालच ही इसका परिणाम या फल है । हमारा जीवन चौरसभूमि के समान बन जाता है । 'अस्तिमा' की ये पंक्तियाँ देखिये--

तृप्त हुई मन की न कामना,
नयन लुभाता सोने का मृग
शेष अभी जीवन मरीचिका
तृषित रूप रस के माने मृग ।[२]

कवि ने सुख और दु:ख का अस्तित्व माना है। लेकिन वे सुख की अपेक्षा दु:ख को श्रेष्ठ मानते हैं । मनुष्य केवल दु:ख से ही नहीं काँपते, जब अमित सुख की अनुभूति होती है तब भी हम काँपते रहते हैं । इसी प्रसंग में पंत जी अपनी 'परिवर्तन' नाम की कविता में बताते हैं कि दु:ख भोगे बिना सुख असार है । जिन आँखों ने आँसू ही नहीं बहाये, वे आँखें नहीं हैं । सुख में हम दया, करुणा, सहानुभूति, प्यार आदि सद्गुणों का साक्षात्कार नहीं कर सकते । लेकिन दु:ख की बात ऐसी नहीं है । कवि का कहना है--

बिना दु:ख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन सार,
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया क्षमा और प्यार ।[३]

१- रजत शिखर - पंत, पृ० ३४.
२- अस्तिमा - पंत, पृ० ७८.
३- पल्लव - पंत, पृ० १६०.

इस प्रकार दु:ख के कारण ही जीवन उदात्त एवं सफल बनता है ।

कभी-कभी काम-क्रोध-मद आदि प्रवृत्तियाँ भी मनुष्य के लिए हानिकारक हैं । ये तो निम्नस्तर एवं पशुओं की प्रवृत्तियाँ हैं । ये हानिकारक प्रवृत्तियाँ सदा मनुष्य को दग्ध करती रहती हैं । लेकिन इन बुरी भावनाओं का तिरस्कार करके प्रेम पथ को स्वीकारने से हमें शान्ति प्राप्त होती है । दु:ख मिट जाता है । यही पन्त जी का भी विचार है --

काम द्वेष ?
यह निम्न योनि की
पशु प्रवृत्ति भर,
इससे दग्ध रहेंगे
प्रबुद्ध नारी नर ।
जन्म प्रेम ने अभी
लिया ही कहाँ धरा पर ?
उसके हित
तप त्याग अपेक्षित -
वर भू ईश्वर ।
घृणा द्वेष लांछन
उसके हित
सित स्वर्गिक वर,
तुच्छ देह मन धूलि
प्रेम पर करो निछावर ।[१]

मानवतावादी स्वर

पंत जी के `गुंजन,` `युगान्त` जैसे कविता संग्रह मानवतावादी स्वर को मुखरित

१- पौ फटने के पहले - पंत, पृ० १२२.

करते हैं । इसको स्पष्ट करने के लिए डा० नगेन्द्र अपने `सुमित्रानन्दन पंत` नामक ग्रंथ में लिखते हैं -- `पल्लव, गुंजन और युगान्त लोक कल्याण का संदेश वाहक है । इन कृति में कवि जगत् के जीर्ण-उद्यान में मधु प्रभात लाने की शुभाकांक्षा बार-बार करता हुआ देखा जाता है । उसका करुणाप्लुप्त हृदय मानव-हित से पूर्ण हो गया है, वह मानव के विकास द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापित करने की शुभ इच्छाओं से आकुल है ।`[१]

मानव के हित को चाहने वाले कवि का कहना है --

रच मानव के हित नूतन मन,
वाणी, वेश, भाव नव शोभन,
स्नेह, सहृदयता हो मानस-धन,
करें मनुज नव जीवन-यापन ।[२]

`ग्राम्या` में तो कवि की विचार-प्रतिष्ठा `सामूहिक चेतना तथा विकास` पर अधिष्ठित मालूम पड़ती है । `ग्राम्या` की `विनय` शीर्षक कविता कवि के इसी विचार को स्पष्ट करती है --

मनुजों की लघु चेतना मिटे लघु अहंकार,
नवयुग के युग से विगत गुणों का अंधकार,
हो शान्त जाति-विद्वेष वर्ग गत रक्त-समर,
हो शान्त युगों के प्रेत, मुक्त मानव अन्तर ।
संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों, सहृदय सुन्दर,
संयुक्त कर्म पर हों संयुक्त विश्व निर्भर ।
- - - -
हो धरणि जनों की, जगत् स्वर्ग जीवन का घर,
नव मानव को दो प्रभु । नव मानवता का वर ।[३]

१- पंत का काव्य दर्शन - डा० प्रतापसिंह चौहान, पृ० २८.
२- युगान्त - पंत, पृ० १२-१३.
३- पंत का काव्य दर्शन - डा० प्रतापसिंह चौहान, पृ० ५२.

`ग्राम्या` द्वारा कवि ने हमें एक विकसित मानव का दिग्दर्शन कराया है । महात्मा गांधी के व्यक्तित्व में पंत जी ने उस विकसित मानव को प्राप्त किया --

पूर्व पुरुष, विकसित मानव तुम, जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त हुए तुम, मुक्त हुए जन, हे जग वन्द्य महात्मन् ।[१]

विकसित मानव के व्यक्तित्व में निहित गुणों को कवि ने शब्दों में ढालने का प्रयास किया है । उस विकसित मानव को `अहंकार` नाम की कोई वस्तु ही नहीं छूती । क्योंकि वह मानवीय गुण नहीं है । पाशविकता की ओर ले जाने वाला यह दुर्गुण वास्तव में मनुष्य को विकास के पथ से हटाकर नाश की ओर उन्मुख कर देता है । उस विकसित मानव के व्यक्तित्व को साकार रूप देने वाले गुणों को कवि ने `बापू के प्रति` नामक कविता का विषय बनाया है --

जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर,
चेतना, अहिंसा नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया,
तुमने मानवता का सरोज ।
पशुबल की कारा से जग को,
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को,
सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति,
वर श्रम प्रसूति से की कृतार्थ,
तुमने विचार परिणीत उक्ति,
विश्वासानुरक्त हे अनासक्त,
सर्वस्व त्याग को बना भुक्ति ।[२]

१- पंत का काव्य दर्शन - डा० प्रतापसिंह चौहान, पृ० ४६.

२- युगान्त - पंत, पृ० ५८.

मानव कल्याण के पथ में जातिवाद, वर्गव्यवस्था, वर्गभेद आदि रूढ़ियों और अंधविश्वासों के आने पर विघ्न उपस्थित हो जाते हैं। मानवकल्याण के क्षेत्र में इन रूढ़ियों का खण्डन करना भी अनिवार्य है। पंत जी ने भी इन अंधविश्वासों को निरर्थक मान लिया है --

निष्प्राण विगत युग। मृत विहंग।
जग नीड़ शब्द औ' श्वासहीन,
च्युत, अस्त, व्यस्त पंखों से तुम
फर-फर अनन्त में हो विलीन।[१]

इन जड़ एवं प्राचीन मान्यताओं के नाश से ही मानवकल्याण सुनिश्चित है। उनके अपने विचार हैं --

झरे जाति कुल वर्ण वर्ण धन,
अंध नीड से रूढ़ि रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्र गत राग द्वेष रण,
झरे मरे विस्मृति में तत्क्षण।[२]

मनुष्य भावुक बनकर तभी मानवतावादी बन जाता है, जब वह विषण्ण होता है। वह तब किसी अज्ञात शक्ति की पूजा करता है, वह नियतिवादी बनता है एवं ब्रह्म पर विश्वास रखता है। तब उसमें मानवतावादी विचारधारा, करुणा भक्ति आदि का संचार होता है। अपनी वेदना को ही वह संसार में व्याप्त होते हुए देखता है --

वेदना ही ने सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परमपद
वेदना का ही मनोहर रूप है।[३]

१- पल्लविनी - पंत, पृ० २२७.
२- ग्राम्या - पंत, पृ० २१.
३- वीणा - पंत, पृ० ४२.

इसलिए विश्ववेदना में अपने मन को हर क्षण तपाने एवं विश्वजीवन में अपने जीवन को मिलाने का आह्वान पन्त जी ने भी दिया है --

तप रे मधुर-मधुर मन ।
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष उज्ज्वल और कोमल ।[१]

पन्त जी के मानवतावादी स्वर पर मार्क्सवादी प्रभाव भी दर्शित होता है। मार्क्स के प्रति कवि की बड़ी श्रद्धा थी । उन्होंने शोषक-शोषितों की व्यवस्था की कड़ी आलोचना की है । इस सामाजिक व्यवस्था को वे सह नहीं सकते । कवि का कहना है --

यह तो मानव-लोक नहीं रे,
यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित ।[२]

सूर्यकान्त त्रिपाठी `निराला` की कविताओं में बौद्धतत्व

क्षणिकता

जीवन को नश्वर मानने वाले महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त की ओर अनेक हिन्दी कवि आकर्षित हुए हैं । `निराला` के साहित्य में भी ऐसे कुछ प्रसंग आये हैं, जहाँ उन्होंने भी जीवन की क्षणिकता का वर्णन किया है ।

कवि ने संसार में सुख के क्षण देखे, तुरन्त बाद दु:ख के भी । सुख की क्षणिकता पर उनको आक्रोश हुआ । तभी उन्होंने सुख-दु:ख की आँख-मिचौनी खेल में सुख की

१- पल्लविनी - पंत, पृ० २१५.
२- आधुनिक कवि - पंत, पृ० ३४.

नश्वरता का पाठ सीखा । मिलन-वियोग एवं जीवन, की नश्वरता की रहस्यमय व्यक्ति उनकी श्रेष्ठ रचनाओं में सुलभ है । `जुही की कली`, `शेफालिका` आदि श्रेणी में आने वाली कविताएँ हैं । शृंगार-चित्रण में कवि सजग रहते हैं, किन्तु मिलन की क्षणिकता का उनको स्मरण आता है तो वे निराश होते हैं । इन्हीं विचारों को उन्होंने `जुही की कली` में चित्रित किया है । मिलन के क्षण भर के सुखद याद के साथ विजन-वन-वल्लरी पर सोने वाली `जुही की कली` के बारे में कवि कहना है --

सोती थी
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?[१]

इसी प्रकार मिलन की वेला में अत्यन्त प्रसन्न होकर पल्लव-पर्यंक पर सोने वाली शेफालिका के भाग्य में भी सुख क्षणिक ही रहता है । सुख की सेज पर लेटने वाली शेफालिका दूसरे सुनहले प्रभात में अत्यन्त दयापूर्ण हाल में अपने आपको पाती है --

पाती अमर प्रेमधाम,
आशा की प्यास एक रात में भर जाती है,
सुबह को आली, शेफाली झर जाती है ।[२]

ऊपर की पंक्तियों में नश्वरता का यथार्थ चित्रण बहुत सहज रूप से किया गया है

कवि संसार की हर वस्तुओं पर क्षणिकता का आवरण देखते हैं । इस प्रकार वे सारे संसार को अस्थिर मानते हैं । इसी अस्थिरता का चित्र `भृत्ति` में दर्शाया गया है --

उगते पल्लव से कोमल शाखा
आए थे जो निष्ठुर कर से
मले गए,

\- - -

१- निराला ग्रंथावली - पृ० २२.

२- वही - पृ० २७.

मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए.. ।[१]

संसार में मनुष्य का आवागमन जारी रहता है । लेकिन अपनी इच्छा के विरुद्ध न क्षणिक जीवन ही उसके लिए काटना पड़ता है । पृथ्वी तल पर कदम रखने के क उसी वक्त से लेकर वह नाते और रिश्तों का जाल बुनने लगता है जिसमें वह मकड़ी तरह बँधा रहता है । नये-नये संबंध स्थापित करने के लिए उसका मन उतावला रहता । आखिर अशान्त मन को ढोकर वह शान्ति की खोज में भटकने लगता है । ऐसे ही विचारों को उपरोक्त पंक्तियाँ भी प्रस्तुत करती हैं ।

उसके बाद जलकण कवि के विचारों को पंख लगा देता है । नश्वरता और रवर्तनशीलता कण-कण में देखने को मिलती है । उस कण को कवि यों चित्रित करते --

कभी अट्टालिका में विराजमान,
कभी मिट्टी की मलिन गोद में व्याधिग्रस्त,
कभी पुष्प-पराग में स्थित तो
कभी आँधी में फँसे, कभी दुःख से भरे पल पल
परिवर्तित होने वाले कण ।[२]

ा प्रकार शरीर की नश्वरता के बारे में अन्यत्र कवि की उक्ति देखने लायक है --

जीवन के मधु से भर दो मन,
गंध विधुर कर दो नश्वर तन,

ि में कवि क्षणिकता को प्रकृति और ऋतुओं के माध्यम से चित्रित करते हैं । वसन्ता- न से प्रकृति हर्षोल्लसित होती है । लेकिन उसके चले जाने के बाद मन विषाद से

निराला ग्रंथावली, पृ० ३४.

निराला साहित्यिक मूल्यांकन - गोकाकर व कुलकर्णी, पृ० ११५.

ल हो उठता है । कवि कहता है --

सुमन भर न लिये,
सखि, वसन्त गया ।
हर्ष-हरण-हृदय
नहीं निर्दय क्या ?[१]

'पतनोन्मुख' में तो कवि ने असमय के हिमपात, गरल अनल की वर्षा से जीवन
क के झुलसाने एवं झरने का चित्र प्रस्तुत किया है । संसार में तो अच्छे-बुरे तथा
ष्ठुर कोमल वस्तुओं एवं व्यक्तियों का आवागमन सदा चल रहा है । जीवन पथ
चिन्ताएँ एवं बाधाओं का ही राज्य चल रहा है । कवि का कहना है --

विकल डालियों से
झरने ही पर है पल्लव प्राण --
हमारा डूब रहा दिनयान ।[२]

यह एक सर्वमान्य बात है कि संसार की सभी चीजें क्षणिकता में सांस लेती
। बेचारा मनुष्य भी यह नहीं जानता है कि सुख भी एक ऐसा बादल है जो थोड़ी
आकाश में व्याप्त होकर तथा अपना रंग दिखाकर बरसे बिना गायब हो जाता
। सदा मनुष्य यही चाहता आया है कि सुख सुन्दरता आदि का अन्त कभी न हो ।
किन काल के तीव्र प्रहार में वे सब कुछ भी नहीं रहते । इसी बात का विवरण कवि
चे की पंक्तियों में देते हैं --

काल-वायु से स्खलित न होंगे
कनक प्रसून ?[३]

निराला ग्रंथावली - पृ० २६
वही - पृ० ३१
वही - पृ० ५६.

फूल को प्रतीक मानकर तथा उसके क्षणभंगुर जीवन पर दृष्टिपात करके कवि मनुष्य के क्षणिक जीवन पर भी यथोचित प्रकाश डालते हैं । जब तक फूल अपने पास मधु का कोष संचित करके रखता है तब तक भ्रमर उसका अतिथि रहता है । सारे जीवन की कमाई उसे अर्पण करना ही उसका ध्येय रहता है । लेकिन उसका यह रूप यौवन ज्यादा देर टिकने वाला नहीं रहता । उसका अन्त बहुत जल्दी हो जाता है । इसी क्षणिक जीवन के बारे में कवि कहते हैं --

रूप यौवन-बल खोया,
दिन भर में थक, नींद
सदा को झड़कर सोया ।[१]

मनुष्य को जगत की अस्थिरता व चंचलता का जब ज्ञान होता है तो वह अपने आदर्शों में काफी परिवर्तन करता है । नहीं तो वह जीवन की विषमताओं से उलझा रहता है । लेकिन 'अस्थिर-संसार' का ज्ञान उसे जीवन की समस्याओं से ऊपर उठने की क्षमता प्रदान करता है । ज्ञानी लोग ही यह समझ सकते हैं । लेकिन अज्ञानी लोगों से कवि का उपदेश है कि --

रे, कुछ न हुआ, तो क्या ?
जग धोखा, तो रे क्या ?
- - -
कमज़ोरी दुनियाँ हो, तो
कर क्या सकता तू ?
जो धुला, उसे धो क्या ?
रे कुछ न हुआ, तो क्या ?[२]

१- निराला ग्रंथावली - पृ० ४२.
२- 'परिमल' - निराला, पृ० ५४.

दु:ख

संसार भर में केवल दु:ख को व्याप्त देखने वाले महात्मा बुद्ध ने उस दु:खान्धका से पीड़ित जीवों को उभार लेने का पथ स्वीकृत किया । `निराला` के काव्य में दु:ख तत्व की भी अभिव्यक्ति हुई है । क्योंकि `तुलसी के समान निराला को भी अपने भौति जीवन और परिवार के प्रसंग में बड़ा दु:ख देखना पड़ा था । बड़ी विषम क्रूर परि-स्थितियों के बीच उन्होंने जीवनयापन किया.[१] `। दु:ख को उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था । `उनका दु:ख तो उनके जीवन संघर्ष से उत्पन्न हुआ है, प्रतिक्रिया-वादियों के सम्मिलित विरोध के कारण पैदा हुआ है, उनके आर्थिक कष्टों के कारण पैदा हुआ है । विनयपत्रिका और कवितावली के तुलसीदास की तरह वे अपनी व्यथा के कारण सहज ही हमारी सहानुभूति अपनी ओर खींच लेते हैं ।`[२]

इस भवसागर से त्राण पाने की इच्छा निराला में विद्यमान रहती है । संसार भर में व्याप्त दु:ख को कवि ने वाणी दी है । यह संसार में व्याप्त अन्धकार रूपी दु:ख अविश्वास से जन्य है । यही कवि की मान्यता है । यह अन्धकार तो युग-युग से अपनी बाहुएँ फैलाकर ताण्डवनृत्य कर रहा है। इस अंधकार में दीपक की लौ के लिए तरसने वाले जीव न जाने कैसी कैसी वेदनाएं एवं दु:ख का अनुभव करते हैं । सारी वेद-नाओं तथा विपदाओं से पार पहुँचाने के लिए कवि दया के सागर भगवान से प्रार्थना करते हैं । यहाँ तो दु:ख के अस्तित्व को दिखाने का प्रयास किया गया है --

`विपदा हरण हार हरि हे करो पार ।`[३]

जीवन दु:ख से पूर्ण होने के कारण वे दु:ख को माया कहकर नहीं टालते । वे दु:ख को जीवन का पर्यायवाची शब्द मानते हैं । उस दु:ख तत्व को स्वीकृत करते हैं ।

१- निराला - काव्य का अध्ययन भगीरथ मिश्र, पृ० (वक्तव्य)

२- निराला - डा० रामविलास शर्मा, पृ० १६३.

३- आराधना - निराला, पृ० २१.

वस्तुत: अन्धकारमय जीवन पतझड़ के समान है । पतझड़ में सब उजड़ा-सा लगता है । फिर जीवन रूपी वन-उपवन का क्या कहना ? पतझड़ जीवन को भी रसहीन बना देता है । इस विपदा को व्यक्त करने के लिए कवि पतझड़ का वर्णन करते हैं --

दु:खता रहता है अब जीवन
पतझड़ का जैसा वन उपवन ।[१]

सहजरूप से दु:खी जीवों पर सहानुभूति आती है । इसी बात को आधार मानकर उन्होंने प्रकृति के माध्यम से जीवन में आने वाले दु:ख के अस्तित्व का चित्र उपस्थित किया है --

मन हमारा मग्न दुख की
दुर्धरा में हो गया ।
कुछ न था तब लग्न वह
विश्वंभरा में हो गया ।[२]

स्वार्थी संसार ही मनुष्य को ऐसे कष्टों को झेलने के लिए बाध्य करता है । पीड़ा से तड़पते हुए दीन तो जीवन को `जीवन` नहीं `क्रन्दन` संज्ञा देता है । दीन को जगत में हर कहीं अशान्ति के काले-काले बादलों का ही दर्शन मिलता है । पल-पल उठने वाले उत्पीड़नों के प्रहारों को सहते-सहते मानों हृदय दुर्बल हो गया हो । इस पर भी चारों ओर हृदय का क्षोभ, दु:ख तथा कष्टों की करुणाकथा ही कवि को सुनाई पड़ती है । वास्तव में इन सभी कष्टों के मूल में कवि लोगों की स्वार्थपरता को पाता है, दीन के मुख से वे कहलाते हैं --

---

१- आराधना - निराला, पृ० २१
२- बेला - निराला (गीत ८७, पृ० १०३)

यहाँ कभी मत आना,
उत्पीड़न का राज्य दु:ख ही दु:ख
यहाँ है सदा उठाना
- - -
स्वार्थ सदा रहता परार्थ से दूर,
यहाँ पदार्थ वही जो रहे
स्वार्थ से ही भरपूर,
- - -
यही मेरा, इनका, उनका, सबका जीवन,
- - -
सदा अशान्ति ।[१]

`अधिवास` में तो मनुष्य जीवन में प्रतिपल उठने वाले कष्टों और दु:खों की ओर संकेत किया गया है --

मैंने `मैं` शैली अपनाई
देखा दु:खी एक निज भाई,
दु:ख की छाया पड़ी हृदय में मेरे,
झट उमड़ वेदना आई ।[२]

वसन्तागमन से कवि का मन इतना आनन्दित होता है कि और भी जीवित रहने की लालसा उठती है । तभी वसन्त चला जाता है, आशा, निराशा का रूप धारण कर लेती है । `शेष` में जीवन के दु:खों का अनुभव करने वाले तथा वसन्तागमन के बाद के चित्र के माध्यम से जीवन की विषण्णता चित्रित है ।[३] जीवन की विपन्ना

१- निराला ग्रंथावली - पृ० २३-२४.
२- परिमल - निराला, पृ० १२४.
३- निराला साहित्यिक मूल्यांकन - गोकाकर व कुलकर्णी, पृ० १४६.

वस्था को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ देखिये --

सुमन भर न लिये,
सखि, वसन्त गया ।
हर्ष-हरण-हृदय
नहीं निर्दय क्या ?[१]

संपूर्ण जीवन ऐसी गति से आगे बढ़ रहा है कि सदा प्रतिकूल परिस्थितियों से तटस्थ रहता है और बहुविध कष्टों एवं दु:खों से पीड़ित रहता है । तो दृढ़चित्त मनुष्य इन बाधाओं से ऊपर उठने की शक्ति अपने में समाये रहता है । जीवन में ऐसे कई प्रसंग आते हैं, जब मनुष्य अत्यधिक व्यथा से पागल हो उठता है । ऐसा ही एक समय शोक-प्रसंग कवि निराला के जीवन में भी आया । अपनी पुत्री की मृत्यु से संतप्त हृदय को वहन करते-करते उन्होंने 'सरोज स्मृति' जैसी एक लंबी व्यथापूर्ण कविता का चयन किया । वास्तव में इसके अध्ययन से हम इसी तथ्य को मान लेने में राजी हो जायेंगे कि 'कवि का जीवन अपने आप ही दु:ख की एक लम्बी कहानी है ।'[२] उसके बाद को उनका जीवन कुछ संतप्त उसासों में ही रह गया । उसी पुत्री की स्मृति लेकर वे उस पर यों तर्पण चढ़ाते हैं --

मुझ भाग्यहीन की तू संबल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दु:ख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ?[३]

ऐसी संकटापन्न स्थिति में हमारे शरणदाता कोई नहीं रहता । जीवन रूपी नाव को पार लगाना ही हमारा ध्येय रहता है । आँधी और तूफान से क्षुब्ध समुद्र

१- निराला ग्रन्थावली, पृ० २६.
२- निराला साहित्यिक मूल्यांकन गोकाकर व कुलकर्णी, पृ० १४५.
३- अनामिका - निराला, पृ० १३७.

में डुबकियाँ लेने वाली नाव रूपी जीवों की रक्षा करने के लिए कवि शरणदाता ई से विनय करते हैं । क्योंकि समय की धार प्रखर है । कष्टरूपी तरंगें तो प्रबल हैं जि नाव डगमगाती रहती है । पतवार के टूटने की शंका होते हुए भी वह निरन्तर ती पहुँचने की आशा में रहता है । इन जीवों की नैया को पार लगाने के लिए कवि क स्वर से प्रार्थना करते हैं --

डोलती नाव, प्रखर है धार,
संभालो जीवन-खेवनहार ।[१]

'परिवर्तन' में तो कवि जगत के दु:ख की ओर इंगित करके कहते हैं --

एकाकीपन का अन्धकार,
दुस्सह है इसका मूक भार
इनके विषाद का रे न पार ।[२]

मगर बाद को हम देखते हैं कि उनकी पीड़ा वैयक्तिक अधिक और सामाजिक कम है जो वेदना के स्वर उनमें हाजिर हैं, वह प्रेम से संबंधित है । इसलिए भगवान बुद्ध के विरागात्मक दु:ख और उनके दु:ख में तुलना का अंश देखना बेकार होगा । तो भी निराला जी ने जगत में दु:ख के अस्तित्व को माना है, जैसे बुद्ध ने भी ।

दु:ख का एक कारण है लौकिकता की ओर आकर्षण । यह माया के रूप ही जगत में व्याप्त है । मनुष्य के चारों ओर माया का साम्राज्य ही है, इसीलिए चारों ओर अंधकार, जड़ता और अलौकिक वासनाओं की अगणित तरंगें ही दीख प हैं । इस माया के कारण वह अज्ञान, अहंकार से परिपूर्ण होकर दु:ख का स्वयंवर है । लेकिन जब वह इस मोहदशा से मुक्ति प्राप्त करते हुए सेवाभाव, सत्य आदि व का पालन करता है, तो उसका विकास स्वयं हो जाता है ।

१- निराला ग्रंथावली - पृ० २१.

२- पल्लविनी - निराला, पृ० १८३.

हृदय में करुणा दया आदि का अधिवास होने पर ही दीन दुखियों पर में सहानुभूति होती है और मनुष्यों की दुर्बलताओं पर आक्रोश या द्वेष नहीं होता । ब तक इस पृथ्वी पर दु:ख और पीड़ा रहती है, तब तक उसका वास भी इस जगत में ोता है । क्योंकि वह सब की पीड़ा दूर करना चाहता है । कवि का कहना है --

कहाँ ?
मेरा अधिवास कहाँ ?
क्या कहा ? -- रुकती है गति जहाँ ?
भला इस गति का शेष
करुण स्वर का जब तक मुझमें रहता है अविश ?[१]

रुणा

निराला जी के संपूर्ण साहित्य का अध्ययन करने पर हम यही निष्कर्ष निकाल कते हैं कि उनके काव्य का मूल स्वर मानवतावाद का स्वर है जो अन्य कवियों की लना में निराला में सर्वाधिक महत्व का है ।[२] मानवीय गुण जागृत होने पर ही मनुष्य नुष्य में प्रेम, दया, सहानुभूति करुणा आदि भाव देखने को मिलते हैं। मानवता ही निराला जी का धर्म रहा । उनका संपूर्ण जीवन ही इस बात का प्रमाण है कि न्होंने सदा दीन-दु:खी तथा पतितों का साथ दिया है । उनमें लोककल्याण की ावना बड़ी मात्रा में विद्यमान थी । निराला का समस्त काव्य, इस मानवताधर्म ा व्याख्या, स्थापना और विकास कर जन-जन के कल्याण का मार्ग खोजने की अमर था है ।[३]

इस मानवतावाद का आधार है करुणा । मनुष्य मनुष्य को निकट लाने की ामता करुणा में निहित है । निराला के मानवतावाद में भी करुणा के स्वर मुख्य

- परिमल - निराला, पृ० ११७.
- निराला काव्य का अध्ययन - भगीरथ मिश्र, पृ० ७७.
- वही - पृ० ७३.

ही रहे । इसके अतिरिक्त उनका काव्य बौद्धिकता से परिपूर्ण भी है । लेकिन इस बौद्धिकता का उन्होंने अन्धानुकरण नहीं किया । 'जीवन के कटु अनुभवों से उत्पन्न होने वाली निराला की करुणा का परिमार्जन विवेकानन्द की दार्शनिक मान्यताओं से होकर सामान्य जन-जीवन के अनुरंजनार्थ प्रवाहित हुआ है ।'[१] इसी कारण से उनकी कविताओं में करुणा का दिग्दर्शन होता है । देखिये --

भीतर नग्न रूप था घोर दमन का
बाहर अचल धैर्य था उसके उस दु:खमय जीवन का,
भीतर ज्वाला धधक रही थी सिन्धु अनल की,
बाहर थी दो बूँदें -- पर थीं शान्त भाव से निश्चल--
विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थल की ।[२]

मूलत: मानवतावाद निराला में तीन रूपों में देखने को मिलता है --

(१) मानव-मानव की समता ।

(२) दलितों व पीड़ितों के प्रति करुणा ।

(३) अत्याचारी लोगों के प्रति क्रोध, घृणा और व्यंग्य ।

(१) मानव-मानव की समता

जब तक जीते रहे, तब तक मानव-मानव की समता के लिए निराला जी ने बहुत प्रयत्न किये । उनकी मानवतावादी कविताएँ इसका प्रमाण प्रस्तुत करती हैं । प्राचीन रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के वे कट्टर विरोधी थे । रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों के अन्धानुकरण के कारण आज मनुष्य, मनुष्य का मूल्य भी भूल गया है । ऐसी परि-स्थिति में निराला जी ने मानव को श्रेष्ठता तथा महत्ता प्रदान करने के लिए 'तुम हो महान्, 'तुम सदा महान् हो' कहकर मानव का गौरव-गान किया है । मानव-मानव में समता की डोर बाँधने तथा प्राचीन रूढ़ियों से मनुष्य-राशि को मुक्ति दिलाने के

१- निराला व्यक्ति और कवि - रामअवध शास्त्री, पृ० ५७.
२- परिमल - निराला, पृ० १४४.

उद्देश्य से निराला जी ने भरसक कोशिश की है । 'निराला तो मानव-समता की घोषणा करते हैं । कवि की दृष्टि में संसार के दु:खों का मूल मानव-मात्र के बीच प्रवर्तित भेद-भाव है ।. महान् लक्ष्य की सिद्धि में इन भेदों का न कोई स्थान है, न महत्व, प्रत्येक मानव अपने आप में महान् है । मानव-सागर की करुणा से आपूरित हृदय सबसे महान् है ।'[१] यही उनकी मान्यता थी । वस्तुत: निराला जी मानव-मानव में किसी तरह का भेद देखना नहीं चाहते । उनकी ये पंक्तियाँ देखिये --

मानव-मानव से नहीं भिन्न
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा
वह नहीं विलग्न,
भेदकर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक
हो कोई सहे ।[२]

जब असमानता दिखाई देती है, तो कवि असह्य हो उठते हैं । मानव-समता में जाति-पाँति की कृत्रिमता को भी उनकी कविता ने वाणी दी है ।

यह 'भिक्षुक, दीन वाली मानवीय करुणा की प्रेरणा भी निराला के इसी अद्वैतवादी दर्शन की देन है ।'[३]

(२) दलितों एवं पीड़ितों के प्रति करुणा

मानवतावादी विचारधारा के पथ पर आरूढ़ कवि निराला ने दीनों के प्रति सहानुभूति, दया, करुणा आदि की वर्षा की है । अँधेरी गलियों से होकर गुजरते हुए दीन-दुखियों के चित्र को सहज रूप से चित्रण करने में निराला जी ने कमाल कर

१- आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान - डा० उर्वशी ज० भूरती, पृ० ३७०.
२- निराला - ग्रंथावली - पृ ० १६.
३- आस्वाद के धरातल - धनंजय वर्मा, पृ० ५६.

दिया है । `तोड़ती पत्थर,` `भिक्षुक` जैसी प्रगतिशील कविताएँ इसी बात के ज्वलन्त उदाहरण हैं । यह `भिक्षुक, दीन वाली मानवीय करुणा की प्रेरणा भी निराला के उसी अद्वैतवादी दर्शन की देन है ।`[१]

धन ने आज के युग में लोगों के बीच असमता की दीवार खड़ी कारदी है । निर्धनता की आग में भुनने वाले श्रमिक वर्ग और ऊँची अट्टालिकाओं में आराम की सांस लेने वाले उच्च वर्ग ही उनकी प्रगतिशील कविताओं का उद्देश्य रहा । इसके लिए उन्होंने इलाहाबाद की गलियों में पत्थर तोड़ने वाली एक स्त्री का हृदयविदारक चित्र प्रस्तुत किया है । इसी उद्देश्य में उन्होंने उसका चित्र उपस्थित किया है कि पत्थर तोड़ने वाली वह स्त्री उस श्रमिक वर्ग की प्रतिनिधि हो और इस निम्न वर्ग के कष्ट और श्रम का पूरा ज्ञान संसार जान जाये । वास्तव में, उनका यह सजीव चित्रण सराहने योग्य है । सूर्य की प्रखर किरणों का भी परवाह किये बिना अपने काम में मग्न उस स्त्री के बारे में कवि का कहना है --

सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार ।
एक क्षण के बाद वह कांपी सुथर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा --
मैं तोड़ती पत्थर ।[२]

वैसे ही भिक्षुक को भी करुणापूर्ण ढंग से ही पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है--

वह आता -
दो टूक कलेजे के करता पछताता

१- आस्वाद के धरातल - धनंजय वर्मा, पृ० ५६.

२- निराला ग्रंथावली - पृ० १३२.

पथ पर आता ।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को - भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता -
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।[१]

इस प्रकार देखें तो निराला जी की अधिकतर कविताओं में हमें जीवन के सच्चे चित्र देखने को मिलते हैं । भगीरथ मिश्र जी ने भी इस सत्य पर प्रकाश डाला है कि निराला के अधिकांश पदों में मानवीय जीवन के ही चित्र है सही. . ।[२]

सामाजिक जीवन से संबंधित कविताएँ निराला की आधुनिक हिन्दी साहित्य को अमूल्य देन है । मानव और समाज को सदैव दृष्टि में रखकर ही उन्होंने अपनी कलम चलायी है । इस श्रेणी में आने वाली कविताएँ `विधवा', `दीन', `वह' आदि उनकी सामाजिक विचारधारा को प्रकट करती हैं । विशेष रूप से अद्वैतवादी विचार-धारा ने भी उनको मानवतावादी बना दिया है । सदा दीन-दु:खी मानव उनकी करुणा-भरी दृष्टि की सीमा को लांघ कर नहीं गये हैं । एक भारतीय विधवा का अत्यन्त मार्मिक चित्र उन्होंने यों खींचा है --

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी लीन-
दलित भारत की विधवा है ।[३]

१- निराला ग्रंथावली - पृ० ८६
२- निराला एक अध्ययन - भगीरथ मिश्र, पृ० ५६.
३- परिमल - निराला, पृ० १२६.

उस विधवा का यह करुणापूर्ण चित्र बड़ा सहज बन पड़ा है । उसका मुखभाव तो शान्त है । छूटी लता के समान उसका मुख दिखायी पड़ता है । उसको धीरज-बँधाने वाला कोई नहीं था । दु:ख के छोर को वह सदा खोजती रहती है । लेकिन वहाँ तक पहुँचने की शक्ति उसमें नहीं है । निस्सहाय वह करुणा की सरिता के मलिन किनारे पर अपने भग्न जीवन की कुटी में तार-तार बने आँचल में अपने दु:ख से रुद्ध बने, सूखे अधरों एवं त्रस्त दृष्टि को छिपाकर, दुनियाँ की नज़रों से अपने को बचाकर 'अस्फुट शब्दों में रोती है ।'[१] करुणा की यही व्यापक-भावना मानवतावादी विचारधारा की जननी है । भारत की वह विधवा तो विवश है, स्थितप्रज्ञ-सा जीवन बितानेवाली वह करुणा की मूर्ति ही है ।[२] कवि का करुणाशील-हृदय विधवा को 'व्यथा की भूली हुई कथा' मानता है ।[३]

घायल ही, घायल का दर्द जानता है । अत्यधिक कष्टों और दु:खों को सहने के कारण निराला में संवेदनशीलता बड़ी मात्रा में विद्यमान रही । पीड़ितों व दीनों पर उनका मन तरस खाता था । कर्ण की जैसी दानशीलता और उदारता उनके श्रेष्ठ गुण थे । दीनदलितों पर उनका जो करुणाभाव है, वह देखने लायक है --

> दलित जन पर करो करुणा,
> दीनता पर उतर आये
> प्रभु तुम्हारी शक्ति करुणा ।[४]

ऊपर की पंक्तियों में भक्ति का स्वर भी मुखरित किया गया है । दीनदुखियों के दु:ख को दूर करने के लिए वे केवल ईश्वर की शरण में जाना चाहते हैं । मानवतावाद से प्रेरित यह भक्तिपरक प्रलाप सहजरूप से करुणा को भी अभिव्यक्त करता है । आर्तजनों के उद्गार को मन में रखकर ही वे ऐसी प्रार्थना करने के लिए बाध्य हुए थे ।

१- निराला : साहित्यिक मूल्यांकन - गोकाकर और कुलकर्णी, पृ० ११३.
२- आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान, पृ० ३७१. डा० उर्वशी ज. सूरती
३- निराला और नवजागरण - डा० रामरतन भटनागर, पृ० ३२१.
४- राग विराग - रामविलास शर्मा, पृ० १५०.

निराला जी ने दु:ख-दैन्य को निकट से देखा था । इसलिए वे जन-जन के प्रति बहुत सचेत रहे । इसी कारण वे सामाजिक-आशय वाली कविताएँ लिख सके ।

संवेदनशील कवि मानव के पतन के कारण खोजना चाहता है । वे ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य की सुख-लिप्सा, स्वार्थपरता तथा अहंकार ने ही उसे आज इतना पतित किया है । फलस्वरूप उसे नाश की ओर प्रस्थान करना पड़ता है । कवि ने अपनी राहों पर आये हुए नि:सहाय लोगों की खूब मदद की है । स्वयं असंख्य संघर्षों का सामना करते रहने पर भी वे असहायों की सहायता करने से अपने को कभी वंचित न रख सके । उन लोगों पर निराला जी की कृपा वास्तव में बादल बनकर बरसती रही । उनके इस गुण के बारे में डा० भगीरथ मिश्र का कहना है--"निराला जीवन भर परोपकारी ही रहे ।.. जहाँ तक मैं जानता हूँ, हिन्दी के और किसी कवि का जीवन इतना संघर्षमय और परोपकारी नहीं रहा ।"[१]

दु:ख के भँवर में चक्कर काटते रहने पर भी जनकल्याण की कामना उनके हृदय को सदा प्रेरित करती रही । इसलिए स्वयं दु:खरूपी विष का पान करके भी समाज को अमृत प्रदान करने के सुविचार ने उनके मन में स्थान पाया । उनके इन विचार को व्यक्त करने वाली नीचे की पंक्तियाँ देखिये --

दु:ख के सुख जियो, पियो ज्वाला,
शंकर की स्मर शर की हाला,
राशि के लांछन से सुन्दरतम,
अभिशाप समुत्कल जीवन पर,
वाणी कल्याणी अविश्वर,
शरणों की जीवन पणमाला ।[२]

१- निराला एक अध्ययन - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ३०.

२- आराधना - निराला, गीत २.

इस मानवतावाद से प्रेरित होकर कवि निराला जी शूद्रों एवं नारियों को मुक्ति दिलाने के पक्ष में रहे । 'तरंगों के प्रति' कविता में कवि दग्ध-चिन्ता के हाहाकार और अबलाओं की करुण पुकार को सुनते हैं और बड़े दु:खी होते हैं । उनकी मानवतावादी विचारधारा के बारे में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कहना है --'रोगियों की परिचर्या, अकाल-पीड़ितों की सहायता तथा ऐसे ही अन्य कार्य जो आश्रम की सक्रियता के परिचायक हैं, निराला के लिए पर्याप्त नहीं थे । उनकी जीवन-चेतना केवल आध्यात्मिक भूमिका में सीमित न रहकर पूर्णत: मानवतावादी और मानववादी हो गई है ।'[१]

केवल आध्यात्मिकता और संन्यास में ही कवि संतोष न पाता है । इसके बारे में कवि का कहना है --

उसकी अश्रुभरी आँखों पर मेरे करुणाँचल का स्पर्श
करना मेरी प्रगति अनन्त
किन्तु तो भी है नहीं विमर्श,
छूटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास ।[२]

उनकी आध्यात्मिकता में तो वैयक्तिक करुणा, विषमता, एकान्तिकता आदि शब्द भी मुखरित होते हैं । सामाजिक जीवन के कष्टों से त्राण पाने के लिए वे विश्व की शक्ति को पुकारते हैं ।

(३) अत्याचारी लोगों के प्रति क्रोध, घृणा और व्यंग्य

अत्याचारियों के प्रति क्रोध, घृणा और व्यंग्य को प्रकट करना उनके मानवतावाद का अन्तिम चरण है । पूंजीपतियों का दलितों के प्रति दुर्व्यवहार देखकर उनमें

१- कवि निराला - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० १५८.

२- परिमल - निराला, पृ० १९७.

सुप्त पड़ी हुई मानवता जागृत हुई । उनके दु:ख और वेदनाओं की गहराई का पता चलने पर निराला जी तिलमिला उठे । उन्होंने इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने का निश्चय किया और क्रान्ति और विप्लव के स्वर बुलन्द किये ।

निराला जी की सामाजिक कविताओं में `दान,` `मित्र के प्रति,` `वनबेला` आदि में उनके व्यंग्यात्मक स्वर मुखरित होते हैं । धर्म के नाम पर ढोंग रचने वाले अन्धविश्वासों और रूढ़ियों की अनल-शिखा में भस्मीकृत होने वाले मानव के प्रति तनिक भी करुणा को न दिखाने वाले मनुष्यों पर उन्होंने व्यंग्यात्मक तीर चलाये हैं । `मानव की उन्नति के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाले सत्ताधारियों पर, नेताओं एवं दम्भी समाज-रक्षकों पर, धर्म के ठेकेदार पण्डों पर क्रोध एवं व्यंग्य आग-पानी की तरह बरसे हैं ।`[१] एक सुन्दर उदाहरण देखिये --

मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरितामज्जन ।
झोली से पुए निकाल लिये,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतना
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं धन्य श्रेष्ठ मानव ।[२]

इसी प्रकार समाज के प्रति अपना उदार दृष्टिकोण व्यक्त करने वाली `कुक्कुर-मुत्ता` की पंक्तियों में भी कवि ने श्रमिक वर्ग की समस्याओं पर ही प्रकाश डाला है ।

१- निराला काव्य का अध्ययन - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ७६.

२- अनामिका - निराला, पृ० २५.

क्षणिकता, दु:ख तथा करुणा शीर्षकों में छायावाद के शीर्षस्थ कवि प्रसाद, महादेवी, पंत एवं निराला की कविताओं में व्याप्त भाव यहां दर्शित किये गये हैं। प्रसाद तथा महादेवी की मनोभूमि सर्वदा बौद्ध तत्वानुकूल रही है। उनके वेदनाभावों में अनुप्राणित कविताएँ बुद्धदेव की करुणा तथा दु:ख को ही प्रकाशित करती हैं। पंत और निराला की कविताओं में तो ये भाव सूक्ष्मतर होकर आये हैं। मानव संवेदना के अनुपम क्षण ही इन कवियों ने स्वीकार किया है, जो बौद्धविचारों के साथ समान्तर गति प्राप्त करते हैं।

सप्तम अध्याय

धुनिक हिन्दी-कविताओं में महात्मा बुद्ध के तत्व द्विवेदी-काल से प्रयोगवादी तक (प्रसाद पंत महादेवी एवं निराला की कविताओं को छोड़कर)

भारत के इतिहास में बीसवीं शताब्दी साहित्यिक जागरण के लिए परम-ान है । इसी समय भारतमाता ने ऐसी सुसंतानों को जन्म दियाथा, जो बाद में ानू नेता और साहित्य-महारथी हुए । भारतीयों को दलितावस्था की ओर झुकते देखकर उनका हृदय विकल बन गया । कवि-हृदयों में सहानुभूति, दया, विश्वमैत्री सद्भावों का संचार हो गया । 'नरेन्द्र, दिनकर, नवीन, भगवतीचरण वर्मा आदि ायों ने सामान्य मानव के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट की है ।'[१] मानव के प्रति ाई जाने वाली इस विशेष सहानुभूति को बौद्धधर्म भी मान्यता देता है । अत: सुनिश्चित है कि आधुनिक हिन्दी के इन कवियों पर भी बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का ाव है । इसी पर यहाँ प्रकाश डाला गया है ।

---

१. आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान - उर्वशी ज० सूरती (पृ० ३७२.

क्षणिकता

श्री भगवती-चरण वर्मा ने अपने काव्यों में जीवन-संबंधी कई दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया है। मनुष्य के जीवन की क्षणभंगुरता पर भी कवि ने यथेष्ट प्रकाश डाला है। जगत् को मिथ्या और नश्वर मानने वाले कवि उन भावों को अपनी कविता में रूप देते हुए पाते हैं --

जगत मिथ्या तथा नश्वर,
समय ही तो एक गुरुतर सत्य।
समय की अवहेलना कर सकल नश्वर विश्व
पड़ रहा है यहाँ सस्वर --
सोलह दूना आठ।[१]

जगत मिथ्या है, यहाँ कोई, किसी का नहीं है। सब अस्तित्वहीन हैं। इसलिए सबको कवि 'परदेशी' कहकर पुकारते हैं। जो यहाँ आता है, उसे एक दिन लौट जाना पड़ता है। यहाँ आने पर भी उसे पलभर सुख नहीं मिलता। इसी भाव को कवि नीचे कीपंक्तियों में प्रकट करते हैं --

परदेशी, कुछ विश्वास करो।
यहाँ सभी परदेसी हैं, इन सबको ही तो
दूर-देश को जाना है,
सभी दु:खी हैं, सभी थके हैं, सभी वहाँ पर माँग रहे हैं
सहानुभूति,
दया,
प्रेम
करुणा।[२]

१-२ एक दिन - भगवती चरण वर्मा, पृ० २६, ४३.

। भगवतीचरण वर्मा जी संसार की गति से बहुत परिचित हैं। पृथ्वी की गति मनुष्य भीगतिशील बना देती है। गति के साथ-साथ प्रतिपल मनुष्य भी बदलता रहता तभी उसे जगत की नश्वरता का आभास होता है। कवि इसी को व्यक्त करते हुए ते हैं --

मैं बढ़ता जाता हूँ प्रतिपल,
गति है नीचे, गति है ऊपर,
भ्रमती ही रहती है पृथ्वी,
भ्रमता ही रहता है अंबर।
इस भ्रम में भ्रम कर ही भ्रम के
जग में मैंने पाया तुमको,
जग नश्वर है, तुम नश्वर हो,
बस मैं हूँ केवल एक अमर।[१]

भगवतीचरण वर्मा जी ने 'रंगों से मोह' कवितासंग्रह की अधिकांश कविताओं दुनियाँ को क्षणिक और नश्वर बताते हुए इस जीवन को निरर्थक सिद्ध किया है। ष्य का संसार में कोई भी अपना नहीं है। तो भी केवल ममता रूपी डण्डा ही उसे र रूपी नाव को खेने का सहारा देता है। कवि कहते हैं --

मेरे नयनों में छवि-सुषमा की आभा द्युतिमान है,
मेरे उर की हर धड़कन में आशाओं का गान है,
वैसे इस नश्वर दुनियाँ में किसका अपना कौन है?
पर ममता की बाहों में ही पलता हर इंसान है।[२]

प्रेमसंगीत - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ७८
रंगों से मोह - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ४७.

न्न कष्टों का भार ढोता हुआ मनुष्य भूमि पर शापों से युक्त एक जीवन बिताता आह्लादहीन, उन्मादहीन वह एक नष्टभ्रष्ट जीवन गुज़ारता है । अपने जीवन के त का एक-एक पृष्ठ उसे स्वप्नसात् दीखने लगता है । क्योंकि वे स्थिर नहीं थे । सब क्षणिक सपने थे । विशेषकर एक छायावादकालीन कवि अपने को अस्थिरता ाच में खड़ा हुआ पाता है, इसमें कोई विस्मय की बात नहीं । अपनी गति, स्पन्दन ह उसे अस्थिर लगते हैं । यहाँ तक कि कवि सृष्टि और प्रलय को भी इस अस्थिरता रिणाम मानते हैं । देखिये --

अस्थिर है यह मिलने का क्षण,
अस्थिर तन्मयता, प्रेम, वरण,
अस्थिरता की ही गति में तो
टकराकर हट जाते कण-कण ।
अस्थिरता ही के रूप अरे
हम जिनको कहते सृष्टि प्रलय ।[१]

जीवन के हर क्षण को छोटा और नश्वर मानने वाली कवि की उक्ति अन्यत्र व्य है --

जीवन-मय है यह कंपन ।
जीवन है छोटा-सा क्षण-
क्षण भर छोटा-सा क्षण ।[२]

लौकिकता से संबंध जोड़ने पर हमें एक-एक करके असंख्य परितापों को सहना ा है । सुख वैभवों की ओर आकर्षित मनुष्य अन्त में मानसिक वेदना में जल उठता क्योंकि वह इस बात से अज्ञात है कि संसार की सारी वस्तुएँ क्षणिक हैं । इस णकता पर मनुष्य को सचेत रखने के लिए कवि कहते हैं --

---

१ विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ० १३.
२ वही - पृ० १७३.

विकसित कुसुम पराग सदा रहता नहीं,
वैभव का पल आया और चला गया,
शेष रहा परिताप, मानसिक वेदना ।[१]

संसार की परिवर्तनशीलता और क्षणिकता का आभास डा० रामकुमार वर्मा को भी हुआ है । इसलिए अपने चारों ओर की परिस्थितियों के बारे में वे सावधान रहते हैं । उनका कविता संग्रह 'अभिशाप' तो वास्तव में नश्वरता, दु:खवाद और क्षणिकता का मुकुर है । उसमें निर्वेद की भावना विद्यमान रहती है ।[२] संसार की क्षणिकता के बारे में उनका विचार है --

प्यार-प्यार क्यों प्यार कर रहे
नश्वरता से प्यार ?
यहाँ जीत में छिपी हुई है
इस जीवन की हार ।
- - -
मुझे न कुना जतलाओ मत
अपना झूठा प्यार ।
भूल समझकर छोड़ चुका हूँ
यह कलुषित संसार ।[३]

संसार की इस नश्वरता को देखकर कवि जैसे आशावादी बन जाते हैं । क्योंकि उनकी दुर्दमनीय आस्था जागृत होती है । वे पुकार उठते हैं --

---

१- विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ५६.
२- डा० रामकुमार वर्मा का काव्य- प्रेमनाथ त्रिपाठी, पृ० ७६.
३- वही - पृ० ७६.

भावनाओं में उभरने का
अधिक से अधिक प्रण था ।
किन्तु देखा विश्व में मैंने कि
मैं लघु एक कण था ।
पर अमर बनकर रहेगी विश्व में मेरी कलाकृति
सुख न है संसार में वह है दु:खों की एक विस्मृति ।[१]

रेखा' तथा 'आधुनिक कवि' में भी कवि डा० वर्मा जी ने जीवन की क्षणिकता दिखाने का प्रयास किया है --

आओ चुंबन-सी छोटी है यह जीवन की रात ।[२]

तथा

सागर बनकर ओस बिन्दु में, आया यहाँ समाने ।
उड़ जाऊँगा दो क्षण ही में -
जाने या अनजाने ।[३]

क्षणिक जीवन धन को प्राप्त कर जो मनुष्य अपने आप को भूल जाता है उससे का कहना है -- 'कितना क्षणिक है, और उसे क्षणिक स्वीकारता हुआ भी कितना मोह रखता है और दो-चार साँसों की संपत्ति पाकर इठलाने लगता है ।'[४]

जीवन की नश्वरता ने कवि वर्मा जी को दर्शन की ओर झुका दिया । इस रता के फलस्वरूप उनके मन में निराशा की अग्नि भड़क उठती है, तब वे पूछते हैं --

क्या है अन्तिम लक्ष्य --
निराशा के पथ का ? अज्ञात ?
दिन को क्यों लपेट देती है
श्याम वस्त्र में रात ?

डा० रामकुमार वर्मा का काव्य - प्रेमनाथ त्रिपाठी, पृ० ८२.
कविवर डा० रामकुमार वर्मा और उनका काव्य - प्रो० दशरथ राज, पृ० १५
वही - पृ० २८.

- - -

यही निराशामय उलझन है
क्या माया का जाल ?
यहाँ लता में लिपटा रहता
छिपकर भीषण व्याल ।।[१]

वे मानते हैं कि सारी वस्तुएँ चार दिनों की चाँदनी के समान हैं, फिर अंधेरी रात । नववसन्त के आगमन पर खुश होने वाले कवि उसके बाद तो आनेवाले पतझड़ की भी भीति पर निराश होते हैं --

यह नव वसन्त है ? नहीं, यहाँ --
रंगों में छिपकर लगी आग ।।[२]

संसार की हर वस्तु में व्याप्त यह नश्वरता डा० रामकुमार वर्मा जी को मानव-जीवन की नश्वरता की ओर ज़ोर से खींच ले जाती है । उद्विग्न होकर वे पुकार उठते हैं --

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ
आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में
कैसे देखूँ जीत ?[३]

परिवर्तन यहाँ का नियम है। सुख-दु:ख एक के बाद एक आता ही रहता है । सुख तो लघु पल का मेहमान है । जैसे इन्द्रधनुष छा जाता है उसी प्रकार सुख भी पल भर जीवन में आता और छाता है । यहाँ कवि जीवन को काले नश्वर बादल का जैसा समझते हैं और कहते हैं --

यह क्या । सुख के लघुपल में,
भावों का विषम उबाल ।

१- आधुनिक कवि भाग -३ - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ११५
२- वही - पृ० ५०
३- वही - पृ० ११५.

करते हो जग जीवन है
परिवर्तन ही है चाल ।।
यह इन्द्र धनुष क्षण भर है,
पर है वैभव का सार ।
काले नश्वर बादल में
है जीवन का शृंगार ।।[१]

र्मा जी ने इस संग्रह की अन्य कविताओं में भी इन्द्रधनुष के माध्यम से लघु जीवन की ोर संकेत किया है । पश्चिम से आने वाली हवा के झोंके से कवि संतुष्ट होते हैं, किन यह पल भर टिक कर चली जाती है, तो कवि निराश हो जाते हैं । इसी का ान इन पंक्तियों में देखने का मिलता है --

मैं भी तो लघु बादल हूँ,
जीवन है क्षण ये चार,
उच्छ्वासों से निर्मित है,
मेरा कंपित आकार ।[२]

के बाद वर्मा जी तन की नश्वरता की बातें करते हैं । यह तन भी नश्वर है । यह ी शुष्क धूल का बना है । तो भी मनुष्य इस पर अभिमान करता है । लेकिन जब ा जर्जर बन जाता है तो वह निराश भी होता है । निश्चल शव को प्यार करना र्थ है, यही भाव हमें अपने शरीर के प्रति भी होना चाहिए । इस नश्वर तन से ार करना वास्तव में हार मान लेने के बराबर है । लेकिन जब हमें संसार के विषैले ुभवों या पापों का ज्ञान होता है तो हम इस पाप-पंकिल और कलुषित संसार को ' छोड़ने के लिए तैयार होते हैं । यहाँ कवि इस नश्वर तन से व्यर्थ गर्व करने वालों सचेत करते हैं --

---

२. गजरे तारों वाले - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ५५, ६०.

क्या शरीर । शुष्क धूल का --
थोड़ा-सा क्षुधि-जाल,
उस क्षुधि में ही क्षिपा हुआ है
वह भीषण कंकाल ।[१]

कवि 'नवीन' जी की भी यही मान्यता है । मनुष्य जगत् की क्षणिकता जान रहता है । कालरूपी नदी के प्रवाह में जगत की सारी वस्तुएँ बह रही हैं । साथ-साथ मनुष्य जीवन भी बहता जा रहा है । उस आशय को मानकर कवि कहते

कब तक प्यार किये जायेगा,
बोल, अरे दो पग के प्राणी ?
क्षण-भर की स्थिति है जगती में
पल भर की है यहाँ जवानी,
मत कर, रे क्षण भंगुरता में
तू आरोपित चिर अशेषता,
क्या स्थिरता ? जब यहाँ बह रहा
पल-पल काल नदी का पानी ।[२]

कवि 'अज्ञेय' के काव्य में भी अक्सर निराशावाद के स्वर मुखरित होते हैं । के प्रति क्षणवादी होने के कारण ऐसा उनका काव्य निराशावाद की श्रेणी में है । 'सांस का पुतला' नामक अपनी कविता में कविने स्वयं अपने को क्षणिक है । उनका कहना है --

सांस का पुतला हूँ मैं
जरा से बँधा हूँ और. ।[३]

---

१ जर्रे तारों वाले - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ८२.
२ हम विषपायी हैं जनम जनम के - 'नवीन' - पृ० ८४.
३ [illegible]

प्रकार कवि जीवन को जर्जर-वीणा के समान मानते हैं और उसमें प्रतिदिन उत्पन्न वाले क्षणिक लयों की ओर संकेत करते हैं --

अपनी जर्जर वीणा के उलझे से तारों का संगीत ?
जिसमें प्रतिदिन क्षणभंगुर लय बुदबुद. ।[१]

हालावादी कवि 'बच्चन' की रचनाओं में भी क्षणिकता तथा नश्वरता से वित कुछ अंश पाये जाते हैं । उन्होंने क्षणिकता को माना अवश्य, लेकिन एक भिन्न से ही उसे स्वीकार किया । क्षणिकता से होकर वे भोगवादी बन जाते हैं । न जानते हैं, जीवन क्षणिक है, यह जगत क्षणिक है । इसीलिए जीवन की जो अवधि मिली है, उसका मुख्य उपभोग ही उनको अच्छा लगता है ।

इस प्रकार कवि जीवन को नापने के पश्चात् संसार के प्रति, भौतिकता के मोह रखने की इच्छा को छोड़ते हैं । लेकिन उनके मन में यह विचार आता है कि संसार अचिरस्थायी है, तो इस ब्रह्माण्ड के नियामक के प्रति ही कोई मोह क्यों रें ? उनका कहना है --

अपना कहकर हाथ लगाऊं,
कैसा रखवारा । कहलाऊं ?
जिसका सारा माल-मता है
उससे नाता जोड़ूं रे ।
अंगड़-खंगड़ मोह सभी से
क्या बांधूं, क्या छोड़ूं रे ।
क्या लादूं, क्या छोड़ूं रे ।[२]

बच्चन का कवितासंग्रह 'मधुबाला' की 'प्याला' शीर्षक कविता एक प्रतीकात्मक

---

१ पूर्वा - अज्ञेय, पृ० २५.
२ चार खेमे चौंसठ खूंट - बच्चन, पृ० ५७.

कविता है । यह प्याला क्षणभंगुर जीवन का प्रतीक है ।[१] मिट्टी का धर्म है कि अपनी चीज को अपने में ही मिलाना । वास्तव में क्रूर काल के कठोर हाथ विनाश का कर्म कर रहे हैं । वास्तव में धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, मन्दिर-मस्जिद के सारे कार्यक्रम व्यर्थ ही हैं । क्षण-भंगुरता में ये सब विनष्ट हो जाते हैं । 'प्याला' की ये पंक्तियाँ देखिये-

मैं देख चुका जा मस्जिद में, झुक-झुक मोमिन पढ़ते नमाज,
यह अपनी इस मधुशाला में, पीता दीवानों का समाज ।
वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म,
कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत ।
कब कंचन मस्जिद पर बरसा ?
कब मदिरालय पर गिरी गाज ?
यह चिर अनादि से प्रश्न उठा,
मैं आज करूँगा क्या निर्णय ?[२]

प्रकृति के परिवर्तन के नियम को कवि एक सत्य और शाश्वत से परिपूर्ण प्रक्रिया मानते हैं । परिवर्तन का यह महत्वपूर्ण नियम वास्तव में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है ।

इतिहास भी परिवर्तनों का मूर्तरूप है । बड़े-बड़े राजा और शाह आये और अपनी शासन-अवधि के पश्चात् चले गये । इसका प्रमाण तो इतिहास स्वयं ही है । कवि बच्चन भी परिवर्तन के इस दर्शन के सर्वथा अनुकूल ही है । वे अमरता वादी दर्शन और विश्वासों को नकारता है ।[३] बच्चन का कहना है कि जग में सूर्य-चन्द्र ही नहीं ईश्वर भी अमरता से हीन है । फिर मनुष्य का क्या कहना । एक दिन इस जीवन से मुक्त होकर सब को चला जाना पड़ता है । वे इस क्षणिकता या नश्वरता से जर्जरि

१- बच्चन व्यक्तित्व और कृतित्व - जीवनप्रकाश जोशी, पृ० १८४.
२- मधुबाला - बच्चन, पृ० ६४-६५.
३- बच्चन एक युगान्तर - नीरज नईमासान, पृ० ३६.

जीवन से युक्त मानव को नीचतम श्रेणी का नहीं मानते । वे संसार में व्याप्त सभी धर्म, संप्रदाय, नैतिकता पाप पुण्य सभी विशिष्टताओं से भी मानव को श्रेष्ठ मानते हैं ।

मनुष्य भूमि पर जन्म लेता है । इसजीवन से मुक्त होकर वह एक-न-एक दिन इस पृथ्वीतल से जाता है । वह स्थायी रूप से जग में बहुत समय तक टिक नहीं सकता, तभी उसे बुलावा आता है । जीवन-मुक्त होने का उसे आह्वान मिलता है । इसप्रकार क्षणभर भी यहाँ टिक जाने का अवसर उसे नहीं मिलता । इसीलिए कवि बच्चन सोचते हैं कि --

> किसको है अधिकार यहाँ पर
> क्षण भर को थम जाए ?[१]

सुख-दुःख के अस्तित्व से लोग क्षणिकता का पाठ पढ़ते हैं । सुख के पीछे हमेशा दुःख लगा रहता है । इसलिए जो यह जानता है कि जगत का जीवन क्षणभंगुरता को लिए हुए है, तो वह सुख के पीछे आने वाले दुःख पर आँसू नहीं गिराता । कवि बच्चन जी ने भी यही अनुभव किया कि --

> बदला ले लो सुख की घड़ियों ।
> सौ-सौ तीखे काँटे आए
> फिर-फिर चुभते तन में मेरे ।
> था ज्ञात मुझे यह होना है
> क्षणभंगुर स्वप्निल फुलझड़ियों ।
> बदला ले लो सुख की घड़ियों ।[२]

बच्चन जी परिवर्तनशील इस दुनियाँ को क्षणिक मानते हैं । कवि प्यार या प्रेम को भी इसी क्षणिकता में बाँधते हैं । प्रेम कभी शाश्वत नहीं है । वह प्रेम का जोश

१- चार खेमे चौंसठ खूँट - बच्चन, पृ० ५३.

२- आकुल-अंतर - बच्चन, पृ० २२.

स्वल्प-समय ही रहता है । उसके बाद प्रेम का मोल ही नहीं रहता । इस बात को वे `कलियों से` नामक अपनी छोटी कविता में दर्शाते हैं --

अहे, वह क्षणिक प्रेम का जोश ।

\- - -

बदलता पल-पल पर संसार,
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर कहे अटकता ?
इससे केवल यही सोचकर
लेती हूँ संतोष हृदय भर --
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार ।[१]

शरीर को भी क्षणभंगुर दिखाने के लिए कवि का कहना है --

सबकी है मिट्टी की काया ।[२]

क्षणभंगुर इस संसार की परिवर्तनशीलता का वर्णन कवि बच्चन ने `प्रलाप` नामक कविता में भी किया है --

`प्रतिपल परिवर्तन, प्रति प्रहर परिवर्तन, प्रति दिवस परिवर्तन, प्रतिमास परिवर्तन और प्रतिवर्ष और प्रति युग और सदा परिवर्तन ।

एक दिन उसे भी बतलाया गया कि परिवर्तन जीवन का चिह्न है । वह इतना ही जानकर संतुष्ट न हुआ । उसने पूछा, `परिवर्तन जीवन का लक्ष्य क्यों है ?` उत्तर मिला, `परिवर्तन जीवन का चिह्न इसलिए है कि जीवन अपूर्ण है । जो पूर्ण है उसे परिवर्तन की आवश्यकता नहीं । समस्त संसार विविध परिवर्तनों में होता हुआ पूर्णता की ओर जा रहा है ।`[३]

१- अभिनव सोपान - बच्चन, पृ० ४६.

२- धार के इधर-उधर - बच्चन, पृ० २२.

३- मधुबाला - बच्चन, पृ० १४.

जीवन को नश्वर दर्शित कराने की कुछ और भी पंक्तियाँ `मधुबाला` कविता संग्रह में निहित हैं । नश्वरता की छाया को जीवन में पाने पर भी लोग अमरत्व की आशा से हमेशा लालची बन जाते हैं । इस प्रकार अमरता और नश्वरता के बीच पड़कर पिसने वाले मनुष्य के बारे में कवि बच्चन की उक्ति सुनिये --

है अज्ञात हमें नश्वर जीवन
नश्वर इस जगती का क्षण-क्षण
है, किन्तु, अमरता की आशा
करती रहती उर में क्रन्दन,
नश्वरता और अमरता का
अब द्वन्द्व मिटाने हम आए ।[१]

मनुष्य का मन तो नियंत्रण से परे है । शरीर तो मिट्टी का बना है और जीवन क्षणिक है, तो भी मन मस्ती में हमेशा झूमता रहता है । इसका वर्णन भी कवि बच्चन ने इस प्रकार किया है --

मिट्टी का तन, मस्ती का मन,
क्षण भर जीवन --मेरा परिचय ।[२]

अनियंत्रित मन जगत की परिवर्तनशीलता या क्षणिकता में नहीं लगता । जग हर पल हर क्षण बदलता रहता है । लेकिन इन सबसे घबराये बिना मन अडिग रहता है । इसका वर्णन बच्चन जी करते हैं --

मेरा मन इस बदले-बदले जग में आज नहीं लगता है ।
यह दुनियाँ तो रही बदलती
हर दिन, हर पल पर, दीवाने
बदल गया तू, बदल गए हैं
तेरे भी तो तर्ज-तराने,

१-२. मधुबाला - बच्चन, पृ० ४१, ६०.

मन भाया हो, अनभाया हो
या इससे मन घबराया हो,
परिवर्तन की अविरत गति को कोई रोक नहीं सकता है ।
मेरा मन इस बदले-बदले जग में आज नहीं लगता है ।[१]

'प्रणयपत्रिका' संग्रह की एक से बढ़कर एक कविता, सब राग और प्रणय की महत्ता को खोल देती हैं । लेकिन एक स्थान पर कवि बच्चन को इस राग के नाते को भी नश्वर मानना पड़ता है । उनका कहना है --

क्षणभंगुर होता है जग में
यह रागों का नाता. ।[२]

इस क्षणभंगुरता के बीच भी बड़ी-बड़ी उम्मीदें तथा बड़े-बड़े मनसूबे बाँधने वाले लोगों पर कवि को सहानुभूति होती है । कवि कहते हैं --

क्षणभंगुर जीवन के बीच
बड़ी-बड़ी उम्मीदें करना,
बड़े-बड़े मंसूबे भरना,
कौन सिखाता पहले-पीछे उन्हें मिलाता कीच ?[३]

इस क्षणिकता को दिखाने के लिए कवि ने छोटी और नन्हीं-सी कलियों के क्षण-भर के जीवन को माध्यम बनाया और उन पर भी सहानुभूति प्रकट की है --

जिन कलियों की है किस्मत
पल में खिलकर कुम्हलाना,
क्यों दुनिया ने है सीखा
उन पर इतना इतराना ।[४]

१- बहुत दिन बीते - बच्चन, पृ० ३६.
२- प्रणयपत्रिका - बच्चन, पृ० २५.
३- प्रारंभिक रचनाएँ - बच्चन, पृ० ७३.
४- प्रारंभिक रचनाएँ - बच्चन, पृ० ६७.

णिक-जीवन पर मनुष्य मृगतृष्णा के द्वारा सदा बन्द रहता है । इसका वर्णन रते हैं --

मेरे इस लघु जीवन में
* - -
है जीवन है मृगतृष्णा ।
- - -
जग उज्ज्वल जीवन क्षण भर
फिर क्षणभंगुर आना पर
क्यों मोहित हो तन मेरा ।[१]

मिलन और विरह से जीवन परिपूर्ण है । यह सत्य है कि मिलन सुख का है और विरह दु:ख का । मिलन में सपनों के जो प्रासाद बनाते हैं, वे विरहरूपी के झोंकों से बरबाद हो जाते हैं । आकाश के जगमगाते हुए चाँद-तारे, पेरों ।-कल करती हुई बढ़ती सरिताएँ, मधु को बरसाने वाले मधुमय रात-दिवस सब की सुखद वेला में मन को खूब लुभाते हैं । मिलन का पर्दा जब हट जाता है तो एँ उसे क्षणिक और नश्वर लगती हैं । इसी आशय को व्यक्त करने वाली कुछ ाँ कवि 'अश्क' जी ने अपनी 'तस्वीर' नामक कविता में उद्धृत की हैं --

आशाओं का यह जग नश्वर,
यौवन की सब जगमग नश्वर,
दिव-स्वप्नों के चल पग नश्वर.. ।[२]

ाशा का वर्णन हम उनकी कुछ अन्य पंक्तियों में भी देख सकते हैं --

निष्फल तेरी सब आशाएँ,
निष्फल तेरी सब इच्छाएँ,
निष्फल मेरी आकांक्षाएँ. ।[३]

ारंभिक रचनाएँ - बच्चन, पृ० ७५-७७.
दीप जलेगा - उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ५०, ५६.

कवि `सुमन` जी से लिखित `विश्वास बढ़ता ही गया` संग्रह की कुछ कविताः में जगत की परिवर्तनशीलता पर प्रकाश डाला गया है । इसी परिवर्तन के अस्तित्व को सुमन जी स्वीकार करते हैं और बताते हैं --

विश्व, तुम्हारे आंगन में,
होते हैं सृष्टि, प्रलय, परिवर्तन
मैं भी एक तुम्हारा ही कण,
करता रहता प्रतिपल नर्तन ।[१]

छायावादी कवि श्री नरेन्द्र शर्मा पर भी परिवर्तनशीलता, क्षणिकता और नश्वरता का प्रभाव देखने को मिलता है । क्षणिक-जीवन का वर्णन कवि ने भी कई कविताओं में किया है । जीवन की क्षणिकता का वर्णन करते समय कवि दो पल के नाते-रिश्तों का भी उल्लेख करते हैं । ये नाते-रिश्ते ही हमें बन्धन में डाल देते हैं । तो भी यहाँ जब तक हैं, तब तक हम खुशी से जी लेते हैं । `पत्नी के प्रति` नामक अपनी कविता में कवि ने जीवन की क्षणिकता के अस्तित्व पर प्रकाश डाला है --

अनुरंजित कर दिवा-निशा
बरसा सनेह-केसर,
पार्थिव और क्षणिक जीवन को
करती मन-भावन ।[२]

इसी प्रकार मरण और अमरण से बंधा हुआ जीवन भी जल्दी ही मिटने वाला है । इसी के आधार पर कवि अन्यत्र जीवन की क्षणिकता का समर्थन करने के लिए `अमिट कहानी` में एक मिट्टी के दीपक की ज्योति का सहारा लेते हैं --

---

१- विश्वास बढ़ता ही गया - सुमन, पृ० ११.

२- अग्निशस्य - नरेन्द्र शर्मा, पृ० २४.

मिट्टी का दीपक क्षणभंगुर,
अमर ज्योति का वासा ।
मरण और अमरण बंध जाते,
डोर बनी है श्वासा ।[१]

सागर में लहरें उठती ही रहती हैं । ये चंचल हैं । लगता है कि ये निरंतर एक पर एक चढ़कर अपने अस्तित्व को ढूँढ़ने के प्रयत्न में लगे हैं । उनका जीवन अत्यन्त क्षणिक है । लेकिन उनका यह अपनापन एक ही क्षण के लिए रहता है । इन्हीं छोटी-सी लहरियों के क्षणिक जीवन के बारे में कवि `लहरी` नामक कविता में यों लिखते हैं --

सरिता की चंचल लहरी ।
क्यों वृथा चाहती जल पर
अंकित करना अपनापन ?
छोटी-सी आकांक्षा में
क्यों सीमित करती जीवन ?
सरिता की चंचल लहरी,
अस्थिर है यह अपनापन ।[२]

उसके बाद कवि जीवन को एक सागर के समान मानते हैं । वे कहते हैं कि उस जीवन रूपी सागर में सुख की लहरें भी उठती हैं और दु:ख की लहरें भी । `सुख-दु:ख` नामक कविता में कवि इन लहरों की चंचलता और क्षणिकता का वर्णन करते हैं --

पर न सदा रहता जग में सुख,
रहता सदा न जीवन में दु:ख ।
छाया से माया से दोनों

१- अग्निशस्य - नरेन्द्र शर्मा, पृ० १०८.
२- कविश्री - नरेन्द्र शर्मा, पृ० ७.

आते-जाते हैं ये सुख-दु:ख ।

\- - -

सुख भी नश्वर, दु:ख भी नश्वर
यद्यपि सुख-दु:ख सबके साथी,
देख तोड़ सीमाएँ अपनी
जोगी नित निर्भय रमता है ।[१]

सी के गीत' का कवि अपने को मरघट का एक पीपल मानता है । वह सब कुछ र मानता है और अपने को ही शाश्वत मानता है । सबको नश्वर मानने वाले कवि र की क्षणभंगुरता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है --

सब नश्वर, मैं ही शाश्वत हूँ,
मैं मरघट का पीपल तरु हूँ ।
शाश्वत नहीं कुसुम, कलि, किसलय,
शाश्वत नहीं अश्रु या आहें,
आवागमन अनादि, बह रहीं
चहुँ दिशि जीवन की राहें ।[२]

मनुष्य केवल एक मिट्टी का पुतला है । लेकिन इस सत्य को जाने बिना लोग ं 'अहं' पर गर्व करते रहते हैं । इन लोगों से कवि नीरज का कथन है कि नश्वर शरीर पर क्यों अहन्ता रखते हो ?

देह तो सिर्फ सांस का घर है,
सांस क्या ? बोलती हवा भर है,
तुम मुझे अच्छा-बुरा कुछ न कहो,
आदमी वक्त का हस्ताक्षर है ।[३]

पलाशवन - नरेन्द्र शर्मा, पृ० ५३.
प्रवासी के गीत - नरेन्द्र शर्मा, पृ० ३६-४०.
मुक्तिकी - नीरज, पृ० २.

अपनी कुछ अन्य पंक्तियों में भी कवि नीरज ने जगत की नश्वरता, परिवर्तनशीलता आदि को दिखाने का यत्न किया है । संसार कीपरिवर्तनशीलता के बारे में उनके विचार इस प्रकार हैं -- परिवर्तन ही जगत का क्रम है । प्रकृति की हर वस्तु पर यह नियम लागू है । यह नियम तो आज या कल का बनाया हुआ नहीं है । युगों से चलता आया हुआ यह क्रम मनुष्य जीवन को आशा-निराशा के दोनों कूलों से होकर ले चलता है । कवि नीरज इसी भाव को व्यक्त करते हैं --

परिवर्तन तो है जग का क्रम
कल से नहीं, युगों से प्यारे,
एक न एक दिवस होगा मग्न
वह फेनिल निस्सीम सुन्दर ।[१]

यह तो एक विश्वव्यापी सत्य है कि जीवन क्षणिक है । मिट्टी के मोल बिक जाने वाले इस देह पर आशा रखना व्यर्थ है । सजधज कर रखने पर भी एक दिन अंग मिट्टी मेंमिल जायेगा । इस लिए यह जीवन दो क्षणों का मेहमान जैसा है । क्योंकि एक हल्की हवा के झोंके में सारा जीवन बिखर जायेगा । प्रकृति की सुनहरी धूप, रुपहरी चाँदनी सबके सब क्षणिक हैं । केवल पल भर अपने अस्तित्व को बनाये रखकर सब विलीन हो जाते हैं । कवि नीरज की येपंक्तियाँ देखिए --

एक हवा का झोंका जीवन
दो क्षण का मेहमान है
अरे ठहरना कहाँ,
यहाँ गिरवी हर एक मकान है ।[२]

कविवर रघुवीर शरण मित्र ने भी जगत की नश्वरता और परिवर्तनशीलता को दिखाने का प्रयत्न किया है । वे भी मानते हैं कि क्षणिकता की छाया सब पर हुआ

१- लहर पुकारे - नीरज, पृ० ४२.
२- आसावरी - नीरज, पृ० १३.

करती है । मिट्टी का पुतला मनुष्य बदलती परिस्थितियों के साथ बदलता रहता है मिट्टी का शरीर वाला वह सदा दुनिया की कष्टदायक परिस्थितियों से कष्टपूर्ण जीवन को बिताता रहता है । कवि कहते हैं --

मिट्टी का मनुष्य दुनियाँ में, हंसता रोता गाता ।
पल में हंसता, पल में रोता, पल में मुरझा जाता ।।[१]

दु:ख

दु:ख सब लोगों के मन को जलाता है । इस दु:ख की तपती होली में लोग जैसे स्वाहा हो रहे हैं । चारों ओर कराहों और आहों की दर्दभरी आवाज़ आ रही है । एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो दु:ख से तप्त न हो । कवि भगवती चरण वम ऐसे एक व्यक्ति को खोज रहे हैं, जो दु:खहीन हो, वे कहते हैं --

तुम बहते जाना, बहते जाना, बहते जाना भाई ।
तुम शीश उठाकर सरदी-गरमी सहते जाना भाई ।
सब यहाँ कह रहे हैं रो-रो कर अपने दु:ख की बातें ।
तुम हंस कर सब के सुख की बातें कहते जाना भाई ।[१]

वास्तव में नया वर्ष मनुष्य में नया उत्साह और नये जीवन का संचार करता है । यह परिवर्तन उनको एक नया संदेश देता है । इस परिवर्तन के उपरान्त भी कवि यहाँ दानवता का महाप्रलय देखता है । उनको शक होता है कि इस नये संदेश से भी महा-प्रलय से मुक्ति मिलना असंभव है । क्योंकि हिंसारूपी दानवता का ताण्डव-नर्तन अपनी गति को बढ़ाये जाता है । इसी के बारे में कवि कहते हैं --

दु:ख से पीड़ित मानव को भी
क्या कभी मिलेंगे शान्ति-हर्ष ?
तुम किस भविष्य को लाए हो
निज धुंधलेपन में नए वर्ष ?

१- प्रतिध्वनि - रघुवीर शरण मित्र, पृ० १३४.

हिंसा का ताण्डव नर्तन का
कहदो क्या होगा कभी अन्त ?[१]

सी तरह दु:ख भोगने के कारण पर महात्मा-बुद्ध ने प्रकाश डाला था । अज्ञानतावश न्धकार में पथभ्रष्ट होने वाले जीव तृष्णा का शिकार बन जाते हैं । अर्थात् तृष्णा ोमनुष्य को अज्ञान से युक्त बनाती है, जो पीछे जाकर दु:ख का मूलभूत कारण भी न जाती है । इसी तृष्णा के बारे में वर्मा जी भी लिखते हैं । यह तृष्णा पाप-पंकिल । इस पाप-पंकिल तृष्णा से उत्पन्न होने वाले नाशों की ओर मनुष्य को सावधान खना कवि अपना कर्तव्य समझते हैं --

तृष्णा, तृष्णा । आह रक्त से रंजित तेरे हाथ ।
विश्व खेलता है पागल-सा उन पापों के साथ
कि जिनके पीछे ही है लगा
विषम रौरव का जल ।
मिटा भाग्य-सिंदूर तुम्हारा, रिक्त हो गया भाल,
प्रेम ही बना प्रेम का काल ।[२]

डा० रामकुमार वर्मा भी कभी कभी निराशावादी की श्रेणी में आते हैं । ोकिन आप पर निराशावाद के कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ते । निराशा की एक ल्की रेखा मात्र उसमें द्रष्टव्य है, और इस निराशा के अंतर्गत आशा भी छिपी रहती । फिर इस निराशावाद को वे भौतिक जीवन में देखना या व्याप्त होने देना नहीं ाहते । वर्मा जी सर्वत्र घृणा, वेदना, भीषण-मय जैसी कुटिलताओं का राज्य देखते । इससे उनके मन में दु:ख व्याप्त होता है । 'चित्ररेखा' की कुछ पंक्तियों में कवि ा जीवन को पीड़ा-मय, संघर्षमय और दु:खमय बताया है --

---

१- विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३६-३७.
२- वही - पृ० २१८.

जीवन क्या है ? पीड़ा का
संघर्ष और दु:ख का अभिनय ।।[1]

ति के सभी व्यापार सुखदायक हैं, तो भी उस सुख के पीछे कवि दु:ख की काली
ा उमड़ते हुए देख लेते हैं । वे सोचते हैं --`यहां हंसी में रुदन, प्रेम में घृणा, दया
क्रम और रोष, पुण्य में पाप छिपा है और विकास का अर्थ है पतन ।[2] आधुनिक
त की पंक्तियों में डा० रामकुमार वर्मा ने ये ही भाव व्यक्त किये हैं --

हास्य कहाँ है ? उसमें भी है रोदन का परिणाम,
प्रेम कहाँ है ? घृणा उसी में करती है विश्राम,
दया कहाँ है ? दूषित उसको करता रहता रोष,
पुण्य कहाँ है ? उसमें भी तो छिपा हुआ है दोष,
हाय । धूल बनने को ही खिलता है फूल अनूप ।
वह विकास है मुर्झा जाने ही का पहला रूप ।[3]

व अनुभव करता है कि शान्ति केवल मृत्यु में ही होती है । इसलिए वे जीवन को
ुःखमय प्रवास मानते हैं । वास्तव में पीड़ा, कसक आदि हमेशा मन को दु:खी करते
ते हैं । संक्षेप में कवि मानता है कि जीवन और कुछ नहीं वरन् दु:ख का अभिनय-
त्र है । इस दु:ख से करुणार्द्र कवि दु:खों की समाप्ति के हेतु एक नयी उमंग से युक्त
जाते हैं और `चित्ररेखा` में कहते हैं --

मैं आज बनूँगा जल्द-जाल ।
मेरीकरुणा का वारि सींचता रहे अवनि का अंतराल
नभ के नीरज मन में महान,

---

1. गजरे तारों वाले - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २१७.
2. कविवर डा० रामकुमार वर्मा और उनका काव्य, प्रो० दशरथ राज, पृ० ३४
3. आधुनिक कवि - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ११६.

बन सरस भावना के समान,
मैं पृथ्वी का उच्छ्वासपूर्ण -
परिचय दूँ बनकर आयुमान ।
हाँसेदा यहाँ सुख के समीप
छिपकर दु:ख करता है निवास
मैं दिखा सकूँगा हृदय चीर -
रसमय उर में है चपल ज्वाल ।[१]

सार में व्याप्त इस दु:ख के मूल कारण तृष्णा को कवि वर्मा जी ने निष्प्रयास जान लिया । अपरिमित इच्छाओं की मरीचिका के पीछे मनुष्य हताश दौड़ा रहता है । ये च्छाएँ तो अन्तहीन हैं। इन अन्तहीन इच्छाओं से उसे कुछ भी नहीं मिलता । इसी के ारे में कवि बारंबार चिन्तित है । बार-बार वसन्त का आगमन, अनन्त सागर से ठने वाले बादल हर-दिन उषा का शृंगार -- ये सब कवि के मन को विकल बना ते हैं । उनके मतानुसार जब तक तृष्णा का इस संसार से संबंध है, तब तक यह विश्व वकल और दु:खी रहेगा । `चन्द्रकिरण` की येपंक्तियाँ इस प्रसंग के अनुकूल हैं --

इस तृष्णा का पाया न अंत,
फिर-फिर क्यों कुसुमित हो वसन्त ?
बादल का लेकर विकृत रूप
क्यों अस्थिर हो सागर अनंत ?[२]

सी प्रकार `अंजली` में भी दु:ख के अस्तित्व को दिखाने वाली पंक्तियाँ देखने को मिलती --

सुख की नहीं किन्तु दु:ख की बनी रहूँगी रानी
मेरे मन ही में रहने दो, मेरी करुण कहानी ।[३]

- डा० रामकुमार वर्मा का काव्य - प्रेमनाथ त्रिपाठी, पृ० ८२.
- गजरे तारों वाले - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० २५०.
- अंजली - डा० रामकुमार वर्मा, पृ० १६.

क्रोध और दु:ख नाश का प्रतीक है । क्योंकि यह क्रोधाग्नि भी दानवीयता से संपूर्ण है । इसी की तुलना में कवि हिंसा को भी लेते हैं । हिंसा से भी जगत में दु:ख छा जाता है । इस पर कवि 'नवीन' जी का कहना है कि हिंसा विष के समान है । उसे कोई भी नहीं पियेगा । क्योंकि निज से मरने के लिए कोई भी चाहेगा क्या ? नाश और दु:ख को सूचित करने के लिए कवि कहते हैं --

इस दानवी क्रोध, हिंसा का गरल हलाहल कौन पियेगा ?
कौन आज निज को मारेगा ? अरे कौन चिरकाल जियेगा ?[१]

निराशा भी दु:ख का ही एक रूप है । कवि उदयशंकर भट्ट की कविताओं से भी निराशा व्यंजित होती है । यह निराशा अज्ञात है । इसको अभिव्यक्त करने वाली कवि की ये पंक्तियाँ देखिये --

अन्धकार, अन्धकार, अन्धकार चीर चल ।
उग रही उषा उधर, उग रहा दिन सफल ।[२]

वास्तव में मनुष्य इसलिए इतना निराश और दु:खी होता है कि वह तृष्णा के अधीन होता है । मानव-मन लिप्सा-स्वरूप इच्छावृत्तियों के अधीन मृगमरीचिका के आकर्षण की भाँति अपनी शक्ति को व्यर्थ कर अंत में निराशा के सिवा कुछ नहीं पाता'।[३] इसी तृष्णा व आशा को कवि मृगमरीचिका मानते हैं जिससे जीवन भयास्पद और चिन्ताधीन बनता है । मानव के सुख-दु:ख को इन पंक्तियों में वर्णित किया गया है --

कुसुम अरे, देखो दु:खों को
नर ने उपजाया निज कर से
अपने आप जला भी दी है ।
इसने चिता साथ के पर से ।[४]

१- हम विषपायी हैं जनम जनम के - नवीन, पृ० ४१७.
२- पूर्वापर - उदयशंकर भट्ट, पृ० १.
३- आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान - डा० उर्वशी ज० सूरती, पृ० २४०.
४- मानसी - उदयशंकर भट्ट. पृ० २६.

जीवन अभाव का ही एक दूसरा नाम है । क्योंकि पूर्ण रूप से तृप्त मनुष्य जगत में विरले ही मिलेंगे । अभावग्रस्त जीवन ही दु:खी होता है । इसी कारण कभी-कभी मनुष्य निराशावादी भी बन जाता है । प्रगतिवादी कवि `बच्चन` ने कष्टपूर्ण जीवन की एक झाँकी `डूबने वाली नावें` में प्रस्तुत की है । कवि ने जीवन को एक डूबने वाली नाव के समान माना है । यह कष्टपूर्ण जीवनका प्रतीक है । कवि का कहना है --

जिन्दगी की इस नदी में कौन रुकता
भले ही खेवे न खेवे ?[१]

इस दु:ख-भोगके प्रति कभी मनुष्य निराशावादी बनता है तो कहीं वह संघर्षवादी । वह उस दु:ख को कभी कभी ललकारता भी है । कवि कहते हैं --

माना कि दु:ख है,
विपना विपुल है,
आओ उसे ललकारें ।[२]

`बच्चन` के हृदय से ऐसे ही दर्दभरे गीत निसृत हुए जो मर्म को छूने वाले थे । क्योंकि वे गीत जीवन में भोगे हुए दु:ख की अभिव्यक्ति ही है । वास्तव में बच्चन ने ही जीवन के दु:ख की यथार्थ अभिव्यक्ति पहली बार की थी । सुख के साथ दु:ख को भी भोगने की अनिवार्यता या दुनियाँ की चाल को कवि स्पष्ट करते हैं --

जब तू अपने दु:ख में रोता,
दुनियाँ सुख से गा सकती है,
जब तू अपने सुख में गाता,
वह दु:ख से चिल्ला सकती है,
तेरे प्राणों के स्पन्दन तक
क्या जगती का स्पन्दन समाप्त ?

१- चार खेमे चौंसठ खूँटे - बच्चन, पृ० १६८.

२- वही - पृ० ७२.

क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?[१]

जीवन में आने वाले सारे कष्टों को मौन रूप से सह लेने की मनुष्य की शक्ति की प्रशंसा बच्चन जी ने की है । इसी समय वे दु:ख के अस्तित्व की ओर भी संकेत करते हैं । ऐसा लगता है मानों दु:ख और संकट के बिना जीवन नहीं है । जितने भी संताप आ जाय, तो भी मौन होकर मन सब कुछ सह लेता है । कवि कहते हैं --

कितना दु:ख संकट आ गिरता
इस देखी-जानी दुनियाँ से,
मानव यह कह सह लेता है
दु:ख-संकट जीवनका शिक्षण ।
कितना कुछ सह लेता यह मन ।
कितना दु:ख संकट आ गिरता
मानव पर अपने हाथों से,
दुनियाँ न कहीं उपहास करे,
सब कुछ करता है मौन सहन ।
कितना कुछ कह लेता यह मन ।[२]

आखिर मनुष्य तो उस जीवन को यों समझता है --

हमने जीवन को
दुखांत नाटक समान स्वीकार किया है,.[३]

'एकान्त संगीत' में भी बच्चन दु:ख के अस्तित्व को यों प्रकट करते हैं --

दु:खद जीवन का निकटतर अंत आता जा रहा है ।[४]

१- आकुल अंतर - बच्चन, पृ० ८५.
२- वही - पृ ० ८६.
३- बहुत दिन बीते - बच्चन, पृ० ८१
४- एकान्त संगीत - बच्चन, पृ० ५५.

दु:ख का कारण है तृष्णा । मोह के बंधन में पड़कर तथा तृष्णा के वश होकर मनुष्य अपने जीवन पथ से च्युत होता है । वह लौकिकता की ओर स्वयं खींचता जाता है । लेकिन जब इस तृष्णा की पूर्ति या परिणाम दु:खद होता है तभी उससे ज्ञान की ज्योति फैल जाती है । इसी विनाशकारी तृष्णा की ओर कवि बच्चन का संकेत है --

वो गई तृष्णा जगाकर,
वह गई पागल बनाकर,
आँसुओं से यह भिगोकर
क्यों लहर आती नहीं है जो मिला जाती जहर भी ।
जा रही है यह लहर भी ।[१]

कवि कहते हैं कि यहाँ जो कोई भी आता है उसे दु:ख सहना पड़ता है । चाहे वह मनुष्य हो या अन्य कोई पदार्थ सब पर दु:ख का यह नियम लागू होता है । इसी विचार को प्रकट करने की कवि बच्चन की ये पंक्तियाँ देखिये --

तू तो है लघु मानव केवल
पृथ्वी तल का वासी निर्बल,
तारों का असमर्थ अश्रु भी नभ से नित्य बहा करता है ।
- - - -
तू अपने दु:ख में चिल्लाता,
आँसों देखी बात बताता,
तेरे दु:ख से कहीं कठिन दु:ख यह जग मौन सहा करता है ।[२]

दु:ख की अभिव्यक्ति करने में बच्चन अद्वितीय हैं । दु:ख के अस्तित्व को स्वीकारने और उसे दिखाने का प्रयत्न बच्चन ने अपने काव्य में किया है । इन दु:खों का कारण वे किसी अभाव या कमी को मानते हैं । उसी कमी की पूर्ति करना ही

१- एकान्त संगीत - बच्चन, पृ० ३६.
२- निशा-निमंत्रण - बच्चन, पृ० ५७.

दु:ख के नाश का कारण होता है । उनके गीतों में जो दु:ख का प्रतिफलन हम देखते हैं, उसे व्यक्तिपरक बताया है । 'बच्चन के गीतों में व्यंजित दु:ख महादेवी के गीतों में व्यंजित दु:ख की तरह व्यष्टिपरक है ।'[१]

लेकिन दु:ख जिस तरह का भी हो, किसी का भी दु:ख समाज से अछूता नहीं रहता । व्यष्टिपरक यही दु:ख वास्तव में बाद में समष्टिपरक बन जाता है ।

ऐसे दु:खों का अन्त करना बहुत मुश्किल है, इन दु:खों की गणना या अनुमान करें तो मनुष्य की बुद्धि कुछ भी नहीं रहेगी । दु:ख की गहराई को नापना तथा दु:खों का अनुमान करना इतना मुश्किल है कि वह मनुष्य के बस की बात नहीं ।

साधारणतया लोग सुख को अपनाना चाहते हैं । सुख की सेज ही दु:ख के काँटों से भी ज्यादा आकर्षक और मन को भाती है । लेकिन भावुक कवि का मन संसार के दु:खमयी-पथ का अनुकरण करना चाहता है । उस पथ की पीड़ा और व्यथा को अपना धन मान लेने में ही वह सुख पाता है । यहाँ दुनियाँ में दु:ख के अस्तित्व को दिखाने का कवि बच्चन का प्रयास सराहनीय है । 'कवि के आँसू' की ये पंक्तियाँ देखिये --

> किंतु विश्व ने बहुत मुझे
> समझाया, बहुत बुझाया,
> लेकिन मेरे कवि मन को यह
> पीड़ा का पथ भाया ।
>
> मिले प्रलोभन भाँति भाँति के
> मैंने इसे न छोड़ा,
> ऐश्वर्य से, वैभव से, सुख
> से अपना मुख मोड़ा ।

१- बच्चन व्यक्तित्व और कृतित्व - जीवन प्रकाश जोशी, पृ० १२५.

इस वेदना, व्यथा, पीड़ा में
कितना आकर्षण है ।
यह मेरे कविमन की कितनी
संपत्ति कितना धन है ।[१]

इसी प्रकार 'तीन रुबाइयों' में भी कवि ने सुख और दु:ख की बहुत चर्चा की है । मनुष्य की किस्मत में सुख न लिखा हो तो भी वह दु:ख-भोगसे कभी भी स्वतंत्र नहीं । कलियों के बहाने वे व्यक्ति के दु:ख-भोग पर प्रकाश डालते हैं । कलियाँ प्रस्फुटित होते हैं । इनमें थोड़ी कलियों से ही फूल निकलते हैं । मगर सब मुर्झाती जरूर है । इसी का वर्णन यहाँ किया गया है --

सुख तो थोड़े से पाते
दु:ख सबके ऊपर आता,
सुख से वंचित बहुतेरे,
बच कौन दु:खों से पाता,
हर कलिका की किस्मत में,
जग-जाहिर, व्यर्थ बताना,
खिलता न लिखा हो लेकिन,
है लिखा हुआ मुर्झाना ।[२]

जीवन में जो कष्ट और उसके पीछे जो दु:ख आते हैं, उसे सब रो-रोकर सहते हैं । ऐसा करना बहुत बुरा है । सुख के समान दु:ख को भी गले लगाना चाहिए । व्यक्ति को दु:ख या विषाद को सहर्ष स्वीकार लेना चाहिए । इसके बारे में बच्चन ने इस प्रकार कहा है --

तुझे रखनी है अपनी शान ।
कि विष पी मुँह पर ले मुस्कान ।[३]

१-२. प्रारंभिक रचनाएँ भाग-२ - बच्चन, पृ० १०८, पृ० १३४.
३- बच्चन एक युगान्तर - नीरज नईमा खान, पृ० ३६.

क्योंकि कठोर दु:ख-भोग के पश्चात् ही सुख की यथार्थ अनुभूति हम पा सकते हैं --

मुझे आया है मधु का स्वाद,
हलाहल पी लेने के बाद ।[१]

वास्तव में, 'उनका मधुकाव्य, छायावादी संस्कारों से ग्रस्त पलायनवादिता का तथा त्रस्त-मानवता की वेदना को मुखरित करने की संक्रान्तिकालीन स्थिति के दर्शन का काव्य है ।'[२] इसी प्रकार 'हालावादी कृतियों में भी कवि ने वस्तुत: अपनी निराशा दु:ख और पराजय की भावनाओं को ही मस्ती और मौज के कृत्रिम आवरण में प्रकट करने की कोशिश की है ।'[३]

इसप्रकार सुख से अधिक दु:ख को श्रेय देने वाले कवि बच्चन कबीरदास जी के बराबर लगते हैं । दोनों ने सुख-दु:ख की सीमा-रेखा को ही अपना उद्देश्य माना है[४] ।

मनुष्य दुनियाँ में आकर सुख-सन्तोष प्राप्त करना चाहता है । लेकिन उसकी इच्छाएँ पूर्ण नहीं होती । सुख विरले लोगों को ही प्राप्त होता है, और दु:ख सबको । क्योंकि दु:ख सबका अधिकार है । चिरकाल से हम जिस सुख की अभिलाषा करते हैं वह हमें क्षण भर के लिए मिलता है । लेकिन इसके पीछे भी दु:ख का बड़ा पारावार ही रहता है । यहाँ दु:ख के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए कवि 'अश्क' जी यों लिखते हैं --

क्या रखा है मनुहारों में, क्या आतुर अभिसार ।
एक क्षणिक सुख, इसके पीछे, दु:ख का पारावार ।
बहुत चख चुके हैं यह फल भी,
स्वाद वही है जो था कल भी,
बेचैनी, पीड़ा, हलचल भी.. ।[५]

१- बच्चन एक युगान्तर - नीरज नईमा खान, पृ० ३६
२- बच्चन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - कृष्णचन्द्र पाण्डया, पृ० ८३.
३- नया हिन्दी काव्य - डा० शिवकुमार मिश्र, पृ० १२६.
४- प्रणयपत्रिका - बच्चन, पृ० १२२.
५- दीप जलेगा - उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० ४२

दु:ख को दिखाने के लिए कवि 'अश्क' जी अन्य कुछ पंक्तियाँ लिखते हैं । उनका कहना है कि सुख-दु:ख की दिवा-निशा में संसार सोता-जागता है । यहाँ सब तो सुख की साँस लेते हैं, तो भी किसी अज्ञात व्यथा से उनका हृदय दु:खता रहता है । इसको व्यक्त करने के लिए वे कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । दिन में सूरज हँसता रहता है, तो भी पल-पल क्षय होता रहता है । इसी प्रकार आकाश के नक्षत्र चमकते हैं, तो भी युग-युगों की पीड़ा से उनका उर त्रस्त है । ऐसे ही अनेक पीड़ाओं को सहकर लोगों का मन रोता ही रहता है, तो भी वह हँसता है । उसके अन्दर छिपी हुई व्यथा को वास्तव में मुख पर की मुस्कान छिपाती है । इसी भाव को यहाँ व्यक्त किया गया है --

फिर क्या जो हँसता हूँ मैं,
मन का अवसाद भुलाये ।
संसार दु:खी हँसता है,
नित मन की व्यथा छिपाये ।[१]

छायावादी कवि श्री नरेन्द्र शर्मा में भी निराशा, एक तरह की अज्ञात-व्यथा, दु:ख-कसक आदि देखने को मिलते हैं । मनुष्य का मन तो व्यथा से हमेशा त्रस्त है । इस व्यथा को दूर करना आसान नहीं है । उसके कारण भी ढूँढ़ निकालना मुश्किल है । क्योंकि यह व्यथा अज्ञात है । इसी अज्ञात व्यथा को व्यक्त करके श्री नरेन्द्र शर्मा ने बताया है --

जाने किस अरण्य रोदन की
है अनुगूँज समाई मन में ?
किस अज्ञात व्यथा की छाया
रही सदा मेरे जीवन में ?

\- - -

१- दीप जलेगा - अश्क, पृ० ८६.

कब तक दु:ख के हाथों
शिक्षा-दीक्षा होगी जीव मात्र की ?
कब तक आत्मा ऋणी रहेगी
मरणशील कायग्रस्त गात्र की ?[१]

। संग्रह में अन्यत्र भी कवि जगत के दु:ख के अस्तित्व को स्वीकारते हैं --

देह का गुण धर्म दु:ख है,
देह का गेही पुकारे ।[२]

मनुष्य को सदा जीवन में साथ देने वाला है दु:ख । इस दु:ख से न घबराना मनुष्य का धर्म है । कवि गोपालदास 'नीरज' तो इस दु:ख को अपनाने का हमें आदेश ा हैं । उनकी राय में दु:ख की अग्नि में जलने पर ही मनुष्य का जीवन चमक उठता है । वे फिर भी कहते हैं कि हमें जीवन के दुरूह पथ में सुख और दु:ख दोनों देखने को ालते हैं । इसमें केवल दु:ख ही उद्देश्य तक हमें पहुँचाता है, जबकि सुख पीछे ही रह ता है । इसलिए हमारे जीवन को पूर्णता प्रदान करने वाले इस दु:ख को कवि इन दों के द्वारा स्वागत करते हैं --

धन्यवाद दे उसको जिसने,
दिये तुझे दु:ख के तो सपने,
एक समय है जब सुख ही क्या । दु:ख भी साथ न दे पाता है ।
साथी दु:ख से घबराता है ?[३]

ष्य एक तरह की कुण्ठा, घुटन, दु:ख आदि का तभी अनुभवकरता है जब उसका मन ान्ति से आवृत रहता है । सदियों से वह शान्ति की खोज में भटकता रहता है ।

---

२. कदलीवन - नरेन्द्र शर्मा, पृ० ६६.
लहर पुकारे - नीरज, पृ० ४१.

ार कहीं भी उसे शान्ति नहीं मिलती । भूमि भी चिरकाल से तप्त है । प्रकृति नित-
इन अपने ओस की बूँदों को बरसाती है, तो भी भूमि की गरमी घटती नहीं । इसी
ाए लोग प्रतिकूल परिस्थितियों से भी जीवन बिताकर अग्रसर होते हैं । विरह और
ज्वलन की वेदना ही दुनियाँ में व्याप्त है, तब मनुष्य भी मजबूर होकर उसे ही सुख
ार सत्य मानता है । इसी दु:खमय मनोभाव को व्यक्त करने के लिए कवि नीरज का
हना है --

विरह ज्वलन, पीड़ा वेदना को --
ही जब चिर सुख-सत्य मानकर,
भीषण क्रान्ति न अपने उर के
अरमानों की मैं पाया हर
फिर क्या मर कर मेरे उर की यह घिर क्रान्ति मिटेगी ।
मुझको अपने जीवन में हा । कभी न शान्ति मिलेगी ।[१]

हाँ केवल कवि का उद्देश्य है कि जीवन में दु:ख किसी-न-किसी प्रकार और किसी-न-
किसी रूप में रहता है । सृष्टि की सारी वस्तुओं को खिलौने मानने वाले कवि नीरज
:ख का अस्तित्व स्वीकार करके अन्यत्र इस प्रकार लिखते हैं --

दु:ख ही दु:ख है जग में सब ओर कहीं. ।[२]

दु:ख के मूलभूत कारणों में अविद्या के बारे में बताते वक्त भगवान् बुद्ध ने तृष्णा
ा ओर संकेत किया है । क्योंकि यही तृष्णा मनुष्य को दु:ख तक ले जाती है । यही
राशा-निराशा की जननी है, इसी से हम जगत में मायापाश में बंध जाते हैं । लेकिन
ह क्षुलना मात्र है । क्योंकि तृष्णा से उदित आशा क्षण में ही निराशा में बदल
ाती है । कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी जी में भी हम यही भाव देखते हैं । अपने मनरूपी
ालहंस को मुक्तामाल से ललचाते हुए देखकर कवि बहुत शोक प्रकट करते हैं और कहते हैं--

---

-२. नदी किनारे - नीरज, पृ० ४, ८.

आशा की मृगतृष्णा में मत
तृषित कृषित मृग को दौड़ाओ ।

- - -

यह मधुमय कुसुमों का पलना,
इसमें छिपी हुई है छलना ।[१]

दुःख की ओर मनुष्य को धकेलने वाली यही तृष्णा वास्तव में मन में प्रबल मोह का अंकुर होती है । कवि ने अपनी एक कविता में इस आशय को व्यक्त किया है --

दुःख का कारण भी प्रबल मोह
सुख का कारण भी प्रबल मोह,
किस भाँति बनूँ फिर वीतराग ?
जब कठिन मोह का है विच्छोह ।[२]

यह सत्य है कि लौकिक वैभवों से मन में मोह उत्पन्न होता है । इस भवसागर में डूब जाने का मार्ग भी वही प्रशस्त करता है । लेकिन हमें मोक्ष या मुक्ति के अधिकारी बनने के लिए सभी मोहपाशों को तोड़ना चाहिए । कवि सोहनलाल द्विवेदी जी का कहना है कि सुख-लिप्सा को जागृत करने वाली वस्तुओं के पीछे अपने आपको धकेलना मत । क्योंकि यह नाश का मार्ग है ।

जब जीवन में अनेक कष्टों का तांता लगा रहता है तो जीवन भारतुल्य बन जाता है । इन कष्टों को जितना भी कम करने की चेष्टा करें, तो भी वे कम नहीं होते । इस पर कवि रघुवीर शरण `मित्र` जी का कहना है --

जिन्दगी काटे न कटती,
पीर यह बाँटे न बँटती ।[३]

१- वासन्ती - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ३२-३३.
२- गीत २० `वासन्ती` - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ३७.
३- प्रतिध्वनि - रघुवीर शरण मित्र, पृ० ४७.

ालिए कवि जिन्दगी को ही दु:ख की संज्ञा से पुकारते हैं । और कहते हैं कि सब कहीं
:ख ही दु:ख नज़र आता है । दु:ख को सहते-सहते अब मनुष्य दु:ख के भक्त बन गये हैं
ौर वही उनको सुख जैसा लग रहा है । इस पर कवि कहते हैं --

जिन्दगी का नाम दु:ख है
दु:ख ही तो सतत सुख है. ।[१]

ागे भी कविकुछ ऐसी ही पंक्तियों को उद्धृत करते हैं, जिसका भाव भी दु:ख के अस्तित्व
ो लेकर ही चला है । कवि कहते हैं --

सहते सहते दु:ख सखे । अब मुझे दु:ख से प्यार हो गया ।
जिसे गरल कहते हो वह तो, नीलकंठ का हार हो गया ।[२]

'सौ गुलाब खिले' कवि गुलाब खण्डेलवाल जी का ऐसा कविता संग्रह है, जिसमें
ावन की कष्टमय परिस्थितियों को चित्रित करने वाली अनेक पंक्तियाँ निहित हैं ।
ाँटों के बीच खिलने वाले गुलाब का कष्टमय जीवन ही इस संग्रह का मुख्य स्वर है ।
सी प्रकार कष्टों के बीच पलने वाले मनुष्य हमेशा निराशा-तड़पन आदि से व्याकुल
।इसी को प्रकट करने की कोशिश की गयी है --

न मौत के लिए आये न जिन्दगी के लिए
तड़पते आये हैं दुनियाँ में दो घड़ी के लिए ।[३]

ष्णा

बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार श्री सियारामशरण गुप्त का काव्य इतना
ष्णामय इसलिए हुआ कि वे गान्धीवादी विचारधारा के समर्थक रहे । भगवान बुद्ध
पदच्छापों का अनुकरण करने वाले तथा मनुष्य के सर्वतोमुखी विकास चाहने वाले मानव-
ादी गान्धी जी के बारे में और मानवतावादी-साहित्य का गुप्त जी ने गहराई से

-२. प्रतिध्वनि - रघुवीर शरण मित्र, पृ० ४७, ६८.
- सौ गुलाब खिले - गुलाब खण्डेलवाल, पृ० ५६.

ध्ययन किया । उन्होंने तभी हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया, जब यहाँ
ो राष्ट्रीयता का आधार गान्धी जी के सिद्धान्तों से दृढ़तर था । 'इसी सामाजिक
रिवेश में सियारामशरण गुप्त जी के 'अनाथ' की रचना हुई और उसमें ग्रामीण जीवन
ा एक करुण चित्र अंकित कर जमींदारी प्रथा, बेगारी, शोषण एवं पुलिस के हृदय-
ोन अत्याचारों की कथा कही गयी है ।'[१] उदाहरण के लिए गान्धी विचारधारा
प्रभावित रचना 'अनाथ' का प्रधान पात्र मोहन अपने जीवन में अहिंसा के सिद्धान्त
ो ही अपनाता है ।[२]

गुप्त जी के 'दुर्वादल' कविता संग्रह की 'मूर्ति' कविता भी मानवतावादी
वर को मुखरित करती है । मानवों में विद्यमान करुणा, दया, सहानुभूति जैसे उदात्त
णों की ओर संकेत करने वाली यह कविता अत्यन्त प्रभावपूर्ण है । मूर्ति से कवि पूछते
' --

मग्न हो हे मूर्ति, तुम किस ध्यान में,
लग्न हो तुम किस अपूर्व विधान में ?
शीत तप, वर्षा विपुल आ जा रहे,
पर तुम्हें हम मौन ही हैं पा रहे ।[३]

हिंसात्मक-पथ में करुणा का विशेष स्थान है । गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन
ो ओर संकेत करते हुए कवि 'पुनरपि' कविता में यों लिखते हैं --

शुचि साधन से उसे जिस दिन कर लेंगे,
मनचाही चिर हेमराशि से घर भर लेंगे ।[४]

- सियारामशरण गुप्त की काव्य साधना - दुर्गाशंकर मिश्र, पृ० ४५.
- वही - पृ० ४१
- दुर्वादल - सियाराम शरण गुप्त (पृ० ४६.
- मृण्मयी - वही, पृ० १२३.

धी जी तो सदा कर्तव्यनिरत और कर्मशील थे । लोगों में कर्तव्यपरायणता, प्रेम, दया दि को जगाने के लिए कवि गुप्त जी गान्धी जी का यह अहिंसात्मक-कार्यक्रम उचित नते हैं ।

कवि की `दैनिकी` रचना की एक दो कविताएँ भी मानवतावादी स्वर को प्रस्तुत करती हैं । दुखियों की करुणदशा का चित्रण करते हुए कवि उनके प्रति नुभूति प्रकट करते हैं । प्यासा होते हुए भी मालिक के डर से चक्की पर मेहनत करने ले दीन-दु:खी मजदूर का चित्र `बिरजू` की पंक्तियों में खींचा गया है --

> बुझ गयी है हंसी उसके मुख की
> बेरी में यह उसका विराम
> फिर आ पहुँचे स्वामी उसके
> वह बैठा है, वह है निकाम ।[1]

प्नभंग` कविता की पंक्तियाँ भी करुणा को ही स्पष्ट करती हैं । `नन्दनवन के नों से काव्यवधू का शृंगार नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका वास्तविक शृंगार इस धरती के उपेक्षित और अकिंचन प्राणियों के चित्रण में ही संभव है ।`[2] इसलिए,

> सोचा क्या है इस प्रसून का, मैं यह तुम्हें बताऊँ ?
> इच्छा है, इसको लेकर मैं चुपके चुपके जाऊँ ।
> जड़ दूँ अपनी काव्य-वधू के जूड़े में पीछे से,
> महक उठे मेरे आँगन में ऊपर तक नीचे से ।
>
> \- - - -
>
> भाग्य ध्यान मैंने अवलोका सुना कमरा अपना ।
> पिटी बालिका का कटु क्रन्दन नीचे से आता था ।
> नहीं रुक रहा था ताडनरत कर कुपिता माता का ।[3]

दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, पृ० ३५.
सियारामशरण गुप्त की काव्य-साधना - दुर्गाशंकर मिश्र, पृ० १०१.
दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, पृ० ४४.

हिंसात्मक कार्य बौद्धधर्म के लिए सर्वथा वर्जनीय है । यही अहिंसा-सिद्धा वास्तव में बौद्धधर्म का मूलभूत सार भी रहा है । बुद्धदेव ने कहा कि हिंसा मनुष्य नष्ट कर देती है । तब तक मनुष्य अस्वस्थ और अशान्त रहेगा, जब तक हिंसा के ज को उखाड़ कर दूर फेंकें । मनुष्य की आत्मा तो आज इस हिंसा-रूपी विष से भुल रही है । लेकिन इसविष को उखाड़ कर फेंक देना आग से खेलने के बराबर है । आ जनक कार्य को करने के लिए शिव के समान बापू सामने आये, उन्होंने हिंसारूपी विष का पान किया और राष्ट्र को अमृत कीसंजीवनीसे मुक्त किया । उस महान् व्यक्ति के प्रति कवि भगवतीचरण वर्मा जी अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं । 'अन्तिम प्रणाम' नाम कविता की पंक्तियों के द्वारा कवि इसी भाव को व्यक्त करते हैं --

हिंसा का वह गरल कि जिससे
भुलस रही मानव की आत्मा,
तुम शिव बन कर उसे पी गए. [१]

और भी कुछ पंक्तियाँ उनकी कविताओं में इसीभाव की हैं --

निज में जग की करुणा समेट
करके हिंसा का गरल पान,
हम कोटि-कोटि नर पशुओं को
दे मानवता का अभय दान,
है लौट चला इस दुनियाँ से
वह सत्य-प्रेम का महारथी । [२]

भावुक कवि वर्मा जी अपनी चारों तरफ कई तरह के विषादों का जाल ही देखते हैं । इस मनुष्य-जन्म को ही वे धिक्कारते हैं । इस निस्सहायता में वे मौन की शरण ही लेना अच्छा समझते हैं । दलितों की सहानुभूति-पूर्ण आहें उनको वास्तव में

१-२. रंगों से मोह - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ७४, ७७.

जीने नहीं देती । उनका कहना है --

मेरे सुख-वैभव को घेरे
है कितने दलितों की आहें ।
मैं देख रहा, प्रत्येक हंसी पर
अनगिनती सांसें भरना ।[१]

जगत की पीड़ा कवि को एक नया अस्तित्व खोजने के लिए प्रेरित करती है । भूखों की पुकार वास्तव में लोगों में उत्पीड़न पैदा करती है । निस्सहाय कवि मौन साधते हैं । प्राणों की दर्दभरी पुकार उनको आकुल बनाती है --

है उत्पीड़न की आह कहीं,
है कहीं भूख का दर्द कठिन,
मैं देख रहा हूं मौन-विवश
यह जग की बर्बरता अभया ।[२]

अन्धविश्वास और रूढ़ियों की परंपरा में आकर लोग जप-तप-पूजा आदि में लगते हैं । जगत से मुक्ति या मोक्ष पाना उनका उद्देश्य रहता है । 'स्वर्ग की चाह' से प्रेरित होकर ही वे इस मुक्तिपथ में अग्रसर होते हैं । लेकिन कवि वर्मा जी इस चाह को निरर्थक मानते हैं । इसके बदले जगत के दु:ख-सागर में अपनी करुणा की दो बूंद आंसुओं को मिलाना वे श्रेयस्कर मानते हैं । उनका विचार है --

जप-तप-पूजा व्यर्थ देवि ही । व्यर्थ स्वर्ग की चाह,
औ 'व्यर्थ है मुक्ति साधना का अदम्य उत्साह,
जग के आंसू में मिल जाता, यही एक है मुक्ति
स्वर्ग लाभ है बन-बन जाता उत्पीड़न की आह ।[३]

१- विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ० २६.

२-३. वही - पृ० ३०, १०५.

जब भारत के राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्य सारे क्षेत्रों में भीषणतम दानवता का ताण्डव नृत्य हो रहा था तब साहित्य क्षेत्र के रंगमंच पर डा० रामकुमार वर्मा ने पदार्पण किया । करुणा तथा विश्वबन्धुत्व के शीतल जलबूँदों के बिना तप्त जनमानस को शान्त करने का अन्य कोई माध्यम ही नहीं था । तिलक-महात्मा गांधी जैसे महान नेताओं ने देश की जनता की रक्षा का लगाम अपने हाथों में ले लिया था और सत्य-अहिंसा के पवित्र आदर्शों का नारा लगाया था । इन परिस्थितियों के प्रभाव के फलस्वरूप डा० रामकुमार वर्मा भी उसी दिशा में आकर्षित हुए जिस ओर से उन महान् नेताओं की स्वर-लहरियाँ आ रही थीं । 'वर्मा जी के हृदय में अछूतों के प्रति ममता है । वे गांधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन से बहुत प्रभावित हुए हैं । उसी से प्रेरित होकर उन्होंने 'एकलव्य' की रचना की है ।'[१] इसी प्रकार गांधी जी के अहिंसा-तत्व ने भी उनको खूब प्रभावित किया । इसी अहंसा का उदात्त रूप हम उनकी रचना एकलव्य में भी देख सकते हैं ।

भावुक कवि 'नवीन' जी दुनियाँ में ऐसे कई दृश्य देखते हैं, जिनसे उनका हृदय करुणा से परिपूर्ण होता है । सारा भूमण्डल प्रचण्डतर संघर्ष की अग्नि में धधक रहा है । स्वयं नर, नर के रक्त और मांस का प्यासा और भक्षक बन गया है । वे देखते हैं कि पयस्विनी वसुधा ही रक्तभूमि बन गयी है । शुक, कपोत तथा कोयलों की मधुर ध्वनि को गुँजायित करने वाली, वीथियों वाली यह स्वर्गभूमि आज त्राहि-त्राहि की चित्कारहट के घृणित शब्दों की मज्जास्थली बन गयी है । मनुष्य के सब कोमल भाव मर गये हैं । जो मनुष्य पहले मृतप्रायों को जीवन-दान देते थे,वे अब जीवित लोगों के प्राणों को लेने में तुले हुए हैं । क्योंकि वे अब करुणा, दया, स्नेह, वात्सल्य आदि से विहीन हैं । हिंसारूपी नागिन अपने विष भरे फन को फैलाये सबको डंसती है । दुनियाँ में आकर मनुष्य निर्माण-कार्य में ही लगा रहता है । उसे इसके लिए भूतदया,

---

१- डा० रामकुमार वर्मा का काव्य - प्रेमनाथ त्रिपाठी, पृ० ४२.

चिर स्नेह, सुकृति जैसे स्वभावों की आवश्यकता है । मगर यहाँ की हिंसाग्नि में उस ये सारे स्वभाव जलकर क्षार हो जाते हैं । करुणा को उत्पन्न करने वाले इन दृश्य और भावों को व्यक्त करके कवि `नवीन` जी `सिरजन की ललकारें मेरी` नामक कवि में यों लिखते हैं --

हिंसा की लपटों से झुलसी
नर की चिर-निर्माणवृत्ति सब
क्षार हो रही है देखो तो
भूत-दया, चिर-स्नेह, सुकृति, अब ।[१]

इसका कारण है कि मनुष्य ने अपनापन या मनुष्यत्व को छोड़ा है । लेकिन यह दानवीय वृत्ति बुरी है । वह सर्वनाश का भण्डार है उसी प्रकार हिंसा प्रगतिपथ में बाधा भी डालेगी । लेकिन अहिंसा और करुणा को परम-धर्म समझे तो हमारा उत्थान सुनिश्चित है । हिंसा का आचरण करने के लिए हम खूंख्वार जानवर थोड़े ही हैं । पर करुणा दिखाना ही उत्तम मनुष्य का लक्षण है । जब मनुष्य के हाथों में सर्वशक्ति का खजाना रहता है, तो वह अपने आपको भूलकर हिंसा-रूपी हथियार का भक्त बन जाता है । लेकिन कवि कहते हैं कि यह सर्वशक्तियों का खजाना हिरण्मय होने पर भी माटी के बराबर है । इसी का यहाँ वे उल्लेख करते हैं --

तो तुम देखोगे कि अहिंसा
निपट पराजयवाद मात्र है
यह तव नैतिक पात्र हिरण्मय
केवल इक मृत्तिका पात्र है,
आज अहिंसा तुम करते हो,
इसीलिए न कि विजित हुए हो ?[२]

१- हम विषपायी हैं जनम जनम के - नवीन, पृ० ५१

२- वही - पृ० ६०.

इसमें एक और भी बात कही गयी है । मनुष्य अपनी हिंसावृत्तियों पर तभी जब वह सर्वशक्तियों से शून्य हो जाता है । हिंसा की दानवी शक्ति ने आ को शान्ति नहीं प्रदान की है । फलस्वरूप लोग पराजित होकर अहिंसा का इसलिए पराजय हमें अहिंसा और करुणा की ओर उन्मुख करा देता है । इ को उपर्युक्त पंक्तियों में व्यक्त किया गया है ।

प्रगतिवादी कवि तो संसार में दुःख के अस्तित्व को मानते हैं और उसकी महत्ता और अनिवार्यता को भी जानते हैं । जीवन को पूर्ण रूप से विव और सफल बनाने के लिए वे दुःख को गले लगाने का आह्वान करते हैं । यहीं मानवतावादी स्वर उभर आते हैं । दुःख का अनुभव करने पर ही हममें दया, करुणा आदि का उदय होता है । एक बार जब हम दुःख और कष्ट को झेल सारा जीवन अमर बन जाता है । यही कवि 'अज्ञेय' की भी मान्यता है । आ फूट, घृणा आदि को हटाकर प्रेम और करुणा के व्यवहार से मनुष्य वास्तव किक आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं । अगर दूसरों पर करुणा दिखाने से हम शान्ति की प्राप्ति कर सकते तो फिर न क्यों हम उस दिशा की ओर अग्रसर 'अज्ञेय' जी कहते हैं कि करुणा को अपनाने से हमारा दुःख और कष्ट दूर हो है । 'जीवन के सभी दुःखों और विरूपताओं का सामना इसी एक प्यार के बल किया जा सकता है ।'[१] इसी आदर्श पर चलने वाले अज्ञेय जी भी अपनी 'जब-जब कविता में इसी आशय को प्रकट करते हैं --

क्या कहीं प्यार से इतर
ठौर है कोई
जो इतना दर्द संभालेगा ?
पर मैं कहता हूँ

१- अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन - चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, पृ० ६६.

अरे, आज पा गया प्यार में, वैसा
दर्द नहीं अब मुझको सालेगा ।[१]

अज्ञेय जी का इस करुणाभरे 'अरी ओ करुणा प्रभामय' काव्य संग्रह 'जापा
की शैली का ही विशिष्ट प्रभाव था । भगवान बुद्ध की वास्तविक प्रभामय कर
अज्ञेय को जापान के 'जेन' धर्म द्वारा प्राप्त हुई, इस नये संग्रह का ही उपजीव्य
सकी है ।[२] इसी प्रकार 'अरी ओ करुणा प्रभामय' में जापानी 'हाइकु' के
तो हैं किन्तु उसकी मुख्य भावधारा उक्त दिशा में बढ़ती हुई भगवान बुद्ध की
प्रभा का स्पर्श करती प्रतीत होती है ।[३] संक्षेप में कहा जाय तो, बौद्धधर्म की
धारा इस संग्रह की आधार-भूमि में हमेशा बहती रहती है ।

'अज्ञेय' जी की लिखित अन्य कविता का संग्रह 'इन्द्र धनु रौंदे हुए ये'
करुणा का जिक्र किया गया है । इस का आरंभ तो मंगलाचरण से होता है
कवियों के समान अज्ञेय ने तो करुणा-कण पाने के लिए विराट से याचना की

भावों का अनन्त क्षीरोदधि,
शब्द शेष फैले सहस्त्र-फन
एक अर्थ से तुम हो अच्युत
मुझको भी दो करुणा-कण ।[४]

इसी संग्रह की अन्य कुछ कविताओं में भी मानवतावाद के साथ करुणा भी प्रक
है । कवि उसी को सत्य मानते हैं जो अपने रक्त और आँसुओं के साथ अपनी अ
में पला है । वास्तविक सत्य के सच्चे रूप का वे यों वर्णन करते हैं --

---

१- अरी ओ करुणा प्रभामय - अज्ञेय, पृ० १६२.
२- अज्ञेय की काव्य तितीर्षा - नन्दकिशोर आचार्य, पृ० १४७.
३- अज्ञेय का काव्य - सुमन भटा, पृ० २५.
४- इन्द्र धनु रौंदे हुए ये - अज्ञेय, पृ० ११.

पर तुम
नम के तुम कि गुहा-गह्वर के तुम
मोम के तुम, पत्थर के तुम
तुम किसी देवता से नहीं निकले
तुम मेरे साथ मेरे ही आँसु में गये
मुड़ती, बल खाती
नये मार्ग को फोड़ती
नये करारें तोड़ती
चिर परिवर्तनशील, सागर की ओट जाती.. ।[१]

'अज्ञेय व्यक्तिवादी होने के साथ ही साथ समष्टिवादी भी रहे हैं क्योंकि वे जानते थे कि व्यक्ति की महत्ता समाज के संदर्भ में ही आँकी जा सकती है ।'[२]

अहंकार मनुष्य को पतित करता है । इस अहंवाद को तिरस्कृत करके सामाजिक कल्याण चाहने वाला कवि लिखता है --

यह दीप अकेला स्नेह भरा
गर्व भरा मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो ।[३]

यहाँ अहं को दीप एवं समष्टि को पंक्ति माना गया है । यहाँ व्यक्तिवादी कवि की लोककल्याण-भावना ही वर्णित है ।

कवि बच्चन में भी वेदनानुभूति की मात्रा कम नहीं । यही सोचकर श्यामा जी ने अपने पति को 'सफरिंग' नाम दिया था ।[४] स्वयं कवि भी इस तथ्य को

१- इन्द्र धनु रौंदे हुए ये - अज्ञेय, पृ० २१-२२.
२- प्रयोगवाद और अज्ञेय - शैल सिन्हा, पृ० ५५.
३- बावरा अहेरी - अज्ञेय, पृ० ६२.
४- बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व - कृष्णचन्द्र पाण्डया, पृ० ३५.

स्वीकार करते हुए मानता है कि बिना विरह के मनुष्य का अहं नहीं टूटता और अहं के टूटे, मनुष्य एक हृदय से दूसरे हृदय तक पहुँचने में असमर्थ ही रहता है।[१] व में, कवि के ये ही मनोभाव उनको मानवता वाद तथा महात्मा-बुद्ध के सिद्धान्तों निकट ले जाते हैं।

कवि की मानवीय-संवेदना, सहानुभूति एवं परदु:खकातरता को भी उनकी 'मिलन यामिनी' रचना में सहज वाणी मिली है --

अश्रु दु:ख के जब कि अपना हाथ भीगे
अश्रु सुख के जब कि कोई साथ भीगे।[२]

\- - - -

सुख है तो औरों को छूकर, अपने से सुखमय कर देना।

जो औरों को आनन्द बना
वह दु:ख मुझ पर फिर-फिर आये
रस में भीगे दु:ख के ऊपर
मैं सुख का स्वर्ग लुटाता हूँ।[३]

विश्व में आज जो विनाशकारी शक्तियों की क्रान्ति मच गयी है उससे कवि बड़े सहृदय पूर्ण बन जाते हैं। वे इतना अधिक दु:खी हो गये हैं, कवि का कहना है --

इस चक्की (१ या चक्का) पर खाते चक्कर
मेरा तन-मन जीवन जर्जर
हे कुंभकार, मेरी माटी को और न अब हैरान करो।
अब मत मेरा निर्माण करो।[४]

१- बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व - कृष्णचन्द्र पाण्डया, पृ० ३५

२-३. मिलन-यामिनी (मध्यभाग) - बच्चन, पृ० २६.

४- एकान्त संगीत - बच्चन, पृ० २७.

लेकिन कभी-कभी कवि लोगों की परदु:खकातरता पर संदेह प्रकट करते हैं । उनको प्रकार संदेह हो जाता है कि यह करुणा या परदु:खकातरता स्थायी है कि नहीं इसलिए मानुषावतार में कवि अपने संदेहपूर्ण वाक्य उद्धृत करते हैं --

क्या इन्सान बनेगा साथी
जन-जन की हर पीड़ा का ?
समय धरा के घर-आँगन में
प्रभु की करुणा क्रीड़ा का
नहीं अभी तक आया है ।[१]

दूसरों में दु:ख को बाँटने से दु:ख कम हो जाता है । दूसरों की वेदना को बाँटने प भी वेदना कम हो जाती है । इसलिए दु:खी लोगों के दु:ख को आपस में बाँटनेपर व में उनको बड़ा आश्वासन दिलाता है । लेकिन इस प्रकार दूसरों के रोदन पर सहानु या करुणा प्रकट करने के पहले कवि कुछ रुक जाते हैं । क्योंकि वे इस दु:ख और को विश्व का अभिशाप मानते हैं इसलिए इस अनिवार्य अभिशाप के बीच लोगों पर दिलासा वे व्यर्थ मानते हैं । चारों ओर तो आज दानवता का वैशाचिक नृत्य ही दिखायी दे रहा है । यह पैशाचिक नृत्य ऐसा लगता है मानों महानाश का दूत हो वह दानवता वास्तव में मानवता को अपने पैरों तले कुचल डालती है । इसलिए चारों ओर के इस अत्याचार से पीड़ित जन-जीवन के कण्ठ से करुण पुकार आ रही है । कवि बच्चन जी कहते हैं --

करुण पुकार । करुण पुकार ।
मानवता करती उद्भूत
कैसे दानवता के पूत
जो पिशाचपन को अपनाकर
बनते महानाश के दूत,

१- चार खेमे चौंसठ खूँटे - बच्चन, पृ० ४१.

जिनके पग से कुचला जाकर जग जीवन करता चीत्कार ।
करुण पुकार । करुण पुकार ।[१]

लेकिन सबकी दृष्टि करुणापूर्ण नहीं है । इसलिए कवि को दु:ख होता है । करुण हृदय विरले ही देखने को मिलते हैं । भावुक-हृदय ही करुणा दिखाने लायक है । हृदय वाले देख नहीं सकते । इसलिए पीड़ित जनताओं के दु:ख के प्रति वे ऐसा सोचते हैं --

मुकुलित कुसुमों पर किसने
आज तलक ममता दिखलाई ।[२]

जगत में व्याप्त एक तरह का उदासपूर्ण अन्धकार वास्तव में मनुष्य के मानस को अभिभूत करता है । चारों ओर से आहें सुनायी देती हैं । असहायता, असमर्थता, शोषण आदि से मनुष्य घुट-घुट कर मरते हैं । निस्सहाय लोगों की कराहों से दिशा गूँजती हैं । इस परिस्थिति में मनुष्य करुणार्द्र हुए बिना नहीं रहेगा । कवि श्री शिव मंगल सिंह `सुमन` का `प्रलय-सृजन` विभिन्न समय में लिखी हुई कविताओं का संग्रह है इसमें सर्वत्र पीड़ा और दम घोंटने वाली परिस्थिति के बारे में कवि कहते हैं । सुमन जी ने तो सर्वत्र व्याप्त इस पीड़ामयी और दु:खमयी परिस्थिति को बदलने का पवित्र सन्देश दिया है । सन् १९४३ में, कलकत्ते में व्याप्त अकाल के बारे में लिखने के लिए कवि बाध्य होते हैं । कलकत्ते की गलियों में सड़कों पर सब कहीं मनुष्य क्षुधाग्रस्त- और बेहाल पड़े हुए थे । दाने-दाने के लिए तरसने वाले उनकी आँखें आँसू बहाते-बहाते मानों सूख गये थे । इस प्रसंग में कवि को लगता है कि वास्तव में ये हमारे ही भाई हैं, जो सड़कों पर पड़े सड़ते हैं । कवि असह्य वेदना और करुणा से उनको `जीवित शव` से संबोधित करते हैं । वहाँ के दयनीय दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं --

---

१- धार के इधर-उधर - बच्चन, पृ० ३१.

२- प्रणयपत्रिका - बच्चन, पृ० ५५.

ये जीवित शव भी मानव हैं
मूक त्रस्त पामाल ?
चीलह नोचती आँखें गीदड़
खाते जीवित खाल..[१]

प्रगतिशील दर्शन से प्रभावित कवि नरेन्द्र शर्मा ने अपनी रचनाओं में दलितों पीड़ितों को वाणी दी है । समाज से निर्वासित वेश्या के प्रति एवं बदचलन कहारिन के प्रति, कवि ने अपनी सहानुभूति प्रकट की है । दया, सहानुभूति, करुणा आदि से उन्होंने समाज में सुधार लाने का प्रयत्न किया है । यहाँ तो उनका मानवतावादी दृष्टिकोण नजर आता है ।

समाज तथा राष्ट्रकल्याण की कामना से ओतप्रोत हृदय उदार मानव-संस्कृति के स्वप्न में सदा मग्न रहेगा । प्रभुता की प्यास ने मनुष्य को पशु से भी नीचतम बना दिया है । ऐसे पाशविक गुणों के शिकार बनने वाले निस्सहाय मानवों का चित्र इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है --

प्यास प्रभुता की, नहीं कामता
अहं को जीतने की --
दर्पमति, दर्पणरचित पशु से
तुम्हारा सामना है ।
छोड़ ईश्वर से लगाई,
मनुज भी बनना न सीखा ।
विश्व को वामन पगों से
नापने की कामना है ।[२]

१- प्रलय-सृजन - सुमन, पृ० ८०.
२- अग्निशस्त्र - नरेन्द्र शर्मा, पृ० १२-१३.

संक्षेप में कविकहते हैं कि सब अपनी स्वार्थपूर्ति में मानवता तथा मानवीय गुणों को भूल रहे हैं ।

सब लोगों के प्रति हमेंअहिंसा की भावना रहनी चाहिए । क्योंकि सब करुणा के पात्र हैं । इतना ही नहीं, हिंसा से नाश होता है । अहिंसा की महत्ता तो अपरंपार है । इसका प्रमाण पूज्य महात्मा गांधी जी का जीवन ही है । करुणा और अहिंसा की महत्ता को प्रकट करने वाली पंक्तियाँ नरेन्द्र शर्मा ने भी लिखी हैं --

अहिंसा महावीर का अस्त्र,
अहिंसा संतों का हथियार ।
अहिंसा से हिंसा निःशस्त्र,
अहिंसा का बल अपरंपार ।
किन्तु हम अधिकारी हैं कहाँ -
दिव्य उस आत्मा के धन के ?[१]

कवि नरेन्द्र शर्मा कहते हैं कि आज का जगतंत्र यंत्रवत् बन गया है । चारों ओर सूनापन, चैतन्यहीनता आदि व्याप्त है । लोगों की बुद्धि तो संकीर्ण और क्रान्तिकारिणी बन गयी है । लेकिन हिंसा, अन्याय, स्वार्थपरता जैसे प्रगतिपथ के विघ्नों से दूर रह कर जीवन की त्रिगुणमयी-गंगा से जनहित को गति देने के लिए कवि कहते हैं --

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय -
जीवन की त्रिगुणमयी गंगा,
गतिशील त्रिपथगा, सदा बही -
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय ।[२]

इसी प्रकार जनहित के लिए करुणा का स्रोत बनने वाले महात्मा गान्धी जी के प्रति भी कवि नरेन्द्र शर्मा ने अपनी श्रद्धा अंकित की है । महात्मा बुद्ध के जैसे गांधी जी ने सुख वैभव, तथा जीवन संगिनी तक का बलिदान किया था । उन्हीं के आदर्शों का गांधी

१- प्यासा निर्झर - नरेन्द्र शर्मा, पृ० २२३.
२- हंसमाला - नरेन्द्र शर्मा, पृ० १५.

जी ने अनुकरण किया । सारे कष्टों को झेलकर लोक कल्याण के मार्ग को स्वीकारने वाले उस महान् जननायक के बारे में कवि का कहना है --

तुम अमृत सत्य के अभिलाषी, निर्भीक संत,
पर मर्त्यलोक-कल्याणहेतु चिर आशंकित ममता अनन्त ।
जनहित के लिए असत्यों से की संधि, शंभु, विषपान किया ।[१]

संकटकालीन विगत वर्षों की रचना `हंसमाला` की अन्य कुछ कविताओं में मानव[२] और विश्वास दिलाने का आह्वान दिया गया है । कवि नरेन्द्र शर्मा का कहना है

लड़ी न्याय के लिए शक्तियाँ, मिल-जुलकर, जगती की --
फिर भी अभी स्वार्थ बाकी है ब्रिटिश और अमेरीकी ।
हिंसा से झुकी प्रतिहिंसा, घृणा द्वेष से जीती,
किन्तु प्रेम-विश्वास बिना मानव की दुनियाँ रीति ।
न्याय सत्य के बिना बनेंगे कैसे नए शिवाले ?[२]

कवि गोपालदास `नीरज` के `प्राणगीत` में मानवतावादी स्वर प्रमुख रूप से उभरे हैं । करुणा, दया, अहिंसा जैसे महान् सिद्धान्तों को केन्द्र मानकर ही कवि ने इस संग्रह की संरचना की है । आपस में करुणा और प्रेम का भाव रखना वास्तव में शान्तिपूर्ण जीवन का सोपान है । इस दुनिया में सुखमय जीवन को चाहने वाले को करुणा और अहिंसा तत्व को स्वीकार करना चाहिए । बदले में युद्धों का जहरीला नारा मनुष्य के मन को अस्वस्थ बनाता है । एक ओर मानवता मर रही है, जो नव-जीवन के लिए भीख माँगती है । उसे केवल बूँदभर स्नेह की ही आवश्यकता है । लेकिन उनके मृत मरघट में ममता का दिया जलाने की सहृदयता किसी भी मनुष्य में दिखायी नहीं देती । प्यार से ही निर्माण होता है और घृणा से नाश । लहरों द्वारा शांति लाना असंभव है । इसलिए यह एक मानी हुई बात है कि मनुष्य के सुख-मय जीवन का

१- हंसमाला - नरेन्द्र शर्मा, पृ० ६६.

२- वही - पृ० ४१.

बीज केवल, अहिंसा और करुणा में निहित है । इस अमूल्य आदर्श को व्यक्त करने के हेतु कवि नीरज अपने गीतों की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार संजोते हैं --

तुम शान्ति नहीं ला पाये युद्धों के द्वारा
अब फेंक ज़रा तलवार, प्यार लेकर देखो,
सच मानो निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी
दुश्मन को अपना हृदय ज़रा देकर देखो ।[१]

इसी भाव को एक अन्य गीत का विषय बनाया गया है --

बढ़ चुका बहुत आगे रथ अब निर्माणों का
बमों के दलबल से अवरुद्ध नहीं होगा,
है शान्ति शहीदों का पड़ाव हर मंजिल पर
अब युद्ध नहीं होगा, अब युद्ध नहीं होगा ।[२]

करुणा का एक अन्य रूप है मानवतावादी दृष्टिकोण । सभी राष्ट्रीय कवियों में हम मानवतावादी स्वर को सुनते हैं । राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदी जी के मानवतावादी स्वर से अनुप्राणित एक कविता संग्रह है `मुक्तिगंधा` । इसमें उनके अन्तर्मन की सहानुभूति से जन्य आत्माभिव्यक्ति द्रष्टव्य है । सारे देश को व्यथा और पीड़ा से उन्मुक्त करने के विचारों में कवि मग्न है । लेकिन निस्सहायता के घेरे से वे हमेशा चिन्तित हैं । कवि आशा करते हैं कि अगर जनव्यथा को दूर कर सके तो उनका जीवन सार्थक बन गया । वे चाहे, धनलिप्सा, या कीर्ति की लालच से हमेशा दूर रहना चाहते हैं । इसी निस्वार्थपरता की झलक इन पंक्तियों का विषय है --

व्यथा दूर हो सभी देश की, इतना आज कर पाओ,
सिंहासन का मोह छोड़कर जनता के साथी बन जाओ ।[३]

१-२. प्राणगीत - नीरज, पृ० १३, ८६.
३- मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ५७.

केवल सुख वैभवों को ही अपना सर्वस्व मानने वाले लोगों तक कवि की सहानुभूति पहुँचती है । अज्ञानवश ही लोग इस वैभव की ओर आकर्षित होते हैं । लेकिन कवि की उक्ति है कि वैभव से भी अच्छा है धूलि-धूसरित जमीन पर सोना । क्योंकि द्विवेदी जी वैभव को प्रगति में बंधन मानते हैं । मन को अशान्ति में डुबाने वाले इस वैभव की अपेक्षा दीन दलितों पर दया की दृष्टि को बरसाना वे श्रेयस्कर मानते हैं ।

इसी करुणा से प्रेरित होकर हम अहिंसा-सिद्धान्त का भी पालन करते हैं । प्राणिमात्र के प्रति दया और करुणा दिखाने वाला बौद्ध सिद्धान्त वास्तव में अहिंसा को ही अपना केन्द्रबिन्दु मानता है । कवि द्विवेदी जी भी यही मानते हैं । वे अहिंसा को सबसे प्रबल शस्त्र बताते हैं । इसी प्रबल अहिंसा रूपी शस्त्र के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए वे अडिग रहते हैं । हिंसा से प्राप्त हो जाने वाले अहित से वे बहुत परिचित हैं । इसी प्रकार अहिंसा से प्राप्त होने वाले उस स्वर्गीय सुख की भी उनको अच्छी जानकारी है । हमारे परमपूज्य राष्ट्रपिता की भी भारत को सबसे बड़ी देन यही अहिंसा सिद्धान्त है ।

राष्ट्र और देशवासियों के प्रति भक्ति, ममता एवं करुणा से ओत-प्रोत कवि जनता में नवचेतना भरने के लिए उद्यत है । वे सोने वाले श्रमिकों, किसानों तथा धनी-निर्धन, सबल निर्बल सबको रण के लिए निमंत्रण देते हैं । लेकिन उनका रण शस्त्रहीन है, जिसमें वैदिक-काल की जैसी हिंसा की दुर्गन्ध नहीं है, बदले में अहिंसा की मधुवर्षा है । इसी का वर्णन कवि सोहनलाल द्विवेदी अपने `पूजागीत` में करते हैं --

वैदिको ! होगी न हिंसा,
आज का व्रत है अहिंसा
स्वत्व लो, अस्तित्व देकर
पियो नव अमरत्व के कण ।
आज है रण का निमंत्रण ।[१]

१- पूजा गीत - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ५१-५२.

महात्मा बुद्ध की यही करुणा का एक उच्चतम रूप हम सम्राट अशोक के हृदय में पा सकते हैं। कलिंग पर अपनी विजयपताका को फहराते हुए देख अशोक का हृ बनकर दहकने लगा। उनको तो चिन्ता हुई --

यह भीषण नर-संहार हुआ,
प्रतिपल में हाहाकार हुआ,
मरघट-सा सब संसार हुआ,
पर, नहीं शान्ति-संचार हुआ।[१]

इसी समय से अशोक में हिंसा के प्रति विरक्ति को हम देख सकते हैं। सोचा था कि विजय अमृत बनकर उनको नवजीवन प्रदान करेगी, लेकिन किसको मालूम था कि वह केवल विष बनकर ही रहेगी? अपना प्रिय स्वप्न उनको रक्त की प्यासी महाकाल रसना जैसे लगी। अपनी सारी सुख-संपत्ति केवल दो-दिन की लगी। उनको सब से विरक्ति का अनुभव हुआ। इस पर कवि का कहना श्रद्धेय है --

मिट रही आज है सभी भ्रान्ति,
झलकी है सुख की परम कान्ति
मन प्राणों में रम रही शान्ति
करुणा की मंगलमय क्रान्ति

\- - -

मन प्राणों में रम रही शान्ति,
निर्बल पर क्रूर बने न सबल।
करुणा दे जग-जग को मंगल
दहके न कभी उर बना अनल।[२]

लौकिकता से मुँह मोड़ने पर उनको जिस परमानन्द-सुख और शान्ति का अनुभव हुआ

१- प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ४५.
२- वही - पृ० ४७.

ीमातीत था । करुणा और अहिंसा की उच्च महत्ता को उन्होंने जान लिया । इस-लिए इन करुणा और अहिंसा तत्वों में निहित सुख वैभव को उन्होंने अमूल्य निधि से अभिहित किया ।

इसी अहिंसा का मानवीकरण करना सोहनलाल द्विवेदी ने परम आवश्यक माना हिंसा अपने राक्षसी-पेट में नरसंहार, रक्तपात, कर्मकाण्ड, हाहाकार जैसी विभीषि-काओं में समेटे रहती है । जब हिंसा से चारों ओर त्राहि-त्राहि मचने लगती है तो करुणा और अहिंसा उन त्रस्त लोगों के लिए चन्दन के अनुलेपन का कार्य करती है । देखिये --

मैं अपने शीतल आँचल में,
लेकर जलता लोक
चंदन का अनुलेपन करती
खिलते सुख के लोक
न आती फिर दुःख भरी पुकार
कि जब मैं लेती हूँ अवतार ।[१]

कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी के हृदय में बौद्धधर्म के दोनों मुख्य तत्व करुणा और अहिंसा के प्रति अटूट आस्था थी । अहिंसा के अमोघ अस्त्र पर कवि की अटूट श्रद्धा है । वह मानता है कि यदि स्वतंत्रता-संग्राम में अहिंसा का प्रयोग न किया गया होता तो देश हिंसा और प्रतिहिंसा की ज्वालाओं में कभी का भस्मीभूत हो गया होता । कवि की मान्यता है कि मानव को अहिंसा ने ही बार-बार परास्त और विनष्ट होने से बचाया है ।[२]

यह एक विश्वसत्य है कि दुःख सबको मानना पड़ता है । एक अधिकार-सा होने के कारण सब चुपचाप उसे सह लेते हैं । दुःख की एक और विशेषता यह है कि दूसरों

१- प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ४६.

२- जयभारत जन वही , (आमुख से)

के दु:ख और आँसुओं के देखने मात्र से हमारे हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ पड़ता है यहीं से करुणा की कहानी का श्रीगणेश होता है । यह करुणा व परदु:खकातरता वास्तव में मनुष्य को मनुष्य के निकट लाती है । कवि रघुवीरशरण 'मित्र' जी ने भी इस परदु:खकातरता का वर्णन इन पंक्तियों में किया है --

अपनी पीड़ा सह सकता हूँ, पर पीड़ा को देख न सकता ।
मैं दु:खों में रह सकता हूँ, पर औरों का घाव चसकता ।।
तुम अपना विषपान मुझे दो, मेरा अमृत साथ ले जाओ ।
अपने दु:ख मुझे दे दो तुम, मेरे पुण्य नाथ । ले जाओ ।।[१]

साठोत्तरी हिन्दी कविताओं में बौद्धतत्व

सारे विश्व को विकास और शान्ति के पथ पर ले जाने वाला सिद्धान्त था महात्मा बुद्ध का अहिंसा-सिद्धान्त । प्राणियों की हत्या ही नहीं, बल्कि कठोर-श का प्रयोग भी अहिंसा के अंतर्गत माना गया था । इसलिए मनुष्य की हत्या या युद्ध विध्वंसक घटनाओं का उस समय नाम भी नहीं था । लेकिन विश्वमहायुद्धों की विभी ने मानव की आशाओं और आकांक्षाओं पर पानी फेर दिया । चारों ओर अशा संत्रास, कुंठा आदि का वातावरण ही छाया हुआ था । ऐसी जीर्णशीर्ण मानवता उद्धार करना था । जब चारों ओर दु:ख-दैन्य का राज्य था, तब शान्ति कहीं जाक छिप गयी थी । बुद्धदेव ने संसार को 'दु:ख का आलय' कहकर पुकारा था, आज वह दु:ख अशान्ति, संत्रास जैसे विभिन्न रूपों में व्याप्त हो गया है । इनको भी दु:ख के अंतर्गत मानना समीचीन लगता है । क्योंकि मनुष्य के मन को दु:खी और अशान्त बन वाला यह संसार ही दु:खमय है । स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविताओं में मानव की इस का वर्णन किया गया है । उनकी मानसिक कुंठाओं को अभिव्यक्त करने का प्रयास अ के कुछ कवियों ने किया है । यहाँ उन्हीं पर प्रकाश डाला गया है ।

१- गीले गीत - रघुवीर शरण मित्र, पृ० ६५.

क्षणिकता

जीवन के हर कदम में मनुष्य क्षणिकता का आभास पाता है । तब वह जीवन को नश्वरता की संज्ञा देता है । यहाँ सब कुछ क्षणिक है, कवि श्री सुरेन्द्रपाल इस क्षणिकता का प्रतिपादन एक दियासलाई की तीली के द्वारा करते हैं । उसका भी जीवन क्षणिक है । पलभर जलने के उपरान्त वह बुझती है । लेकिन इसी अवस्था में वह जीवन को भी प्राप्त करती है । ऐसी ही क्षणिकता जीवन पर भी छायी हुई है, इस पर कवि का कहना है --

दियासलाई की तीली
क्षण भर में जलकर बुझ गयी
- - -
क्षणभंगुर जीवन की
यही साध, यही आश ।[१]

प्रकृति की सारी वस्तुएँ दुःखद अवसान को प्राप्त करती हैं । इससे मन व्याकुल होता है । शकुन्तला सिरोठिया जी इस मौन-व्यथा को सह रही हैं । उषा के समय कवयित्री का मन आह्लाद से भरता है, लेकिन उस क्षणिक उषा का चले जाना कवयित्री के लिए असह्य हो जाता है । दुनियाँ की इस क्रूरतापूर्ण चाल से कवयित्री झुंझला उठती है --

उषा आह्लादभरी आती
पर क्यों क्षण भर में मिट जाती ?[२]

जगत में व्याप्त इस नश्वरता को सब देख रहे हैं । आकाश के चाँद और तारे तक इसे

१- शीत भीगा भोर - सुरेन्द्रपाल, पृ० ७४
२- सुधि के स्वर - शकुन्तला सिरोठिया, पृ० १३.

देखते हैं । इस नश्वरता को प्रकट करने के लिए कवयित्री सिरोठिया एक लघु माटी के दीप का सहारा लेती है --

माटी का यह दीप टूट कर,
नहीं कभी फिर जल पाएगा ।
अपार स्नेह भरा हो चाहे,
बाती सबल पड़ी हो उसमें,
किन्तु दिया ही चटक गया तो,
सब प्रकाश ही गल जाएगा ।[१]

हर क्षण पानी के बुद्बुद के समान है । वह क्षणिक है । सदा उस पर काल तरंगायित रहता है । वैसे ही तरंगें भी जो अभी-अभी आते हैं और अभी-अभी जाते हैं । जीवन को इन बुद्बुदों और तरंगों के समान मानने वाले कवि प्रभाकर माचवे की उक्ति बहुत सुन्दर है --

काल की तरंगों पर जीवन--
लघु तरणि-प्राय, बुद्बुद से क्षण,
साँसें आती-जाती ज्यों पथ
बन गया आ- चिता अग्रनिहत ।[२]

सुख भी ऐसा ही है । मनुष्य तो सुख में अपने को भाग्यशाली मानता है, लेकिन ये सुख क्षण भर रुककर चले जाते हैं, फिर दु:ख की बारी आती है, और मनुष्य रह जाता है अभागा । कवि का कहना है --

जग हुआ अभागे, क्षणिक सुखों से दु:खी ।[३]

इसी प्रकार क्षणिक क्षणों के बारे में कवि गोपेश लिखते हैं --

१- चाँद इतना हँसा - शकुन्तला सिरोठिया, पृ० ४०

२- स्वप्नभंग - प्रभाकर माचवे, पृ० २०.

३- वही - पृ० ३०.

क्षणों के क्षणिक-उतार पर
कौन जिया कौन मर गया ।[१]

जीवन और मरण का अटूट संबंध है । इसलिए कहा जाता है कि मनुष्य का जीवन क्षणिक है । उसका जीवन ही नहीं, बल्कि उसके मन में उठने वाले विचार भी परिवर्तनशील है । वह विचारों के अधीन है, उस पर लगाम-थामने के लिए वह विवश हो जाता है । ऐसे परिवर्तनशील और क्षणिक मनुष्यों और उनके विचारों को कवि वीरेन्द्रकुमार जैन उद्धृत करते हैं --

बदलता रहता है,
इस क्षण जो है, वह अगले क्षण नहीं रहता है,
मनुष्य जो इस क्षण है,
वही अगले क्षण नहीं है
चेहरा तक, जो इस पल है,
वही अगले पल नहीं है ।[२]

कवि भवानीप्रसाद मिश्र जी भी जगत की इस क्षणिकता से प्रभावित हैं । वे सब में क्षणिकता को प्राप्त करते हैं । रूप की बात भी यही है । रूप भी क्षणिक और परिवर्तनशील है । आज का रूप कल नहीं रहता । इसी प्रकार हर क्षण नयेपन को लेकर ही आता है । इसी आशय को व्यक्त करते हुए कवि क्षणिकता को स्वीकार करते हैं । वे कहते हैं --

सब क्षणिक है, खण्ड है, सब छिन्न है,
आज का यह रूप कल तक भिन्न है,
आज अपना चिह्न छोड़ेगा न कल,
व्यग्र कल परसों बनेगा गया पल,

१- तुम्हारे लिये - गोपीकृष्ण गोपेश, पृ० ८.
२- शून्य पुरुष और वस्तुएँ - वीरेन्द्रकुमार जैन, पृ० ५६.

और वह पल जो गया सो गया ही,
जो नया आया रहे वह नया ही --
यह नहीं होगा, नया भी जाएगा,
और हर क्षण नया ही क्षण आएगा ।
हर नये क्षण को पुराने की तरह
वक्ष में भर, तार पर बोते चलो,
और बीती रागनी रीते नहीं,
इस तरह हर तार के होते चलो ।[१]

दु:ख

मानव इतिहास में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसका गमन-पथ दु:खों से विहीन हो । हम यही देखते आये हैं कि लोककल्याण-तत्परता से प्रेरित मनुष्य अपने वैयक्तिक कष्टों और दु:खों से होकर समष्टिगत दु:खों की ओर उन्मुख हुए हैं । कवि जयसिंह नीरज के भी यही अनुभव थे । स्वानुभवों से होकर वे सांसारिक कष्टों तक पहुँचे । कष्ट और दु:ख रूपी खून से लथपथ मनुष्य जीवन के संताप को अपनी कविता द्वारा वाणी देने की कवि ने भरसक कोशिश की है । दु:खान्त जीवन को सुखान्त बनाने के ध्येय से उन्होंने साहित्य सृजन किया । उन्होंने देखा कि मनुष्यों का जीवन-पथ अन्धकार, जड़ता, अत्याचार निराशा आदि से संपूर्ण है । इस अन्धकार में भी आगे का मार्ग खोज निकालने की उन्होंने चेष्टा की ।

चारों तरफ के कष्टों को पार कर कगार पर खड़े हो जाने वाले मनुष्यों की छटपटाहट सहानुभूति जनक है । लोगों की त्राहि-त्राहि से सारा आकाश गुँजायमान है । जीवन के हर एक क्षण को गिनता हुआ वह जीवन बिताता है । ऐसे हताश लोगों के चित्र को कवि ने सुन्दर ढंग से खींचा है --

---

१- गीत-परागोश - भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० १३८.

उम्र पहिये लगाकर
भागना चाहती है बेहताश
भागम भाग में आखिरी छोर पकड़ने की
प्रबल आग
सब गिन रहे हैं घंटे-घड़ी
दिन मास
बाढ़ । बाढ़ का पानी फैल गया है
चारों ओर
डूब गये हैं, कुछ डूबने की जल्दी में
चारों ओर हाय-हाय, त्राहि-त्राहि
भागम-भाग.. ।[१]

विभिन्न मनुष्य के जीवन में दु:ख विभिन्न रूपों में आता है । कवि रमानाथ शास्त्री भी संसार की पीड़ाओं से बहुत प्रभावित हुए हैं । संसार में रहकर कवि ने अत्यन्त कष्ट भोगे, उन कष्टों ने उनके कवि-हृदय को मथित कर डाला, इसी का प्रतिबिंब हम उनकी कविताओं में देख सकते हैं । जगत के दु:ख को व्यक्त करने वाली तथा पाठक के मर्म को छूने वाली उनकी पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

अन्धकार -
भीतर और बाहर
तह पर तह लगातार ।[२]

उसके बाद दु:खातिरेक से व्यस्त एक व्यक्ति की झलक कवि प्रस्तुत करते हैं --

गहरे अँधेरे कुंड में
- न जाने कब से -

१- दुखान्त समारोह - जयसिंह नीरज, पृ० ६.
२- इन्द्रधनुष (अंधेरी रात के) - रमानाथ शास्त्री, पृ० १२.

एक प्रेत पड़ा है,
जो अपनी मुक्ति को
दिन रात तरसता रहता है ।[१]

ोवन को कवि अभिशाप या दुर्भाग्य मानते हुए जीवन में प्रतिपल उठने वाले अशान्त ताप, त्रास आदि को व्यक्त करके कवि यों लिखते हैं --

प्राणों की ज्वाला
करने को शान्त
प्राणी को सहने पड़ते
न जाने
कितने संताप ।
तन मन को भूल
लाती ही रहती
प्रतिपल अविराम
दुख और आराम ।
जीवन का जुआ
सांसों का जुआ
सांसों का शाप
ढोते बस चलने को
बेचार जीव
बेबस लाचार ।
जीवन का
जीवन ही भोजन
जीवन का

---

१ इन्द्र धनुष अंधेरी रात के - रमानाथ द्विवेदी पृ० १३

जीवन ही दुश्मन,
जीवन ही काल,
जीवन का कैसा दुर्भाग्य ।
मरने से बचने में
मरने तक, हाय
पल-पल पर मौत
मरना ही जैसे हो
जीवन का लक्ष्य
जीवन का काम,
मृत्यु ही हो,
मुक्तिधाम ।[१]

महात्मा बुद्ध को अपने मुक्तिमार्ग में कदम बढ़ाने के लिए असंख्य विघ्नों और बाधाओं का तरण करना पड़ा । अपने परिवार और बन्धनों के प्रति वे निस्सहाय और निरा हो उठे थे । ऐसी ही एक परिस्थिति से होकर गुजरने का दुर्भाग्य कवि को भी भोगना है । क्योंकि उन्होंने देखा कि संसार एक जंजाल है और स्वयं उस जंजाल के बीच में खड़ा है । इसी परिस्थिति का वर्णन यहाँ मिलता है --

कहेंगी एक बात
और कितने जंजाल ।[२]

दुःख की चंगुल से अपने को मुक्त करने के संघर्ष में मनुष्य निरंतर लगा रहा है । संसार की अणु-अणु में इसी संघर्षावस्था देखने को मिलती है । शोषण, उत्पीड़न, आदि से उत्पन्न यह संघर्षमयता कवि शास्त्री जी यों प्रकट करते हैं --

---

१- इन्द्रधनुष घेरी रात के - रमानाथ शास्त्री, पृ० २८-२९.
२- वही - पृ० ४४.

कितना यह भीषण
जीवन संघर्ष
हर प्रगति
कितनों का दमन
पद दलन,
हर सिद्धि
कितनों का शोषण
उत्पीड़न,
हर सृजन
कितनों का मरण।
रोम रोम बना
नाक,
कान,
आँख
जिनसे मैं भोग रहा
कोटि कोटि प्राणों का
दुःख
कष्ट
ताप,
मूक आर्तनाद ।[१]

विरह से जन्य दुःख तीव्र वेदना को उत्पन्न कर देता है । कवि श्री बालकृष्ण शर्मा `नवीन` मर्म को छूने वाली एक ऐसी तस्वीर खींचते हैं, जो प्रिय के वियोग में प्रतीक्षा के मन से बैठी हुई उर्मिला को पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है । अपने अंतर्मन

१- इन्द्रधनुष अँधेरी रात के - रमानाथ शास्त्री, पृ० ८०.

में प्रज्वलित होने वाली ज्वाला को आँसुओं से बुझाकर वह रात-दिन काटने लगती है उसकी करुण कहानी को कवि उद्धृत करते हैं । आज उसे जीवन भार-सा मालूम पड़ता है । अब उसके जीवन में वेदना के सिवा कुछ भी नहीं है । ऐसा लगता है कि उसके जी का लक्ष्य अब वेदना ही हो । कवि यही भाव समझाते हैं --

पिय विरह जनित नित दुःख से
जीवन बन गया उलाहना ।
जीवन का ध्येय बना है
यह विषम वेदना सहना ।[१]

दुःख हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है । चाहे या न चाहे, अनिवार्यरूप से हमें सहना पड़ता है । बचपन से ही कवि भारत भूषण अग्रवाल जी दुःख को सहते रहे एक कवित संग्रह की भूमिका में इसको वे स्वयं मानते हैं --

किन्तु वह मेरा अभिन्न है
जीवन का एक मात्र विश्वस्त साथी है,
दुःख जिसका नाम है ।[२]

दुःख का अस्तित्व और उसकी अनिवार्यता को समझ कर कवि उसे जीवन क एकमात्र विश्वस्त साथी स्वीकार करते हैं । आज विश्वास करने लायक कोई भी उसके निकट नहीं है । अपनी एक कविता में इस विश्वस्त साथी के बारे में कवि कहते हैं

इसलिए बन्धु । यह विस्मय गलत है ।
आप चौंकते हैं उसे मेरे पास देखकर
क्योंकि अभी परिचय नहीं हुआ आप से
किन्तु वह मेरा अभिन्न है

१- कवितांतर - प्रो० प्रभास, पृ० २८.

२- कागज के फूल - भारतभूषण अग्रवाल, पृ० ५.

~~मीहत और एक प्रात्र विश्वासत्र साथी है,~~

दु:ख उसका नाम है ।[१]

जीवन की विपन्नताएँ मनुष्य के मन में प्रतिपल प्रश्न उत्पन्न करती हैं । कवि सुरेन्द्रपाल भी इन प्रश्नों के उत्तर खोजने में व्यस्त हैं । लेकिन वे केवल मौन रहते हैं । क्योंकि चारों ओर दु:खतिमिर ही फैला है । इस पर कवि का कहना है --

बहुत आसान है कहना
जिधर देखो उधर ही
दर्द है, दु:ख है, अंधेरा है
घुटन है, छटपटाहट है
किसी के रौंद कर चलते हुए कदमों की आहट है,
थकन है, टूटने की बहुत धीमी चीख का स्वर है ।[२]

इस दु:ख, दर्द को मिटाने का उसके पास कुछ उपाय ही नहीं है । फिर वे क्या उत्तर देते, क्योंकि

सहज है प्रश्न,
उत्तर मौन के अतिरिक्त क्या है ?
(महामानव भला क्या गोडते ही रह गये उत्तर ?)[३]

कभी-कभी दु:ख और यातनाएँ मनुष्य को संपूर्ण तया डुबो देती हैं कि मनुष्य उसे अपना साथी ही समझ लेता है । कवयित्री प्रेमलता-वर्मा भी दु:ख को अपना जीवनसाथी मान लेती हैं । आत्माभिव्यक्ति की आकांक्षा कवयित्री को लिखने की प्रेरणा देती है । कष्ट और विपन्नताओं के उस जाल के बारे में कवयित्री लिखती हैं --

---

१- अनुपस्थित लोग - भारतभूषण अग्रवाल, पृ० २२-२३.
२- शीत भीगा भोर - सुरेन्द्रपाल, पृ० ४६.
३- वही.

यहाँ तो
जन्म लेते ही
मछुआरे ने जाल फेंका --
जाल में चले, बढ़े,
उसी से छनकर आते जल से सिंचे,
जीवन पाया,
कब जाना कि जलाशय है विराट,
जल उसी का है सब ।[१]

कवयित्री देखती है कि ये यातनाएँ उत्पन्न होती है व्यक्तिगत रिश्तों से और मानवीय विकारों की ज्वाला से । इसलिए सहजरूप से इनसे मुक्त होने की इच्छा वे प्रकट करती हैं --

इन दु:खों और यातनाओं से कब छुटकारा होगा. ।[२]

जगत में दु:ख के अस्तित्व को मानने वाले कवि के रूप में श्री रामावतार त्यागी भी हमारे सम्मुख आते हैं । आमंत्रित किये बिना आने वाले दु:ख की आदत के बारे में कवि कहते हैं --

मैंने दु:ख को आमंत्रित नहीं किया,
लेकिन उसकी आदत का क्या कहना ।[३]

जीवन के हर मोड़ पर उन्होंने बहुत दु:ख को भोगा । तो भी कोई शिकायत नहीं सूझी । चुपचाप वे उसे सहते रहे । अन्त में उनके मुख से ये शब्द ही निकल पड़े --

मैंने दर्द सहा जीवन भर,
दु:ख की हर करवट देखी है,

१- सुहयों का पैरहन - प्रेमलता वर्मा, पृ० १६.
२- वही - पृ० ८७.
३- सपने महक उठे - रामावतार त्यागी, पृ० ८२.

सुख के नाम समय के माथे -
पर केवल सिलवट देखी है ।[१]

श्री गिरिजाकुमार माथुर दु:ख को एक भयंकर रोग मानते हैं । यह रोग सदिय से मनुष्य को पकड़े रहा है । यह रोग कभी भी न छोड़कर जाने वाला है । असह्य वेदनाएँ वह उत्पन्न कर देता है । इलाज या दवा तो व्यर्थ है । कवि इस रोग को क्रानि रोग की संज्ञा देते हैं । वे कहते हैं --

जीवन अपाहिज है
रोगी असाध्य बहुत साल से
पलंग पर है
चल फिर न सकता है
उठता है, फिर लेट जाता है
करवट बदलता है
किसी तरह
चैन नहीं पड़ता है
हाथ पैर मारे
पर कर कुछ न सकता है
बात की मामूली साट सी
घिरी बंधी दुनियाँ है
उतने में पाटी से पाटी तक
रहता है
सहता है ।[२]

जीवन के रंगमंच पर मनुष्य नाटक खेल रहा है । इसमें वह ऐसा पात्र है जिसे कई तरह के अन्तर्द्वन्द्वों, संघर्षों एवं दु:खों का अनुभव करना पड़ता है । वह करुणा का अधिका

१- सपने महक उठे - रामावतार त्यागी, पृ० ५
२- शिला पंख चमकीले - श्री गिरिजाकुमार माथुर, पृ० २२.

बन जाता है । 'नाटक जारी है' लीलाधर जगूड़ी का एक कवितासंग्रह है, जिसकी सारी कविताएँ उपर्युक्त उन्हीं अनुभवों की एक कहानी है । जंगल के समान इस विश्व में उदास मनुष्य भूला भटका-सा रहता है । इस आशय को कवयित्री सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती है --

इस जंगल के सब ले रहे हैं । अपने जन्म के उदास रंग
मिट्टी की हर चीज़ दु:ख में पूरी है ।[१]

भविष्य की आशा मनुष्य को जगत में जीने की अभिलाषा देती है । जब वह देखता है कि भविष्य अन्धकारमय है तब वह हताश होकर तिनके की राह देखता है । अपनी अस्तित्वहीनता पर भी वह आँसू बहाये रहता है । ये भाव कैलाश वाजपेयी की कविता में भी दृश्यमान हैं --

सारा धूर्त की जैसे हर कहीं
हताश आदमी का कोई आसमान नहीं होता ।
तुम अपनी बरबाद मिट्टी के ढेर पर
खड़े हुए
कब तक चिल्लाओगे -- सीढ़ियाँ
सीढ़ियाँ नहीं हैं ।[२]

वैयक्तिक कुंठाओं ने आज मानव को संघर्षशील बना दिया है । जीवित रहना है या नहीं, इस हद तक वह सोचता रहता है । जो पीड़ा उसके हृदय-मंथन का कारण है, उसके बारे में वीरेन्द्रकुमार जैन की उक्ति सर्वथा अनुकूल है --

एक पीड़ा है आज भीतर
जो कही नहीं जा सकती,
एक वर्जना है स्वयं को
स्वयं की

१- नाटक जारी है- लीलाधर जगूड़ी, पृ० ७१.
२- तीसरा अंधेरा - कैलास वाजपेयी, पृ० २८.

ताकि स्वयं निरस्तित्व न हो जाये
जीवित रहने की इस
अन्तिम जिजीविषा से बड़ा
पाप या पुण्य क्या हो सकता है ?[१]

नये-नये संत्रासों का संदेशों देते हुए हर-दिन सूरज निकलता है । अपने मार्ग में आने वाले दु:खों से ऊपर उठना, इसी में आदमी के जीवन की सफलता है । इस दु:ख का अस्तित्व स्वीकारते हुए कवयित्री कीर्ति चौधरी लिखती हैं --

कैसा दु:ख कैसा त्रास
मन के पास आये
कहाँ ऐसा भार जो
कंधे झुकाए
तनिक उस दु:ख से
इस खुशी को तोलो ।[२]

मनुष्य के जीवन-मार्ग में सभी तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं । साथ-साथ उसे काँटों का चुभन भी सहना पड़ता है । ऐसे कटु अनुभव कवयित्री शकुन्तला सिरोठिया के जीवन में भी आये । लेकिन इन चुभते काँटों को उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया है । उन्होंने दु:ख को अनचाहा-अतिथि[३] बताया है । क्योंकि कोई भी दु:ख सहना पसन्द नहीं करते । तो भी उसे सहते हैं । कवयित्री का कहना है--

आमंत्रित कर मैंने
दु:ख को नहीं बुलाया,

१- शून्य पुरुष और वस्तुएँ, वीरेन्द्रकुमार जैन, पृ० ४०.
२- खुले हुए आसमान के नीचे - कीर्ति चौधरी, पृ० १६
३- चाँद इतना हँसा - एक दृष्टि, शकुन्तला सिरोठिया, पृ० ६.

किन्तु सहज ही आया
तब न कभी झिटकाया ।
दु:ख है सच्चा अतिथि
बिना तिथि देकर आता
मेज़बान से कभी न
अपना रूप छिपाता ।[१]

वस्तुत: ये भाव कवयित्री महादेवी वर्मा की विचारधारा के समान है । हर्ष और आँसुओं से भरे हुए कवयित्री के गीतों में एक प्रकार की आकर्षणीयता है । निरन्त बहने वाली झंझा, निशान्त में मन्द और फीके पड़ने वाले चमकीले तारे जैसी प्रकृ की वस्तुओं में कवयित्री दु:ख की हल्की रेखा को देखती हैं । इन प्राकृतिक वस्तुओं दु:खान्त के बारे में कवयित्री कहती हैं --

जग किस पर करता मान अरे ?
जलते हैं तारे मन्द-मन्द,
भू-पर झरते हिमकण अमन्द,
रजनी-तम में मिल खो जाती ।
कितना दु:खान्त अवसान अरे ?[२]

कवयित्री मीरा अहलूवालिया भी संसार में दु:ख के अस्तित्व को मानती है । कष्टपूर्ण जीवन का उल्लेख सभी कवियों ने किया है । कवयित्री भी इस कष्ट या संत्रास का ि बन जाती हैं । आकाश के बिखरे तारे, रात-दिन आराम के बिना होकर घूमने वाल पृथ्वी आदि कवयित्री के जीवन के कष्टों को ही दुहराते हैं । इसके अतिरिक्त आस्थ हीन, जड़रूपी विश्वासों के बीच पलने वाली कवयित्री अपने जीवन को निरर्थक मानती हैं । सांसारिक माया-मोह की विडंबना में कवयित्री अपने दु:ख को महात्मा बुद्ध का आदिसत्य-दु:खतत्व के समान मानती है । कवयित्री का कहना है --

---

१- चाँद हतना हँसा - एक दृष्टि - शकुन्तला सिरोठिया, पृ० ६.
२- सुधि के स्वर - शकुन्तला सिरोठिया, पृ० १३.

आश्चर्य ।
उगे विश्वासों की जड़ों में
आस्था की स्वाद बिसेर देती हूँ
निरर्थक ।
मैं जी रही हूँ --
यही आदि सत्य है
बुद्ध के आदि दु:ख-सा ।
विडंबना ।[१]

कवयित्री पद्मा सचदेव ने स्वयं यह माना है कि उनका जीवन दु:ख से भीगा हुआ है सुख से बचपन तो बीत गया । जब बचपन रूपी सुख का पर्दा हटाया गया, तो दु:ख दु:ख नज़र आने लगा । बीते हुए उन सुखी दिनों की याद तब उन्हें सताती है । अप सखियों-संग वह उछलती, कूदती थी । उस समय पत्तों को फाड़ते हुए देखकर कवयित्री को उन पर बिल्कुल दया नहीं आती थी । लेकिन आज जब बीमार पड़ी, तो उन फाड़ते हुए पत्तों पर तरस खाने लगी । कहने का मतलब है कि दु:ख से ही करुणा उ आती है । यही आशय कवयित्री के शब्दों में देखिये --

तब मैं न जानती थी
वृक्ष पत्ते क्यों फाड़ते हैं ।[२]

किसी अज्ञात पीड़ा को लेकर ही दु:ख हमारे पथ में आता है । इस दु:ख की पीड़ा अवर्णनीय है । कवि श्री भवानीप्रसाद मिश्र ने भी सबको अपने घेरे में डालने वाले इ दु:ख का अस्तित्व जान लिया । चारों ओर के इस दु:ख और दर्द के वर्णन मिश्र जी यों करते हैं --

---

१- दिविक - (सं०) सुखवीर सिंह, पृ० ५८.
२- मेरे कवि मेरे गीत - पद्मा सचदेव, (भूमिका से)
३- वही.

दु:ख क्या कोई जगत को जान कर जतला सका है,
दर्द क्या कोई कभी भी बोलकर बतला सका है,
मैं कि पीड़ा दीन की कहता हूँ काम मेरा,
और दुखियों से सदा घिर कर रहा है काम मेरा,
पुत्र शोकातुर पिता की आह के बीचों पला हूँ,
मैं स्वयं भी दु:ख कन्धों पर उठा कितना चला हूँ।
ये कि रमणी का हुआ सिन्दूर बिन जब भाल सूना,
चूड़ियों के टूटने का स्वर कि हाहाकार दूना,
आँखों में आँसू कि जिनका स्वर सहज, भरा गया है,
और वे कंकाल जिनका बोल नभ थर्रा गया है,
जो हृदय को चीर डाले झोंपड़ी की वह कहानी,
लाख बहलावों में पड़कर जो नहीं होती पुरानी,
हू-बहू अंकित है जी पर, आँख में तस्वीर जिनकी,
खींच शब्दों में नहीं पाया कभी भी पीर उनकी।[१]

आधुनिक युग का मनुष्य तो संत्रास, अलगाव, सन्नाटा जैसे फन्दों में जकड़ा रहता है। चारों तरफ से वह परेशान है। मनुष्य तो हजारों इच्छाओं को साथ लेकर ही पृथ्वी पर जन्म लेता है। लेकिन उनमें कुछ भी पूरी नहीं होती। यहाँ आकर सुख और चैन की प्रतीक्षा करते-करते जीवन की भी परवाह वे नहीं करते। लेकिन बदले में उसे जो फल मिलता है, उससे लोग परेशान ही दिखायी पड़ते हैं। वास्तव में उसका जीवन खून के घूंट के बराबर ही होता है। कवि मिश्र जी को भी दुनियाँ से दु:ख के अलावा कुछ भी नहीं मिलता। इस दु:ख रूपी विश्व सत्य के बारे में कवि कहते हैं --

लेकिन अपना सत्य दु:ख, मैंने जग ही से तो पाया है,
मेरा जला कपाल जला है तो यह जग ही की माया है।

१- गीत-फरोश - भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० ७६.

कांटा सा खटका करता है जी में, सपना कभी नहीं है,
सपना तो ऐसा होता है, अभी-अभी है, अभी नहीं है ।[१]

आधुनिक जीवन में छायी हुई खामोशी का वर्णन लक्ष्मीकान्त वर्मा ने भी अपनी कविताओं में किया है । 'अतुकान्त' की दो-तीन कविताएँ इसको प्रमाणित करती हैं । आज संसार में जो संत्रास, ऊबड़-खाबड़पन विद्यमान है, उसके कारण सब लोग चेतनाहीन बन गये हैं । लेकिन विवेकी पुरुष इन निषेधात्मक कटुताओं से ऊपर उठने की चेष्टा करता है । यह खामोशी मनुष्य को जीने नहीं देती । इस खामोशी में मनुष्य तो शव के समान जीता है । चारों ओर के विषैले वातावरण ने उसे शव-सा बनाया है । देखिये कवि की उक्ति --

आज मैं जो कुछ भी जिन्दा हूँ
वह मैं नहीं हूँ
बल्कि इन सारे विषैले दंशनों से युक्त
एक अस्थि है
जिसके नीचे संस्कार-सी स्मृतियाँ हैं
और ऊपर एक श्वेत-रंग, अंकहीन
त्याज्य अवशिष्ट का आवरण ।[२]

आज दुनियाँ में जो कृत्रिमपन देखने को मिलता है, उसे बेढब जी ने अच्छी तरह बताया है । लोग जानते हैं कि संसार में दुःख सदा विद्यमान रहता है । कवि यह जानते हैं कि सत्य का महत्व कितना है और सत्यविहीन मार्ग पराजय और दुःख का है । लेकिन इन सत्य, अहिंसा जैसे सद्गुणों का आचरण करना बहुत ही कठिन है । कवि व्यंग्य-पूर्ण दृष्टि से इन सबका विश्लेषण करते हैं । यहाँ कवि अहिंसा के बारे में इस प्रकार कहते हैं --

---

१- गीत-फरोश - भवानी-प्रसाद मिश्र, पृ० ३.

२- अतुकान्त - लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ५२.

युद्ध का इस जिन्दगी में भूलकर देखो न सपना,
माँगनों के तोप का गोला चलाना कब मना है. ।[1]

मनुष्य के दुःख और निराशा के मूल में आशा रहती है । मनुष्य तो इन इच्छाओं आशाओं का दमन करने का प्रयत्न तो करता है, तो भी उसे सफलता नहीं मिलत किन्तु जब उसका ज्ञानचक्षु खुलता है तोवह देखता है कि यह संसार मिथ्या नश्वर रंगीन मरीचिका है । 'इस नश्वर संसार में वह किसी भी भौतिक सुख की प्राप्ति पूर्ण तृप्ति का अनुभव नहीं कर पाता। तृष्णा उसके जीवन में मादक मदिरा का व करती है जो 'अहं' को उभाड़कर प्रतिष्ठा के लिए ललचाती है ।'[2] अर्थात् हमारा तो कभी आशाओं और अभिलाषाओं से मुक्त नहीं होता, ये आशाएँ और अभिलाषाएँ मोहन स्वप्नों के इन्द्रजाल के समान हमारे मन को आकर्षित करती हैं । उससे हमारा मन चंचल और अस्थिर बनता है । परिस्थितियों के अनुकूल यह हमारे मन को छलावा देती है । निरुत्साही मनुष्य उस मृगतृष्णा रूपी आशा के जाल में फँस जात है । इस प्रकार वह विश्व के मायामोह में फँस जाता है । लेकिन इससे उसे एक क्षण भी चैन प्राप्त नहीं होता । इसलिए अन्त में वह इस भव-सागर से मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता है । मगर उसका मन तो लौकिकता में मग्न रहता ही है । प्रकृति के वैभव पर आकर्षित होने वाले मन के बारे में कवि रामदरश मिश्र का कहना है --

खड़ी फसल के पात-पात पर अपने को लिख जाऊँ
लहर-लहर पर गिर-गिर नाचूँ दिशा-दिशा उड़ियाऊँ ।
मैं तटवासी, तृष्णा मेरी प्यासी फिर फिर आये ।[3]

यह तृष्णा एक ऐसा पाश है, जो सबको बंधन में डाल देती है । इस पाश में बन्द हो जाने के बाद मनुष्य को सारे जीवन में संघर्ष करते रहना पड़ता है । इससे मुक्ति पाना असंभव है । रवीन्द्र भ्रमर की यह उक्ति देखिये --

---

१- बेढब की बानी - बेढब, पृ० ७०
२- आधुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान - डा० उर्वशी ज० सूरती, पृ० २४३.
३- पाँच जोड़ बाँसुरी (सं०) चन्द्रदेव सिंह, पृ० ६६.

तुम अधीर प्राण हुए कुछ सुनने को
मर्म के उगे दो आखर चुनने को,
प्रीति है
मुक्ति नहीं है
कैसे तोड़ दूँ सब बंधन ?[१]

मनुष्य तो असंख्य कष्टमय परिस्थितियों से होकर गुज़रा करता है । ममता का पाश उसे जगत से बाँधता है । लेकिन शान्ति का मार्ग ममता का पाश नहीं है । इस बंधन को तोड़ने पर ही मनुष्य को शान्ति प्राप्त होती है । इस भव बंधन को तोड़ने के बा में कवि शंभुनाथसिंह कहते हैं --

तोड़ो कारा तोड़ो ।
टूट लो जग-बंधन,
जाग्रत अब जड़-चेतन,
तुम भी जड़ बंधन की
ममता-माया छोड़ो ।
तोड़ो कारा तोड़ो ।[२]

करुणा

मनुष्यों का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि उसे स्वयं अंधकार से जूझकर भी दूसरों प्रकाश प्रदान करना चाहिए । कवि रूपनारायण त्रिपाठी जी की भी यही मान्यत सुख और खुशी के नशे में मस्त होकर अपने को भूलने वाले लोगों को कवि सावधान र के लिए कहते हैं । क्योंकि उन्होंने सभी गाँवों में जिन्दगी के लिए तरसते हुए एवं ठ से खेलने वाले बेसहारा और लाचार लोगों को देखा । हर कहीं ऐसे ही बगीचे देखे, बीमार कलियों से भरे हैं । सब लोगों के मुख पर खोखली मुसकान को देखा । फलस

१-२. पाँच जोड़ बाँसुरी (सं०) चन्द्रदेव सिंह, पृ० ६६, ६२.
३- समय की शिला पर - शंभुनाथ सिंह, पृ० १२६.

वे करुणार्द्र से भर जाते हैं । जो दूसरों की पीड़ा को जानता है और करुणार्द्र ह
है वही इस जनम में पुण्य का अधिकारी है, कवि की यह मान्यता इन पंक्तियों में द्र
है --

दूसरों के दर्द ही तो इस धरातल का अमृत है,
जिसे पीकर हो चुके हैं अमर गांधी और गौतम
स्वर्ग की ऊँचाइयों पर उन्हें मिलती है अमरता
जो पिया करते पराई पीर का पीयूष अनुपम ।[१]

इन्हीं मानवीय गुणों के कारण ही गांधी, गौतम जैसे महापुरुष पूज्य बने हैं ।

कवि रमानाथ शास्त्री जी की कुछ कविताओं में मैंने करुणा के स्वर देखे । दुनियाँ के दु:ख और कष्टों से कवि के मानवीय गुण जागृत हुए । जनसहस्रों के कष्टों से निकले हुए आर्तनाद से कवि में स्थित 'अहं' लुप्त होता है । उनका 'अहं' समवेदना के रूप में परिवर्तित हो जाता है । इस प्रकार उनमें सहानुभूति और करुणा का उदय होता है । इसी को नीचे की पंक्तियाँ बता देती हैं --

बिंध रहे हैं
तन,
मन,
प्राण,
गल रहा है
अहं का हिम-स्तूप,
वेदना है
बन गई संवेदना,
उमड़ पड़ा
करुणा का ज्वार ।[२]

१- बनफूल - श्री रूपनारायण त्रिपाठी, पृ० १४.
२- इन्द्रधनुष अंधेरी रात के - रमानाथ शास्त्री, पृ० ८१.

इन पंक्तियों में कवि में उदित करुणा के उद्गार को आज दिखाया गया है ।

संसार संकटपूर्ण है । यहाँ कवि रघुवीर 'सहाय' जी ऐसे कई दृश्य देखते हैं, जिनके कारण हृदय सहानुभूति से भर जाता है । चारों ओर के इन दृश्यों को देखकर कवि अकाल से त्रस्त किसी भू-भाग की याद करते हैं । अन्दर की तीव्र भूख की ज्वाला से सब बच्चे और औरतें पीड़ित हैं । इसी करुणापूर्ण दृश्य का वर्णन करते हुए कवि 'अकाल' नामक अपनी कविता में यों लिखते हैं --

फूटकर चलते फिरते छेद
भूमि की पर्त गयी है सूख
औरतें बाँधे हुए उरोज
पोटली के अन्दर है भूख.. ।[१]

'टूटते अँधेरे' कवितासंग्रह का कवि श्री देवेन्द्र आर्य एक ऐसे दृढ़संकल्पी हैं, जो प्रत्येक कदम पर प्राप्त होने वाले अँधेरे को तोड़कर प्रकाश को फैलाने में मग्न हैं । दु:ख की अँधी घाटियों में वे सुख के प्राणदीप को जलाना चाहते हैं । दिशाहीन-जीवन संत्रास, और अभाव के अँधेरे चौराहे पर खड़े होकर आगे की रास्ते की खोज में रोता रहता है । सत्य और सहानुभूति, से युक्त उज्ज्वल भविष्य से पूर्ण दिशा की खोज में ही मनुष्य का प्रयाण होता रहता है । मनुष्य जहाँ करुणा का अन्त देखता है, तुरन्त निस्सहाय होकर वह चीख पड़ता है । इस हिंसा के अँधेरे की समाप्ति ही कवि की चिर-अभिलाषा है । देवेन्द्र आर्य का कहना है --

और दस ग्यारह दिन बाद
एक रात
वह नाटक अचानक ही समाप्त हो गया
जिसकी आड़ में
क्रूर दानवी हिंसा ने
मासूम करुणा का गला दबाने की योजना बनायी थी ।[२]

१- आत्महत्या के विरुद्ध - रघुवीर सहाय, पृ० १४.
२- टूटते अँधेरे - देवेन्द्र आर्य, पृ०

इस प्रकार यह व्यक्त होता है कि बीसवीं शताब्दी के समूचे कवियों ने के प्रति विशेष श्रद्धा रखी है और आवश्यकतानुसार अपनी कविताओं में उनके वि का वर्णन किया है । यह केवल बीसवीं शताब्दी के साहित्य की विशेषता है । उसके पहले इतनी प्रचुर मात्रा में काव्य में बुद्धदेव या उनके विचारों को प्रस्फुट कर प्रयत्न नहीं हुआ है ।

महात्मा बुद्ध और उनके तत्वों का नामस्मरण करनेवाले कविगण

आधुनिक हिन्दी-काव्य में अनेक ऐसे स्थान आये हैं, जहाँ महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं है, बल्कि महात्मा बुद्ध का नाम-स्मरण, सत्य, अहि आदि शब्दों का उल्लेख मात्र मिलता है । आधुनिक युग ने तो महात्मा गांधी जी बुद्ध का ही अवतार मान लिया है । इस गान्धीयुग में हम महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों का पूर्ण विकास देख सकते हैं । क्योंकि गान्धी जी उसी महामानव बुद्ध के चरणों की छायों का अनुसरण करते रहे, उन्हीं के सत्य-अहिंसा को अपनाते रहे और अन्त में उन शरीर-त्याग भी सत्य एवं अहिंसा की रक्षा के लिए हुआ । इसलिए गान्धी जी को केन्द्र बनाकर चलने वाले सब कवियों को यहाँ बौद्धधर्म के प्रभाव की सीमा के अंतर्गत रख गया है । वस्तुत: गान्धीवाद अपने सैद्धान्तिक-पक्ष में बौद्धधर्म के अति निकट है, यह निस्संदेह कहा जा सकता है । गान्धीवाद से प्रभावित कवि का मुख स्वर रहा है सत्य अहिंसा का गुणगायन । उनकी रचनाओं में यहाँ-तहाँ हमें गांधी जी, बुद्ध जैसे महा-पुरुषों का उल्लेख भी मिलता है । सुमित्रानन्दन पंत, नरेन्द्र शर्मा, सियारामशरण गुप्त, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, 'नवीन', 'अज्ञेय', 'सुमन' जैसे आधुनिक कवि की कुछ रचनाओं में बुद्ध का नामस्मरण और उनके विशिष्ट सिद्धान्तों का मात्र उल्लेख मिलता है । माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी जैसे राष्ट्रकवियों ने तो बौद्धतत्वों का प्रयोग एक और ही रूपमें किया है । इनका साहित्य-क्षेत्र देश और मातृभूमि के प्रति, भक्ति और प्रेम को लिये आगे बढ़ता है । यह भी महात्मा बुद्ध की विश्वमैत्री ही अन्य रूप है । तात्पर्य यही रहा है कि वे कवि बौद्धधर्म तथा बुद्ध के प्रति आस्थावा रहे हैं । ऐसी कुछ पंक्तियों का संग्रह यहाँ किया गया है ।

कवि श्री सियारामशरण गुप्त, युगपुरुष गांधी जी के जीवन से बड़े प्र रहे । महात्मा बुद्ध के समान लोककल्याण चाहने वाले गान्धी जी के सिद्धान्त भ के सिद्धान्तों से बिल्कुल कम नहीं थे । इसलिए गांधीविचारधारा से प्रभावित सि शरण गुप्त जी पर मैंने बुद्ध के तत्वों का काफी मात्रा में प्रभाव देखा । उनकी में `बापू,` `उन्मुक्त,` `दैनिकी` `आर्द्रा` आदि ऐसी कृतियाँ हैं, जिनमें गुप्त जी अहिंसा, प्रेम-त्याग, करुणा आदि बौद्धधर्म के विशिष्ट सिद्धान्तों की महत्ता द करने के हेतु इनका उल्लेख किया है, इन रचनाओं की कुछ पंक्तियों में उन्होंने बुद्ध उनके तत्वों का नामस्मरण करके उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है ।

बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त सत्यऔर अहिंसा, महात्मा गांधी जी के भी आदर्श रहे । सियारामशरण गुप्त जी की रचनाओं का अध्ययन करते वक्त यह अ होता है कि इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना ही उनका कार्य रहा है । चाण सूत्र में कौटिल्य ने `अहिंसा लक्षणोधर्म: `कहकर अहिंसा की महिमा गायी है । प्रकार मनुस्मृति में भी मनु ने नैतिक आदर्शों में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया क्योंकि `जहाँ मन हिंसा से मुड़ता है, वहाँ दु:ख अवश्य ही शान्त हो जाता है परमानन्द है । इस अहिंसा-सिद्धान्त का प्रतिपादन करके कवि कहते हैं कि गांधी ने जिस अहिंसा तत्व का प्रचार किया, वह वास्तव में विश्व के विभिन्न धर्मों ं हैं । गांधी जी के इस अहिंसा-तत्व में कवि ने इतनी आस्था प्रकट की है कि देश स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए अहिंसा तत्व को उन्होंने सर्वथा अनुकूल माना ।

गुप्त जी की कृति `उन्मुक्त` तो गान्धीविचार से पूर्ण है । इसमें उ विश्व-युद्ध के दुष्परिणामों का प्रभावात्मक चित्रण करके हिंसा से त्रस्त जगत के अहिंसा की महौषधि को अत्यन्त उपयोगी माना है । इस काव्य का नायक अ का पुजारी है । इसके अन्तिम दृश्य में तो हिंसा की निष्फल भीषणता स्वं ।

१- बुद्धवाणी - वियोगी हरि, पृ० १६.

अहिंसा की स्थापना हुई है । अहिंसा की महिमा का यशोगान यहाँ प्रस्तुत किया ग है --

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है, वही हमारा भी है मंगल ।
मिला हमें चिरसत्य आज यह नूतन होकर-
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर ।[१]

गुप्त जी के काव्यों में `उन्मुक्त` को मैं विशिष्ट इसलिए मानती हूँ कि इस कृति-द्वा कवि ने सिद्ध किया कि शान्ति की स्थापना का एक-मात्र साधन है अहिंसा और इस में समस्त मानवों का कल्याण निहित है ।

नरमेधयज्ञ के हृदय-विदारक दृश्य सारे युद्धों का परिणाम है । इसकी प्रति-क्रिया का कार्य हमें गुप्त जी की `दैनिकी` रचना में देखने को मिलता है, क्योंकि य सन् १९४२ के विश्वव्यापी युद्ध के परिवेश में लिखी गयी है । इस कविता संग्रह में `ो कदा` नामक एक ऐसी कविता है, जिसमें कवि ने बुद्ध-भगवान की चर्चा की है । युद्ध विभीषिका से मनुष्य को ऊपर उठाने के लिए वे बुद्धदेव से प्रार्थना करते हैं --

देखा जैसे चौंक उन्होंने,
प्रथम बार पृथ्वी पर
पशु बनकर नर बंधा, हुआ है
काष्ठयूप से कसकर ।
सुनी उन्होंने जगकर जैसे
उसकी गूँगी वाणी
फूट पड़ी उसके अधरों से,
नव करुणा कल्याणी ।[२]

१- उन्मुक्त - सियारामशरण गुप्त, पृ० १५७.

२- दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, पृ० ८.

कवि देश-द्रोह तथा देश-निष्कासन को भी अहिंसा की वृत्ति मानते हैं । इसलिए वे इ विरोध प्रकट करते हैं । 'अंडमान' कविता में कवि का कहना है --

राष्ट्र-राष्ट्र का निष्कासन है निज के छोटेपन में,
अंडमान हो रहे प्रतिष्ठित देश-देश जग-जग में ।[१]

गांधीवाद, मनुष्य को भगवद्रूप या भगवान का अंश मानता है, इसलिए उस समता के आदर्श का विशेष स्थान है । इसी प्रकार सर्वोदय में भी अहिंसापूर्ण-साधन द्वारा सभी का कल्याण होता है । सत्य की उपलब्धि और खोज के लिए भी इसी अहिंसा-सिद्धान्त की आवश्यकता है । गांधी जी के दर्शन की आत्मा थी यह अहिंसा तत्व । उसके बारे में श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' का कहना है --

'अहिंसा, वह शब्द ही गांधी-धर्म का निचोड़ है, तथा हिंसा से पूरि विश्व में यह एक शब्द गांधी जी का जितना व्यापक प्रतिनिधित्व करता है, उतना उनके और सारे उपदेश मिलकर भी नहीं कर पाते ।[२]

गांधी जी के समय के पूर्व तक यह तत्व वैयक्तिक अनुशासन तक ही सीमित लेकिन गांधी जी ने उसे समष्टिरूप से सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक जैसे सभी क्षेत्र में सफलता-पूर्वक स्वीकारा । अर्थात् उसे व्यापकता प्रदान की । क्योंकि उन्होंने से सारे विश्वकल्याण का स्वप्न देखा ।

इस सत्य की खोज करते-करते हम एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीव पाने वाली यह घृणा या पैशाचिकता केवल माया ही है, उसमें सत्य की झलकी भी देखने को नहीं मिलती । सत्य तो इन पैशाचिक वृत्तियों से कहीं दूर ही रह जहाँ प्रेम स्नेह, ममता सहानुभूति आदि का वास है, वहीं सत्य भी रहता है ।

१- दैनिकी - सियारामशरण गुप्त, पृ० २३.

२- सियाराम शरण गुप्त जी की काव्य-साधना - दुर्गाशंकर मिश्र, पृ० १४१.

विश्व के ये माया रूप तो केवल क्षणभंगुर हैं और स्नेह तथा प्रेम का बंधन ही अमर है। चर हों या स्थावर, बड़े हों या छोटे, दृष्ट हों या अदृष्ट, हमसे दूर रहते हों या पास, जगत में जितने भी प्राणी हों वे सब आनन्दित रहें।"[१] यही स्नेह अखण्ड सत्य है। प्राणिमात्र के प्रति दिखाने वाले इसी प्रेम व स्नेह को कवि 'अहिंसा' की संज्ञा देते हैं। घृणा का उत्तर घृणा से देने के बदले प्रेम से देने पर विश्व में सुख का राज्य कायम होगा। वस्तुत: क्रोध, रोष जैसी आसुरी-वृत्तियाँ तो हिंसा का पर्याय हैं। इस हिंसा की शुद्धि तो अहिंसा से होनी चाहिए। यही जीवन का सत्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सियारामशरण गुप्त जी ने न केवल गांधीवाद पर आस्था ही रखी, बल्कि उनको अपने जीवन तथा काव्य में अभिव्यक्त भी किया।

देशप्रेम को काव्य-विषय बनाने वाले हिन्दी कवियों में श्री माखनलाल चतुर्वेदी का स्थान भी महत्वपूर्ण है। राष्ट्र के एक आपत्तिजनक वातावरण में ही चतुर्वेदी जी ने राष्ट्रीय-रंगमंच पर कदम रखा था। वास्तव में, वे राष्ट्र के लिए जन्मे थे, राष्ट्र के लिए ही जिये थे, और उन्होंने राष्ट्रप्रेम का पीयूष ही प्रवाहित किया था। इस राष्ट्रप्रेम की भावना भी लोककल्याण से प्रेरित ही है। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम को दिखाने वाली कवि की ये पंक्तियाँ देखिये --

तेरे पर्वत-शिखर कि नभ को भू के मौन इशारे
तेरे वन जग उठे पवन से हरित इरादे प्यारे।
राम कृष्ण के लीलामय में उठे बुद्ध की वाणी
काबा से कैलाश तलक उमड़ी कविता-कल्याणी।[२]

सर्वभूतहित की कामना बलिदान या त्याग की शिक्षा देती है। त्यागपूर्ण और विरागयुक्त जीवन पथ से अग्रसर होने पर ही भगवान बुद्ध अपनी लक्ष्यसिद्धि तक पहुँच सके। इस बलिदान की भावना को चतुर्वेदी जी ने अपने काव्य में प्रधानता दी है।

१- बुद्धवाणी - वियोगी हरि, पृ० १८.
२- वेणु लो गूँजे धरा - माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० ७७.

दूसरे शब्दों में कहें तो यह एक 'बलिदानवादी' राष्ट्रीयता है । इसी बलिदान भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने राष्ट्रदेवता की बलिवेदी पर प्राण रूपी पु चढ़ाने का आह्वान दिया था । चतुर्वेदी ने देखा कि देश की स्वतंत्रता के लिए ब की जरूरत है, तो उन्होंने तुरन्त अपने यौवनयुक्त जीवन को त्याग दिया । 'मर को त्यौहार के रूप में स्वीकार करने वाले कवि के लिए देश की बलिवेदी पर बलि जाना ही शेष रह गया ।'[१] उनकी इस बलिदान की भावना में भी हम गान्धीद का प्रभाव देख सकते हैं । परमार्थ के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने वाले उस महा के बारे में डा० कमलाकान्त पाठक का कहना है --

'जो व्यापक हित के लिए अपने व्यक्तिगत रागद्वेष का विसर्जन या सुख-दु: का परित्याग कर देते हैं, वे महापुरुष माने जाते हैं । माखनलाल चतुर्वे जी की भावस्थिति बहुत-कुछ इसी प्रकार की है ।'[२] वस्तुत: उत्कृष्ट कोटि का बलि परमार्थ के लिए होता है ।

जगत में शान्ति की स्थापना अहिंसा के द्वारा करने का महात्मा बुद्ध ने हमें शिक्षा दी है । इसी के द्वारा गान्धी जी ने भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम में विजय पायी थी । इसी को आधार मानकर लिखी हुई कविता है 'वेणु लो गूँजे धरा' । इस अहिंसा-पद्धति में उन्होंने सभी चराचरों से प्रेम करने तथा वैर त्यागने का उपदेश दिया है ।

स्वतंत्रता-संग्राम के वीर सेनानी महात्मा गांधी जी ने अपने सत्याग्रह को पू अहिंसात्मक रखने का ही निश्चय किया था । हथियारों को छूना भी वे पाप समझ थे । इस सत्याग्रह में विरोधी-पक्ष के संहार की भावना न थी । केवल थी त्याग-भावना । वहाँ भी लोक-कल्याण का पुण्य स्वर ही है । कवि चतुर्वेदी जी कहते हैं

१- माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य - श्री रामखिलावन निवारी, पृ० १५५
२- माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व और कृतित्व -(सं०)प्रेमनारायण टंडन, पृ० ६३
३- माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य - रामखिलावन निवारी, पृ० १६६.

तू ईसा से बातें करती
महावीर से बोल,
बुद्ध और नानक से अपने
जी की घुण्डी खोल,
प्रतिभा की पुरुषार्थ देवता
अर्पण की अधिरानी
रंगों में स्वर, स्वर में महिमा,
भरती सी गीर्वाणी,
जय-जय भावमयी कवि-वाणी ।।[१]

सम्यक्-जीवन को बिताने के लिए अहिंसा की यह नीति बहुत अनिवार्य है परमपिता गान्धी जी की अहिंसा तो शारीरिक पीड़ा तक ही सीमित न थी । ले हृदय तथा उससे उद्भूत होने वाले सभी भावों से उसका अटूट संबंध था । इसलिए उन्ह सत्याग्रहियों से भी यही चाह प्रकट की थी कि वे अपने मन में घृणा, क्रोध तथा प्रत कार की भावना न रखें ।

इस प्रकार देशप्रेम और मानवतावाद के मार्ग से आगे बढ़ने वाले कवि चतुर्वेदी के 'काव्य की भगीरथी जनपीड़ा की गंगोत्री से प्रभावित हुई थी । इसलिए उसमें बं दान का कीर्तन है, क्योंकि करुण वेदनाओं में ही उन्हें जीवन का संदेश मिला था[२] इसलिए मानवता पर होने वाले अत्याचार और दुखियों की वेदना से आपूर्ण आहें क के मन को अस्वस्थ बना देती है । 'वह इस दुर्दशा को देखकर इतना क्षुब्ध हो उठता कि 'नभ-जल-थल' सभी को फूँक डालने को उथत हो जाता है ।'[३] संक्षेप में कहा ज

१- मरण-ज्वार - (सं०) श्रीकान्त जोशी, पृ० ३७.
२- माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व (सं०) प्रेमनारायण टंडन, पृ० १४१.
३- माखनलाल चतुर्वेदी -- व्यक्ति और काव्य - रामसिलावन मिश्र, पृ० २६२.

तो गांधीवाद से प्रभावित उनका यह सुधारवादी दृष्टिकोण और मानवतावादी स महात्मा बुद्ध के लोककल्याण-कामना के ही विभिन्न रूप हैं ।

युग-युग की भारतीय संस्कृति के प्रतीक एवं भारत-भू की सनातन-परंपरा के आचार्य संत विनोबा ने परमार्थमूलक विचारों को हमारे बीच प्रसारित किया । वि जी का यही काम रहा है कि भूख से त्रस्त मानव को उभारें । इसके लिए उन्होंने स वाद का नारा सारे देश में बुलन्द किया । श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की रचना 'विनोबा-स्तवन' में उन्होंने विनोबा जी के जीवन की झांकी प्रस्तुत करके उनके कि हुए सत्कार्यों का भी उद्धरण दिया है । श्रीराम, श्रीकृष्ण महावीर ऋषभ-देव जै पुण्यात्माओं ने हमारी भूमि पर अवतार लेकर उसे पुनीत बनाया । इतना होने पर संत विनोबा उसे पूर्णतया पवित्र और उपजाऊ नहीं मानते । क्योंकि अब भी वे अ चारों ओर भूखों और पीड़ितों की कराह सुनते हैं । इसी प्रसंग में कवि तथागत का स्मरण करते हैं --

पूर्णकाम, अभिताभ, तथागत की स्वर लहरी छाई,
शंकर की प्रतिवादि भयंकर वाणी भी लहराई,
शत-शत सन्तों ने सनेह के स्वर की धार बहाई,
शुद्ध बुद्ध, अविचल गांधी जी की करुणा भी मंडराई,
पर, पहुँचा है लाभ जगत को महाप्राण के स्वन से ?[१]

वास्तव में, युद्ध तो घोर हिंसा ही है, उससे अशान्ति का ही वातावरण बना र है । लेकिन अहिंसा में ऐसा विशिष्ट गुण रहता है कि वह शान्तिप्रदान करती है इसका कारण है कि हिंसा अपने-आप में अशान्ति को भी समेटे रहती है । कवि शंकर भट्ट ने इसकी व्याख्या करने के हेतु वर्तमान अणुयुग को ही ले लिया है । शान्ति चाहे वाला कवि अहिंसा का सांस लेने के लिए उतावला रहता है । इस रट

१- विनोबा स्तवन - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

युग ने लोगों के दिल में एक सिहरन-सी उत्पन्न की है । और शान्ति एवं अमन की खोज में भटकने वालों को केवल निराशा ही प्राप्त हुई है । उनके मुँह से ये ही शब्द निकलते हैं --

शान्ति दो प्रभु, शान्ति मानव की माँग है ।[१]

युद्धरूपी अन्धकार को दूर कर शान्ति के प्रकाश से जन मन को उज्ज्वल बनाने के कवि के विचार बहुत सुन्दर हैं । कवि का कहना है --

शान्ति है हमारा धन, शान्ति है हमारा ध्येय,
शान्ति है हमारी प्रिय, शान्ति ही विधान है ।
बल भरो वाणी में, पुकार भरो प्राणों में
शान्ति हो वचन मन तन-मन प्राण-प्राण ।[२]

अपने अशान्त मन को शान्त बनाने के लिए कवि एक ही उपाय सोच लेते हैं । वे सदा के लिए आदरणीय बापू की स्मृतियों में खो जाना चाहते हैं । वे अपने को बापू जी के चरणों पर अर्पित करते हैं । यहाँ भी बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त दया, सहानुभूति, अहिंसा, विश्वमैत्री आदि का स्मरण करते हैं । महात्मा बुद्ध का भी नाम-स्मरण उनके विषय की सीमा में रहा । सत्य के पुत्र और अहिंसा के लाड़ले महात्मा गांधीजी का यशोगान करते वक्त कवि उदयशंकर भट्ट की बुद्ध, ईसा जैसे महान् लोकविभूतियों के लिए अपनी अर्चना के फूल चढ़ाते हैं । कवि कहते हैं --

हे जीवन गीता के सच्चे गायक,
तुम बुद्ध से उबुद्ध,
तुम ईसा से अक्षुब्ध,
वासना-रावण के राम,
मनुष्यता के प्रतीक,
हे शताब्दियों के प्रकाश,
तुम्हें मेरा प्रणाम, सौ-सौ प्रणाम ।[३]

[illegible]

दुखितों के दु:ख और क्लेशों को दूर करने वाले बुद्धदेव के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ समर्पित करने के उद्देश्य से ही `तथागत के प्रति` नामक कविता की रचना की गयी है । जब धरती, जरा, व्याधि आदि से पीड़ित थी, तो बुद्ध ने उस पर अमृत-सिंचन किया था । दीन दलितों की उन्होंने रक्षा की और भोगाधीन मानवराशि को उन्होंने मुक्ति दिलायी । चारों ओर तो अणुबमों और युद्धाग्नि की लपेटों की विभीषिका छायी हुई है, मृत्यु अपनी दंष्ट्राओं से अपना विराट् रूप विश्व को दिखा रही है । अनाथ मनुष्य तो अपनी निस्सहायता की स्थिति में मानों पिस रहा है । इस प्रकार जब मनुष्य जीवन शिशिर से प्रताड़ित रहता है तो कवि उसमें प्राण फूंक देने के लिए बहार के आगमन की चाह करते हैं । बहार के रूप में महात्मा बुद्ध को ही वे जगती पर पदार्पण करने का आह्वान करते हैं । कवि उदयशंकर भट्ट का कहना है --

युग-युगों के शिव-समाहित हुए तुम में बुद्ध

\- - -

उदधि गर्जन-सी तुम्हारी गुरु-गिरा आयन्त,
शिशिर मानव में जगति प्राण रूप वसन्त ।[१]

इसी प्रकार `पूर्वापर` की कविताओं में भी महात्मा बुद्ध का नामस्मरण आता है । महाकाल के अंग-अंग जलने लगे हैं । सारी प्रकृति क्रुद्ध है । समस्त ज्वालामुखियों से तप्त ज्वालाएँ उठ रही हैं । लगता है कि मानव तो रक्तपिपासु बन गया है । कवि का मन तो इस समय तड़पता ही है । वे इस प्रकार पुकार उठते हैं --

कृष्ण, बुद्ध, ईसा का कहना, क्या इस नर को व्यर्थ हो गया ?[२]

एक अन्य गीत में भी कवि महात्मा बुद्ध, महात्मा गांधी जैसे अवतार पुरुषों की बात छेड़ते हैं । कवि उदयशंकर भट्ट ने उनकी अमृतवाणियों की विशिष्टता को अच्छी तरह समझ लिया है । कवि उन के पवित्र मंत्रों को जन-जन के मानस-पट पर उतारने की

१- इत्यादि - उदयशंकर भट्ट, पृ० ६२.

२- पूर्वापर - उदयशंकर भट्ट, पृ० २१.

तीव्र अभिलाषा से युक्त हैं । वे आशा करते हैं कि ये पवित्र सिद्धान्त ही विश्वकल्याण के लिए सहायक सिद्ध होंगे । इस आशय को कवि के इस छोटे से गीत में हम देख सकते हैं--

कोटि-कोटि जन की सांसों से पावन मानव मंत्र हो,
सत्य, अहिंसा, दया, शान्ति से पोषित विश्व स्वतंत्र हो,
चिर विजयी जनता का प्यारा भारत का गणतंत्र हो ।[१]

गांधी जी की नोआखाली यात्रा पर प्रकाश डालते हुए उदयशंकर भट्ट जी ने महात्मा गांधी जी में प्रवर्तित होने वाली संघर्षावस्था का चित्रण किया है । गांधी जी ने वहाँ मृत्यु का, उपहास का, तथा नरक रूपी और निराशामय जीवन को ही देखा । उनके मन में सुप्त पड़ी हुई अहिंसा जागृत हुई । उन्होंने अटल निश्चय किया --

आज मेरी अहिंसा का यह परीक्षा काल है,
आज मेरा सत्य ही आह्वान मेरा कर रहा,
देखना है जीतता है कौन -- मैं, गृहयुद्ध यह ?
देखना है अहिंसा का छोर कितनी दूर है ।[२]

अहिंसा की महिमा एवं बौद्धधर्म के समस्त सार निहित ये पंक्तियाँ भी बहुत सुन्दर हैं --

शत्रुता मृत्यु है जीवन की,
है परम प्रेम ही महा सत्य,
अपने प्रति सच्चे बनो सभी,
हो सकते पर के लिए सभी,
है सत्य राम, है सत्य नाम,
है राम रहीम एक ही तो,
है जहाँ धर्म, है वहाँ विजय,
है वहाँ सत्य, है वहाँ विजय

१- कणिका - उदयशंकर भट्ट, पृ० ३८.

२- एकला चलो रे - उदयशंकर भट्ट, पृ० ३२.

है जहाँ अमल, है वहाँ विजय,
है जहाँ अहिंसा-- वह निर्भय ।[१]

कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद जैसे महापुरुषों ने विश्व भूति लोककल्याण की कामना से उर्जस्वित होकर नये जीवन-प्रकाश से लोगों को प्राणदान दिया था । मार्ग के सारे कष्टों को दूर करके उन्होंने स्वयं अपना रास्ता प्रशस्त किया है । अंध-रूढ़ियों व परंपराओं के गर्त में पड़े बिना वे इस प्रशस्त-मार्ग से होकर अकेले ही चले हैं । इसी प्रसंग में कवि महात्मा बुद्ध के बारे में बताते हैं --

ढाई सहस्र वर्ष पूर्व ऐसे ही एक दिन -
घरबार छोड़कर, तोड़कर मोह-माया,
विषम विकार-युक्त,
अधिकार द्वारा युक्त,
चल दिया,
इसी भूमि प्रांगण में--
वीर एक --
धीर एक--
निर्भय शरीर एक --
भेद-मोह प्राचीर --
निर्भय अकेला ही सविवेक पूत मन,
विश्व की कथाएँ,
अविवेक की व्यथाएँ भर,
दु:ख त्रस्त, ग्रस्त, व्यस्त,
जगको
समस्त को
प्राण विश्रान्ति देने

१- एकला चलो रे - उदयशंकर भट्ट, पृ० ३२.

शान्ति देने
एक दिन, एक दिन, युग, युग, युग बीते ।
वह महाभिनिष्क्रमण उस देवदूत का,
मानव प्रपूत का,
कौन नहीं जानता है,
इससे बने वे शुद्ध,
ज्ञान बुद्ध,
प्राण बुद्ध,
दया बुद्ध,
क्षमा बुद्ध,
सत्य बुद्ध,
श्रेय-प्रेय, ध्येय से प्रबुद्ध बुद्ध ।
जिनके प्रकाश से,
और पूत हास से
शान्त विश्व प्राण हुए,
सत्य ने,
दया ने,
क्षमा, धैर्य, शम, दम ने मानों अवतार लिया --
मुक्त करने को जग,
दुःख हरने को भव, सागर अपार का,
आधि व्याधि अभिभूत विश्वपारावार का ।[१]

इसके बाद कवि बीसवीं शताब्दी में बुद्ध-ज्ञान के साथ अवतार लिए हुए ज्योतिपुंज बापू जी का चित्र प्रस्तुत करते हैं । वास्तव में वे भी बुद्ध के समान करुणानिकुंज ही थे, कवि का कहना है --

---

१- एकला चलो रे - उदयशंकर भट्ट, पृ० ८-१०.

उसने देखा जग दुःख अति,
पीड़ा से व्याकुल विकल स्वार्थ,
कुंठित मति, विगलित स्वाभिमान,
रोगी, स्वार्थी, अविवेकवान,
देशानुबंध से शून्य दीन,
स्वाधीन भावना विभवहीन,
ईश्वर विश्वास प्रेम का पथ,
चल दिया अहिंसा सुन अनुगत,
थे सत्य अहिंसा के दो कर,
करुणा के डगमग दो पग धर,
वह चला रौंधता कीचड़ पथ,
वह चला दिखाता जीवन पथ,
वह चला पाप का दमन चला,
वह चला चन्द्रमा मग्न चला,
था एक सत्य उसका साथी,
थी एक अहिंसा की थाती ।[१]

प्रत्येक के जीवन में ऐसा क्षण आता है जो विशेषता को लिए हुये होता है । यह क्षण ऐसा होता है, जो अंतर्मंथन से कलुषित एवं पूर्ण होता है । तभी मनुष्य शान्ति के आश्रय में जाता है । लंकाधिपति रावण, जनकसुता वैदेही, और दाशरथी राम के जीवन में भी ऐसे ही संघर्षमय क्षण आये हैं, जिसका सजीव वर्णन कवि उदय-शंकर भट्ट ने किया है । पहले कवि रावण का चित्र प्रस्तुत करते हैं । भयानक राम-रावण युद्ध में रावण मूर्छित हो जाता है । लेकिन संज्ञा प्राप्त होते ही वह पहले से भी अधिक उग्र रूप से काम-क्रोध, लोभ, मोह, अहं जैसे दुर्विचारों से युक्त एक बीभत्सता

१- एकला चलो रे - उदयशंकर भट्ट, पृ० १४.

की मूर्ति बन जाता है । नारी उसके लिए तृष्णा का साधन बन जाती है । इस प्रसंग में कवि कहते हैं कि जिसमें तृष्णा अंकुरित होती है, वह निश्चय ही अपने विवेक को खोकर समूल नाश का वरण करता है । कवि का कहना है --

आकंठ जगी तृष्णा प्रकाम, संमूढ मूल बैठा विवेक,
सीता की कल्पित छवि विमुग्ध स्मृतियों में छाई कामरेख ।[१]

इतिहास भविष्य के लिए और नवपीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्रोत रहता है । अतीत के महापुरुषों के जीवन से शिक्षा प्राप्त कर लेने पर ही नवहृदयों में मानवीय गुणों का संचार होता है । केवल इतिहास ही हमारा पथ-प्रदर्शक रहेगा । श्री रामधारी सिंह `दिनकर` पुरानी-संस्कृतिके पठन-पाठन के द्वारा युवापीढ़ियों के रग-रग में मानवता के रक्त को बहाने का प्रयत्न करते हैं । भारत के अतीत के सफल गायक के रूप में दिनकर जी विख्यात हैं । भारत के अतीत के गौरव की गाथा की सुन्दर झाँकी उनके काव्य में हमें देखने को मिलती है । इसी समय कवि हमें प्राचीन बौद्ध-संस्कृति की ओर ले जाते हैं । वे पाठकों को बुद्धदेव की जन्मभूमि कपिलवस्तु ले जाते हैं । यहाँ भी कवि की लोककल्याण की शुभ कामना द्रष्टव्य है । अहिंसात्मक आदर्शों पर मानव समाज की नींव डालने का श्रेय केवल उसी दिव्य पुरुष को है । उस अलौकिक विभूति की कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकते । यही आशा `दिनकर` जी के मन में भी है --

`री कपिलवस्तु, कह बुद्धदेव
के वे मंगल-उपदेश कहाँ ?
तिब्बत, ईरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ ?[२]

कवि देखते हैं कि लोग तो इस प्राचीनता की अपेक्षा आज युद्ध एवं विध्वंसकारी कार्यों में ही अधिक रुचि लेते हैं । किन्तु युद्ध तो `हिंसा` का पर्यायवाची शब्द है । युद्ध के

१- अंतर्दर्शन - उदयशंकर भट्ट, पृ० १३.

२- रश्मिलोक - दिनकर, पृ० ६.

बारे में दिनकर जी का कहना है -- 'युद्ध मानवता के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। युद्धों की विषैली हवा में सभ्यता, संस्कृति और कला के कीटाणु घुटकर मर जाते हैं। युद्ध लोभ, क्रोध, प्रतिशोध और कलह की लज्जाभरी कहानी है। युद्ध का परिणाम होता है सत्यनाश, रुण्ड-मुण्डों की बौछार, युग युगोपार्जित कला-कौशल का भूमि निपात।'[१] वास्तव में, महात्मा बुद्ध के 'सम्यक्-आजीवो' नामक सिद्धान्त के पीछे प्रवर्तित होने वाली विचारधारा भी यही है। कवि 'कलिंग-विजय' नामक कविता द्वारा युद्ध के नाश का वर्णन करते हैं। अन्त में कवि केवल तथागत की शरण में जाते हैं --

बुद्ध की जय। धर्म्म की जय। संघ का जयगान।
आ बसे मुझमें तथागत मारजित् भगवान्।[२]

लेकिन कवि इस युद्ध भूमि से खींचकर मनुष्य को उस दुनियाँ में ले जाना चाहते हैं जहाँ सामाजिक वैषम्य व्याप्त है। वह संसार शोषितों दलितों एवं दुखियों की आहों से भरा रहता है। कवि अनुभव करते हैं कि ऐसा दु:खमय संसार अवश्य ही युद्ध में लगे रहने वाले उन क्रूर-हिंस्र -- मनुष्यों के पत्थर जैसे कठोर हृदयों में भी सहानुभूति, करुणा आदि की हिल्लोरें पैदा कर सकेगी। महात्मा गांधी जी ने भी इस पथ को स्वीकार किया था। लेकिन उस महात्मा के वियोग पर कवि इस प्रकार गाते हैं --

वह सुनो, सत्य चिल्लाता है ले मेरा नाम अँधेरे में,
करुणा पुकारती है मुझको आबद्ध घृणा के घेरे में।
श्रद्धा, मैत्री, विश्वास, प्रेम, बन्दी है मेरे सभी लोग,
धिक्कार मुझे जो सहूँ किसी के भय से मैं इनका वियोग।[३]

कवि चारों ओर हिंसा, शोषण, अत्याचार आदि देखते हैं। परिणामस्व युद्ध भी। इस अत्याचार पूर्ण व्यवहार का अन्त करने के लिए 'दिनकर' जी गौतम की शरण में जाते हैं --

---

१- दिनकर सृष्टि और दृष्टि - गोपाल कृष्ण कौल, हरप्रसाद शास्त्री, पृ० ।
२- सामधेनी - दिनकर, पृ० ५०.
३- रश्मिलोक - दिनकर, पृ० १५६.

जागो गौतम । जागो महान् ।
जागो अतीत के क्रान्ति गान ।
जागो धरती के धर्म-तत्व ।
जागो हे । जागो बोधिसत्व ।[१]

इन अत्याचारपूर्ण व्यवहारों के परिणामस्वरूप युद्ध व्याप्त होता है । महात्मा गांधी जी से उपदिष्ट `जिओ और जीन दो` का आदर्श मनुष्य को युद्ध के विध्वंस से बचा सकेगा, यही कवि की कामना है । यही आदर्श विश्वशान्ति की पहली सीढ़ी भी है । इसी शान्ति की ओर नीचे की पंक्तियाँ प्रकाश डालती हैं --

शान्ति नहीं तब तक, जब तक
सुख-भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो ।[२]

छुआछूत और असमानता की भावना मानवता के लिए एक अभिशाप है । कवि `दिनकर` जी इसे अन्याय और अधर्म मानते हैं । ऐसे अमानवीय भावनाओं से लोककल्याण संभव नहीं । इन्हें उखाड़कर फेंक देने के लिए कवि कहते हैं । समाज में व्याप्त इन अत्याचारों के बारे में कवि कहते हैं --

जागो विप्लव के वाक् । दम्भियों के इन अत्याचारों से
जागो हे जागो, तप निधान । दलितों के हाहाकारों से
जागो गांधी पर किये गये मानव-पशुओं के वारों से
जागो मैनी निर्घोष । आज व्यापक युगधर्म पुकारों से ।[३]

१- रेणुका - दिनकर, पृ० १६
२- दिनकर की सूक्तियाँ, पृ० ६२.
३- रश्मिलोक - दिनकर, पृ० १२.

नवयुग के बुद्ध महात्मा गान्धी जी और उनके सिद्धान्तों को कविता में अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पंत अद्वितीय हैं । उनकी प्रतिमा, `युगपथ` आदि कवितासंग्रहों की कविताएँ सत्य-अहिंसा का गुणगान प्रस्तुत करती हैं ।

गान्धी जी एक देवपुत्र ही थे । सत्य रूपी चरणों के स्पर्श से उन्होंने सारी धरती को पवित्र बनाया । उस युग-पुरुष में हम श्री राम, श्रीकृष्ण, चैतन्य, ईसा, मुहम्मद, महात्मा बुद्ध जैसे सभी अवतार-पुरुषों का समन्वय देख सकते हैं । उनके उपदेशों के परिणामस्वरूप समस्त राष्ट्र में नवजागरण की लहरें दौड़ने लगीं । उनका स्मरण दिलाने वाली कवि पंत जी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं --

> देवपुत्र था निश्चय वह जन मोहन-मोहन,
> सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण ।
> विचरण करते थे उसके संग विविध युग वरद
> राम कृष्ण-चैतन्य मसीहा बुद्ध-मुहम्मद ।[१]

गांधीयुग के एक अन्य संदेशवाहक के रूप में भूतपूर्व प्रधानमंत्री को भी कवि पंतजी चित्रित किया है । शान्ति के दूत, अहिंसा के पुजारी, नवयुग का प्रतिनिधि जैसी विशिष्ट संज्ञाओं से कवि उनको अभिहित करते हैं । कवि का कहना है --

> शुभ अहिंसा अश्व सौम्य कर रहा दिग् विजय,
> नेहरू का मन ही नवयुग का मन निःसंशय ।[२]

कवि पंत जी ने `बुद्ध के प्रति` नामक कविता में बौद्धदर्शन की सीमाओं का परिचय दिया है । इसमें बुद्धदेव के अंतर्मन से निसृत होने वाली करुणाधारा का उल्लेख भी मिलता है । कवि का कहना है --

---

१ - युगपथ - पंत, पृ० ७८.

२ - प्रतिमा - पंत, पृ० १२८.

मध्यम मार्ग रत बोधिसत्व थे
लोक श्रेय हित अविरत तत्पर,
अंग न थे पर भू जीवन के
थे केवल करुणा हत अंतर ।
इसीलिए सेवा करुणाव्रत
बन न सके जीवन मंगल-पथ,
भू-निर्माण उसी से संभव
जो जीवन कर्दम में भी रत ।[१]

अन्य छायावादी कवियों की भाँति पंत जी भी जीवन में सुख-दुःख को स्थान देते हैं । तो भी वे सुख की अपेक्षा दुःख को महत्व देते हैं । दुःख का अनुभव किये बिना सुख सारहीन होता है । वैसे ही आँसू के बिना संसार भी निस्सार लगेगा । दुःख के कारण ही जगत में दया, सहानुभूति, क्षमा आदि का अस्तित्व होता है । दुःख को सुख की अपेक्षा उच्चकोटि का मानने वाले कवि की उक्ति देखिये --

बिना दुःख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ प्यार ।[२]

इस काव्यसंग्रह की कुछ अन्य पंक्तियाँ बौद्धदर्शन के सार की ओर संकेत करती हैं । दुःख के मूल में काम करने वाली इच्छाओं पर कवि प्रकाश डालते हैं । इन अपूर्ण इच्छाओं के कारण ही मानव-जीवन दुःखी रहता है । इन अदम्य इच्छाओं को नियंत्रित करने पर ही हमें भवसागर से मुक्ति मिलेगी । देखिए इन के बारे में कवि क्या कहते हैं--

---

१- स्वर्णिम रथचक्र - पंत (प्रस्तावना)
२- स्वर्णिम रथचक्र - पंत, पृ० ३५.

इच्छा मानव दु:ख का कारण
इच्छा का यदि करें निवारण,
तो जग जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव-तारण ।
बुद्ध की शरण..[१]

सेवा-भाव के मूल प्रवर्तित होने वाली प्रेरक शक्तियाँ हैं -- दया, सहानुभूति, अहिंसा । ये ही बुद्ध देव के आदर्श भी रहे । इस सेवा-भावना को कवि पंत जी भी श्रेष्ठ मानते हैं । सेवाव्रती होकर जीवनयापन करने की आवश्यकता वे लोगों को समझाते हैं । इसके लिए बोधिसत्व के चरणों का अवलंबन चाहते हैं । कवि कहते हैं --

सेवा ही हो जीवन व्रत,
सेवा ही में हो जीवन रत,
सेवा हित जो हो मस्तक नत,
बोधिसत्व के मिले शुचि चरण ।[२]

महात्मा बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के लिए प्रेरित करने वाली घटनाएँ भी रोग, जरा, मृत्यु आदि । इसी के कारण वे महान् बने भी थे । जब इन विषयों के बारे में उन्होंने गहराई से चिन्तन किया, तो उन्हें इस मिथ्या जगत का अनुभव होने लगा । उन्होंने भिक्षुओं का वेष धारण किया तथा लोककल्याण के लिए प्रस्तुत हुए । ये इतिहास प्रसिद्ध बातें पंत जी की इन पंक्तियों में देखने को मिलती हैं --

छोड़ो हे मिथ्या माया-जग,
रोग, जरा, भय, मृत्यु के विहग,
पकड़ो भिक्षु भिक्षुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण ।[३]

१-२.स्वर्णिम रथचक्र - पंत, पृ० १४६, १४७.
३- वही - पृ० १४७.

लेकिन तृष्णा एक ऐसी नागिन है, जो बड़े-बड़े साधकों को भी डंसती है। साधनापथ से अग्रसर होने वाले महान् साधकों को यह तृष्णा-रूपी नागिन अपने विष से आघात पहुँचाती है। इस तृष्णा से सावधान रहने का पंत जी का उपदेश द्रष्टव्य है--

प्राणों में भरता क्यों क्रन्दन,
स्वप्नाकुल क्यों होते लोचन
भिक्षु ज्ञान वा तुमको कारण ?[१]

इसलिए अन्त में कवि उपदेश देते हैं कि विश्व में शान्ति का एक मार्ग है -- बुद्ध का मार्ग इसी मार्ग की शरण में जाने से हमारे सारे दुःख संताप नष्ट हो जाते हैं --

बुद्ध की शरण,
धर्म की शरण
संघ की शरण।[२]

कवि भगवतीचरण वर्मा जी का उद्देश्य रहा है भारतीय संस्कृति की तात्त्विक विचारधारा को अभिव्यक्त करना एवं पुण्यविभूतियों के जीवन और उनके आदर्शों का कीर्तिगान करना। लोककल्याण-कामना से युक्त भावुक-कवि-हृदय हमेशा मातृभूमि, देशप्रेम आदि का चित्रण करते हुए दिखायी देते हैं। कवि वर्मा जी की कविता 'मातृ-वन्दना' भी इसी प्रेरणा का फल है। मातृभूमि के चरणों पर भक्ति एवं श्रद्धा के अर्पित करने के लिए कवि उपदेश देते हैं। इसीप्रसंग में कवि अपनी मातृभूमि पर जन्मे हुए उन सपूतों को भी अपने आदर की अंजलियाँ समर्पित करते हैं। इसी बीच वे बुद्धदेव का नामस्मरण करते हैं --

हे अमरों की जननी, तुझको शत-शत बार प्रणाम
मातृ भू शत-शत बार प्रणाम।
तेरे उर में शमित गांधी, बुद्ध, कृष्ण और राम
मातृ भू शत-शत बार प्रणाम।[३]

१-२. स्वर्णिम रथचक्र, पृ० १४७.
३- रंगों से मोह - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६७.

इसके बाद कवि बुद्धदेव के मुख्य तत्व प्रेम, दया, सत्य, अहिंसा आदि की भी प्रशंसा करते हैं --

प्रेम दया का इष्ट लिए तू
सत्य-अहिंसा तेरा-संबल,
नयी चेतना, नयी स्फूर्ति युत
तुझमें चिर विकास का है क्रम. ।[१]

एक ऐसा समय था, जब ऐसे पुण्यात्माओं के सिद्धान्तों ने मनुष्यराशि को महा-नाश से बचाया था । लेकिन जब जापान-चीन का युद्ध छिड़ गया, तो उन महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को भी छोड़ना पड़ा, अर्थात् इन सिद्धान्तों का भी महत्व कुछ कम-सा हो गया । इसपर कवि शोक के अश्रु बहाते हैं। उनकी ये पंक्तियाँ विचाराधीन हैं --

बोलो, मानव की यह पशुता
क्या है अन्याय क्या है अनन्त ?
क्या प्रेम, दया औ `त्याग यहाँ
हैं दार्णिक और हैं सारहीन ?
क्या सृष्टा का अस्तित्व घृणा ?
क्या सृष्टि सकल चेतनाहीन ?
क्या बुद्ध अमिट ? जब यहाँ मिट
रहे हैं लड़ कर जापान-चीन
जग के उत्पीड़न का, बोलो
गांधी का वह धीमा-सा स्वर
निज प्रेम और मानवता से
क्यों यहाँ दे सकेगा उत्तर ?[२]

१- रंगों से मोह - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ६७.

२- विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३७.

इसलिए कवि निराश होकर पूछ रहे हैं कि क्या अब हिंसा ही संसार में अब प्रचलित होगी । इस पर कवि कहते हैं --

या फिर वे हिटलर, स्टेलिन ही
अपनी हिंसा की बर्बरता
को ही रखेंगे यहाँ अमर ?[१]

कवि `बच्चन` की `बुद्ध और नाचघर` तो एक व्यंग्यात्मक कविता है । इसमें सामाजिक कुरीतियों की खिल्ली उड़ायी गयी है और समकालीन बुद्धिजीवियों की कमजोरियों और गुण-अवगुणों पर व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है । संसार में ऐसे भी लोग हैं जो अपनी मान्यताओं को सुविधा के अनुसार बदलते हैं। उनका जीवन वास्तव में ह्रासोन्मुख होता है । उनके आदर्श भी लचीले होते हैं । बाह्य आकर्षण में पड़कर दम घुटकर जीवन यापन करने वाले व्यक्तियों को कवि `बच्चन` छोड़ते नहीं । ऐसे लोगों को कवि उपदेश देते हैं कि वे प्राचीन संस्कृति की ओर विवेक से बढ़ते जाएँ । व्यंग्य से कवि कहते हैं -

बुद्ध भगवान,
अमीरों के ड्राइंगरूम,
रईसों के मकान
तुम्हारे चित्र, तुम्हारी मूर्ति से शोभायमान ।[२]

जीवन-मूल्यों को व्यवहार में लाने से ही जीवन सार्थक बन जाता है । किन्तु आज नग्नता के भ्रम में पड़कर लोग जीवन-मूल्यों को भूलते हैं। यहाँ तो बुद्ध की प्रतिमा के साथ ही, बुद्ध के सिद्धान्तों को तिलांजलि देकर उनके सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण करने का चित्रण मिलता है । मूर्ति-पूजा का विरोध करने वाले बुद्धदेव की मूर्तिकी पूजा करने वालों पर कवि व्यंग्यपूर्ण दृष्टि डालते हैं --

---

१- विस्मृति के फूल - भगवतीचरण वर्मा, पृ० ३७.

२- अभिनव सोपान - बच्चन, पृ० ३६५.

जहाँ सुदा की नहीं गली दाल,
वहाँ बुद्ध की क्या चलती चाल
वे थे मूर्ति के खिलाफ
इसने उन्हीं की बनायी मूर्ति
वे थे पूजा के विरुद्ध
इसने उन्हीं को दिया पूज
उन्हें ईश्वर में था अविश्वास
इसने उन्हीं को कह दिया भगवान
वे आए थे फैलाने को वैराग्य
मिटाने को सिंगार-पटार
इसने उन्हीं को बना दिया शृंगार ।[१]

नारी को सहानुभूति, दया, ममता आदि की मूर्ति मानकर कई साहित्यकारों ने अनेक रचनाएँ की हैं । नारियों की पतितावस्था एवं यातनाओं को सहने की क्षमता ने कवि नरेन्द्र शर्मा के दिल में सहानुभूति पैदा की । ऐसा कष्टमय जीवन बिताने वाली इन नारियों का कुछ मनीषियों ने क्रूरता से तिरस्कार भी किया है । कवि असह्य भी हो उठते हैं । 'भारत की नारी' की ये पंक्तियाँ कवि के उसी सहानुभूतिपूर्ण अवस्था का दिग्दर्शन कराती हैं --

पूर्णकाम देवेन्द्र इन्द्र ने ठगा,
तथा गौतम ने
रघुनायक ने निर्वासित कर दिया
लोकरंजन में।
लक्ष्मण और बुद्ध ने तप का
समझा कब अधिकारी ?[२]

१- अभिनव सोपान - बच्चन, पृ० ३६४.

यहाँ यह बात स्पष्ट है कि ममता, सहानुभूति, दया आदि के प्रतीक गौतम ने भी नारी की श्रेष्ठता को मूल्यहीन समझा । जब इन शुभचिन्तकों ने नारियों को निःशेष नकार दिया था, तब आधुनिक कवियों में नारियों के प्रति ममता की भावना का उदय होना वास्तव में एक प्रशंसनीय बात रही है । यही नरेन्द्र शर्मा जी का भी कार्य रहा ।

मानवीय-गुणों से युक्त पुरुष ही लोककल्याण के लिए उद्यम कर सकता है । सत्य, अहिंसा सहानुभूति, ममता आदि ही ये मानवीय गुण हैं । कवि नरेन्द्र शर्मा ने 'प्रियदर्शी' का एक चित्र अंकित किया है । उसमें मानवीय गुणों से युक्त एक महान व्यक्ति का रूप कविने अंकित किया है । कवि नरेन्द्र शर्मा के अनुसार, कर्मकुशलता, आत्मविश्वास, अहिंसा जैसे गुणों से युक्त व्यक्ति ही `प्रियदर्शी` है । संन्यास को भी कवि `प्रियदर्शी` के गुणों में एक मानते हैं । इसी ओर कवि का संकेत है --

पार्थ सारथी -- सदृशनिहत्या
अर्जुन-सा निष्णात,
गीता सुनकर भूल गया वह
पूर्वजन्म की बात ।
शोणित में पावक, प्राणों में
पूर्णचन्द्र का सोम,
गौतम का संन्यास हृदय में. . ।[१]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महात्मा गांधी और उनके सिद्धान्तों को अपनी रचना के विषय बनाने वाले कवियों में श्री सोहनलाल द्विवेदी का नाम भी महत्वपूर्ण है । जिस प्रकार श्री सियारामशरण गुप्त जी की सब रचनाओं पर गांधीवाद का प्रभाव हम देख सकते हैं, वैसे ही द्विवेदी जी की रचनाएँ भी उस दिव्यपुरुष की याद दिलाती हैं । उनकी `प्रभाती`, `जय भारत जय`, `चेतना`, `पूजागीत` आदि की कुछ पंक्तियाँ

१- बहुत रात गये - नरेन्द्र शर्मा, पृ० ३३.

' उन्होंने गान्धी जी के सिद्धान्तों का उल्लेख किया है । इसके द्वारा महात्मा बुद्ध का ी स्मरण दिलाया है । कुछ पंक्तियों में उस पवित्र आत्मा बुद्धदेव का भी नामस्मरण किया है । राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयजागरण, देशप्रेम, ये सब वास्तव में विश्वकल्याण के ी अंग हैं ।

राष्ट्रीय जागरण को अपना ध्येय मानकर कवि श्री सोहनलाल द्विवेदी ने भाती` की रचना की । वे अपने चारों ओर असंख्य मूक-पंगु एवं स्वरहीन प्राणियों ो देखते हैं । उनको वाणी एवं गति प्रदान करने का उन्होंने निश्चय किया । फल-वरूप उनके कंठ से युगवाणी निसृत हुई । इस प्रकार उनका साहित्य `बहुजनहिताय` ि लिए रह गया । कवि प्राचीन बौद्धसंस्कृति की ओर जा रहे हैं । संसार में ज्ञान को ालोकित करने के हेतु अवतार लेने के लिए वे बुद्धदेव से प्रार्थना करते हैं । इसके उद्देश्य से ागो बुद्धदेव भगवान` नामक कविता की पंक्तियाँ भी उन्होंने लिखीं । महात्मा बुद्ध ि सिद्धान्तों और उपदेशों में उन्होंने ज्ञान-कोष को ही देखा, इसलिए जनता को भी न्मार्ग से आगे ले जाने के लिए उन्हीं के आदर्शों का अनुकरण करने की उनकी तीव्र ाभिलाषा हुई ।

शारीरिक कष्ट पहुँचाकर साधना में लीन होने वाले गौतम में सुजाता ने अपने ाये हुए खीर से नव जीवन का संचार किया था, वैसे ही बुद्धदेव की चरणधूलि को सर चढ़ाने के हेतु आज सारी जनता उनकी प्रतीक्षा कर रही है । जिस प्रकार यशोधरा ौर शुद्धोधन गौतम की अमृतवाणी को सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे, वैसी स्थिति ' आज भी लोग खड़े हैं । सारथी छन्नक, कृशा गौतमी सब उनको मिलने के लिए बड़े त्सुक थे । इन सबका वर्णन कवि ने सजीव ढंग से किया है । कवि का कहना है --

नैरंजना नदी की लहरें
गाती हैं फिर कल-कल गान,
जागो पीड़ित की पुकार पर
जागो बुद्धदेव भगवान ।[१]

---

१ - प्रभाती - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ४५.

भभक-भभक कर उठने वाली अग्नि-शिखा जब विश्व भर में व्याप्त होने लगती , तो शुभचिन्तक कवि की दृष्टि बोधिसत्व पर स्थिर हो जाती है । अधीर होकर ब लोग तो उस बोधिसत्व की प्रतीक्षा में तो खड़े हैं । 'बुद्ध के प्रति' नामक कविता में ो कवि सोहनलाल द्विवेदी जी हिंसा में मग्न धरा का उद्धरण करने की विनीत प्रार्थना े करते हैं --

मानव ने दानव धरा रूप,
भर रहे रक्त से समर-कूप,
डूबती धरा को लो उबार,
आओ फिर से करुणावतार ।[१]

ह पहले ही बताया जा चुका है कि गांधी जी को आराध्य देवता मानकर द्विवेदी ो की काव्य साधना धन्य हुई । इसी श्रेणी में आनेवाली एक अन्य रचना है -- तना' । यह तो गांधी जी के प्रति उनकी भक्ति का प्रसाद ही है । सत्य -अहिंसा ा यशोगान करते-करते कवि उस राष्ट्रदेवता को वंदना के स्नेहोपहार अर्पित करते हैं । वि का कहना है --

सत्य, अहिंसा के चक्रों में,
सज्जित सुरथ तुम्हारा,
आगे बढ़ा अहर्निश ले
आत्मा की उज्ज्वल धारा,
गति अबाध रुक सका न रोके,
तुम जीते, जग हारा ।[२]

स्तुत: सत्य-अहिंसा की विजय अन्त में सुनिश्चित है । तथागत के सिद्धान्तों के साथ रा पर अवतार लिए हुए महात्मा गान्धी कवि के लिए प्रेरणास्रोत ही रहे । कवि ा कहना है --

---

- जयभारत जय - सोहनलालद्विवेदी, पृ० २१.
- चेतना - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ८.

तुम्हें देखकर कर लिया विश्व
ने बोधिसत्व का दर्शन ।
किस भाषा में करूँ आज मैं,
देव तुम्हारा वंदन ?[१]

सोहनलाल द्विवेदी जी की कविताओं में हम एक तरह की पीड़ा को भी देख सकते हैं । लेकिन यह तो महादेवी, 'मधीन,' 'प्रेमी' की जैसी वैयक्तिक पीड़ा नहीं है। द्विवेदी जी की व्यथा का उद्गम राष्ट्र से होता है । अपने देश के प्रति सभी को जागरूक रहना नितान्त आवश्यक है । लेकिन कायर होकर लोग आज भी सो रहे हैं। क्योंकि वे अनुभव करते हैं कि उनकी जीवन-ज्योति ही बुझ गयी है । सिंह जैसी बलिष्ठ भुजाओं के होने पर भी लोग उसे छिन्न-भिन्न कर रहे हैं । इन सोने वाले देशवासियों को जगाने के लिए कवि महात्मा बुद्ध के पवित्र संदेश का स्मरण कराते हैं --

पूर्व के अपवर्ग जग है,
एशिया के गर्व जग है,
बुद्ध ईसा और मुहम्मद के
अमिट सन्देश ।
जाग, सोये देश ।[२]

बौद्धधर्म के उत्थान की पृष्ठभूमि थी धार्मिक एवं सामाजिक अत्याचारों का परिणाम । आज पृथ्वी ने दुबारा उस महान् विभूति की अनिवार्यता का अनुभव किया । यह सब लोगों को विदित है कि महात्मा बुद्ध के उद्गम के पूर्व तो यह जगती शोणित और तिमिर से आच्छादित थी । चारों ओर हिंसा और मृत्यु का नृत्य ही था । बर्बर नर-संहार से आकाश भी गुंजित था । कहीं भी ममता बिल्कुल नहीं थी । इस अवस्था में कवि बुद्धदेव को यहाँ पदार्पण करके यहाँ मधु-ऋतु लाने का संदेश देते हैं । कवि का कहना है --

---

१- चेतना - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० १०.
२- पूजागीत - वही , पृ० २५-२६.

आओ, एक बार फिर, आओ,
लाओ, वह मंगल दिन, लाओ,
गाओ, वही गीत फिर, गाओ,
आज कहो मन -- वह करुणा का
महागान फिर गा न सकोगे ?
क्या अब तुम फिर आ न सकोगे ?[१]

कवि द्विवेदी जी तो जवाहरलाल नेहरू जी को भी बुद्ध भगवान का अवतार ही मानते हैं। हिमाच्छादित हिमालय की छाया में बैठकर रात-दिन देश के उद्धार के लिए तपस्या करने में लीन जवाहर कवि को परम-विरागी गौतम के समान नज़र आते हैं। कवि का कहना है --

शुद्धोदन के सिंहासन के सुख की ममता त्याग,
किस गौतम के यौवन में जागता यह परम विराग ?
बोधिवृक्ष है नहीं, हिमाचल की छाया के नीचे,
कौन तपस्वी तप करता है करुणा-लोचन मीचे ?[२]

महात्मा बुद्ध से संबंधित एक कविता अज्ञेय जी भी लिख सके। 'साम्राज्ञी का नैवेद्य दान' जापान से संबद्ध कविता है। इसके बारे में स्वयं कवि का कहना है -- 'जापान की साम्राज्ञी कोमियो प्राचीन राजधानी नारा के बुद्ध-मन्दिर में जाते समय असमंजस में पड़ गई थी कि चढ़ाने को क्या ले जावें और फिर वह रीते हाथ गई थी। यही घटना कविता का आधार है।' वे अपने साथ फूल भी न ले गयी। उसके तोड़ते वक्त भी उनको भगवान बुद्ध की करुणा की याद आयी थी। अत: वे निम्नलिखित नैवेद्य समर्पित करती हैं --

---

१- पूजागीत - सोहनलाल द्विवेदी, पृ० ८७
२- वही.

जो कली खिलेगी जहाँ खिली,
जो फूल जहाँ हैं
जो भी सुख
जिस भी डाली पर
हुआ पल्लवित, पुलकित
मैं उसे वहीं पर
अज्ञात, अनाघ्रात, अस्पृष्ट, अनाविल
हे महाबुद्ध । अर्पित करती हूँ तुझे ।[१]

ा बुद्ध के मौनतत्व को भी अज्ञेय जी ने अपने काव्य में स्थान दिया है । `आँगन द्वार` की `असाध्य वीणा` नामक कविता उसी महामौन का शब्दहीन गान स संपूर्ण कविता का तथ्य है कि मौन में ही सत्य गूँजता है । इस सर्वव्याप्त ो बौद्ध-प्रभाव के अनुरूप `अज्ञेय` ने महाशून्य संज्ञा दी है और संपूर्ण कविता में त्य का निरूपण उन्होंने किया है, वह इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है --

श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में --
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था --
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था
वह तो सब कुछ की तथता थी--
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है ।[२]

आज सारा विश्व ज्वालामुखी के कगार पर स्थित है । सहयोग की भावना के बिना मृत्यु और नाश सुनिश्चित है । इसी को जानकर महात्मा गांधी जी ने नेतृत्व अपने हाथों में ले लिया था । संघर्षमय जगत की आशा और आकांक्षाओं को प्रतिध्वनित करने वाले श्री भवानीप्रसाद का कवितासंग्रह `गांधी-पंचशती` महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन ही करता है । कवि मिश्र जी अनुभव करते हैं कि गांधी जी एक ऐसा आलोकपुंज है जिसकी समता हम किसी से भी नहीं कर सकते । यहाँ असंख्य महापुरुषों ने जन्म लिया और स्वर्ग भी सिधारे । इनमें सब के सब नवरत्न थे । तो भी गान्धी जी में अतिशय विशिष्टता थी । उनकी ममता, त्याग भावना आदि से आकर्षित होकर विदेशियों ने भी उनका लोहा माना था । इसी प्रसंग में कवि सिद्धार्थ का भी स्मरण दिलाते हैं --

तुम विभूति के पुंज अकिंचनता का वरण तुम्हारी शोभा
अखिल विश्व ऐश्वर्य तुम्हारे तत्पर त्याग तत्व पर लोभा,
तुम सिद्धार्थ शृंखला में आबद्ध मुक्ति के नवस्वरूप हो
आदिकाल से अब तक के रत्नों में तुम अभिनव अनूप हो ।[१]

नयी कविता में भी महात्मा बुद्ध से संबंधित विचारों को अच्छा स्थान मिला है । वास्तव में भाषण देना आसान है, उसे काम में लाना तो मुश्किल है । दया, करुणा, ममता आदि के बारे में बहुत लोगों को व्याख्यान देते हम सदा सुनते हैं । लेकिन ये गुण अभ्यास और स्वभाव से ही बढ़ते हैं । कवि मिश्र जी ने भी यही कहा है कि हमें अभ्यास से इन गुणों को अपने में पनपने का अवसर देना चाहिए । कवि का कहना है --

दया और करुणा और ममता
कोई ऐसी चीजें नहीं हैं
जिन्हें हम मुट्ठी में घेर

१- गांधी पंचशती - भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० १२.

या जेबों में भरे फिरें
और फेंकें जहाँ-तहाँ लोगों पर
ये सब तो असल में वर्षा के बादल हैं
जो बनते हैं अपने स्वभाव में
जरूरत में और बरसते भी हैं
केवल अपने स्वभाव
या अपनी जरूरत में ।[१]

युग सारथी गान्धी के प्रति अपनी श्रद्धा के फूल अर्पित करने में कवि श्री शिव-मंगल सिंह `सुमन` ने भी यथेष्ट योगदान दिया है । जब-जब अत्याचारों की गहन तमिस्रा से सारा जग आच्छादित था, तब अपने अंतर के स्नेहदान से लोगों को नवजीवन प्रदान करने में गांधी जी बड़े सफल हुए थे । महात्मा बुद्ध का भी स्मरण दिलाते हुए कवि इसी बात की ओर संकेत करते हैं कि महात्मा बुद्ध ने लोककल्याण-हेतु जिस सत्पथ को अपनाया था, वही हमारे लिए भी अनुकरणीय है । `सुमन जी` का कहना है --

गौतम की शान्त अभय-मुद्रा
मीठी मुस्कानों में भर भर,
मृत को जीवित दुर्धर्ष शत्रु को
मित्र बना डाला सत्वर ।[२]

अहिंसा-सिद्धान्त के विशिष्ट गुणों को जानने वाले कवि `सुमन` जी देश भर में व्याप्त विद्रोह की ज्वाला को मौन होकर देख रहे थे । इस प्रचण्ड क्रान्ति ने लोगों के नन्दनवन रूपी जीवन को मरघटसा बना दिया था । इस विषैले जीवन के क्रन्दन के बीच लोगों ने अहिंसा और शान्ति का संदेश सुना, जो पवित्र मिट्टी का दिव्य वरदान था । अब कवि कहते हैं कि इस मिट्टी के गीत को लोगों तक पहुँचाना ही उनका

१- सुशबू के शिलालेख - भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० ६७.
२- पर आँखें नहीं भरी - शिवमंगल सिंह `सुमन`, पृ० ६३.

कर्त्तव्य है। उस पवित्र मिट्टी को वे सिर चढ़ाना चाहते हैं, क्योंकि इसी पर ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, गान्धी जैसे पैगम्बरों ने भी जन्म लिया था । उनका कहना है --

व्यास, अरस्तू, शंकर
अफलातूं के बंधी न बंधी
बार-बार ललचाए
इसके लिए बुद्ध औ गांधी ।[१]

जो लड़ाई झगड़े आदि हो रहे हैं, उन्हें देखकर कवि अनुमान करते हैं कि मानवता दिन-ब-दिन नष्ट होती जा रही है । इसके साथ-साथ सत्य, प्रेम और अहिंसा पर भी प्रहार होते जा रहे हैं । कवि का कहना है --

मूल्य मानवता के
समूल नष्ट करने को
उद्यत है अनाचार
सत्य, प्रेम आस्था के
मानदण्ड पर प्रहार. ।[२]

कवि लेनिनग्राद में पुश्किन की प्रतिमा को देख रहे हैं। वह शान्ति का संदेश दे रही थी । कुहरे में आवृत यह प्रतिमा वास्तव में बहुत ही आकर्षक थी । उस प्रतिमा का मौन भावमानों लोगों को एक अनुपम सन्देश दे रहा था । उस प्रतिमा को देखते ही कवि के मन में शान्तिमना एक बौद्धभिक्षु का स्मरण आता है --

कौतूहल अनियंत्रित
बरबस जा खड़ा हुआ
शान्ति स्निग्ध पार्क में
प्रणत बौद्ध-भिक्षु-सा ।[३]

१- विश्वासबढ़ता ही गया - शिवमंगल 'सुमन', पृ० ४६.
२-३. मिट्टी की बारात - वही, पृ० १५३, १२८.

कवि `सुमन` जी `बोधगया` देखने गये । तब करीब ढाई सहस्र वर्षों के पूर्व की बौद्ध की उन यादों ने कवि के मन को बहुत आकर्षित और पावन बना दिया । वहीं कवि बोधिवृक्ष का दर्शन करते हैं, जिसके नीचे वर्षों पहले मानवकल्याण के हेतु बुद्धदेव ने अपने देह को तपाग्नि में दग्ध कर डाला था । आज भी वसुंधरा इस घटना का मौन साक्षी-सा खड़ी है । क्षणिक और दु:खी संसार से जूझकर जीवन रूपी मरुस्थली की प्यास बुझाने के लिए भागीरथी की धारा की खोज में बुद्ध निकल पड़े थे । जब उनमें करुणा की पहली मुस्कान प्रतिबिम्बित हुई, तो उनकी आन्तराग्नि शान्त हुई । बहुहिताय उन्होंने जिस मार्ग को अपनाया, कवि उसका यहाँ वर्णन करते हैं --

चार आर्य सत्य जो
सुझाये आठ मार्गों से ।[१]

दु:ख की व्याख्या करते वक्त महात्मा बुद्ध ने प्रिय वस्तु से वियोग को भी दु:ख माना था । वास्तव में यही अवस्था मृत्यु में भी आती है । किसी के चिर-वियोग या मृत्यु में हम बहुत दु:खी हो जाते हैं । यह जीवन का एक अनिवार्य अंग भी है । इस मृत्यु के बारे में कवि रघुवीरशरण `मित्र` भी अपने कवितासंग्रह `प्रतिध्वनि` में लिखते हैं । मृत्यु की ओर हमारी श्रद्धा को ले जाने वाले कवि मृत्यु को अन्याय ही मानते हैं । ज्योतिर्मय जीवन को मृत्यु रूपी कफन ढँक लेता है । यह तो एक विश्व-सत्य है, जिसके आगे सब को हार माननी पड़ती है । इसी प्रसंग में कवि मृत्यु की कोख में समाये हुए असंख्य पुण्यात्माओं का भी स्मरण करते हैं । मृत्यु के कारण ही राम, कृष्ण, बुद्ध, गान्धी जैसे महात्माओं के प्राणपक्षी उड़कर अनन्तता में उड़ गये थे । इस मृत्यु पर व्यंग्य हँसी करके कवि कहते हैं कि मृत्यु इतनी क्रूर है कि वह दूसरों को सताने में ही आनन्द प्राप्त करती है । कवि का कहना है --

`बुद्ध धरती में मिले गांधी गये जग से ।
एक क्या कितने न जाने उड़ गये खग-से ।।

१- विन्ध्य - हिमालय - शिवमंगल `सुमन`, पृ० २३.

इस धरा पर क्या धरा आँसू बहाने में ।
मृत्यु को आनन्द मिलता है रुलाने में ।।[1]

'परोपकारार्थं इदं शरीरं' वाला आदर्श विश्वकल्याण लाने में बड़ा सहायक रहता है । व्यक्ति दूसरों के दु:ख को देख नहीं सकता । वह सबका दु:ख मिटाना चाहता है, को सुखी देखना चाहता है । जब चारों ओर दानवी हिंसा, घुटन, विह्वलता, ा, क्रान्ति जैसी भीषणताओं के घाव पक्के होते हैं, तो कवि यही अभिलाषा । हैं कि महात्मा बुद्ध के पंचशील तत्व की वासन्ती हवा यहाँ लहराये । क्योंकि नव्य हवा की झोंकों के परिणामस्वरूप दानवता की जगह मानवता पनपेगी, दु:ख दले सुख का राज्य आयेगा । कवि का कहना है --

पर आज कैसी शान्ति, कैसी अहिंसा ?
जब दानवी बाजार में
- - - -
राम के इस देश में रावण मारेगा,
कृष्ण का सन्देश ले अर्जुन जागेगा ।
- - -
आओ, शिव सी अमरता ऐसी जगा दें
सबके दु:ख को
सबके सुख को
एक ही सहते चलें हम ।[2]

गौतम बुद्ध, महावीर जैसे पुरुषोत्तमों का चरित्रवर्णन करने के लिए जिन ायों ने प्रयास किया है उनमें सेठ गोविन्ददास भी बड़े सफल हुए हैं । 'भारत दर्शन' ाव मातृभूमि के प्रति अपनी भक्ति को प्रकट करते हैं । यहाँ की प्रकृति-सुषमा का

प्रतिध्वनि - रघवीर शरण मित्र, पृ० ६१.
टूटते बंधरे - देवेन्द्र शर्मा, पृ० ७१-७२.

वर्णन करने के उपरान्त कवि यहाँ के युग-विभूतियों और दया के शुभ-चिन्तकों के लिए अपनी स्मरणाजंली चढ़ाते हैं । सत्य और अहिंसा में निहित बल को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है --

गांधी ने जिस सत्य,अहिंसा से यह देश स्वतंत्र किया,
पाने त्राण जगत को इसने एक नया ही मंत्र दिया ।
चली यहाँ जो सत्याग्रह की सत्य, अहिंसा-मयी बयार,
पहुँची वह संसार सकल में, सब सीमाओं को कर पार ।[१]

वास्तव में मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अत्यन्त लगा रहता है । लेकिन इस दुर्गम दुनियाँ में वह देखता है कि उसका अस्तित्व तो सलीब पर टंगा हुआ है । खास कर, आज का कवि तो पुरानी रूढ़ि या परंपरा में बंधे रहना तो नहीं चाहता, उनसे ऊपर उठने की उनकी हमेशा प्रतिक्रिया रहती ही है । ऐसे ही कुछ विचार नये कवि श्री शैलेन्द्र मेहता की कुछ पंक्तियों में भी देखने को मिलते हैं । बचपन से ही अपनी माता के दायित्व से कवि को राम की मर्यादा, कृष्ण का योगित्व और बुद्ध की गरि सेसंबंधित उपदेश प्राप्त हुए थे । मगर इन रूढ़ियों में रहना वे नहीं चाहते । उनका कह है --

सुनो । मेरी माँ, मेरी पहली दोस्त
मैं तुम्हें कभी दासा नहीं कहूँगा
तुमने तो मुझे उत्तराधिकार में दिये थे
बन्धन, राम की मर्यादा के
कृष्ण के योगित्व में लपेट दिया था मुझे
और फिर बुद्ध की गरिमा से मुँह बाँध मेरा
टाँग दिया था मुझे सलीब पर --
मसीहा बना

१- पत्र पुष्प - सेठ गोविन्ददास, पृ० १५.

हथेली पर गाड़ दी थीं किलें
मेरे पुरखों की हड्डी से बनी हुई ।[१]

सलीब पर टंगी हुई ये आत्मायें एक तरह का शाप-ग्रस्त जीवन ही बिताते हैं । क्योंकि दर्प और अहंकार ने सब के मन को बंधन में डाल दिया है । जब-जब वह निर्वाण या इससे मुक्ति पाना चाहता है, वह हारता ही है । इन बंधनों को तोड़ने का उसका प्रयत्न व्यर्थ होता है । निर्वाण के लिए कोशिश करने वाले सिद्धार्थ के बारे में भी कवयित्री पुष्पा की इन पंक्तियों में उल्लेख मिलता है --

जीवन में
जुड़ता जा रहा है
अखण्ड चिन्तन में लीन
व्यक्तित्व --
अस्तित्व के लिए
संघर्ष-रत
ये सिद्धार्थ
किन्तु, निर्वाण नहीं मिलता ।[२]

आज तो देश-देश में अकारण युद्ध, हिंसा आदि हो रहे हैं । भौतिक वस्तुओं के लिए लड़ाई-झगड़े हो ही रहे हैं । लेकिन इन वस्तुओं की क्षणिकता पर दृष्टि डालने पर कोई भी उसके लिए नहीं लड़ेगा । इतिहास में ऐसी अनेक घटनाएँ हुई हैं, जो इस बात का वर्णन करती हैं कि तुच्छ क्षुद्र मिट्टी के लिए असंख्य व्यक्तियों ने रक्तदान किया है । लेकिन अमन, शान्ति, अहिंसा के मार्ग को अपनाने पर हम ऐसी दुर्घटनाओं से स्वयं बच सकेंगे । कवि भारतभूषण अग्रवाल की ये पंक्तियाँ देखिये --

---

१- दिविक - (सं०) हुसवीर सिंह, पृ०
२- मुट्ठी में बन्द आकार - सं० डा० सावित्री सिन्हा, पृ० १५५.

खाना खाकर कमरे में विस्तर पर लेटा
सोच रहा था मन ही मन हिटलर बेटा
नहीं रहे वे महावंश अब,
वे कनिष्क-से, शिलादित्य-से नाम हजारों,
किन्तु तक्षिला, सांची, सारनाथ के मन्दिर,
और जीति-स्तम्भ, धर्म के बोल रहे हैं --
जिस सीमा पर पहुँच न पायीं, हुई पराजित,
कुफ्र तोड़ने की, कूसेड़ों की तलवारें
वहाँ विश्व-जयहुई प्यार के एक घूँट से ।[१]

प्राचीन संस्कृति का गुणगान करने में आधुनिक कवि आगे आए हैं । इसका ाहरण हमें प्रभाकर माचवे के कविता संग्रह `अनुदान` में देखने को मिलता है । भारत यशोगान करके लोगों को प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर ले जाने की कवि की टा प्रशंसनीय है । इसी बीच युगविभूतियों का भी स्मरण दिलाने का कवि ने अत्यन्त ात्न किया है । तथागत का स्मरण करने वाली 'मुक्तिदेवता - `प्रणाम` की ये पंक्तियाँ खिये --

अहे तथागत ।
गौतम ओ सिद्धार्थ तुम्हें क्या हुआ ? राज्य क्यों छोड़ा ?
सुख वैभव से, राहुल जननी से सबसे मुँह मोड़ा ।
क्यों न तुम्हें भाई वाणों की, नृत्य-मंदिर वह संगत
स्वागत, अहे तथागत ।
वन में जाकर रहे न वन का वैरागी बड़भागी
क्यों समाज में लौट ज्ञान देने की इच्छा जागी
बड़ा मूर्ख है, जो लड़ता है तुच्छ-क्षुद्र मिट्टी के कारण

---

१ तारसप्तक - अज्ञेय, पृ० १४६-४७.

क्षणभंगुर ही तो है रे । यह सब वैभव-धन ।
अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला ।
लिखूँ एक खत, हो जा गांधी जी का चेला
वे तुझको बतलायेंगे आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा की तब पूर्ण महत्ता ।
कुछ भी तो है नहीं धरा दुनियाँ के अन्दर ।[१]

यही अहिंसा, सत्य आदि हमें प्यार या प्रेम के पथ से होकर आगे बढ़ाते हैं । अहिंसा में मैत्री स्थापित करने की शक्ति निहित है । जहाँ हिंसा की लालसा तीव्र होती है, वहाँ प्रेम का व्यवहार, हिंसा पर विजय पा लेती है । कवि गिरिजाकुमार माथुर की `बुद्ध` कविता इसी प्रेम की भावना की पुष्टि कर देती है । कवि का कहना है --

जिसे समय का हिम न प्रलय तक गला सकेगा
देश-देश से अन्न हीन वह छाया लौटी--
और लौटने आते हैं वे मग, विहार सब
कपिलवस्तु के भवनों की यह कांचन माला
जब सागर, वन की सीमाएँ लांघ गये थे
कुटियों के संदेश प्यार के ।
महलों का जब स्वप्न अधूरा,
पूर्ण हुआ था शीतल, मिट्टी के स्तूपों की छाया में ।
कैसा अष्टमार्ग सिखलाया, देश-विदेश अहिंसा का व्रत
स्वागत, अहे तथागत ।।
बुद्धं शरणं गच्छामि,
धर्मं शरणं, गच्छामि,[२]
संघं शरणं गच्छामि ।

१- तारसप्तक - (सं०) अज्ञेय, पृ० ६६.

२- अनुक्षण - (सं०) प्रभाकर माचवे. पृ०६६

उपसंहार

गत दो हजार पाँच सौ वर्षों से भारत एवं एशिया के अधिकतर भूभागों को आप्लावित करने वाले बुद्धदेव के चरित और जीवन-दर्शन का प्रभाव समस्त जन-जीवन को भी प्रभावित करता आया है। यद्यपि दसवीं शताब्दी के बाद भारतवर्ष में बौद्धधर्म का पतन हो गया तो भी वह भारतीय धर्मों के अन्तर्गत अनेक अन्तर्धाराओं के रूप में अपने अन्तर्निहित तत्वों को प्रसारित करता रहा। एक प्रकार से बुद्धदेव का जीवन और उनके विचार जन-जीवन के आदर्श रहते आये हैं। बौद्धधर्म के रूप में यद्यपि बौद्धतत्वों को आत्मसात् करने की रीति भारतवर्ष में कम हो गयी तथापि उनके अनेक तत्व भारतीयों के नित्य जीवन के आवश्यक अंग बनते गये।

ऊपर सात अध्यायों में व्यापकता के साथ महात्माबुद्ध और बौद्ध-तत्वों का आधुनिक हिन्दी काव्य पर जो प्रभाव दर्शाया गया है, उससे विदित होता है कि जो परम्परा अतीत का शंखनाद करते हुए आज तक अनर्गल बह रही है, वह समय-समय पर कवियों के लिए प्रेरणा की वस्तु बन गयी है तथा चिन्तन एवं अनुचिन्तन के लिए आवश्यक सामग्री सिद्ध हुई है। धार्मिक उत्थान या पतन से किसी भी धर्म का संपूर्णनाश संभव नहीं है और इसी तरह धार्मिक तत्व का भी सर्वनाश होना संभव नहीं है। प्राचीन भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित होकर भगवान बुद्ध ने व्यावहारिक दृष्टिकोण को प्रश्रय देते हुए एक ऐसे धर्म की स्थापना की और ऐसे धार्मिक सिद्धान्तों का प्रसार किया, जो कालजयी

कर अब तक विराजमान है । मानवजीवन की विनाशोन्मुख प्रवृत्ति ने ही सत्ता और द्धि की तिलांजलि करके संसार के सुख-भोगों के त्याग के लिए बुद्ध को प्रेरणा प्रदान थी । मानव जिस चिरंतन दुःख का दास है, उससे उसको निर्वाण तक पहुँचाने के ए उचित मार्ग का दिशा-निर्देश ही बुद्धदेव ने किया । सत्य और अहिंसा पर स्थित का सिद्धान्त मानव के अन्तिम लक्ष्य को आधार बनाकर चलने-वाला था । उनके द्धान्तों में नैतिक जीवन के लिए विशेष संदेश रहे हैं, इसलिए वह लोकधर्म के रूप में लित हुआ और सामान्य जन से स्वीकृत हुआ । अशोक के समय में ही बौद्धधर्म की नति की चरम-सीमा हम देखते हैं । इतिहास साक्षी है कि ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान ल तक सर्वजनशक्ति को एक सूत्र में बाँधने वाला सर्वजनाराध्य धर्म था बौद्धधर्म । उस धर्म प्रवर्तकों ने बुद्धदेव के सिद्धान्तों का केवल प्रचार मात्रकिया नहीं, वरन् उसको जीवन के -अंग के लिए उन्नायक सिद्धान्त भी बनाया था । समाज के नियमों में शासन की नीति भाषा और साहित्य के स्वरूप में, धार्मिक-गठन में, कला की उन्नति में, जिस प्रकार द्धधर्म का प्रभाव रहा, यह हम देख चुके हैं ।

एक प्रकार से विज्ञान और कला की ओर बौद्धधर्म की विशेष दृष्टि पड़ी थी । हारों और चैत्यों में वास्तुकला, चित्रकला तथा मूर्तिकला उत्कर्ष को प्राप्त कर गयी । हित्य की विविध विधाओं को भी आगे बढ़ाने में ये बौद्ध-श्रमण निरन्तर कर्मशील रहे । क स्थानों में उच्च-शिक्षा के लिए केन्द्र तथा विश्वविद्यालयों की स्थापना बौद्धधर्म के स्कृतिक परिपाटि का सर्वोन्नत कार्य है । सामान्य जनता की भाषा में योग्य साहित्य संरचना के लिए भी बौद्धधर्म ने सहायता पहुँचायी । संस्कृत और पालि साहित्य का वकास इसका परिणाम है ।

हम लोगों ने यह भी देखा कि अनेक संगीतियों के सहारे समय-समय पर बौद्ध-द्धान्तों में सामयिक परिवर्तन हुए थे । अनेक लोकधर्म-सिद्धान्तों को आत्मसात् करने का द्धों का प्रयत्न भी सराहनीय रहा । मध्यकाल में आकर बौद्धधर्म के अन्तर्गत अनेक शाखायें

[प्रशाखायें उत्पन्न हुई और उसमें तांत्रिक साधना का विकास भी दृष्टिगोचर होता
। इस परिवर्तित विकसित बौद्धधर्म के कारण भारतीय अपभ्रंश साहित्य भी उन्नति-
ं हुआ जो हिन्दी साहित्य के लिए एक युग-परिवर्तन का अवसर दे रहा था ।
न्दी के सिद्धनाथ साहित्य और संत-साहित्य पर बौद्धधर्म का प्रत्यक्षत: प्रभाव रहा
जिसका संपूर्ण परिचय ऊपर के अध्यायों में हो गया है । हिन्दी कवियों में कबीर
[ज्ञानाश्रयी अन्य संतों पर बौद्ध-साहित्य का विशेष प्रभाव था । हिन्दी भक्ति
हित्य के अन्य कवियों पर भी अल्पमात्र बुद्धदेव के विचारों में आप्लावित होने का
ास मिला है ।

इस प्रबन्ध का उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य के काव्यों में बुद्धदेव के जीवन
[सिद्धान्तों का जो प्रभाव हुआ है उसका विश्लेषण करना रहा है । इस प्रबन्ध के
न्तम तीन अध्यायों में दिये हुए तर्कों तथा प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच
ा हैं --

रीतिकाल तथा भारतेन्दु काल के काव्य में बुद्धदेव और उनके सिद्धान्तों का
मात्र के लिए भी प्रयोग नहीं हुआ है । लेकिन द्विवेदी काल में आकर एक सांस्कृतिक
त्थान होता है तथा विदेशी शक्ति से अपने देश को स्वतंत्र करने की अभिवांछा सर्वत्र
ाई देती है । इस ओर साहित्यकारों का दायित्व भी कम नहीं था । उन्होंने
त के पूर्वेतिहास से अनेक वस्तुएँ स्वीकार कीं, जो इस नवोत्थान के लिए तथा स्वतंत्रता
प्ति के लिए सहायक थीं । बुद्धदेव और उनके सिद्धान्त भी इस लक्ष्य के लिए सहायक
क्योंकि गांधी जी ने जिस अहिंसा और सत्य का मार्ग स्वीकार किया विदेशियों को
ने के लिए, वह बुद्धदेव के सिद्धान्तों के अन्तर्गत थे । इस प्रकार गांधी जी के विचारों
होकर बुद्धदेव का नया उदय हुआ और कवियों ने गांधी जी के साथ बुद्धदेव का भी
ण किया, उनके चरित्र का वर्णन किया और उनके सिद्धान्तों का स्थान-स्थान पर
स्र किया ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के कवियों में कु छ ऐसे कवि मिलते हैं जिन्होंने बुद्धदेव
रितों का संपूर्ण वर्णन करके आधुनिक युग की जनता को उस ओर आकर्षित किया ।

उनका लक्ष्य उस महिमामय व्यक्तित्व का प्रदर्शक मात्र नहीं था, उनके सिद्धान्तों का अनुषंगिक वर्णन भी रहा ।

३- कुछ कवि ऐसे हैं, जिन्होंने बुद्धदेव के कुछ तत्वों को अपने विषय की स्फूर्ति के लिए या विषय-विश्लेषण एवं स्थापन के लिए अवलंबन माना है । उन्होंने अपने काव्यों में बुद्ध के चिंतन सिद्धान्तों की नयी स्थापना की ।

४- कुछ कवि ऐसे भी रहे हैं, जो केवल बुद्धदेव या उनके सिद्धान्तों के नाममात्र लेकर सन्तुष्ट रहे, परन्तु उन नामों से एक पूर्व-आभास चमत्कृत हो जाता है, एक बिंब के रूप में पाठक के हृदय में बुद्धदेव और उनके सिद्धान्त उद्भावित होते हैं ।

५- छायावादी कवियों में बुद्ध-देव के प्रति विशेष आस्था दिखायी देती है । केवल चरित आख्यान या गांधी तत्व विचार के अन्तर्गत बुद्धदेव और उनके सिद्धान्तों को न लेकर प्रसाद, महादेवी, पंत और निराला ने बौद्धतत्वों का सूक्ष्म एवं ग्रहणीय वर्णन किया है । महादेवी के वेदना-भाव में बुद्धदेव का दु:खवाद नया प्राण लेकर आया है ।

६- छायावादी युग के पश्चात् आज तक की कविताओं में लघुमात्रा में बुद्धदेव का नाम या उनके सिद्धान्तों का परिचय अवश्य हुआ है । लेकिन जो बृहदाकार वर्णन छायावादी-युग में हुआ है, वह इस समय प्राप्त नहीं है ।

७- बुद्धदेव का चरित अनेक कवियों के लिए प्रबन्ध रचना का प्रेरणा-स्रोत रहा । आचार्य शुक्ल जी ने अनूदित बुद्धचरित को प्रस्तुत करके आगे वाले द्विवेदी-कालीन कवियों को `सिद्धार्थ', `यशोधरा', `कुणालगीत' आदि काव्य रचने के लिए विशेष आह्वान दिया, अवसर भी दिया । बुद्धदेव के समय उनके जीवन से संबंधित कुछ घटनायें और कुछ व्यक्ति भी आधुनिक प्रबन्ध काव्य के लिए उपयोगी वस्तु रहे । वासवदत्ता', `आम्रपाली' आदि काव्य यहाँ उल्लेखनीय है । हिन्दी प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत सात-आठ काव्यों की प्रतिपादन-वस्तु बुद्धदेव ही है और अनेक छोटे बड़े काव्य उनके जीवन और सिद्धान्तों से संबंधित हैं ।

हिन्दी में अनेक लघुकवितायें हैं जो बुद्धदेव के जीवन और सिद्धान्त को लेकर लिखी गयी हैं । अधिकतर कवि इस क्षेत्र में अपनी रचनायें प्रस्तुत कर रहे हैं । मैथिली-शरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, नरेन्द्र शर्मा, अनूपशर्मा, आदि के काव्यों में प्रभूत मात्रा में बौद्धतत्व प्रतिपादित हुए हैं ।

इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य में बुद्धदेव और उनके तत्वों का अत्यन्त ऊँचा स्थान है और आधुनिक कवि उनसे प्रबुद्ध हुए हैं । इसका तात्पर्य यही है कि दो हज़ार पाँच सौ वर्ष पूर्व भारत में उद्भित एक पवित्र व्यक्ति का व्यक्तित्व और उपदेश आधुनिककाल में भी प्रेरणात्मक सिद्ध हुए हैं या गांधी जी के रूप में बुद्धदेव का ही पुनर्जन्म हुआ है, जिससे हिन्दी के कविगण उनमें समता देखते आये और उनकी जयगाथा करते आये । जैसे रामायण और महाभारत की कथायें नये-नये सिरे से आधुनिक कविकुल को नया प्रतिपाद्य प्रस्तुत करने आयी हैं वैसे बुद्धचरित और बौद्धतत्व भी काव्य-रचना के लिए योग्य-वस्तु देते रहे । छायावादी युग के बाद अधिक यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रबल हुआ तो भी बुद्धदेव के सूक्ष्म तत्व कवियों में अनुगुंजित हैं ।

ग्रन्थ-सूची

हिन्दी ग्रंथ

काव्य

अतुकान्त : लक्ष्मीकान्त वर्मा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९७२.

अतिमा सुमित्रानन्दन पन्त - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं० २०२०.

अग्निशस्य नरेन्द्र शर्मा - भारती भण्डार, प्रयाग, सं० २००८.

अनघ मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी (आठवां सं०), सं० २०१४.

अनाथ : सियारामशरण गुप्त - साहित्य-सदन, झांसी, सं० २००६.

अनामिका निराला - भारती भण्डार, इलाहाबाद (द्वि०सं०), सं० २०२५.

अनुत्तरा : प्रभाकर माचवे - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५९.

अन्तर्मंथन उदयशंकर भट्ट - आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६३.

अन्तर्दर्शन तीन चित्र उदयशंकर भट्ट - भारत प्रकाशन मन्दिर, अलिगढ़,

अन्धेरी कविताएँ : भवानी प्रसाद मिश्र - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६८.

अमृत पुत्र : सियारामशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, २०१६.

अभिनव सोपान बच्चन - राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९५८.

अरी, ओ करुणा प्रभामय : 'अज्ञेय' - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५९.

आकुल-अन्तर बच्चन - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६, १९५८.

आत्मोसर्ग : सियारामशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी (चौथा सं०), २०१३ वि०

आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन 'पन्त' - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१४.

आधुनिक-काव्य-संग्रह (३) डा० रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २०१४.

आलोकवृत्त गुलाब खण्डेलवाल - अर्चना, कलकत्ता-६, १९७५.

आम्रपाली : पोद्दार रामावतार 'अरुण' - किरण प्रकाशन, बिहार, १९५६.

आँगन के पार द्वार अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ांसू जयशंकर प्रसाद - भारती भण्डार, इलाहाबाद-(ग्यारहवां सं०),२०१५(वि०)

त्यादि : उदयशंकर भट्ट - आत्माराम एण्ड सं०, दिल्ली(द्वि०सं०), १९६३.

न्द्र धनुष रौंदे हुए थे : 'अज्ञेय' - सरस्वती प्रेस, बनारस, १९५७.

न्मुक्त सियारामशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, सं० २०१३.

कान्त संगीत : बच्चन - राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६.

एकला चलो रे : उदयशंकर भट्ट - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

ंजली रामकुमार वर्मा - साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

ंजली और अर्घ्य : मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी(चौथा सं०),सं०२०१७.

बीर बानी डा० भगीरथ मिश्र - कमल प्रकाशन, इन्दौर

बीर ग्रंथावली : पारसनाथ तिवारी - हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय,१९६१.

बीर वचनावली अयोध्यासिंह उपाध्याय- हरिऔध - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१५.

र्ण : केदारनाथ मिश्र प्रभात - नवभारत प्रकाशन, दिल्ली-६.

रुणालय : प्रसाद - भारती भण्डार इलाहाबाद (तृ० सं०), सं० २०११

ाननकुसुम प्रसाद - भारतीय भण्डार इलाहाबाद(पं० सं०), सं० २००७.

ामायनी : प्रसाद - भारती भण्डार इलाहाबाद, सं० २००३.

किरण वीणा सुमित्रानन्दन पन्त - राजकमल प्रकाशन, प्राईवेट लिमिटेड,दिल्ली-६, १९६७.

ुणाल सोहनलाल द्विवेदी - इण्यिन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद(द्वि०सं०), १९५५.

ुणालगीत मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन, चिरगांव(झांसी), २०१४.

ुरुक्षेत्र दिनकर - चक्रपाल प्रकाशन, पटना-४(पं०सं०), १९६४.

ोणार्क रामेश्वर दयाल दुबे - सतीश प्रकाशन, लखनऊ

ौन्तेय कथा उदय शंकर भट्ट - आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६३.

ुशबु के शिलालेख भवानी प्रसाद मिश्र - सरल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६७.

जरे तारोंवाले : रामकुमार वर्मा - किताब महल, इलाहाबाद, १९६६.

ान्यायन सोहनलाल द्विवेदी - इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५४.

ोत फरोश भवानी प्रसाद मिश्र - सरला प्रकाशन, नई दिल्ली

गीले गीत रघुवीर शरण मित्र - भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, १९५६.
गुंजन सुमित्रानन्दन पन्त - भारती भण्डार, इलाहाबाद(चौ०सं०), २०१८ सं०
ग्राम्या सुमित्रानन्दन पन्त - वही , २००८ सं०
ग्रंथि : सुमित्रानन्दन पंत - भारतीय भण्डार, इलाहाबाद(चौ०सं०), २०१४ सं०
चेतना : सोहनलाल द्विवेदी - इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५४.
चांद हतना हंसा शकुन्तला सिरोठिका - किताब महल, इलहाबाद, १८८३(शकाब्द)
कल्पना : प्रसाद - भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०२६(सं०)
जननायक रघुवीर शरण मित्र - भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, १९६४.
जवाहर ज्योति : ~~शिवदान सिंह सरोज~~ डा० अशोक शर्मा - ~~भारतीय साहित्य प्रकाशन, १९६२~~.
जयद्रथ वध मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, २०२९(सं०)
जय भारत जय : सोहनलाल द्विवेदी -
तप्तगृह केदारनाथ मिश्र प्रभात - बिहार पब्लिशिंग हाउस, १९७१.
तदा शिला उदयशंकर भट्ट - इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलहाबाद(द्वि०सं०), १९३५.
त्रिपथगा : भगवतीचरण वर्मा - भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०११.
दर्द दिया है गोपालदास नीरज - आत्माराम एंड संस, दिल्ली(द्वि०सं०), १९६२.
दिनकर की सूक्तियां दिनकर - उदयाचल, पटना, १९६५.
दिविक सुखवीर सिंह - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७०.
दीपशिखा : महादेवी वर्मा - भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०१६.
दीप जलेगा अश्क - नीलाम प्रकाशन गृह, इलाहाबाद.
दुखान्त समारोह जयसिंह नीरज - आनन्द प्रकाशन, अलवर, १९७१.
दैनिकी सियाराम शरण गुप्त - साहित्य सदन, चिरगांव झांसी, २००३.
पार के इधर-उधर : बच्चन - राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९५७.
नकुल : सियारामशरण गुप्त - साहित्य सदन झांसी(द्वि०सं०),२०१२.
नागर गीता बच्चन - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६, १९६४.
निराला ग्रंथावली(वोल-१ व २) सं० ओंकार शरद - प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ,

निर्वाण डा० जगदीश कुमार - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६९.
निशा निमंत्रण बच्चन - राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-६, १९५९.
नीहार महादेवी वर्मा - साहित्य सदन, प्राइवेट लि०(सातवां), १९७१.
नीरजा महादेवी वर्मा - भारती भण्डार, इलाहाबाद, २०१७(सं०)
नोआखाली में सियाराम शरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी(तृ० सं०),२०१४(सं०)
पक गयी है धूप : रामदरश मिश्र - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, १९६९.
पर आँखें नहीं भरी शिव मंगल सिंह सुमन - राजकमल प्रकाशन, बम्बई.
परिमल निराला - गंगा पुस्तकालय कार्यालय, लखनऊ, १९६६.
परशुराम की प्रतीक्षा : दिनकर - उदयाचल, पटना-४, १९४८.
पल्लविनी सुमित्रानन्दन पन्त - भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २००४.
पुरुषोत्तम राम सुमित्रानन्दन पन्त - राजकमल प्रकाशन, पटना-६, १९६५.
पूजा गीत सोहनलाल द्विवेदी - इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, १९५९.
प्रलय सृजन : शिवमंगल सिंह सुमन - आत्माराम एंड संस, दिल्ली-६, १९५५.
प्रणय पत्रिका : बच्चन - राजपाल एंड सन्स, दिल्ली-६, १९६९.
प्राणगीत गोपालदास नीरज - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-६, १९६१.
प्राणार्पण नवीन - सरस्वती प्रेस, वाराणसी, १९६२.
प्रतिध्वनि रघुवीर शरण 'मित्र' - भारतीय साहित्य प्रकाशन, सरद मेरठ, १९५६.
प्रदक्षिणा : मैथिली शरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी(पांचवां सं०), सं० २०१७.
प्रभाती सोहनलाल द्विवेदी - साहित्य भवन लि०, प्रयाग, १९४६.
प्रेम पथिक : प्रसाद - भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०१९.
प्रेम संगीत : भगवतीचरण वर्मा - विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता
प्रारंभिक रचनायें (भाग I) बच्चन - भारती भण्डार, इलाहाबाद, १९४३.
प्रारंभिक रचनायें (भाग II) : बच्चन - भारती भण्डार,इलाहाबाद, १९४६.
पौ फटने के पहले सुमित्रानन्दन पन्त - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७७.
बनफूल : रूप नारायण त्रिपाठी - गीतायन, प्रयाग

त रात गए नरेन्द्र शर्मा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९६७.
त दिन बीते बच्चन - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९५७.
पू दिनकर - उदयाचल, पटना-४, १९४८.
पू : सियारामशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी (चौथा), सं० २०१३.
वचन) सियारामशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी,
चरित (अनु) रामचन्द्र शुक्ल - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (द्वि० सं०),२०१४.
शरण चन्द्रदेव सिंह - आधुनिक पुस्तक सदन, कलाकार स्ट्रीट,कलकत्ता-७, १९५६.
ब की बानी बेढब बनारसी - गंगा प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा, १९६०.
ाल का काल बच्चन - राजपाल एण्ड संस, दिल्ली (आठवां), १९६४.
रत भारती :मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी (२४),२००९.
ण ज्वार सं० श्रीकान्त जोशी - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९६३.
ाराणा का प्रताप जयशंकर प्रसाद - भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०१२.
नसी उदय शंकर भट्ट - एज्युकेशन पब्लिशिंग कम्पनी,लखनऊ, १९३५.
नथ : भगवतीचरण वर्मा - विशाल भारत बुक डिपो, कलकत्ता, १९४८.
लन : रामनरेश त्रिपाठी - हिन्दी मन्दिर, सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश(इक्कीसवां सं०),
१९६९.
लन यामिनी (मध्य भाग) बच्चन - राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६७.
टूटी की बारात शिवमंगल सिंह सुमन - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९७२.
तकी गोपालदास 'नीरज'-आत्माराम एण्ड संस,दिल्ली-६(द्वि०सं०), १९६३.
क्त यज्ञ सुमित्रानन्दन पन्त - श्री ओम प्रकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली-७,१९६५.
क्तगंधा : सोहनलाल द्विवेदी - नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, १९७२.
ो कविताएं : भगवतीचरण वर्मा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९७४.
~~ो कविता : मेरे गाने : भगवतीचरण वर्मा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६,~~
ो कविता मेरे गीत : पद्मा सचदेव - साहित्य एकादमी, नई दिल्ली, १९७४.
र में जो शेष है उदयशंकर भट्ट - आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, १९६५.

ट्टियों में बन्ध आकार डा० सावित्री सिन्हा - कृष्णचरण जैन, दिल्ली-६, १९७०.
गमयी सियाराम शरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, सं० २०१३.
ाव त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री - विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९७२.
र्थ विजय सियाराम शरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, सं० २०१३.
ोधरा मैथिली शरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, २०१८ सं०
मैथिली शरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, सं० २००९.
ा महादेवी वर्मा - किताबिस्तान, इलाहाबाद, १९४७.
पथ : सुमित्रानन्दन पन्त - भारती भण्डार, इलाहाबाद,- सं० २००६.
ाधार सोहनलाल द्विवेदी - इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, १९५१.
आँसू नहीं भरी शिव सिंह सुमन - राजकमल प्रकाशन, बम्बई.
त चन्दन नरेन्द्र शर्मा - माजी भण्डार, इलाहाबाद, सं० २००६.
ग विराग सं० रामविलास शर्मा - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७४.
ूका दिनकर - उदयाचल, पटना, १९६०.
ा में मंग : मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन, झांसी, सं० २००३.
ों से मोह भगवतीचरण वर्मा - भारती भण्डार, इलाहाबाद, सं० २०१९.
त शिखर सुमित्रा नन्दन पंत - भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सं० २००८वि०
श्म महादेवी वर्मा - साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, (पं०सं०), १९७५
श्मरेखा नरेन्द्र शर्मा - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९६७.
श्मलोक : दिनकर - स्टार पब्लिकेशन, दिल्ली, १९७४.
शि की तरी सुमित्रानन्दन पंत - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७१.
र जयशंकर प्रसाद - भारती भंडार, इलाहाबाद(छठा सं०, २०१६ वि०
सवदत्ता : सोहनलाल द्विवेदी - इंडियन प्रेस प्राइवेट लि०, प्रयाग, १९५६.
स्मृति : १९६२.
ोबा स्तवन नवीन - साधना प्रकाशन, कानपुर, १९५१.
श्वास बढ़ता ही गया : शिवमंगल सिंह सुमन - आत्माराम एंड संस, (द्वितीय सं०),
१९६७.

श्वज्योति बापू डा० रामगोपाल शर्मा - अभिनाम प्रकाश, १९५०.

न्ध्यहिमालय शिवमंगलसिंह `सुमन - आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, १९६६.

स्मृति के फूल भगवती चरण वर्मा - भारती मण्डार, प्रयाग,

रगीत लक्ष्मीनारायण मिश्र - साहित्य भवन प्राइवेट लि०, प्रयाग, १९७६.

ा लो गूंजि धरा माखनलाल चतुर्वेदी - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६०.

शरेखा नेवीन - साधना प्रकाशन, कानपुर, १९५१.

ध्वनि सुमित्रानन्दन पंत - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-१९७१.

र्णिम रथ चक्र सुमित्रानन्दन पंत - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६८.

यकाम सुमित्रानन्दन राजकमल प्रकाशन, पटना-६, १९७५.

ने महक उठे रामावतार त्यागी - आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६५.

द्धार्थ अनूप शर्मा - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई-४(द्वि०सं०), १९५३.

द्धराज मैथिलीशरण गुप्त - साहित्य सदन झांसी(२४वां सं०), २०२२ वि०

मधेनी दिनकर - उदयाचल, पटना, १९४७.

गुलाब खिले गुलाब खण्डेलवाल - अर्चना कलकत्ता ६, १९७५.

सागर-सटीक(भाग-२) सं० हरदेव बाहरी राजेन्द्रकुमार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७४.

सागर नागरी प्रचारिणी सभा(चौ०सं०), २०२१ सं०

विषपायी हे जनम जनम के :`नवीन` - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता २७, १९६

सबिन्दु : जगदीश गुप्त - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन,कलकत्ता-२७, १९६४.

ल्लोल शिवमंगल सिंह सुमन - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६, १९७२.

समाला नरेन्द्र शर्मा - भारती भण्डार, प्रयाग सं २००३

अज्ञेय का काव्य श्री सुमन कुमार - अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर-१, १९६४.

य की काव्यतितीर्षा नन्द किशोर आचार्य - सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर-१, १९७०.

य की कविता :एक मूल्यांकन चन्द्रकान्त बांदिवडेकर

स्वाद के धरातल धनजय वर्मा - विधाप्रकाशन मन्दिर, दिल्ली-६, १९६९.

धुनिक हिन्दी कविता में मनोविज्ञान डा० उर्वशी ज० सूरती - अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, १९६६.

यशंकर भट्ट-काव्य और नाटक डा० सुरेश - विमल प्रकाशन, गाजियाबाद, १९७२.

ोर साहित्य का अध्ययन : पुरुषोत्तम श्रीवास्तव - साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस, सं० २००८.

ोर ग्रंथावली सटीक : प्रो० पुष्पपाल सिंह - अशोक प्रकाशन, १९६२.

ोर और कबीर पंथ डा० केदारनाथ द्विवेदी - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६५.

ोर साहित्य की परख : परशुराम चतुर्वेदी - भारती भण्डार, प्रयाग, सं० २०११.

ोर दर्शन डा० रामजीलाल सहायक - हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, १९६२.

ोर:व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त सरनामसिंह शर्मा - भारतीय शोध संस्थान, गुलाबपुरा, राजस्थान, १९६९.

ोर : सं० विजयेन्द्र स्नातक - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली (तीसरा सं०), १९७०.

ष्ण रस डा० ब्रजवासी लाल श्रीवास्तव - हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६, १९६१.

ा के प्राण बुद्ध जगदीश चन्द्र - मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, सं० २०१३.

ायित्री महादेवी वर्मा डा० शोभानाथ यादव - वोरा एंड कम्पनी, प्राइवेटलि०, बम्बई, १९७०.

कविवर रामकुमार वर्मा उनका काव्य : प्रो० दशरथ राज.

कवि निराला नन्द दुलारे वाजपेयी - वाणी विनय प्रकाशन, वाराणसी, १९६५.

कामायनी के अध्ययन की समस्यायें डा० नगेन्द्र - नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, १९६२.

जयशंकर प्रसाद : नन्द दुलारे वाजपेयी + भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सं० २०१५.

तांत्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

दोहा कोश : राहुल सांकृत्यायन - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १८७९शकाब्द

नये उपन्यास स्वरूप और तत्व सं० राजगोपाल शर्मा, प्रताप चन्द्र जैसवाल - समीक्षालोक कार्यालय, आगरा-२.

नये पुराने झरोखे बच्चन - राजपाल एण्ड संस, दिल्ली-६, १९६२.

नरेन्द्र शर्मा और उनका काव्य लक्ष्मी नारायण शर्मा - नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली-७, १९६७.

निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि डा० मोती सिंह - नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०१९.

निराला और नवजागरण : डा० रामरतन भटनागर - साथी प्रकाशन, सागर, १९६५.

निराला काव्य का अध्ययन : भगीरथ मिश्र - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६७.

निराला :साहित्यिक मूल्यांकन -: गोकाक्कर और कुलकर्णी - कोल्हापुर, फडके बुक सेलर्स,

निराला नव मूल्यांकन रामरतन भटनागर - स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७३.

निराला व्यक्ति और कवि : राम अवध शास्त्री - विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९७२.

पन्त का काव्य डा० प्रतापसिंह चौहान.

पालि साहित्य का इतिहास राहुल सांकृत्यायन - हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, १९६३.

प्रसाद-साहित्य और समीक्षा : रामरतन भटनागर - साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५८.

प्रसाद दर्शन डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना - विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६९.

प्रसाद : निर्मल तलवार - साहित्य प्रतिष्ठान, आगरा, १९५६.

प्रसाद और उनका साहित्य : विनोद शंकर व्यास - हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस,

प्रसाद की काव्य प्रवृत्ति कामेश्वर प्रसाद सिंह - अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६६.

प्रयोगवाद और अज्ञेय : शैल सिन्हा - अशोक प्रकाशन, दिल्ली-६, १९६९.

प्राकृत अपभ्रंश साहित्य : रामसिंह तोमर - हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग - १९६४

बच्चन व्यक्तित्व और कृतित्व : जीवन प्रकाश जोशी - सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७, १९६८

बुद्ध कथा : रघुनाथ सिंह - हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, १९६९.

बुद्धवाणी वियोगी हरि - सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली (तृ०सं०), १९४९.

बुद्धचर्या : राहुल सांकृत्यायन - महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस (द्वितीय), १९५२.

बोधि वृक्ष की छाया में डा० भरत सिंह उपाध्याय - सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली (प्रथम), १९६२.

बौद्ध दर्शन : राहुल सांकृत्यायन - आधुनिक पुस्तक भवन, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७, १९५२.

बौद्ध दर्शन तथा अन्तर्जातीय दर्शन डा० भरतसिंह उपाध्याय - भारती मण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २०११(सं०)

भगवान गौतम बुद्ध : डा० विद्यावति मालविका - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी १ १९६६.

भारत का सांस्कृतिक इतिहास : हरिदत्त वेदालंकार - आत्माराम एंड संस, दिल्ली-६, १९६२

भारत का इतिहास : दिनेश्वर प्रसाद सिंह - हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, कलकत्ता-७, १९६४

भारतीय इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा - रामभानु सिंह शाहर - किताब महल प्रकाशन, दिल्ली १९६

मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का इतिहास : दिनेश चन्द्र भारद्वाज - हिन्दुस्तानी एकादेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, १९५१.

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर बौद्ध धर्म का प्रभाव डा० सरला त्रिगुणायत - साहित्य निकेतन, कानपुर, १९६३.

महीयसी महादेवी : गंगा प्रसाद पाण्डेय - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९.

महादेवी का काव्य वैभव : प्रो० रमेश चन्द्र गुप्त + प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली-६, १९६८.

ी नया मूल्यांकन : गणपतिचन्द्र गुप्त - भारतेन्दु भवन, लोवर बाज़ार, शिमला, १९६९.

ी वर्मा देशसिंह भाटी - अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६०.

ा (अनु०) भदन्त आनन्द कौशल्यायन - आधुनिक पुस्तक भवन, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७, १९५२.

ाल चतुर्वेदी व्यक्ति और काव्य रामसिलावनतिवारी - अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६६.

ाल चतुर्वेदी: व्यक्तित्व और कृतित्व सं० प्रेम नारायण टंडन - श्री नंद नन्दन प्रकाशन, लखनऊ, १९७०.

ाशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के व्याख्याता : उमाकांत - हिन्दी अनुसंधान परिषद् ग्रंथमाला, दिल्ली-१९६०.

ाशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य : कमला कान्त पाठक - रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशेरस, दिल्ली-१९६५.

ाव्य और पूर्वांचलीय रामकाव्य रमानाथ त्रिपाठी - दिल्ली, १९७२.

मार वर्मा का काव्य : प्रेमनाथ त्रिपाठी - चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६५.

मार वर्मा तथा कला और कृतित्व श्री राकेश - साहित्य प्रकाशन मन्दिर.

राम शरण गुप्त सं० नगेन्द्र - नाशनल पब्लिसिंग हाऊस, दिल्ली.

साहित्य धर्मवीर भारती - किताब महल, इलाहाबाद, १९६८.

ा के चार अध्याय दिनकर - उदयाचल प्रकाशन, पटना-४, १९६२.

प्त आक्सफोर्ड हिन्दी साहित्य परिचायक गंगाराम गर्ग - आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई-१, १९६३.

साहित्य का संक्षिप्त इतिहास वाचस्पति गैरोला - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६०.

और उनका साहित्य शान्तिकुमार नाथूराम व्यास - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५७.

दी साहित्य कोश (वोल.-१) ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, सं० २०२०.

दी साहित्य का वृहत् इतिहास पूर्व पीठिका राजबली पाण्डेय - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४.

दी साहित्य का वृहत् इतिहास (वोल-१) राजबली पाण्डेय - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० २०१४.

तं(मलयालम) : ए०जी०कृष्णावारियर - प्रकाश प्रिंटिंग और पब्लिशिंग हाऊस, ट्रिवेन्ड्रम, १९५०.

NGLISH BOOKS

Study of History (Vol I) : Arnold J.Toynbee-Dell Publishing Co., New York, 1965.
History of South India : K.A.Neelakanta Sastri-Oxford University Press, 1966.
: Advanced History of India : R.C.Majumdar-Macmillan & Co., New York, 1963.
: Introduction to Tantric Buddhism : Dr.S.B.Dasgupta-University of Calcutta, 1958.
agavan Buddha : R.R.Diwakar-Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1967.
ddhism in India and Abroad : A.C.Banerjee-The World Press P.Ltd., Calcutta, 1973.
ddhist India : Dr.Rhys Davids-Sunil Gupta India P.Ltd., Calcutta, 1959.
ddhist Shrines in India - Publication Division, 1968.
ictionary of Pali Proper Names : Malalasekera
ncyclopaedia of Religion and Ethics (Vol XX) : James Hastings-T.T.Clark, New York, 1961.
volution of Indian Culture : B.N.Lunia
ndian Mythology : Veronica Ions-Paul Hamlyn, England, 1968.
he Light of Asia : Sir EDWIN ARNOLD-Routledge & Kegan Paul Ltd., London, 1959.
he Religions of India : Edward Hopkins
he Teachings of the Compassionate Buddha : E.A.Burtt-The New American Library, New York
he Wonder that was India : A.L.Basham-Sidgwick & Jackson, Fontana 1971.
500 Years of Buddhism : Dr.S.Radhakrishnan-Publication Division, 1964.
he Mahabodhi - (Magazine)

* * * * *